विद्यापति की
पुण्यभूमि
मिथिला को,
जिसकी मिट्टी और आकाश में
आज भी
उस अमर कवि की
वाणी
मुखरित है

विषय-सूची

आमुख

गोस्वामी तुलसीदास और सत कबीर की तरह विद्यापति और चण्डीदास ने भी भारत के पूर्वी क्षेत्रो के जनजीवन को पिछली ५ सदियो से प्रभावित किया है। गौडीय वैष्णवो ने इनके पदो को सुदूर वृन्दावन तथा मथुरा तक पहुँचा दिया। सूर आदि परवर्ती कृष्ण-भक्त कवियो पर विद्यापति का प्रभाव देखा जाता है। बगाल, असम तथा उत्कल के वैष्णव पदकर्त्ताओ की परम्परा विद्यापति तथा चण्डीदास से प्रारम्भ हुई, यह प्राय. सभी वगीय विद्वान् मानते हैं। इनमे विद्यापति की प्रतिभा विलक्षण थी। उनका व्यक्तित्व भी बहुमुखी था। 'पुरुषपरीक्षा' और 'पदावली', 'गोरक्ष-विजय' और 'कीर्त्तिपताका', 'कीर्त्तिलता' और 'लिखनावली', 'विभागसार' और 'दान-वाक्यावली' एक ही व्यक्ति की रचनाएँ हैं, ऐसा सहसा विश्वास नही होता। कथा-साहित्य, प्रगीत-मुक्तक, नाटक, निबन्ध, वीरगाथा तथा पत्रावली जैसी विविध विधाओ मे रचना करके कवि ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इसके साथ ही सस्कृत, अवहट्ठ तथा मैथिली मे सफलता के साथ रचना करके अपने भाषा-ज्ञान का भी परिचय दिया है। गीतकार और कथाकार, निबन्धकार और नाटककार विद्यापति मध्य-कालीन भारतीय साहित्य के इतिहास मे एक विशिष्ट तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

ऐसे महान् कवि और लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व पर गम्भीर एव सर्वतो-मुखी अध्ययन की आवश्यकता तथा उपयोगिता पर दो मत नही हो सकते। हिन्दी मे विद्यापति-साहित्य के किसी पक्ष पर इसके पूर्व कोई शोधकार्य हुआ हो, ऐसा नही जान पडता। विद्यापति पर अधिकतर शोध-स्तर के कार्य कतिपय वगीय विद्वानो ने किये है। पर उनका क्षेत्र काल-निर्णय, विद्यापति-युगीन मिथिला का राजन्य वर्ग, विद्यापति के काव्य का मुख्य वर्ण्य वैष्णव रस है या शृङ्गार, जैसे विषयो तक ही सीमित रहा है। डॉ० उमेश मिश्र, डॉ० जनार्दन मिश्र, डॉ० सुभद्र झा, स्व० प० शिवनन्दन ठाकुर प्रभृति विद्वानो ने विद्यापति के युग एवं उनकी पदावली सम्बन्धी अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। पर इनकी दृष्टि भी अधिकतर उपर्युक्त विषयो तक ही सीमित रही। विद्यापति-साहित्य पर कतिपय समीक्षात्मक पुस्तकें भी लिखी गयी। इनमे प्रमुख निम्नलिखित हैं—

विद्यापति—सूर्यबलीसिंह, लालदेवेन्द्रसिंह
गीतकार विद्यापति—राम वासिष्ठ
विद्यापति—शिवप्रसाद सिंह
विद्यापति-काव्यालोक—नरेन्द्रनाथ दास
विद्यापति : तुलनात्मक समीक्षा—जयकान्त नलिन
विद्यापति और उनकी पदावली—देशराज भाटी

इनमे नरेन्द्रनाथ दास तथा जयकान्त नलिन ने विद्यापति के पदो की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। श्री दास ने विद्यापति के कतिपय पदो की समीक्षात्मक व्याख्या करके उनकी तद्सम्बन्धी अन्य कवियो की रचनाओ से श्रेष्ठता सिद्ध की है। नलिनजी का अध्ययन अधिक गम्भीर है, उन्होने विद्यापति के पद-साहित्य के विभिन्न पक्षो का परवर्ती कवियों (विशेषकर सूरदास) पर प्रभाव का निरूपण किया है। अन्य पुस्तकें विद्यापति की पदावली पर सामान्य अध्ययन मात्र है।

इनके अतिरिक्त कुछ छिटपुट ग्रन्थो मे विद्यापति तथा उनकी पदावली पर सामान्य विवेचन किया गया है। उनमे कुछ प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित है—

हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा
हिस्ट्री ऑफ मैथिली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर—डॉ० जयकान्त मिश्र
बंग भाषा ओ साहित्य—डॉ० दिनेशचंद्र सेन
बागला साहित्येर कथा—श्रीयुत श्रीकुमार बद्योपाध्याय
बेंगाली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर—डॉ० जे० सी० घोष
वैष्णव रस-साहित्य—खगेन्द्रनाथ मित्र
भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—प० बलदेव उपाध्याय
श्रीराधा का क्रमविकास—डॉ० शशिभूषण दास गुप्त
शृङ्गार-परम्परा और महाकवि बिहारी—डॉ० गुप्त
रीतिकाव्य की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र

उपर्युक्त ग्रन्थो के विद्वान् लेखको ने विद्यापति तथा उनके पद-साहित्य के एकाधिक पक्षों पर मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। पर इस तरह के अध्ययन का अत्यधिक मूल्य होते हुए भी उन्हे कवि की कृतियो के अध्ययन का एक चित्रफलक ही माना जा सकता है क्योकि उनका प्रकृत विषय विद्यापति-साहित्य का विवेचन नही है। अत. इस बात की आवश्यकता बनी रही कि विद्यापति के समग्र काव्य का व्यापक और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय।

विद्यापति के विभिन्न ग्रन्थो का, विशेषकर 'पदावली' और 'कीर्त्तिलता' का, सम्पादन वरिष्ठ विद्वानो के द्वारा हुआ है। उनकी भूमिका मे कवि तथा उनके काव्य के विभिन्न पक्षो पर विशद प्रकाश डाला गया है। इनमे म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री,

नगेन्द्र गुप्त, मित्र-मजुमदार तथा डॉ० सुभद्र झा द्वारा प्रस्तुत भूमिकाएँ बडी ही विद्वत्तापूर्ण एव बहुमूल्य हैं । बिहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा प्रकाशित 'पदावली' के प्रथम खण्ड की भूमिका भी तथ्यपूर्ण एव विवेचनात्मक है। पर भूमिका मे जैसा स्वाभाविक है, कवि के विषय मे अधिक, उसके काव्य पर कम विचार किया गया है। कवि के सम्बन्ध मे भी उसका युग, काल निर्णय, आश्रयदाता राजन्य वर्ग, उसकी उपासना-पद्धति, जीवनवृत्त आदि की ही अधिकतर विवेचना हुई है।

अत विद्यापति-साहित्य के पूर्ण आयाम को दृष्टि मे रखकर उसके विभिन्न पक्षो तथा भावधारा के सागोपाग विवेचन की आवश्यकता थी। प्रस्तुत शोधकार्य इस दिशा मे एक लघु प्रयास है। अब तक विद्यापति-साहित्य का अध्ययन उनकी 'पदावली' तक ही उसे सीमित मानकर होता रहा है। इसमे सन्देह नही कि विद्यापति के गीतिपद उनके साहित्य का सर्वप्रमुख तथा सबसे बडा अश है, पर कवि की भावधारा को समझने के लिए उसकी अन्य रचनाओ—विशेषत 'कीर्त्तिपताका', 'पुरुषपरीक्षा तथा 'गोरक्षविजय'—का अध्ययन भी आवश्यक है। इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य पर ही विद्यापति के प्रेमकाव्य का स्वरूप पूर्णत स्पष्ट हो सकता है। प्रस्तुत शोधकार्य का सर्वोपरि लक्ष्य यह रहा है कि विद्यापति के पदो का अध्ययन करते समय उनकी अन्य साहित्यिक रचनाओ को भी ध्यान मे रखा जाय। 'पुरुषपरीक्षा', 'कीर्त्तिपताका', कीर्त्तिलता' तथा 'गोरक्षविजय' से उपयुक्त उद्धरण देकर विद्यापति की प्रेम भावना का निरूपण करने का कदाचित् यह प्रथम प्रयास है।

कवि एव काव्य युग-जीवन को प्रभावित करते हैं, साथ ही व उसकी सन्तति भी होते हैं। विद्यापति के प्रेमगीत क्यो मिथिला मे लौकिक प्रेमगीत ही बने रहे जब कि वगभूमि मे वे वैष्णव पदावली के आदि-स्रोत बन गये, इसके मूल कारणो पर विचार करके मैंने उनके सूत्र दोनों क्षेत्रो के तत्कालीन तथा परवर्ती सामाजिक परिवेश मे ढूँढने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार मेरा लक्ष्य रहा है कि विद्यापति शृङ्गारी कवि थे या भक्त—इस समस्या का सर्वमान्य, सतोषजनक तथा वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत किया जाय।

तेरहवी-चौदहवी शती मे विद्यापति के प्रेमगीतो की निर्झरिणी मिथिला मे फूट पडी, वहाँ से उमडती हुई भक्ति की पावन सहस्रधारा बन उसने समस्त बग, असम और उत्कल को आप्लावित कर दिया, यह क्या एक आकस्मिक घटना थी? कहाँ से विद्यापति को रागबद्ध गीतिपदो का शिल्प मिला? एक पृथक् प्रकरण मे इन प्रश्नो का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है। विद्यापति के प्रेमकाव्य के शिल्प और भाव विधान के प्रेरणास्रोत की खोज प्रस्तुत शोधकार्य का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

विद्यापति को कभी रीतिकाव्य के कलाकारो की पंक्ति मे, कभी कृष्णभक्त कवियो की श्रेणी मे स्थान दिया जाता रहा है। विद्यापति साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करके इस उलझनो को भी दूर करने का मेरा प्रयत्न रहा है। इसी क्रम

मे विद्यापति-साहित्य मे प्रकृति-चित्रण पर विचार किया गया है तथा उसका कौनसा रूप उनके प्रेमकाव्य मे सर्वाधिक मिलता है इसे स्पष्ट किया गया है।

विद्यापति सामान्य लोक-दृष्टि मे सभोग शृङ्गार के कवि माने जाते हैं। कई सुधी समीक्षकों ने भी उन्हे सभोग का कवि ही माना है। पर उनके प्रेमकाव्य मे विप्रलभ तथा सभोग शृङ्गार दोनो के मार्मिक एव उत्तमोत्तम पद मिलते हैं। तरुण प्रेमियो के मिलन की गुलाबी घडियों के रगीन एव रसभीने चित्र उन्होंने खीचे हैं, साथ ही पति-वियुक्ता तथा परित्यक्ता नारियो के नयनो की कभी नही थमनेवाली वरसात भी उनके विरहगीतो मे उमडी पडती है। विद्यापति के प्रेमकाव्य के दोनो पक्षो (विप्रलभ और सभोग) का निरूपण कर उनकी प्रेम-भावना के सर्वांगीण एव गम्भीर रूप की प्रतिष्ठा करना इस शोधकार्य का लक्ष्य है।

विद्यापति केवल प्रेम के मौजी कवि मात्र नही थे। उनकी जीवनी तथा उनकी रचनाओ से इस वात का सकेत मिलता है। विद्यापति के प्रेमकाव्य मे मानव जीवन के नाना क्रिया-व्यापारो से सम्बन्धित सूक्तियाँ भरी पडी हैं। प्रणयी युग्म के प्रथम मिलन की मदविभोर घडी मे भी कवि जीवन के वृहत्तर परिप्रेक्ष्य को आँखों से सर्वथा ओझल नही होने देता। सामाजिक एव वैयक्तिक जीवन सुन्दर, सुखी तथा स्वस्थ रहे—विद्यापति के काव्य का यह मूलस्वर है। शृङ्गार के साथ नीति, प्रेम की रोमानी वेहोशी के साथ जीवन के यथार्थ एव व्यावहारिकता की गगा जमुना विद्यापति के प्रेमकाव्य की सबसे बडी और कदाचित् अद्वितीय विशेषता है। प्रस्तुत शोध प्रवन्ध मे सामान्यत सर्वत्र, तथा 'विद्यापति के प्रेमकाव्य का सामाजिक पक्ष' शीर्षक प्रकरण मे विशेष रूप से, इस तथ्य का निरूपण किया गया है। विद्यापति के प्रेमकाव्य से सकलित सूक्तियो की एक विशद तालिका (परिशिष्ट—ख) प्रस्तुत की गयी है।

विद्यापति ने मध्यकालीन भारतीय समाज मे नारी जीवन के सबसे बडे यथार्थ को वडे ही समीप से करुणाजन्य सहानुभूति के साथ देखा था। 'बहुल कामिनि एकल कन्त' की स्थिति सवेदनशील नारी हृदय के लिए कितनी करुणाजनक तथा विवशतापूर्ण हो सकती हैं, इसकी परख उन्हें थी। प्रिय द्वारा उपेक्षिता वा परित्यक्ता नारी के अन्तस् का हाहाकार, उसकी अछोर व्यथा एव सीमातीत निराशा उनके कितने ही पदो मे फूट पडी है। विद्यापति के प्रेमकाव्य के इस पक्ष पर अब तक किसी की दृष्टि नही पडी थी, इसका निरूपण प्रस्तुत शोधकार्य का एक विशेष उद्देश्य रहा है।

कवि के व्यक्तित्व का उसके काव्य पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कितना प्रभाव पडता है यह कवि की महत्ता की एक कसौटी मानी गयी है। विद्यापति की प्रेम-भावना पर उनके जीवन-दर्शन एव जीवनादर्शों का कितना प्रभाव पड़ा है इसकी परख उनके जीवन-वृत्त एव व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो के परिचय के विना नही हो सकती, अत एक प्रकरण मे (परिशिष्ट—क) कवि के जीवन-वृत्त एव उसके व्यक्तित्व की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है जिसमे हम उस हिमालय की एक झलक मिल सके जिससे

प्रेमगीतो की पावन गगा फूटकर सदियो से कोटि-कोटि जनगण के मन को रसाप्लावित करती आ रही है। इस प्रसग मे मैंने विद्यापति के काल-निर्णय की समस्या पर भी विचार किया है तथा एतद्सम्बन्धी कतिपय अपनी स्थापनाओ द्वारा उसके समाधान का एक छोटा-सा प्रयास भी किया है। यहाँ मेरा लक्ष्य विद्यापति के युग तथा उनके व्यक्तित्व की सही-सही एव सर्वांगीण रूपरेखा प्रस्तुत करने का रहा है।

विद्यापति के प्रत्येक पद मे कौनसा भाव या वर्ण्य-विषय है—इसका सर्वाङ्गीण अध्ययन पहली बार इस शोध-प्रबन्ध मे किया गया है। इस अध्ययन के फलस्वरूप विद्यापति के पदो की एक विशद विषयानुक्रमणिका (परिशिष्ट—ग के अन्तर्गत) प्रस्तुत की गयी है। यह अनुक्रमणिका खगेन्द्रनाथ मित्र तथा डॉ० विमानविहारी मजुमदार द्वारा सम्पादित 'विद्यापति' मे सकलित पदो के आधार पर बनायी गयी है। प्रस्तुत शोधकार्य मे अन्य पदावलियो की उपेक्षा नही करते हुए मित्र-मजुमदार द्वारा सम्पादित 'पदावली' की सहायता अधिक लेने के कारण हैं। हिन्दी मे अब तक जितनी पदावलियाँ प्रकाशित हुई हैं उनमे सकलित पदो की अपेक्षा मित्र-मजुमदार महोदयो ने सबसे अधिक पद सकलित किये हैं। यद्यपि पाठानुसन्धान तथा छपाई सम्बन्धी कई तरह की अशुद्धियाँ इसमे जगह-जगह रह गयी है, फिर भी इसके विज्ञ सम्पादको ने इसमे सकलित पदो का प्रामाणिकता तथा क्षेत्र के आधार पर जो वर्गीकरण किया है उससे विद्यापति के पद-साहित्य के अध्येता को पर्याप्त प्रकाश मिलता है।

मित्र-मजुमदार द्वारा सम्पादित 'विद्यापति' के अतिरिक्त डॉ० सुभद्र झा द्वारा सम्पादित 'विद्यापति गीत सग्रह' तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित विद्यापति की पदावली' (प्रथम खण्ड) से अधिकतर उद्धरण दिये गये है। पाठानुसन्धान की दृष्टि से ये दोनो ग्रन्थ विशेष महत्त्व के हैं। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत शोधकर्ता को मिथिला के विभिन्न क्षेत्रो मे घूमकर विद्यापति के पद तथा उनकी रचनाओ की खोज करते हुए कवि और उनके काव्य के सम्बन्ध मे कई तरह की अनुश्रुतियाँ तथा तथ्य उपलब्ध हुए जिनसे कवि के प्रेमकाव्य सम्बन्धी निष्कर्षो पर पहुँचने मे बहुमूल्य सहायता मिली है।

यो तो विद्यापति के गीतो को बचपन से ही सुनता आया हूँ, 'भनइ विद्यापति' युक्त कितने ही जाने-अनजाने पद सुने होंगे, उनमे कितनी विद्यापति की रचनाएँ होगी भी या नही, कहना कठिन है। विद्यापति-साहित्य का अध्ययन-अध्यापन पिछले १५ वर्षो से करता आ रहा हूँ। इस क्रम मे जब-जब उस महाकवि के साहित्य-पारावार मे अवगाहन करते हुए अधिकाधिक गहराई मे उतरा, उसमे एक-से एक जगमगाते मोती दृष्टिगत हुए। साथ ही विद्यापति के अधिक लोकप्रिय दशाधिक गीतिपदो के आधार पर कवि की भावधारा, व्यक्तित्व तथा साहित्य के सम्बन्ध मे जो सामान्य धारणाएँ फैली है उनमे कितनी सत्य और कितनी कल्पनाजन्य है यह भी ध्यान मे आया। विद्यापति सच्चे अर्थो म जन-कवि हैं। मिथिला और वग दोनो की साहित्य-परम्परा का आदिस्रोत उन्हे माना जाता है। पर बगीय जनमत उन्हे वैष्णव पदकर्त्ता

समझकर आदर देता है, अन्यत्र विद्यापति को मसृण शृङ्गार का गीतकार मात्र समझा जा रहा है। प्रस्तुत शोधकार्य का मूल उद्देश्य यह है कि इन दोनो अतिवादो से बच कर विद्यापति की प्रेम भावना का सही निरूपण उनके युग, उनके पद तथा अन्य साहित्यिक रचनाओ एव उनके व्यक्तित्व के विस्तृत परिप्रेक्ष्य पर किया जाय।

अत मे अपने प्रिय बन्धु डॉ० श्यामनन्दन प्रसाद 'किशोर' के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके प्रोत्साहन तथा दिशानिर्देश के बिना यह शोधकार्य सम्पन्न करना मेरे लिए कठिन था। अपने गुरु एव अभिभावक-तुल्य प० छविनाथ पाडेयजी के प्रति किन शब्दो मे आभार प्रकट करूँ, जिनकी सद्प्रेरणा के बिना यह कार्य शायद प्रारम्भ ही नही होता। आदरणीय आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस शोधकार्य के क्रम मे अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करके मेरी सहायता की है, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

मैं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पुस्तकालय, पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय, सिन्हा लाइब्रेरी, पटना, राज लाइब्रेरी, दरभगा, मिथिला रिसर्च इन्स्टीट्यूट, दरभगा तथा नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के अधिकारियो के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके सहयोग के बिना इस शोधकार्य के लिए सामग्री-सकलन करना अत्यन्त कठिन हो जाता।

श्री भोलानाथ अग्रवाल सचालक विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ने इस प्रबन्ध के प्रकाशन मे जो अप्रत्याशित उत्साह और तत्परता दिखायी है इसके लिए मैं उनका हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

रोड न० ४, राजेन्द्र नगर
पटना
महाशिवरात्रि, स० २०२२

अरविन्द नारायण सिन्हा

१

विषय-प्रवेश

(क) विद्यापति की मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था।

(ख) विद्यापति के प्रेमकाव्य के प्रेरणास्रोत।

(क)

विद्यापति की मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था

युग-जीवन की वाणी ही कविता है एव कवि उसका उद्गाता। युग-युग से मानव अपने गीत एव चित्रो मे अपने हर्ष-विषाद, प्रेम और घृणा, आशा-आकाक्षा, जय एव पराजय तथा आह्लाद एव आशकाओ को रूपायित करता आ रहा है। माता की लोरियो, विवाह के गीता, कटनी-रोपनी तथा जाँता पर के सामूहिक गीतो मे मानव जाति के इतिहास के कितने विस्मृत अध्याय मुखरित होते रहते हैं, कौन जाने!

काव्य की लता के मूल सामाजिक जीवन के धरातल मे ही गडे होते है। वही से कवि को वह प्राणरस का अक्षय स्रोत मिलता है जिससे अभिसिंचित होती हुई उसकी वाणी गीत के खील और फूलो से धरित्री का आँचल भरती रहती है। पर सामाजिक जीवन कोई स्वत सम्पूर्ण वा स्वतन्त्र इकाई नही। वह एक अविच्छिन्न अनवरत शतधा है जो ज्यो-ज्यो आगे बढती है, सहस्रधारा बनती जाती है।

कवि-मानस पर युग-जीवन प्रतिबिम्बित होता रहता है—अपनी कटुताओ, कुरूपताओ, कोणात्मकताओ तथा अनगढताओ के साथ। उसमे यथार्थ की विस्तृति तो होती है, किन्तु कला की सुघडता नहीं। मर्मी कवि उसमे रूप-रस भर कर उसे अपनी स्वर-वीणा पर झंकृत करता रहता है। यह स्वर-झंकार ही काव्य है।

विस्मय और प्रेम मानव के प्राचीनतम मनोराग होगे। विस्मय कही आह्लाद, कही आकर्षण, कही आतक और कही श्रद्धा का जनक होता है। मानव के प्राचीनतम गीतो मे उसके ये मनोभाव मुखरित हुए है। तब जब कि जीवन सरल और ऋजु था, समाज जटिल तथा बहुधन्धी नही बना था, प्रकृति के उन्मुक्त रूप, बदलते पटाक्षेप

तथा रहस्यों को देख मानव विस्मित होता रहता था, विस्मयजन्य मनोराग उसके प्रथम गीतों मे व्यक्त हुए है।

व्यक्ति के अन्तर्सम्बन्धों के नियम के रूप मे समाज विकसित हुआ। अन्तर्सम्बन्धों का यह जाल जटिलतर तथा दुर्निवार होता गया। विस्मय की जगह अब प्रेम और घृणा ने ले ली। कवि अब युद्ध और प्रेम के गीत अधिक गाने लगा।

फिर समाज के जटिलतर होने की अवस्था आयी। विभिन्न वर्गों मे विभक्त वह पहले ही हो चुका था। युद्धों मे हार-जीत होती ही रहती थी। इनके साथ निराशा, विपन्नता तथा आत्मप्रवंचना के दमन मे मानव-मन विह्वल होने लगा। कवि ने मानव के व्यथासंकुल चित्त को सात्वना देने के लिए मनोहर स्वर्ग की कल्पना उसके सामने रखी, देव-देवियों एवं परियो की सृष्टि की तथा दुर्दिन काटने के लिए भाग्यवाद का सन्देश दिया।

निष्कर्ष यह है कि युग-जीवन के बदलते स्वरूप के साथ कवि की स्वरलहरी मे भी परिवर्तन होते रहे, उसके सुरताल भी बदलते रहे। किसी भी भाषा के साहित्य के पन्ने उलटें, उसके हर अध्याय के पीछे युग-जीवन का एक विशेष परिप्रेक्ष्य दीख पडेगा। युग-जीवन के पटाक्षेपों के साथ साहित्य की भाव-सम्पदा मे परिवर्तन होता है, तदनुरूप उसकी अभिव्यक्ति का शिल्प-विधान भी बदलता है।

युग-जीवन हमारा वर्तमान है। उसके मूल अतीत मे निहित होते है। इतिहास के अविच्छिन्न प्रवाह की ही एक अवस्था को युग-जीवन कहते हैं। इतिहास पर भूगोल का भी प्रभाव पडता है। किसी देश या क्षेत्र की प्राकृतिक बनावट, जलवायु, वनस्पति का प्रभाव वहाँ के अधिवासियों पर पडता रहता है। उनके दृष्टिकोण, जीवन-दर्शन, मनोवृत्ति, जातीय प्रकृति आदि इनसे प्रभावित होती है। किसी देश या अंचल का भूगोल वहाँ की राजनीति को भी प्रभावित करता है। भूगोल एक स्थिर प्रवाहस्रोत है, इतिहास गत्यात्मक। दोनों मिलकर हमारी सभ्यता-संस्कृति को प्रभावित करते रहते हैं। दोनों से हमारा सामाजिक जीवन प्रभावित होता रहता है।

काव्य में सामाजिक जीवन प्रतिबिम्बित होता है। कवि उसका चित्रकार एवं व्याख्याता होता है। समर्थ कवि उसे गति एवं प्रेरणा भी देता है, उसके समक्ष नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा करता है। अत कवि एवं काव्य को उसके सामाजिक जीवन से, उसके युग जीवन से विच्छिन्न करके नही देखा जा सकता। कालिदास और श्रीहर्ष, जायसी और कबीर, सूर और तुलसी—सभी शाश्वत सृजन-प्रतिभा से सम्पन्न होते हुए भी अपने-अपने युग-जीवन की सन्तति थे। विद्यापति भी इसके अपवाद नही।

अत किसी कवि की भावधारा को ठीक-ठीक समझने के लिए; उसकी रचनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक है कि उस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का भी अध्ययन किया जाय जिसने उसे जन्म दिया है। कितना आवश्यक है यह अध्ययन, इसका एक उदाहरण विद्यापति का प्रेमकाव्य ही है। मिथिला एवं

बंगाल दोनों निकटतम पड़ोसी प्रदेश हैं। सांस्कृतिक आदान-प्रदान दोनों के मध्य होता रहा है। दोनों के कवि और कलाकार, चिन्तक और दार्शनिक एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। जयदेव और चण्डीदास ने विद्यापति को प्रभावित किया, विद्यापति ने बंगला और ब्रजबुलि के पदकर्त्ताओं को। फिर भी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में भेद होने के फलस्वरूप विद्यापति के प्रेमगीत बंगाल में वैष्णव रस साहित्य के प्रेरणास्रोत बन गए, विद्यापति को गौडीय वैष्णव मान कर उन्हें कृष्णलीला के भागवत उद्गाता के रूप में पूजा गया, जबकि मिथिला में उनकी 'नचारी' एवं 'महेशवाणी' को भक्तों ने अपनाया तथा उनके प्रेमगीतों को महिलाओं ने।

इसी हेतु इस अध्याय में विद्यापति-युगीन मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था का एक संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस क्रम में आनुषंगिक रूप से मिथिला के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा भी अत्यन्त संक्षेप में दे दी गई है। अस्तु।

मिथिला : प्राचीन इतिहास

विद्यापति की जन्मभूमि मिथिला है। आधुनिक विहार राज्य के उत्तरीपूर्वी भाग को सामान्यतः मिथिला या तिरहुत कहते हैं। प्राचीन वाङ्मय में इस क्षेत्र को विदेह कहते थे। इसका कुछ भाग नेपाल तराई में भी पड़ता है।

शतपथ ब्राह्मण में माथव विदेह एवं गौतम रहूगण का उल्लेख[1] किया गया है। यहाँ सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। इनके आदिपुरुष निमि थे। इनके पुत्र मिथि हुए। इनके सुशासन में यह देश विशेष रूप से धन-धान्य से सम्पन्न हुआ, इसी हेतु इसका नामकरण मिथिला हुआ।[2]

माथव या माधव नामक किसी राजा ने यहाँ आर्य सभ्यता का प्रसार किया। उनके वंशज जनक-विदेह कहलाए।[3] इस वंश के राजाओं की विशेषता यह थी कि वे दार्शनिक तथा ब्रह्मज्ञानी भी होते थे। बृहदारण्यकोपनिषद् में जनक की राजसभा में शास्त्रचर्चा में तल्लीन सुधी समाज का उल्लेख किया गया है। इन विद्वज्जनों में एक थे याज्ञवल्क्य मुनि। ये अपने काल के प्रकाण्ड ब्रह्मज्ञानी तथा सिद्ध योगाभ्यासी थे।

---

१ "तर्हिविदेघो माथवऽआस। सरस्वत्या स ततएव प्राङो दहन्नभीयामेयां पृथिवीं त गोतमश्च रहूगणो विदेघश्च माथव पश्चाद् दहन्त मन्नवीयतु सऽहमा सर्वा नदीर-तिदाह सदानीरेत्युत्तराद् गिरेर्निर्द्धावति ताम्हैव......"

—माध्यान्दनीये शतपथ ब्राह्मणे, पृ० ५२।

२ 'मिथिला तत्त्वविमर्श'—महामहोपाध्याय प० परमेश्वर झा कृत, पृ० ८२।

३ जनकोह वैदेहो, बहु दक्षिणेन यज्ञेनेजे, तत्रह कुरु पंचालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभुवुस्तस्यह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणानामनू चानतम इति। सहगवा छं सहस्रमवरुरोध, दशदश पादा एकैकस्याः श्रृंगयोराबद्धा बभूवुः।"

—बृहदारण्यकोपनिषद्।

इनकी दो पत्नियाँ थी—मैत्रेयी तथा कात्यायिनी। मैत्रेयी स्वय भी विदुषी थी। इनके सम्बन्ध मे एक कथा-प्रसंग वृहदारण्यकोपनिषद मे वर्णित है। ये याज्ञवल्क्य विदेहराज के पुरोहित तथा राजगुरु थे। याज्ञवल्क्य स्मृति की रचना इन्ही ने की थी। इनका काल ई० पू० पाँचवी शताब्दी माना गया।[१] पर याज्ञवल्क्य स्मृति के आधुनिक प्राप्त रूप का रचनाकाल सन्दिग्ध है।

वाल्मीकीय रामायण मे रामविवाह प्रसङ्ग के अन्तर्गत (बालकाण्ड सर्ग ७१) मे इस प्रदेश के राजाओ की वशावली दी गयी है। आदिपुरुष निमि, उनके पुत्र मिथि से सीरध्वज जनक तक के नाम इस क्रम मे उल्लिखित है। विष्णुपुराण (अंश ४, अध्याय ५) मे भी मिथिला या विदेह के राजाओ की सूची मिलती है। वाल्मीकीय रामायण मे मिथिला की भौगोलिक अवस्थिति का उल्लेख इतना ही मिलता है कि यह प्रदेश गङ्गा के उत्तर था।

महाभारत मे राजा पाण्डु के मिथिला जाकर वहा के विदेहो को युद्ध मे पराजित करने का उल्लेख मिलता है।[२] फिर *कर्णपर्व (५ वाँ अध्याय)* मे मिथिला के राजा क्षेमधूति की चर्चा की गई है।[३] विष्णुपुराण मे जिस राजा क्षेमारि अथवा भागवत् के नवम् स्कन्ध मे क्षेमधि का उल्लेख है, ये क्षेमधूति सम्भवत उनसे भिन्न नही।[४] क्षेमधूति ने महाभारत युद्ध मे कौरवो का साथ दिया था।[५] पुन. सभापर्व (अध्याय ३०) मे भीम के मिथिला के राजा से युद्ध होने का विवरण मिलता है।[६]

वृहद् विष्णुपुराण मे मिथिला की भौगोलिक सीमाओ का संकेत मिलता है। उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे गगा नदी, पूरब मे कौशिकी एवं पश्चिम मे गंडकी की धारा—इसके प्राकृतिक सीमान्त हैं।[७]

---

१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—मैकडोनेल।

२ ततः कोषं समादाय वाहनानिच भूरिशः
पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः —महाभारत, १, ११३, २४।

३ तथैव रथिना श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिविशाम्पते।
निहतो गदया राजन् भीमसेनेन संयुगे।—महाभारत, कर्ण पर्व, पंचम अध्याय।

४ मिथिला तत्त्व विमर्श, पृ० ६०।

५ हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० ५२।

६ वैदेहकंच राजानं जनकं जगतीपतिम्।
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रो नाति तीव्रेण कर्मणा॥
शकांश्च बर्बरांश्चैव अजयच्छद्म पूर्वकम्।
वैदेहस्थ कौन्तेय इन्द्र पर्वतमलिकात्॥ —महाभारत, सभापर्व, ३०वाँ अध्याय।

७ गंगा हिमवतार्मध्ये नदी पंचदशान्तरे। तैरभुक्ति रिति ख्यातो देशः परम पावनः॥
कौशिकीन्तु समारभ्य गडकीमधिगम्य वै। योजनानि चतुर्विंशत्यायामः परिकीर्त्तितः॥
गंगाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतंवनम्। विस्तारः षोडषः प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दनः॥
मिथिला नाम नगरी नमः ते लोक विश्रुता। पंचभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगती त्रये॥
—मिथिला खंड, वृहद् विष्णपुराण।

हिमालय की तराई मे कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ ने छठी शताब्दी ई० पू० मे बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया। अपने पर्यटनो के क्रम मे वे वैशाली भी आये थे, जो तिरहुत के ही अन्तर्गत है, पर बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव मिथिला वा मैथिल समाज पर पडा हो, ऐसा नही जान पडता। सम्भव है भारत मे बौद्ध धर्म के चरम प्रसार के दिनो मे यहाँ भी उसकी छाया पडी हो, एकाधिक स्थलो पर बुद्ध की प्रतिमा तथा सन्देशवाही स्तम्भ मिलते हैं[1], पर मिथिला के जनजीवन मे उसका प्रवेश नही हो सका, ऐसा मानना ही ठीक जान पडता है। इस सम्बन्ध मे एक दिलचस्प बात यह है कि बौद्ध साहित्य मे विदेह को परम्परागत विश्वास के प्रतिकूल एक गणतन्त्र कहा गया है। इसकी राजधानी मिथिला वैशाली से ३५ मील उत्तर-पश्चिम थी।

इसी प्रकार जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर महावीर का वैशाली से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। उन्हे अक्सर 'वैशालीय' कहा जाता है। पर इस धर्म का भी प्रभाव मिथिला पर पडा हो, इसमे सन्देह है।

बौद्ध और ब्राह्मण मतावलम्बियो के बीच कभी-कभी सघर्ष भी हो जाया करता था। दोनो एक दूसरे के साथ शास्त्रार्थ करने तथा एक दूसरे को पराजित करने के आयोजन भी करते रहते थे। जैसा कि विद्यापति ने पन्द्रहवी सदी मे लिखा, "तैरभुक्तीया स्वभावाद् गुणगर्विण"[2], (तीरभुक्ति या तिरहुत के लोग स्वय ही अपने गुण तथा योग्यता पर स्वाभिमान रखते है) उस प्राचीन युग मे मैथिल पण्डितो, आचार्यों तथा समाज-नेताओ की प्रकृति इससे भिन्न होगी, ऐसा मानने का कोई कारण नही।

पौराणिक युग से ऐतिहासिक युग मे आने पर बिम्बिसार के युग मे विदेह राज्य का उल्लेख जिल्जिट पाण्डुलिपि मे मिलता है। उसके अनुसार विदेह राज के ५०० अमात्य थे। जिनका प्रधान खण्ड था।[3] यद्यपि बिम्बिसार के काल मे विदेह का गणतन्त्र होना अधिक सम्भवनीय है। बिम्बिसार के पराक्रमी पुत्र अजातशत्रु ने मगध साम्राज्य का सीमा-विस्तार किया। उसने वैशाली के लिच्छवियो को पूर्णतया पराभूत कर समग्र तिरहुत को अपने मगध साम्राज्य मे अन्तर्मुक्त कर लिया। हिमालय की तराई तक उसकी विजय-वाहिनी ने वैजयन्ती फहराई होगी इसमे सन्देह नही। लिच्छवियो और विदेहो की स्वतन्त्र गणतन्त्र-सत्ता के अवसान ने पाटलीपुत्र को भारतीय राजनीति का केन्द्रबिन्दु बना दिया। इस समय से कर्णाट राजवश की स्थापना (१०९७ ई०) तक मिथिला विभिन्न आक्रामको द्वारा आक्रान्त होती रही।

मौर्य तथा गुप्त काल की इतिहास सम्बन्धी प्राप्त सामग्रियो मे मिथिला की कोई स्पष्ट अथवा प्रत्यक्ष चर्चा नही हुई है। उस समय हर्षवर्धन का साम्राज्य उत्तरी

---

[1] मिथिलातत्त्वविमर्श, पृ० ६२।

[2] पुरुष परीक्षा, पृ० १३० (ल० वें० प्र०)।

[3] हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० ५६।

तथा मध्य भारत के अधिकाश भागो पर फैला हुआ था। ह्यएनसांग ने अपने यात्रा-विवरण मे लिखा है कि तिरहुत हर्ष के विशाल साम्राज्य का एक भाग था। ६३५ ई० मे वह तिरहुत आया था तथा वहाँ बौद्ध धर्म के मिटते हुए प्रभाव को देख कर उसे दुख हुआ। उस समय मिथिला, काशी तथा प्रयाग ब्राह्मण धर्म के गढ बन चुके थे।[1]

चीनी यात्री वाग-ह्यएन त्सि के अनुसार हर्ष की मृत्यु के बाद उसके सिहासन तथा साम्राज्य उसके तिरहुत-स्थित एक मत्री अर्जुन या अरुणाश्व के हाथो मे चले गए। इसके एक चीनी पर्यटक-दल पर आक्रमण करने से क्रुद्ध होकर तिब्बत के राजा द्वारा तिरहुत पर आक्रमण, अर्जुन की पूर्णरूपेण पराजय एव उसको बन्दी बनाकर चीन ले जाये जाने की अनुश्रुति पर आधारित घटना को विन्सेण्ट स्मिथ ने अपने भारत के इतिहास मे महत्त्व दिया है।[2] पर डा० मजूमदार इस मत से सहमत नहीं। वे इसे रोमाचक कहानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।[3]

वस्तुत अर्जुन तिरहुत का स्थानीय ब्राह्मण प्रशासक या राजा रहा हो, यह अधिक सम्भव है। तिब्बती सेना के हाथो उसका पराजित होना तथा तिरहुत पर कुछ काल के लिए तिब्बती आधिपत्य हो गया हो, यह भी सम्भव जान पडता है। यह आधिपत्य ७०३ ई० तक रहा।[4] पर सीलवान लेवी नेपाल पर तिब्बतियो का आधिपत्य ८६७ तक मानते है। इसी वर्ष से नेपाली सवत प्रारम्भ होता है, जो सभवत उनके तिब्बतियों के शासन से मुक्त होने के अवसर पर चलाया गया।

तिरहुत को तिब्बती आधिपत्य से मुक्त करने का श्रेय पराक्रमी राजा आदित्यसेन को है। इसकी मृत्यु के उपरान्त देवगुप्त, विष्णुगुप्त तथा जीवगुप्त क्रमश उत्तरापथ के सम्राट् हुए। तिरहुत भी इनके साम्राज्य का अग अवश्य था। इसके अनन्तर वाक्पति कृत 'गौडवाहो' के एक उल्लेख के अनुसार राजा यशोवर्मन के आतक से ही मगधराज के पलायन तथा उसकी हिमालय-क्षेत्र की विजय का सकेत मिलता है। इसके अन्तर्गत तिरहुत या मिथिला प्रदेश भी होगा।

आठवी शताब्दी के मध्य मे काश्मीर-नरेश जयदेव ने बगाल-बिहार पर आक्रमण-अभियान किया तथा पचगौड (जिसमे तीरभुक्ति भी था) जीत कर उसे अपने श्वसुर के आधिपत्य मे दे दिया। यही व्यक्ति सम्भवत पाल वश का संस्थापक सुप्रसिद्ध गोपाल था।[5]

---

1 ट्रैविल्स ऑफ युआन च्वाग—रैंयस डविस, पृ० ६३-८०।
2 अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया—वी० ए० स्मिथ, पृ० ३६६–६७।
3 हिस्ट्री ऑफ बगाल—डॉ० आर० सी० मजूमदार, खण्ड १, पृ० ९२।
4 हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० २०१।
5 सम हिस्टोरिकल इन्सक्रिप्शन्स ऑफ बगाल—बी० सी० सेन।

गोपाल द्वारा पाल-राजवंश की संस्थापना से पूर्वोत्तर भारत के इतिहास में एक नये युग का उदय हुआ। तीरभुक्ति या तिरहुत पर उसका आधिपत्य था यह कई सूत्रों से संकेतित है।[१] गोपाल का पुत्र धर्मपाल प्रतापी राजा हुआ। उसने दिग्विजय करके विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसे राष्ट्रकूट तथा गुर्जर प्रतिहार राजाओं से भयंकर युद्ध करने पडे। धर्मपाल द्वारा जीते गए क्षेत्रों मे तीरापुते (तिरहुत) तथा गौड के नाम भी उल्लिखित है।[२] गुर्जर राजा नागभट्ट द्वितीय के हाथो उसे मुद्गलगिरि (आधुनिक मुंगेर) के युद्ध में पराजित भी होना पडा। यह स्थान तिरहुत की उर्वर तथा समृद्ध समभूमि के द्वार पर ही जैसे हो, अत यह सम्भव है कि तिरहुत क्षेत्र इन युद्धो तथा अभियानों की पृष्ठभूमि रहा हो।

धर्मपाल उत्तरी भारत का एक सार्वभौम सम्राट् था। सोड्ढल नामक एक गुजराती कवि ने (ग्यारहवी सदी) मे अपने काव्य मे 'उत्तरापथ-स्वामी' कहकर उसका स्तवन किया है।[३] मुंगेर ताम्रपत्र से हिमालय की तराई तक उसके अभियान करने का उल्लेख मिलता है।[४] मिथिला पर अपनी वैजयन्ती फहरा कर उसने ने पाल पर आधिपत्य स्थापित किया होगा।[५] इसके पुत्र देवपाल के राजत्व काल मे पाल साम्राज्य शीर्षबिन्दु पर था। परवर्ती पाल राजा इतने शक्तिशाली नही थे, पर बिहार पर उनका आधिपत्य पूरी तरह बना था। नारायण पाल के पाँच शिलालेख बिहार के विभिन्न स्थानो पर मिलते हैं। इनमें एक मे तीरभुक्ति में मुकुटिका ग्राम कक्ष विषय के शिवभट्टारक मन्दिर तथा पाशुपताचार्य परिषद् को संप्रदान करना उल्लिखित है।[६]

नारायण पाल के पुत्र और उत्तराधिकारी राज्यपाल के राजत्व-काल मे पाल साम्राज्य के सीमान्त बहुत ही सीमित हो गए थे। गुर्जरो के आक्रमण तिरहुत पर भी हो रहे थे, मिथिला के कुछ क्षेत्रो पर उन्होंने अपना प्रभुत्व भी जमा लिया हो तो इसमे सन्देह नहीं। गुर्जरो तथा राष्ट्रकूटों के बाद अब चन्देलो की बारी थी। खजुराहो शिलालेख से सूचित होता है कि यशोवर्मन ने गौडाधिपति को सहज ही पराजित कर दिया, मैथिलो पर विजय प्राप्त की।[७] इस शिलालेख के तेईसवें श्लोक की दूसरी

---

१ हिस्ट्री ऑफ तिरहुत—एस० एन० सिंह, पृ० ५२ ;
जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, ३२, पृ० १३२;
ऐपिग्रेफिका इण्डिका, १, पृ० १२२।

२ हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० २०६।

३ "उदय सुन्दरी कथा", G. O. S., 4-6.
Annals, XIII, 197.

४ इण्डियन कल्चर, १०, पृ० २६६

५ जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, ३२, पृ० १३४

६ हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० २१०।

७ एपिग्रेफिका इण्डिका, १, पृ० १२३।

पक्ति मे 'शिथिला मिथिला' पद आया है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि मिथिला का उत्तरी विहार मे अपना विशेष स्थान था।[१]

इस घोर राजनीतिक अनिश्चितता तथा मात्स्य न्याय के युग मे मिथिला की अवस्था पराक्रमी एव महत्वाकांक्षी शक्तिकेन्द्रो के मध्य एक क्रीडाकन्दुक की तरह ही रही होगी। हर्ष की मृत्यु के बाद से मिथिला की शस्यश्यामला भूमि पर क्रमश लिच्छवियो, परवर्ती गुप्त राजाओ, मौखरि, पाल गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट तथा चदेल राजाओ के आक्रमण हुए तथा उनके राज्यो का उदय-अस्त होता रहा।

चदेलो के बाद डाहला के चेदि या कालाचुडी आये। किसी नेपाली कायस्थ द्वारा हस्तलिखित रामायण की एक प्रति (१०७६ वि०) म चद्रवशी राजा गगयदेव के तीरभुक्ति का राजा होने का उल्लेख मिलता है[२], पर यह गगेयदेव ठीक-ठीक कौन था, किस वश का था, इस विषय म विद्वानो मे मतभेद है। डॉ० मजूमदार इसे कर्णाटवशीय गगदेव से भिन्न नही मानते। उनका विचार है कि विक्रम सवत के स्थान पर शक सवत मान लेने से यह सिद्ध हो जाता है।[३] डॉ० उपेन्द्र ठाकुर ने मजूमदार के मत से असहमति प्रकट करते हुए इसे लक्ष्मीकर्ण के पिता गगयदेव से अभिन्न माना है। यह लक्ष्मीकर्ण या कर्णदेव सुप्रसिद्ध चेदि राजा था। गगेयदेव को १०१६-२६ ई० के मध्य महीपाल ने पराजित कर तिरहुत पर पुन पाल आधिपत्य स्थापित किया।[४]

महीपाल के राज्यकाल म पाल साम्राज्य पर दक्षिणात्य के चोल सम्राट् राजेन्द्रचोल का भीषण आक्रमण हुआ। कुछ प्रदेशो पर उनकी वैजयन्ती भी फहराने लगी, पर मिथिला—तीरभुक्ति तक उनकी वाहिनी नही पहुच सकी। इस समय तक पश्चिम की ओर से एक नयी आँधी के फट पडने के पूर्वाभास प्रकट होने लगे थे। चदेल, चोल, चेदि राजाओ से निरन्तर युद्ध होते ही रहते थे। धर्मान्ध एव बर्बर मुस्लिम लुटेरे भी स्थानीय राजाओ से तलवारें बजाने लगे थे।

महीपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी नयपाल ने कुछ काल तक इन चौमुखी खतरो का वीरता के साथ सामना किया पर दीपक की अन्तिम टेम की तरह पाल साम्राज्य की दीपशिखा बुझने को प्रवृत्त हो रही थी। पाल साम्राज्य का विशाल

---

[१] एपिग्रेफिका इण्डिका, १, पृ० १२३।

[२] "महाराजाधिराज पुण्यावलोक-सोम-वशोद्भव-गौडध्वज श्रीमद्गागेयदेव भुज्यमान-तीरभुक्तौ कल्याणविजय राज्य नेपालदेशीय श्रीमान् चुञ्चालिक-श्री आनन्ददास्य पाटकावस्थित (कायस्थ) पडित श्री श्रीकुरस्यात्मजा श्री गोपति आलेखितम्।"
—वेण्डाल, 'जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल', १६०३, १, पृ० १८-१६।

[३] इण्डियन हिस्ट्री क्वार्टरली, ७, पृ० ६८१।

[४] हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० २१८।

शीराजा शीघ्र ही बिखरने लगा और उसके ध्वंसावशेष पर अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ । मिथिला का कर्णाट राज्य (१०९७-१३२४ ई०) भी इन्हीं मे एक था ।[1]

कर्णाट राजवंश

कर्णाट राजवंश के संस्थापक नान्यदेव के विषय मे भारत के कई अन्य सुप्रसिद्ध राजवंशों के सस्थापक चन्द्रगुप्त, गोपाल आदि की तरह पूर्ण निश्चितता के साथ कुछ कहना कठिन है । बंगाल के सेन राजाओं की तरह नान्यदेव कर्णाट क्षत्रिय था । उसकी अपनी उपाधि 'कर्णाट कुलभूषण' इसी का संकेत करती है । ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे राष्ट्रकूटों तथा चालुक्यों के उत्तर एवं उत्तरपूर्वी भारत पर कई आक्रमण-अभियान हुए । ये आक्रामक कर्णाट वंशीय क्षत्रिय थे । इन्हीं अभियानों के क्रम मे एकाधिक क्षत्रिय सामंतों का इधर बस जाना असम्भव नहीं दीखता । इन सामंतों मे एक नान्यदेव भी रहा होगा, जिसने तिरहुत के राजनीतिक शून्य को परख कर यहाँ अपना राज्य अर्जित किया । नान्य का विरुद 'महासामन्ताधिपति धर्मावलोक' भी इसी का संकेत करता है । उसका एक अन्य विरुद 'धर्माधार भूपति' भी है । सभवत. पाल राजाओं के शासनकाल मे जमे हुए बौद्ध प्रभाव का निराकरण करने के उपलक्ष मे नान्यदेव को 'धर्माधार' या 'धर्मावलोक' आदि के विरुद मिले होंगे ।

कर्णाट राजवंश की स्थापना मिथिला के लिए एक युगान्तरकारी घटना थी । विदेहों के बाद १५०० वर्षों से मिथिला मे कोई शक्तिशाली स्वतन्त्र राज्य नहीं स्थापित हुआ था । इस राजवंश की स्थापना से अनिश्चितता, आक्रमण, राजनीतिक शून्य की उस दु.सह्य स्थिति का अन्त हुआ ।

नान्यदेव ने मिथिला मे एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की तथा 'मिथिलेश्वर' की उपाधि धारण की । कवीश्वर चंदा झा द्वारा सम्पादित 'पुरुष परीक्षा' मे उद्धृत सिमराओन शिलालेख के एक श्लोक[2] के अनुसार १०१९ शक सवत (१०९७-९८ ई०) के सात श्रावण, शनिवार के दिन इस नये राज्य का उदय हुआ । मिथिलातत्व-विमर्शकार पं० परमेश्वर झा ने १०८९ अर्थात् उपर्युक्त तिथि से आठ वर्ष पूर्व नान्यदेव का राज्यारोहण माना है ।[3]

नान्यदेव पराक्रमी राजा था । चेदि राजा यश.कर्ण को सम्भवतः ११२४-२५ ई० मे घोर युद्ध मे पराजित करके मिथिला पर से लगभग दो सदियों तक के

---

[1] डायनास्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, १, एच० सी० राय ।

[2] "नन्देन्दुबिन्दुविधुसम्मित शाक वर्षे सच्छ्रावणे सितदले मुनिसिद्ध तिथ्याम् ।
स्वातौ शनैश्चरदिने करिवैरिलग्ने श्रीनान्यदेव नृपतिर्व्यदधीत वास्तुम्"
—मिथिलातत्वविमर्श, पृ० ९८ (पूर्वार्द्ध)

[3] मिथिलातत्वविमर्श, पृ० ९७ (पूर्वार्द्ध) ।

लिए बाहरी आक्रमण का खतरा दूर कर दिया। उसने गौड तथा अन्य वगीय राजाओ[१] को युद्ध म पराजित किया, मालव[२] तथा सौवीरो[३] को हराया। इस प्रकार उसकी शक्ति का डका तत्कालीन पूर्वोत्तर भारत म पूरी तरह सभी ओर पिट गया। उत्तर म नेपाल क स्थानीय राजाओ, जयदवमल्ल तथा आनन्दमल्ल को पराजित करक उन पर अपनी सप्रभुता कायम की। इस पराक्रमी तथा परमप्रतापी पुरुषसिंह की मृत्यु ११४७ ई० मे लगभग ५०-५४ वर्ष राज्य करन क उपरान्त हुई।[४]

नान्यदेव न केवल राज्य की स्थापना ही नही की उसने मिथिला को साहित्य, दशन ललित कला आदि का कन्द्र भी बना दिया। प्राचीन विदेह की तरह एक एक बार फिर मिथिला ज्ञान चिन्तन, कला-कौशल तथा विद्वज्जना की भूमि बन गयी।[५] वह स्वय भी विद्वान्, काव्यशास्त्रविद तथा मुलक्षक था। भरत मुनि क नाट्यशास्त्र पर उसकी टीका इसका प्रमाण है।[६]

कर्णाट राजवश के अन्य राजाआ के नाम है मल्लदेव, गगदेव, नरसिंहदेव, रामसिंहदेव, शक्तिसिंहदव तथा हरिसिंहदेव।[७] मल्लदेव के विषय मे कुछ निश्चित ज्ञात नही। विद्यापति की 'पुरुषपरीक्षा' म नान्यदेव के पुत्र मल्लदेव की चर्चा मिलती है। युद्धवीर के उदाहरण के रूप मे यह उल्लेख हुआ[८] है। डॉ० उपेन्द्र ठाकुर का अभिमत है कि नान्यदेव का राज्य उसके दोना पुत्रा मे बँट गया हागा इनमे मल्लदव

---

१ 'बागालिकेति कथिता मिथिलेश्वरेण"
—क्वाटरली जरनल ऑफ दि आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसच सासाइटी, १, पृ० ५६–५७।

२ 'लुप्त मालव भूपाल कीर्ति मलिवयचमीभृ"—वही, पृ० ५६।

३ 'जित सौवीर वीरेण सौवीरक उदहृत "—वही।

४ हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० २५४।

५ वही, पृ० २५४।

६ क्वाटरली जनरल ऑफ आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसच सोसायटी, १, पृ० ५५–८६।

७ शास्ता नान्यपतिर्बभूव तदनु श्री गगदेवोनृप
तत्सूनुनरसिंहदेव नृपति श्री राम सिंहस्तत ।
तत्सुनु किल शक्रसिंह विजयी भूपाल वन्धनस्ततो–
जात श्री हरिसिंहदेव नृपति कर्णाट चूडामणि ।

—पजी प्रबध, मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १४६।

पजी प्रबध मे मल्लदेव और रामसिंहदेव के नाम नही हैं, शक्तिसिंह के स्थान पर शक्रसिंह का नाम है, एक नया नाम है भूपाल सिंह। ०

८ पुरुषपरीक्षा, पृ० २० (चन्द्रकान्त पाठक द्वारा सम्पादित, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित)।

को राज्य का पूर्वीय भाग मिला। उसके आश्रय मे वर्द्धमान उपाध्याय नामक सुप्रसिद्ध स्मृतिकार रहता था।[१]

गगदेव (११४७-११८७ या ११८१ ई०) को बल्लालसेन की शत्रुता का सामना करना पडा। फिर भी उसका राज्यकाल शान्ति तथा समृद्धि, विद्या, चिन्तन, कला-कौशल की उन्नति का रहा। उसका महामन्त्री श्रीधर बहुत ही योग्य तथा राजकाज मे दक्ष था।

गगदेव ने कई व्यापक प्रशासनिक सुधार किये। सम्पूर्ण राज्य को परगनो मे बाँट दिया गया, राजस्व वसूली के लिए हर परगना मे एक चौधरी नियुक्त किया गया। गाँव के झगडो को निबटाने के लिए पचायत-व्यवस्था का पुनरुद्धार किया गया। धर्म-कार्यो की व्यवस्था के लिए धर्माधिकरणिक के पद की व्यवस्था की गयी। उसने अनेक तालाब खुदवाये।[२]

गगदेव के राज्यकाल मे ही सभवत बल्लालसेन ने मिथिला से कुलपजिका तथा कुलीन-प्रथा की परम्परा अपने राज्य मे चलायी।

नरसिंहदेव (११८७-१२२५ ई०) का ३१ वर्ष का राज्यकाल समृद्धि तथा सुख शान्ति का। 'पुरुषपरीक्षा' की एक कथा मे वर्णित प्रसग के अनुसार किसी एक नरसिंहदेव ने महम्मद गोरी की सेना मे जयचन्द के विरुद्ध युद्ध मे भाग लिया था। पर डॉ० उपेन्द्र ठाकुर प्रभृति इतिहासकार इस नरसिंहदेव को कर्णाट राजवशीय नरसिंहदेव से भिन्न मानते है। इसके राज्यकाल मे ही गगा के दक्खिन से होते हुए मुहम्मद बिन बख्तियार ने मगध को रौंदते, नालदा-विक्रमशिला को ध्वस्त करते हुए बगाल के वृद्ध राजा लक्ष्मणसेन को आतकित कर गौड पर मुसलमानी आधिपत्य स्थापित कर दिया। इसके दो मन्त्री—कर्मादित्य तथा रामादित्य ठाकुर—बडे ही योग्य थे।

रामसिंहदेव (१२१५-७६ ई०) तथा शक्तिसिंहदेव (१२७६-१२९६ ई०) के राज्य-काल मे यद्यपि मिथिला के चारो ओर शक्तिशाली मुसलमान राज्यो का उदय-अस्त हो रहा था, दिल्ली सल्तनत के नये सितारे धूमकेतुओ की तरह जल-बुझ रहे थे, पर मुस्लिम घुडसवारो की टाप से अभी उसकी भूमि आक्रान्त या अपवित्र होने से बची थी। इसका कारण कर्णाट राजाओ की अजेयता नही वरन् उनकी राजनीतिपटुता तथा मिथिला का तत्कालीन राजनीतिक महाजनपथो से किंचित् दूर होना ही कहा जा सकता है।

[१] हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ० २५६।

[२] वही, पृ० २६४।

इन राजाओ को एक-से-एक योग्य एव दक्ष मन्त्री मिलते गए। राज्य मे शान्ति तथा समृद्धि थी। प्रभुवर्ग—ब्राह्मणो, क्षत्रियो, ठाकुर, राउत, वणिक—का जीवन बडे ही सुख-चैन मे, ऐश्वर्य तथा विलास मे बीतता रहा। स्मृति और निबन्ध लिखे जाते रहे। साधिविग्रहिक कर्मादित्य ठाकुर, महामत्तक वीरेश्वर, चडेश्वर आदि इस काल के सुप्रसिद्ध विद्वान् सुलेखक तथा राजमत्री हैं।[1] न्याय, तर्क, मीमासा आदि के अध्ययन-अध्यापन का महान् केन्द्र इस काल मे मिथिला बनी रही। उसके राजाओ के दरबार मे सम्पूर्ण उत्तरी भारत से आये हुए पडितगण आश्रय पाते तथा यहाँ ज्ञान का आलोक फैलाते। मिथिला के किसी राजा शक्तिसिंह या शक्रसिंह के मन्त्री देवादित्य के अलाउद्दीन खिलजी को रणथभौर के राजा हम्वीर के विरुद्ध अभियान मे सहायता भी देने का उल्लेख मिलता है।[2]

शक्तिसिंह के अन्तिम दिन सुख से नही बीते। चडेश्वर के नेतृत्व मे सात मन्त्रियो की व्यवस्था शासन-कार्य चला रही थी, पर मुस्लिम आक्रमण के भूचाल के कभी भी फट पडने की आशका सामने आ गयी थी।

हरिसिंहदेव (१३०३-१३२६) कर्णाट वश का अतिम राजा हुआ। १०-१२ वर्ष की अवस्था मे ही यह गद्दी पर बैठा।[3] वीरेश्वर की सात मन्त्रिया की व्यवस्था बडी ही दक्षता के साथ राजकाज चलाती रही। इन मन्त्रियो मे प्राय सभी विद्वान् तथा सुलेखक थे। अनेक पाडित्यपूर्ण ग्रन्थ इस काल की देन हैं। १३२४ मे गयासुद्दीन तुगलक के आक्रमण ने कर्णाट साम्राज्य का अन्त कर दिया। हरिसिंहदेव एक-दो वर्षों तक और भी सभवत राज करता रहा पर मिथिला का स्वतन्त्र राज्य के रूप मे अस्तित्व खत्म हो चुका था।[4]

हरिसिंह देव का नाम नव मिथिला पजी प्रबन्ध के लिए मिथिला मे चिरकाल तक लिया जाता रहेगा। इसने कुलीन-अकुलीन की नयी व्यवस्था की, मैथिल समाज को अनेक ऊँचे-नीचे मूल तथा गोत्रो मे विभाजित कर दिया। मिथिला के ब्राह्मण तथा कायस्थो के लिए यह एक बडा ही व्यापक प्रभाव डालनेवाली व्यवस्था थी।

ओइनवार राजवश

कर्णाट राजवश के साथ मिथिला का स्वतन्त्र राज्य के रूप मे अस्तित्व भी समाप्त हो गया। कुछ दिना तक अनिश्चित या अराजक अवस्था के उपरान्त पुन एक

---

१ मिथिलातत्त्वविमर्श—प० परमेश्वर झा (प्रथम खण्ड), एच० म०, पृ० २७०।
२ 'हम्मीरध्वातभातु'—कृत्यचितामणि, चडेश्वर कृत।
३ हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० २७६।
४ वही, पृ० २८३; मिथिलातत्त्वविमर्श—प० परमेश्वर झा।

नये राजवंश का उदय हुआ। यद्यपि यह राजवंश स्वतन्त्र या संप्रभुता प्राप्त नही था, पर दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत प्राय: व्यवस्था थी कि जब तक कोई सामत या अधीनस्थ राजा खुला विद्रोह नही करता तथा समय-समय पर कर आदि चुकाता रहता था तब तक उसको किसी प्रकार से तग नहीं किया जाता था। वस्तुत: स्थिति यह थी कि उस राजनीतिक अनिश्चितता के युग मे अक्सर दिल्ली स्थित केन्द्रीय सत्ता ही कमजोर होती रहती थी। जब-जब दिल्ली में कोई शक्तिशाली राजा नही रहता था, तब-तब सारे साम्राज्य मे अधीनस्थ राजा तथा नवाब अपने को स्वतन्त्र घोषित कर देते थे। मिथिला के राजाओं को तो दिल्ली के सुल्तान के अतिरिक्त गौडाधिपति, लखनौती तथा जौनपुर के नवाबो से भी समय-समय पर उलझना-निबटना पडता था। इसका कारण यह था कि एक ओर बंगाल के नरेश मिथिला को बगाल का एक प्रदेश समझते थे तथा उस पर अपनी संप्रभुता मानते थे, दूसरी ओर जौनपुर के नवाब बंगाल और दिल्ली के बीच के भूभाग पर अपना आधिपत्य स्थापित रखना चाहते थे।

इस सम्बन्ध मे यह बात भी ध्यातव्य है कि लगभग समस्त तुर्क-अफगान काल मे हिन्दू राजा अपनी स्वतन्त्रता का झंडा ऊँचा करने के प्रयत्न करते ही रहते थे। इसमे वे युद्ध तथा कूटनीति दोनो का यथावसर प्रयोग करते थे। इन अनवरत सघर्षों के कारण न तो कोई राजवंश दीर्घायु होता था, न कोई स्वाभिमानी राजा। यो सामन्ती युग की यह एक सामान्य विशेषता ही है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम हम यह देखते हैं कि मिथिला मे हरिसिंहदेव के उपरान्त एक भी राजा दीर्घकाल तक सिंहासनासीन नही रहा।

ओइनवार राजवश के आदिपुरुष ओयन ठाकुर सिद्धपुरुष तथा महापंडित थे। इन्हे कर्णाट वंशीय किसी राजा से ओइनी (वर्तमान पूसा रोड स्टेशन के निकट एक गाँव) पुरस्कार मे मिला[1] इनके एक अधस्तन पुरुष कामेश्वर ठाकुर थे। ये भी सिद्धपुरुष तथा राजपडित थे। प्रसिद्ध है कि इनके एक उत्तर से प्रसन्न होकर सुलतान फिरोजशाह तुगलक ने इन्हें मिथिला का सामत-राजा बनाया।[2] विद्यापति ने भी 'कीर्तिलता' मे इसका उल्लेख किया है।[3]

कामेश्वर ठाकुर के पुत्र भोगीश्वर दीर्घकाल तक राज्य कर दिवगत हुए। भोगीश्वर के मरणोपरात उनके पुत्र गअनेसर (गगनेश्वर या गणेश्वर) राजा हुए।

---

[1] मिथिलातत्त्वविमर्श, पृ० १४७।

[2] वही, पृ० १४७।

[3] ओइनी वंस पसिद्ध जग को तसु ण सेव।
दुइ एकत्थ°ण पाविअइ भुअवं अरु भूदेव॥
ता कुल केरा वड्डिपन कहवा कवन उपाय।
जज्जमिअ उप्पभमति कामेसर सन राय॥
—कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, पृ० १०।

से किसी इबराहिमशाह[१] की सहायता के लिए पश्चिम दिशा में प्रस्थान किया, साथ में उनके कई मन्त्री भी थे, विद्यापति भी इस दल में रहे होंगे, रास्ते में अनेक तरह की सहायता तथा सहयोग उन्हें मिला, राजा भोगीश्वर का बहुत नाम जो था—

"भोगाई रजाक यङ्गिआओ" —कीर्त्तिलता।

महीनों की यात्रा के उपरान्त, घोर कष्ट तथा अभावों को पार कर यह दल "जओनापुर" पहुँचा। वहाँ इबराहिमशाह का दरबार बहुत ही ठाट-बाट का, शान-शौकत का था। देश-देशांतर के लोग, सामंत सरदार वहाँ सुलतान को सलाम बजा रहे थे।[२] राजकुमारों को भी अवसर मिला। सुलतान के सामने अपनी अर्जी पेश की। सुलतान सेना साज कर उनकी सहायता को चला। दैववश पूरब की ओर चली हुई सेना अकस्मात् पच्छिम की ओर चल पड़ी। पर दैव फिर अनुकूल हुआ। तुर्क फौज के साथ राजकुमार तिरहुत आये। घोर युद्ध हुआ। असलान पराजित हुआ पर वीरसिंह भी इस युद्ध में या तो मारे गए या कहीं अदृश्य हो गए। तिरहुत की गद्दी पर कीर्त्तिसिंह बैठे। इबराहिमशाह वापस लौट गया।[३]

कीर्त्तिसिंह की कीर्त्ति को अमरता प्रदान करने के उद्देश्य से विद्यापति ने 'कीर्त्तिलता' की रचना की—

"श्रोतुर्ज्ञातुर्वदान्यस्य कीर्त्तिसिंह महीपतेः।
करोतु कवितुः काव्यं भव्यं विद्यापतिः कविः॥"

विद्यापति ने इस प्रसंग में यह भी कहा कि कवि-प्रशस्ति का यदि आधार नहीं मिले तो किसी की कीर्त्ति-लता त्रिभुवन भर में फैल ही कैसे सकती है—

"तिहुअन खेत्तहि काञि तसु कित्तिवल्लि पसरेइ।
अक्खर खम्भारंभओ मंचो बन्धि न देइ॥"[४]

कीर्त्तिसिंह की विरुदावली विद्यापति के समकालीन किन्तु आयु तथा अनुभव में अधिक वरिष्ठ महाकवि दामोदर मिश्र के 'वाणी भूषण'[५] नामक छन्द सम्बन्धी ग्रंथ में भी मिलती है—

---

१ यह इबराहिमशाह कौन था, कहाँ का राजा था इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। बंगाली विद्वान् (डॉ० विमान बिहारी मजूमदार प्रभृति) तथा डॉ० जयकान्त मिश्र, डॉ० उमेश ठाकुर आदि के अनुसार जौनपुर का सुलतान इबराहिमशाह शर्की ही यह इबराहीमशाह हो सकता है। पर इस मत का जोरदार खंडन डॉ० सुभद्र झा एवं वि० रा० भा० प० पदावली के भूमिका-लेखकों ने किया है। विद्यापति-साहित्य के विशेषज्ञ प्रो० रमानाथ झा का मत भी इन्हीं से मिलता-जुलता है।

२ तेलंगा बंगा चोल कलिंगा राआ पुत्ते मंडीआ
सुरतान सलामे, लहिअ इलामे आये रहि रहि आवन्ता।
—कीर्त्तिलता, (डॉ० बाबूराम सक्सेना) पृ० ४८।

३ कीर्त्तिलता, पृ० ११४।

४ वही, पृ० ४।

५ मिथिला तत्त्व-विमर्श, पृ० १५०।

"कीर्त्तिसिंहनृपजीवयावदमृतद्युतितरणी"

× × ×

"त्वयि चलति चलति वसुधा वसुधाधिप कीर्त्तिसिंह धरणी रमणे।"

कीर्तिसिंह बहुत काल तक राज्य नही कर सके। घोर उथल-पुथल के उस युग मे किसी भी स्वतन्त्रता तथा मानमर्यादाप्रिय राजा के लिए शायद यह संभव भी न था।

ओइनवारो की दो शाखाएँ हो चुकी थी। एक शाखा के प्रवर्तक भवेश्वर या भावसिंह थे। इनकी राजधानी भवग्राम या भभाम थी। इनके पुत्र देवसिंह ने अपने नाम पर देवकुली बसाई तथा वही अपनी राजधानी ले गए। महामहोपाध्याय परमेश्वर झा के अनुसार "महाराज देवसिंह के राज्यारम्भ का समय ल० स० २३२, शाके १२६३, ईसवी सन् १३४२ था[1]" पर यह तिथि विश्वसनीय नही जान पड़ती। प्रथम तो इसे मानने से देवसिंह का राज्यकाल १३४२—१४०२ अर्थात् ६० वर्षों का होता है जो उस उथल-पुथल के युग मे सम्भव नही प्रतीत होता। दूसरी बात यह कि १३२४ ई० मे कर्णाट राजवंश की समाप्ति हुई। इसके कुछ वर्षोपरान्त ही ओइनवार वंश की स्थापना हुई। कामेश्वर की मृत्यु के उपरान्त राज्य दो भागो मे विभाजित हुआ, भवेश्वर एक खंड के अधिपति हुए, उनकी मृत्यु के बाद ही देवसिंह राजा हुए होंगे। इन सारी घटनाओं को ध्यान मे रखने पर यह युक्तियुक्त नही जान पड़ता कि देवसिंह (कामेश्वर की तीसरी पीढ़ी मे) १३४२ ई० मे ही सिंहासनासीन हुए हों। इनकी पत्नी का नाम हासिनी देवी था। विद्यापति के कई पद "हासिनी देवी के कन्त देवसिंह" को समर्पित हैं।[2] कवीश्वर चंदा झा ने स्वसम्पादित 'पुरुषपरीक्षा' मे विद्यापति के एक पद का उल्लेख किया है जिसमे देवसिंह की मृत्यु तथा शिवसिंह के राज्यारोहण का उल्लेख किया गया है। लक्ष्मणाब्द तथा शकाब्द दोनो ही तिथियों के इसमे रहने से विद्यापति के कालनिर्णय, लक्ष्मणाब्द के प्रारम्भ आदि की दृष्टि से यह पद अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है।[3] महाराज देवसिंह दीर्घायु हुए। परिणत वय मे वे राजकाज शिवसिंह के हाथ मे सौंप कर नैमिषारण्य मे भगवत् भजन मे समय व्यतीत कर रहे थे। विद्यापति उनसे मिलने गए होंगे तथा कुछ दिनो तक वहाँ भी रहे हो ऐसा संकेत 'भूपरिक्रमा' के निम्नलिखित श्लोक से मिलता है—

"देवसिंहनिदेशाच्च नैमिषारण्यवासिनः
शिवसिंहस्य पितुः सुतपौड़ निवासिनः।

---

[1] मिथिला तत्त्व-विमर्श, पृ० १५४।

[2] मि० म० वि०—४, ५, ६।

[3] अनलरंध्रकर लक्खन णरवई शाक समुद्द कर अगिनी ससी।
—लस० २९३, शकाब्द १३२४—मि०म० ८, पृ० ८।

पंचषष्ठि देशयुतां पंचषष्ठि कथान्विताम्
चतुः खण्ड समायुक्तामाह विद्यापतिः कविः ॥" —भूपरिक्रमा।

देवसिंह के जीवनकाल मे ही राजकाज के संचालन मे प्रमुख भाग लेने के कारण शिवसिंह को महाराज या महाराजाधिराज का विरुद मिल चुका था।

देवसिंह के मरणोपरान्त १४०२ ई० मे शिवसिंह का विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। इनके सुयोग्य शासनकाल मे राज्य समृद्ध एवं सम्पन्न हो गया। विद्यापति ने 'पुरुषपरीक्षा'[1] के अन्त मे एक ओजस्वी श्लोक मे उसका संकेत किया है—

भुक्त्वा राज्यसुखं विजित्य हरितो हत्वा रिपून् संगरे
हुत्वा चैव हुताशनं मखविधौ भृत्वाधनैरर्थिनः।
वाग्वत्यां भवदेवसिंहनृपतिस्त्यक्त्वा शिवाग्रे वपुः
भूतो यस्य पितामहः स्मरगमहारद्वयालंकृतः।

× × ×

यो गौड़ेश्वर गज्जनेश्वर रणक्षोणीषु लब्धा यशो
दिक्कान्ताचयकुन्तलेषु नयते कुन्दस्रजामास्पदम्।
तस्य श्री शिवसिंह देव नृपतिर्विज्ञप्रियस्याज्ञय।
ग्रन्थं ग्रन्थिल दण्डनीतिविषये विद्यापतिर्व्याततनोत्॥

राजा शिवसिंह का राज्यारोहण काल ठीक-ठीक कब था इसका निर्णय लक्ष्मणाब्द के प्रारम्भ के निर्णय के साथ सम्बद्ध है। स्वयं विद्यापति के "अनलरन्ध्र कर लक्खन नरवअ सक समुद्द कर अगिनी ससी" वाले पद को आधारभूत मानकर मिथिला-तत्त्व-विमर्शकार तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित 'विद्यापति की पदावली' (प्रथम खण्ड) के सम्पादकों ने ११०९ ई० मे लक्ष्मण संवत् का प्रारम्भ माना है।[2] उनके तर्क मे पर्याप्त बल होते हुए भी "जओनापुर" तथा "इबराहिमसाहि" के सम्बन्ध मे जो क्लिष्ट कल्पनाएँ उन्हे करनी पड़ी है उन्हे ध्यान मे रखने पर इतनी सरलता से इस विवाद का अन्त कर देना तथा इस सम्बन्ध मे अन्तिम एवं सर्वमान्य निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नही दीखता।

शिवसिंह का राज्यारोहण १४०८ या १४१० मे हुआ यह कई विद्वानो का अभिमत है।[3] शिवसिंह का राजत्वकाल भी दीर्घ नही हो सकता। "उनका

---

[1] विद्यापति की पदावली, भूमिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित, पृ० ७७।

[2] वही, पृ० १६।

[3] विद्यापति, मित्र मजूमदार, पृ० ३५।

राजत्वकाल १४१० से १४१४ ई० तक बताया जा सकता है।"[१] मित्र मजूमदार एवं अन्य विद्वानों ने इस स्थापना को सिद्ध करने के लिए कि 'कीर्त्तिलता' मे उल्लिखित "इबराहिमसाहि" जौनपुर का इबराहिम शाह शर्की के अतिरिक्त अन्य कोई नही हो सकता, शिवसिंह का राज्यारोहण काल १४१० माना है। ल० स० का ११११ के या उसके समीप आरम्भ मानने से यही स्थापना मान्य होगी। पर विद्यापति-साहित्य से प्राप्त अन्तर्साक्ष्य इसके विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचने को बाध्य करता है।[२] विद्यापति ने स्वय ही अपने एक पद मे ल० स० एव शकाब्द मे १०३१ वर्ष का अन्तर सकेतित किया है।

मिथिला-पचाग भी जिसमे ल० स० का उल्लेख अभी भी नियमित रूप से होता ही है, दोनो सवतो मे १०३१ वर्ष का ही अन्तर मानता है।[३] इस प्रकार विद्यापति के पद तथा उनकी जन्मभूमि मिथिला मे मान्य दोनो सवतो के अन्तर को अमान्य कर अन्य किसी स्थापना को स्वीकृत करना भी उतना सहज नही जान पडता। विद्यापति-साहित्य के मान्य विद्वान् प० रमानाथ झा ने भी इन्ही आधारो पर ११०६ ई० मे ही ल० स० का प्रारम्भ माना है। तदनुसार शिवसिंह का राज्याभिषेक १४०२ ई० मे तथा १४०६ मे उनकी अन्तिम पराजय एव अदृश्य होना निश्चित होता है।[४] शिवसिंह ने अपने नाम के सोने के सिक्के भी चलाये थे, उनके दो सिक्के उपलब्ध है।[५]

शिवसिंह कलाप्रेमी, विद्यानुरागी तथा पराक्रमी राजा थे। विद्यापति ने कई स्थलो पर शिवसिंह का गौड-नरेश से युद्ध मे विजयी होने का उल्लेख किया है। अपने अवहट्ट मे रचित दो पदो (मित्र मजूमदार द्वारा सम्पादित पदावली के पद सख्या ८ और ९) मे राजा शिवसिंह का किसी यवन राजा के साथ घोर युद्ध करके उसे पराजित करने का उल्लेख किया गया है। 'कीर्त्तिपताका' की खण्डित उपलब्ध प्रति मे घोर युद्ध मे यवन राजा को परास्त कर, उसके भागकर शरण लेने की कथा वर्णित है।

तीन वर्ष नौ महीने राज्य करके राजा शिवसिंह किसी आक्रामक मुस्लिम सेना के साथ युद्ध करते हुए या तो मारे गए या कही अदृश्य हो गए। 'कीर्त्तिपताका' के अन्तिम पृष्ठ पर भी यह घटना वर्णित है। वे फिर वापस नही लौटे। इस युद्ध के पूर्व भी उन्हे उसके परिणाम का आभास मिल चुका था, अत युद्ध-प्रस्थान के पूर्व ही

---

१ विद्यापति—मित्र मजूमदार, पृ० ३६, हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, पृ० ३१७।

२ विद्यापति का यह पद—
"अनल रंध्रकर लक्खण नरवइ शक समुद्द कर अगिनी शशी।"

३ मिथिला पंचाग, १९६२-६३।

४ विद्यापति का काल निर्णय, परिशिष्ट (क)।

५ Journal of Numismatic Society of India; 1957, Vol XIX, Part II, pp. 198-199, 201.

उन्होंने अपना परिवार अपने प्रिय सखा, सभासद, राजकवि तथा मंत्री विद्यापति के संरक्षण में अपने एक मित्र रजाबनौली के राजा पुरादित्य के यहाँ भेज दिया। अनुश्रुति है कि शिवसिंह के लौटने की राह बारह वर्ष तक देख कर रानी लखिमा उनकी एक कुश की प्रतिमा बनवाकर उसी के साथ सती हो गयी।

शिवसिंह की सेना को पराजित करके मुसलमानी फौज वापस लौट गयी, शिवसिंह के कनिष्ठ भ्राता पद्मसिंह करद राजा बनाये गए। पर मिथिला की गरिमा फिर वापस नहीं लौटी। पद्मसिंह छः वर्ष तक राज्य करके दिवंगत हुए। उनकी पत्नी विश्वास देवी बारह वर्ष तक राजकाज सँभालती रही, अपने 'शैवसर्वस्वसार' में विद्यापति ने इनकी प्रशंसा की है।

ओइनवार वंश की राजपंजिका में इनके बाद के जिन व्यक्तियों के साथ महाराज का विरुद लगा है उनमें प्रमुख है—नरसिंह तथा रत्नसिंह, धीरसिंह, भैरवसिंह तथा अमरसिंह। विद्यापति के कई पदों में इनके नाम आए हैं। इन राजाओं के साथ लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यबिन्दु तक पहुँच जाते हैं अतः इस प्रसङ्ग को यहीं समाप्त किया जाता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर विद्यापति-युगीन मिथिला की राजनीतिक अवस्था के सम्बन्ध में निम्नलिखित मुख्य बातें स्पष्ट होती है—

(१) विद्यापति का युग घोर राजनीतिक उथल-पुथल तथा अनिश्चितता का था।

(२) तिरहुत इस समय कई खंडों में विभाजित था। ओइनवार वंशीय राजवंश की तीन शाखाएँ हो गयी थीं,[१] तिरहुत के विभिन्न भागों में इनका राज्य था। इनकी राजधानी अलग-अलग थी। इनमें आपस में कभी मेल, कभी घोर शत्रुता भी रहती थी।

(३) ओइनवार वंशीय राजा ब्राह्मण थे, ये देश के शासक होने के साथ-साथ धर्म-कर्म एवं सामाजिक आचार-व्यवहार के नियामक भी थे।

(४) तिरहुत पर मुसलमान राजाओं के आक्रमण होते ही रहते थे। तिरहुत के राजा, राजकुमार, महासामंत आदि दिल्ली के सुल्तानों के अन्य राजाओं से युद्धों में यदा-कदा भाग लेते थे। इन निरन्तर होनेवाले युद्धों में कभी वे मुसलमानों का भी साथ देते थे, कभी राजपूत राजाओं का।

(५) राज्य की सीमाएँ बदलती रहती थीं। राजा शान्ति से दीर्घकाल तक शायद ही कभी राज्य कर पाता था। पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में तो तिरहुत के राजाओं को हम १० वर्ष तक भी लगातार राज्य करते नहीं पाते।

(६) राज्य की शासन-व्यवस्था में मंत्रियों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहता था। कुछ मंत्री—जैसे देवादित्य, चंडेश्वर प्रभृति—तो बड़े ही शक्तिशाली थे।

---

[१] बि० रा० भाषा परिषद-पदावली, भूमिका, पृ० ७३।

(७) विद्यापति-युगीन मिथिला तिरहुत या तीरभुक्ति के नाम से अधिक प्रसिद्ध थी। उस समय के कागज-पत्र या साहित्य मे तीरभुक्ति या तिरहुत नाम का ज्यादा प्रयोग मिलता है। विद्यापति ने तिरहुति या मिथिला दोनो का व्यवहार किया है।

(८) नेपाल तराई, चपारण, सहरसा तथा दरभगा जिलो मे कई छोटे-छोटे राज्य थे। इनमे विभिन्न राजवश आसीन थे। इनमे अक्सर युद्ध होता था। नेपाल के साथ भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। नेपाल तराई मे द्रोणवारो का राज्य था।

(९) कर्णाट वशीय राजा स्वतन्त्र तथा सप्रभुता-प्राप्त थे पर ओइनवार वशीय राजा सप्रभुता-प्राप्त नही थ। उनका पद सामत-राजा का ही था, यद्यपि स्थानीय शासन मे किसी तरह का हस्तक्षेप दिल्ली सल्तनत की ओर से नही होता था। राजा शिवसिह ने सप्रभुता प्राप्त करने का प्रयत्न किया पर वे असफल रहे।

(१०) ओइनवार राजवश मे किसी राजा के मरणोपरान्त उसके पुत्रो मे राज्य के विभाजित होने की प्रथा चल पडी थी। इस राजवश के सप्रभु नही होने का एक यह भी प्रमाण है।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था

जिस देश एव युग का इतिहास विस्मृति के कुहासे से आवृत्त-आच्छन्न हो उसकी सामाजिक-सास्कृतिक अवस्था के विषय मे पर्याप्त सामग्री प्राप्त करना सहज नही। इस सम्बन्ध मे अधिकतर काव्य, गाथाओ अनुश्रुतियो तथा निजन्धरी कथाओ पर निर्भर करना होता है। इसमे सन्देह नही कि इनके अन्तराल मे बहुमूल्य सामग्रियाँ बिखरी पडी है, पर स्वभावत ही उन पर अतिरजना, अतिशयोक्ति तथा विशुद्ध कल्पना की ऐसी मोटी तह पडी रहती है कि उनमे कितना सत्य है और कितना किसी कल्पनाशील कवि की उडानमात्र, यह विश्लेषण करना कठिन हो जाता है। तिरहुत के इतिहास के सम्बन्ध मे भी न्यूनाधिक रूप से यही बात कही जा सकती है। सौभाग्यवश विद्यापति-युगीन मिथिला की सामाजिक तथा सास्कृतिक अवस्था के सम्बन्ध मे प्रचुर सामग्री ज्योतिरीश्वर ठाकुर, विद्यापति एव कई अन्य कवियो, पडितो एव सुलेखको की रचना मे उपलब्ध[1] है। विशेषकर विद्यापति के ग्रन्थो मे इस काल के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित इतनी सामग्रियाँ मिलती हैं जिनके आधार पर तत्कालीन सामाजिक तथा सास्कृतिक अवस्था का चित्रण भली भाँति किया जा सकता है। जिन ग्रन्थो मे ये सामग्रियाँ मिलती हैं उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण तथा प्रमुख है 'लिखनावली'। यह 'पत्र चन्द्रिका' की तरह की पुस्तक है, जिसमे विभिन्न प्रकार के

---

[1] ज्योतिरीश्वर ठाकुर—वर्णरत्नाकर, धूर्त्तसमागम।
विद्यापति ठाकुर—**कीर्त्तिलता, कीर्त्तिपताका, लिखनावली, वर्षकृत्य, गयापत्तलक, विभागसार आदि।**

पत्रों, दस्तावेजो आदि के नमूने दिये गये हैं[१]। उनकी 'पुरुषपरीक्षा', 'कीर्तिलता', 'दानवाक्यावली', 'गयापत्तलक' और 'विभागसार' मे एतद् सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री बिखरी पडी है। छिटपुट पदो मे भी ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं जिनमे उस काल की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था पर प्रकाश पडता है। ज्योतिरीश्वर तथा विद्यापति के अतिरिक्त जिन विशिष्ट पंडितो तथा लेखको के ग्रन्थो मे तत्कालीन सभ्यता-संस्कृति के विभिन्न पक्षो के सम्बन्ध मे सामग्रियाँ मिलती हैं उनमे प्रमुख है दामोदर मिश्र का 'वाणी भूषण', भवशर्माप्रतिहस्त कृत 'सुगति सोपान,' महामत्तक चण्डेश्वर ठाकुर का 'कृत्यरत्नाकर' आदि।

कर्णाट राजवंश के अन्तिम राजा हरिसिंह देव ने नया पंजी-प्रबन्ध कराया। मिथिला की पंजीप्रथा परम्परागत थी। राजा हरिसिंह देव ने इसका नूतन संस्कार करवाकर कुलीन, अकुलीन के भेद-भाव की सृष्टि कर दी। १३२४ ई० मे इस नव पंजी-प्रबन्ध ने मिथिला के सामाजिक जीवन मे एक उथल-पुथल-सी कर दी। इस पंजी-प्रबन्ध के लिपिकार कोई रघुदेव थे, पर इसकी रचना का श्रेय राजा हरिसिंह देव के आदेश तथा प्रेरणा से तत्कालीन पण्डितो को ही दिया जा सकता है।[२]

राज्य-व्यवस्था

तिरहुत या तीरभुक्ति दिल्ली सुल्तानो के सार्वभौमत्व के अन्तर्गत सामन्त राज्य था। कर्णाट राजवंश का अन्त १३२४ ई० मे हरिसिंहदेव के पराभव तथा पलायन के साथ हुआ। इस प्रदेश का स्वतन्त्र राज्य के रूप मे अस्तित्व भी उसी के साथ समाप्त हो गया। ओइनवार राजा सामंत राजा थे। वे दिल्ली सुल्तानो को नियमित रूप से कर दिया करते थे। जब-जब कर देना बन्द करते तब-तब उन पर आक्रमण होता। दिल्ली सल्तनत के साथ उनका इतना ही सम्बन्ध रहता था अन्यथा वे स्वतन्त्र राजाओ की ही तरह राज्य करते थे। अत सामान्य प्रजा का दुख-सुख इन स्थानीय अधिपतियों के साथ सम्बद्ध रहता था। ओइनवार राजा स्वयं ब्राह्मण थे तथा विद्वान् एवं पंडित कुल के थे। राजा उन दिनों केवल न्याय तथा व्यवस्था का रक्षक-प्रहरी मात्र नही होता था, वह सामाजिक नियम-धर्म, रीति-रिवाज का नियामक भी होता

---

१ अल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम्।
विद्यापति स्सला प्रीत्यै करोति लिखनावलीम्॥
उच्चैः कक्षमधः कक्ष समकक्ष वरम्प्रति।
नियमे व्यवहारे च लिख्यते लिखनक्रमः॥

२ तस्माद्धं द्विज बीजि वशकर्तितं यद्विश्वचक्रे पुरा।
तद्विप्राय समर्पितं सुकृतिने शान्ताय सर्वाविने॥१॥
ब्राह्मणानां समुत्पत्ति तद्बीजि कथनं तथा।
करोमि रघुदेवाख्यः पाण्डु पंजीविनिश्चयम्॥२॥

—पंजी-प्रबन्ध, मिथिला तत्त्व-विमर्श, पृ० १३६

था। तभी तो राजा हरिसिंह देव ने, जो स्वयं क्षत्रिय था, नव पंजी-प्रबन्ध करवाकर ब्राह्मणों को श्रेणिबद्ध कर दिया। इससे कितना क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ इसके विषय मे महामहोपाध्याय पं० परमेश्वर झा ने अपने 'मिथिला तत्त्व विमर्श' मे लिखा है कि ब्राह्मणों मे जो सपन्न, शक्तिशाली तथा भूमिपति थे वे सभी जेवार या छोटे कुल के बना दिये गए और अग्निहोत्री या शीलोंछवृत्ति वाले अकिंचन पण्डित वेदज्ञों को को सबसे ऊँची श्रेणी दी गयी।[1]

कर्णाट राजाओ के मन्त्री बडे ही योग्य, कर्मठ विद्वान् तथा पराक्रमी व्यक्ति होते थे। हरिसिंहदेव १०-१२ वर्ष की आयु मे ही राजा हुए। उनके बाल्यकाल मे महामत्तक वीरेश्वर ठाकुर ने सप्तांग व्यवस्था की स्थापना की। उसने अपने सात भाइयों को विभिन्न मन्त्रियो के पद पर आसीन किया। इनमें महामत्तक, महासंधि विग्रहक, महाभाडारक, महासामन्ताधिपति, महादेवागारिक[2] आदि प्रमुख थे। कई मंत्रियों ने सामाजिक नियमन एव धर्मानुष्ठान पर विभिन्न पांडित्यपूर्ण ग्रंथ भी लिखे। इससे प्रमाणित होता है कि उस काल मे तिरहुत के शासक धर्म एवं समाज-नीति के भी नियामक होते थे। गअनेसर की हत्या के उपरांत अराजकता के साथ सामाजिक जीवन मे भी अव्यवस्था छा गयी इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है।

राजा कर लेता था। इसके लिए उसके पदाधिकारी, कर्मचारी तथा "स्थायुकवर" (ठाकुर) होते थे। जमीन की नापी करके कर निर्धारित किया जाता था।[3] चर, वार्त्तिक आदि नियुक्त रहते थे। सेना मे विदेशियों को भी नियुक्त किया जाता था। कुछ स्थायी सैनिक भी रहते थे तथा समय-समय पर नियुक्त किये जाते थे। इनमे चौहान, चन्देल प्रभृति जातियो मे राजपूतों की प्रधानता रहती थी।[4]

स्थानीय पदाधिकारियो मे बलकारणिक, स्थानाध्यक्षेश्वर, वार्थ्य प्रभृति होते थे।[5] दस्तावेज, मुकदमा मे जयपत्र (डिग्री ?) की व्यवस्था प्रचलित थी। इन कागजपत्रों पर साक्षियो के हस्ताक्षर होते थे, इन्हे लिखनेवाला कायस्थ लेखक ही होता था, उसे दोनो पक्ष से इसके लिए कुछ पारिश्रमिक मिलता था। इनके अतिरिक्त अनेक पद,

---

[1] मिथिला तत्त्व-विमर्श, पृ० १४३।

[2] वर्णरत्नाकर, स०—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, पृ० ८।

[3] यद्यस्मिन् वर्षो देशेस्मिन् भूमिमापनं कृत्वा राजकरो गृह्यते तथा कर कर्पद्दकाः संपूर्ण एव प्राप्यते क्षीणानां पीडा न भवति।
—लिखनावली, पत्र संख्या १३, पृ० १०।

[4] स्वदेशीया विदेशीया नाना.................शूरा. कुलीनाः.......चौहान चन्देल प्रभृतयश्चाटुकारेण प्रत्याशादानेन चानुरंजिताः..........एतेषां तत्र गमनेन स्वपक्षोरक्षं....... । —लिखनावली, पत्र संख्या १५, पृ० ११-१२।

[5] लिखनावली, पत्र सख्या, ३२, पृ० २२।

श्रेणी तथा स्तर के राज्योपजीव्य गाँव-गाँव मे फैले रहते थे। इन्हे जब भी आदेश होता था, राजधानी जाना पडता था।[१]

राजा की मंगलकामना के लिए जब-तब जाप, यज्ञ, पूजा आदि अनुष्ठान होते रहते थे। इनमे अनेक पडित, होता, पुरोहित तथा ब्राह्मण भाग लेते थे। उनमे किसी की उपाधि शुक्ल होती थी, कोई मिश्र, कोई चतुर्वेदी, कोई ठाकुर और कोई उपाध्याय कहलाता था। इसके लिए राजा उन्हे पुरस्कृत भी करता था।[२] इन अनुष्ठानो मे सामगान से लेकर दुर्गापाठ तक होता था।

दडप्राप्त बदियो को राजा से अनुमति प्राप्त करके मुक्त कर देने की प्रथा थी। इस सम्बन्ध मे एक रोचक पत्र का नमूना 'लिखनावली' मे मिलता है। महामत्री को एक पदाधिकारी ने लिखा है कि कारागार मे जो बन्दी पडे हुए हैं वे घोर दुर्गति मे हैं, वे अब कुछ भी द्रव्य नही दे सकेंगे। उन्हें और बदी रखने से उनकी मृत्यु हो जाने की सभावना है। अत उन्हे मुक्त कर दिया जाये।[३]

न्यायशासन की कोई सुनिश्चित व्यवस्था सभवत नही थी। गाँवो मे पचायतें काम कर रही होगी, राजा स्वय या उसके मत्री बडे-बडे झगडो मे वादी-प्रतिवादी को बुला उनके कागज-पत्र देख निर्णय देते थे, ऐसा 'लिखनावली' के कई पत्रो के मजमून पढने से स्पष्ट होता है। वादी, प्रतिवादी, जयपत्र, मोकदमा, साक्षि प्रभृति शब्दो के प्रयोग मे भी मुकदमा सुनने तथा निर्णय देने की किसी व्यवस्था का सकेत मिलता है, भूमि पण्य, दास-दासी, विक्रय-ऋण, भरना लगाने, बधक लगाने आदि की प्रथा खूब प्रचलित रही होगी। एक व्यक्ति ही नही सम्पूर्ण परिवार के विक्रय की भी प्रथा थी, इसका प्रमाण मिलता है। ब्याज के लिए 'सोदय' शब्द का व्यवहार कई पत्रो के मजमून मे विद्यापति ने किया है। ब्याज, सामान्य तथा चक्रवृद्धि दोनो ही प्रचलित थे। दास-दासियो के विक्रय-पत्र के कई नमूने लिखनावली[४] मे दिये गए हैं, जिससे इस प्रथा के अधिक प्रचलित तथा राजसम्मत होने का प्रमाण मिलता है।

विक्रय-पत्रो मे अधिकतर "बँवत्त" जाति का ही उल्लेख है, क्रेता ठाकुर, साहू, शर्मा, मिश्र चाहे जो हो पर शूद्र-शूद्री ही बेचे जाते थे तथा इसमे उनकी सहमति आवश्यक नही समझी जाती थी। बिकनेवाले शूद्र-शूद्री का रग[५], उम्र तथा पिता-

---

१ "राजजिव्यभुजा सेवकाना कुतो गृहसुख" —लिखनावली, पत्र ४३, पृ० २७।

२ लिखनावली, पत्र सख्या २२, पृ० ८-९।

३ "·······ये च दंडलोप निमित्तं कारागारे बद्धास्सन्ति ······ते परम दुर्गतिः प्राप्तया क्लेशा अपि किमपि दातुम् न शक्नुवन्ति म्रियन्तो परं ततो यदि······ शृंखल बन्धनादेते विमोच्यन्ते तदा किंचिद्धन प्राप्ति रपि भवति प्राणिवधवारणंच सम्भवतीत्यस्माभि गोचरित······। —लिखनावली, पत्र १६, पृ० १०-१२।

४ लिखनावली, पत्र सख्या ५२, पृ० ६०-६४।

५ वही, पत्र सख्या ५५, पृ० ३६-३७।

माता का नाम लिखा जाता था, पर उनके नाम नही लिखे जाते थे। एक दो मजमूनों मे शूद्र-शूद्री के बन्धक रखे जाने का भी उल्लेख है।[१] उनको कौनसे काम करने होंगे यह अवश्य लिखा जाता था, हलवाही से लेकर जूठा धोना, पानी भरना तथा अन्य सेवा-कार्यों का उल्लेख एकाधिक पत्रो मे किया गया है।[२]

राजा के मन्त्री तथा पदाधिकारी तो होते थे पर उनकी निरकुशता पर कोई रोक नही थी। महासधिक को सम्बोधित एक पत्र मे "दुर्बोधं राजचरित्रमिति" उद्धृत करके अकारण राजकोप होने का बात लिखी गयी है।[३]

समाज तीन वर्गो मे विभक्त था। एक वर्ग मे राजा, भूमिपति आदि प्रभुवर्ग के लोग थे। यह वर्ग सम्पन्न था, इनके पास भूमि, पण्य, युद्ध-व्यवसाय, शासन कार्य आदि आजीविका-अर्जन के साधन थे। राजा बडे ही ठाटवाट से रहते थे। निरन्तर युद्ध की छाया मे रहने पर भी उनके हास-विलास मे, नाचरंग मे, दान-पुण्य मे कमी नही होती थी। रत्न जवाहर उन्हे उपहार मे मिलते थे। राजा शिवसिंह का शासनकाल केवल तीन वर्ष नौ या आठ महीने रहा, पर उनकी छ रानियाँ थी। उन्होंने अनेक तालाब खुदवाये, विद्यापति को बिसफी गाँव दान किया, और भी कितना ही दान-पुण्य किया। राजपरिवार के लिए पान, भीमसेनी कपूर, सुगधि द्रव्य आदि हजारो रुपयो के खरीदे जाते थे।[४] राजसभा मे नाचरग, गान-वाद्य आदि की बडे पैमाने पर व्यवस्था रहती थी।

पर सिक्के का दूसरा पहलू भी था। सामान्य प्रजा की आर्थिक अवस्था अच्छी नही थी। ऋणपत्र, जमीन, स्वर्ण तथा दास-दासी के भरना देने, बन्धक रखने तथा विक्रय करने के अनेक नमूने 'लिखनावली' मे मिलना इसका द्योतक है।

सबसे दयनीय दशा थी शूद्रो की। प्राचीन यूनान के दास-दासियों की तरह उनका परिवार का परिवार बेच दिया जाता था। इन विक्रय-कार्यों के विधिवत् दस्तावेज होते थे। दास-दासियों के भाग जाने पर राज्य उन्हे पकडवा कर उनके स्वामियो के सिपुर्द कर देता था। चार रुपयो (रौप्य टंक) मे एक दासी तथा दो रुपयो मे एक दास के विक्रय का एक मजमून 'लिखनावली' मे मिलता है। शूद्रवर्ग की अवस्था कितनी दयनीय थी इसका एक आभास विद्यापति के एक पद से भी मिलता है।[५]

---

१ लिखनावली, पत्र सख्या ५५-६०।

२ वही, पत्र संख्या ५७।

३ वही, पत्र सख्या १४, पृ० ११।

४ वही, पृ० २५-२७।

५ जाड़ल बाम्हन तेजय सनान।
जाड़ल मानिनी तेजय मान।
जाड़ल राड़ धोपरी तान।

—मि० म० वि०, पद संख्या २१५, पृ० १६०।

रौप्य टंक, पण (पैसे), कौडी (कपर्दक या वराटिका) प्रचलित सिक्के थे।[1] सूद की दर ऊँची थी, दो पैसे से छः पैसे रुपये तक की सूद प्रचलित थी। व्याज पर ऋण-बन्धक आदि की व्यवस्था प्रचलित थी।

भूमिकर, जलकर, फलकर आदि लिये जाते थे। ब्रह्मोत्तर संपत्ति अक्सर राजाओं की ओर से ब्राह्मणो को दी जाती थी।

खेती मे ज्यादातर धान का उल्लेख कई पत्रो मे मिलता है। गढवार, मगही प्रभृति धान्यबीजो का उल्लेख किया गया है। खेत को अच्छी तरह से कोड-जोत-पटा कर तैयार करने का आदेश एक पत्र मे दिया गया है।[2]

इसी पत्र मे यह भी आदेश दिया गया है कि वृषभशाला (बथान) को साफ-सुथरा रखें, उसमे कीच-कर्दम न हो, मच्छर का प्रकोप न हो। उस युग के जमीदार तथा बडे किसान अक्सर प्रवासी रहते होंगे, इसका भी एक संकेत इस पत्र से मिलता है। दूर रहने पर भी अपने गाय-बैल के लिए उनके हृदय मे कितनी ममता थी, यह भी आभासित होता है।

युद्ध मे हताहत सैनिको के लिए राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी, इसका संकेत 'लिखनावली' की पत्र संख्या ६ (पृ० ६) से मिलता है। इस पत्र मे सेनापति राजा को युद्ध मे विजयी होने के समाचार के साथ विपक्षी दल तथा अपने दल के हताहतो की सूचना दे रहा है। अपने पक्ष के हताहतों के लिए उचित सहायता की व्यवस्था करने की प्रार्थना भी इस पत्र मे निहित है।[3]

विद्यापति की एक रचना है 'विभागसार'। इसमे सम्पत्ति-विभाजन के विधि-विधान, प्रथा तथा परम्परा विवेचित है।

हाट, घाट आदि की[4] वार्षिक बन्दोबस्ती की जाती थी। मल्लाह को नदी, तालाब या दह आदि से मछली तथा कछुआ पकडने का ठीका भी सालाना दिया जाता था।[5] मल्लाह की उपाधि साहनी या धीवर होती थी।

युद्ध या युद्ध की आशंका की छाया, जल्दी-जल्दी बदलते हुए राजा, मन्त्रियो तथा अन्य पदाधिकारियो की बढती हुई शक्ति, विभिन्न व्यवस्थाओ के पारस्परिक संघात—इस पृष्ठभूमि पर देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व सुदृढ़ हो यह एक आश्चर्य की ही बात होती। फिर भी तत्कालीन उपलब्ध साहित्य के अवलोकन से ऐसा नही

---

[1] लिखनावली, पत्र संख्या ७०-७२।

[2] क्षेत्रं च सार्थमित्वा कुद्दालैः सिद्धं करिष्यथ.........वृषभपोषणं तथा करिष्यथ यथा कोऽपि वृषभा दुर्ब्बलाः न भवन्ति यथा वृषभशालायां मशकोपद्रवः यद्दंमोपद्रवश्च न भवन्ति तथा यत्नतः करिष्यथ।" —लिखनावली, पत्र संख्या ३४।

[3] लिखनावली, पत्र संख्या ६, पृ० ६।

[4] वही, पत्र संख्या ३०, पृ० २१।

[5] वही, पत्र संख्या २१, पृ० २१।

लगता कि सामन्तवर्ग तथा ग्रामीण प्रभुवर्ग अभावग्रस्त व विपन्न हों। शूद्रों की बात दूसरी है। सामन्ती ढाँचे के समाज मे इस वर्ग का जैसे निर्मम शोषण तथा घोर अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए ही अस्तित्व रहता है। इसे मानवोचित मर्यादा मिलती ही नहीं। अत आर्थिक दृष्टि से इसका पृथक अस्तित्व नहीं रहता।

मध्ययुगीन तिरहुत मे समाज अनेक जातियो मे विभक्त था। एक जाति के अन्दर भी मूल, कुल आदि के आधार पर अनेक प्रकोष्ठ थे। समाज मे सबसे अधिक प्रतिष्ठित तथा शक्तिशाली ब्राह्मण थे। तिरहुती समाज की भारत के अन्य क्षेत्रो से यह एक *विशेषता अवश्य थी। यहाँ ब्राह्मण ही राजा था। ब्राह्मण मन्त्री था, ब्राह्मण* पडित विद्वान्, अध्यापक तथा लेखक आदि तो था ही। फलत राज्य के उच्च पदो पर ब्राह्मण ही अधिकतर प्रतिष्ठित होते थे। विद्यापति-युगीन मिथिला मे कर्मादित्य, देवादित्य, वीरेश्वर ठाकुर, चडेश्वर ठाकुर प्रभृति एक-से-एक पराक्रमी एव पडित ब्राह्मणो को देखते है। विद्यापति ने ठीक ही लिखा है कि "दोनो एक साथ नहीं देखा जाता—राजा और ब्राह्मण एक ही व्यक्ति हो" पर मिथिला की प्राचीनतम काल से ही यह परम्परा रही है।

कर्णाट राजवश के साथ ही क्षत्रियो का आधिपत्य समाप्त हो चुका था। सेना मे राजपूतो की ही प्रधानता[1] रहती थी, पर सेनापति तथा महासन्धिविग्रहक या महासामन्ताधिपति ब्राह्मण होते थे।

ब्राह्मणो मे भी कई श्रेणियाँ थी। इनमे श्रोत्रिय तथा योग्य सर्वोच्च थे। राजपूतो मे चौहान, चन्देल आदि कई शाखाएँ, उपशाखाएँ थी। ब्राह्मणो की उपाधि त्रिपाठी, चतुर्वेदी, शर्मा, ठाकुर, मिश्र, शुक्ल आदि होती थी।[2] एक ही व्यक्ति की उपाधि त्रिपाठी तथा ठाकुर दोनों भी हो सकती थी, जैसे त्रिपाठी कर्मादित्य ठाकुर। उपाध्याय की उपाधि तो बहुत ही प्रचलित थी। अन्य जातियो मे कायस्थो की उपाधि 'दास' थी। 'लिखनावली' मे साहू, महथा, राउत आदि उपाधियो का भी उल्लेख है। 'राउत' तो बहुत ही प्रचलित उपाधि थी। 'चौहान राउत' भी एक पत्र मे मिलता है।[3]

भृत्य वर्ग म 'कैवर्त्त' का उल्लेख कई पत्रो म किया गया है। इस वर्ग की स्थिति अत्यधिक दयनीय तथा हीन थी, दास-दासियो के विक्रय-पत्रो मे इसी वर्ग का

---

[1] *लिखनावली, पृ० ११।*

[2] "· ···· अत्रच ब्रह्मपुर ब्राह्मणा कृतवरणाः अग्निहोत्रिक श्री आवसथिक श्री अमुक शुक्ल, श्री अमुक मिश्र, श्री अमुक महामहोपाध्याय, श्री अमुक प्रभृतयो दुर्गापाठ मंत्रजपं, नवग्रह होमंच कुर्व्वाणाः चतुर्वेदि श्री मदमुक त्रिपाठी श्री अमुक द्विवेदी श्री अमुक प्रभृतयोः यजुर्जयं सामगान संहिता पाठंच विद्वानास्सन्ति।''''
—लिखनावली, पत्र सख्या १२, पृ० ८-९

[3] लिखनावली, पत्र सख्या ३३, पृ० २२

उल्लेख किया गया है। कैवर्त्त-विद्रोह इस वर्ग के लोगो के अत्यधिक अत्याचार पीडित होने का एक प्रमाण प्रस्तुत करता है।

वणिजवर्ग सम्पन्न था। व्यापार के लिए सहभागी (partnership) प्रथा भी प्रचलित थी। एक पत्र मे राजा के लिए चार रत्न उपहार मे भेजने का उल्लेख है जिससे इस वर्ग का राजाओ पर भी प्रभाव रहा होगा, ऐसा जान पडता है।

ब्राह्मणो की तरह कायस्थो मे भी पंजी-प्रबन्ध था यद्यपि उनमे मूल के आधार पर कुलीन-अकुलीन आदि की वैसी जटिल प्रथा नही थी। कायस्थो के रीति-रिवाज अधिकतर ब्राह्मणो के ही अनुरूप थे। मिथिला के कायस्थ आज भी 'कर्ण' कहे जाते हैं तथा उनके बडे-बूढो के अनुसार उनके पूर्वज दक्षिण देश से आकर मिथिला मे बस गए थे। राजा नान्यदेव के कर्णाट राजवंश की स्थापना के साथ यह अनुश्रुति व विश्वास भी जुडा हुआ है, यह बहुत संभव है। कर्णाट राजाओं के समय भी कायस्थ उच्च पदासीन होते थे। आगे चलकर कायस्थों की स्थिति हीन होती गयी। 'लिखनावली' के कई पत्रो मे दस्तावेज के लिपिकार के रूप मे ही कायस्थो का उल्लेख हुआ है।

आज की तरह विद्यापति के युग मे भी कन्या-विवाह की समस्या उलझनभरी होगी इसका सकेत 'लिखनावली' के दो पत्रो से मिलता है। एक मे कन्या-विवाह के लिए ऋण लिये जाने का उल्लेख है, दूसरे मे कन्या-विवाह के कारण दो परिवारो मे वैमनस्य होने की चर्चा है।

'लिखनावली' के एक पत्र मे सपन्न गृहस्थो के पारिवारिक जीवन पर बडा ही मार्मिक प्रकाश डाला गया है। पत्र सख्या ३६, (पृ० २३-२४) माँ के द्वारा अपनी विवाहिता कन्या को लिखा गया पत्र का नमूना है। इसमे माँ अपनी दुहिता को ननद तथा सपत्नी से सताये जाने की सूचना पाकर व्यथा प्रकट कर रही है। अपनी कन्या को वह धैर्य के साथ सभी कुछ सहने का उपदेश देती है। किसी भी अवस्था मे कुलीन वधू को मुखरता नही सोहती, शील तथा धैर्य का अवलम्बन ही उसे करना चाहिए। माँ अपनी कन्या को कुसुम्भी रंग मे रँगे वस्त्र, सुगंधित तेल, सिन्दूर, सुपारी तथा कौडी सन्देश मे भेज रही है। इन्हे वह ग्रहण करे तथा बरसात बीतने पर उसके भाई को भेजकर वह उसे बुलवा लेगी यह आश्वासन भी देती है।[१]

---

[१] ....ननन्दुर परितोषेण सपत्नी कलहेन च श्रीमतीनां महती कुश्लेपवार्ता श्रूयते तेनोद्वेगो मनसि विद्यते यद्यपि दुहिता सन्तति: पित्रोरुद्वेग निमित्तमेवास्ति'.... यद्यपि ननन्दा दुश्शीला सपत्नीद्वेषिणी ....तथापि मौदर्य्यं विनियार्म्य भवतीभि स्शीलावलम्बनमेव विधापितव्यम्।......... 'संप्रति सन्देशत्वेन स्थूल पूग श्लक्ष्ण वराटिका शुद्ध सिन्दूर सुगन्धितैल कुसुम्भ रक्त वस्त्राणि परि गृहीतव्यानि वर्षाकाला-वसाने भवदीयो भ्राता भवदानयनार्थं ....गमिष्यति'........

—लिखनावली, पत्र संख्या ३६, पृ० २३-२४

"दुहिता सन्तति विरोद्वेग निमित्तमेवास्ति" वाक्य मे कन्या का परिवार मे क्या स्थान था यह स्पष्ट झलक जाता है। फिर भी मध्ययुगीन तिरहुत मे भारत के अन्य भागो की अपेक्षा स्त्रियों की मर्यादा अधिक थी, इसमें सन्देह नही। विद्यापति के पदो मे राजा के साथ रानी का नामोल्लेख ही इसका एक सकेत है। लखिमा देवी, विश्वास देवी प्रभृति रानियाँ राजकाज मे भाग ही नही लेती थी, प्रत्युत पति की अनुपस्थिति मे स्वय शासनकार्य सचालित करती थी, यह भी तत्कालीन मिथिला म नारी समाज की मर्यादा का द्योतक है।

साथ ही इससे भी इन्कार नही किया जा सकता कि मध्यकालीन मिथिला मे अन्यत्र की तरह राज-परिवारो तथा प्रभुवर्ग मे बहुविवाह की प्रथा खूब प्रचलित थी। राजा शिवसिंह की छ पत्नियाँ थी, विद्यापति के दो विवाह हुए थे। विवाहिता पत्नियों के अतिरिक्त सपन्न लोग अन्य रमणियों के साथ भी प्रणय-सम्बन्ध करते रहते थे। ज्योतिरीश्वर के 'धूर्तसमागम' मे दो-दो वेश्याओं को मुख्य पात्र का स्थान दिया गया हैं। इससे उस काल मे वेश्याओ का अस्तित्व सिद्ध होता है। "बहुल कामिनि एकल कन्त" अपवाद न होकर नियम-सा ही था। इस स्थिति मे नारी जीवन की विवशता की कल्पना की जा सकती है। विद्यापति की 'लिखनावली' के उपर्युक्त पत्र (पत्र सख्या ३६) मे नवविवाहिता पत्नी की भी ऐसे समाज मे क्या दुरवस्था हो सकती है, इसका एक सकेत मिलता है। कवि के कितने ही पदो मे परित्यक्ता या उपेक्षिता नारियों की व्यथा अश्रुगीले गीत बनकर फूट पड़ी है।

मध्ययुगीन मिथिला मे अध्ययन-अध्यापन, शास्त्र-चर्चा, पुस्तक-लेखन की बडी ही गौरवपूर्ण परम्परा थी। राजा और मन्त्री भी उद्‌भट विद्वान् तथा सुलेखक होते थे। पण्डितों तथा विद्वानो एव शासनकार्य की भाषा सस्कृत थी। ब्राह्मणों के यहाँ महिलाएँ भी सस्कृत मे लिखना-पढना जानती थी। 'लिखनावली' तथा 'पुरुष-परीक्षा' की रचना सस्कृत मे की गयी इससे सिद्ध होता है कि दैनिक पत्राचार तथा व्यवहार की भाषा सस्कृत ही थी। उसकी ग्राहिका शक्ति कितनी अधिक थी इसके उदाहरण हैं सुल्तान का सुरत्राण, खोज, खोदाय, सोदय प्रभृति शब्दो का प्रचलन। इन दोनो पुस्तको की भाषा इतनी सरल तथा सुबोध है कि उसे सामान्य पढा-लिखा व्यक्ति भी समझ सकता है। यद्यपि एक पत्र मे दस्तावेज को भाषा मे समझाने का भी उल्लेख किया गया है,[१] जिससे विदित होता है कि सस्कृत का प्रचलन ब्राह्मणों एव कायस्थो के अतिरिक्त अन्य जाति के लोगों मे कम ही रहा होगा। फिर भी पत्राचार तथा राजकाज की भाषा होने के कारण सस्कृत आज की तरह लोकजीवन से विच्छिन्न नही हुई थी। सामान्य व्यवहार के अनेक शब्द 'लिखनावली' से लिये जा सकते हैं—जयपत्र (मुकदमे मे डिग्री के लिए), सोदय (सूद के लिए) आदि इसके कुछ उदाहरण है।

---

[१] लिखनावली, पृ० ३५-३६।

कर्णाट राजवंश की स्थापना तिरहुत मे एव धार्मिक, सामाजिक तथा विचार क्रान्ति का अग्रदूत बन गयी। कारण यह था कि इसके साथ तीन-चार सौ वर्षो का बौद्ध धर्मावलम्बी राजाओ का शासन समाप्त हुआ। अत सामाजिक तथा वैयक्तिक आचार-विचार का नियमन करनेवाले अनेक ग्रन्थो की रचना इस समय हुई। कर्णाट वशीय राजा हरिसिंह देव के नव पजी प्रबन्ध की चर्चा की जा चुकी है। इसके विषय मे प० रमानाथ झा का मत है कि सामाजिक पुनर्गठन करके उसे दृढ भित्ति पर रखने का यह एक महान् प्रयत्न था।[1] ओइनवार राजाओ के समय मे भी सामाजिक पुनर्गठन का यह प्रयत्न चलता रहा। गृह्यसूत्र के १६ सस्कारो के स्थान पर दस सस्कार प्रचलित किये गए। चडेश्वर ने 'राजनीति रत्नाकर' लिखकर नवीन राजनीति सिद्धान्त प्रतिपादित किया। सप्तांग शासन-व्यवस्था की स्थापना की गयी। 'दानवाक्यावली' लिखकर किसे दान देना चाहिए इसकी व्यवस्था विद्यापति ने की। 'दुर्गाभक्तितरगिणी' म दुर्गा-पूजन की व्यवस्था बतायी गयी। इस काल के अन्य पडितो तथा सुलेखको मे गगाधर, पक्षधर मिश्र, वाचस्पति मिश्र (२), वर्द्धमान प्रभृति विशेष प्रसिद्ध हुए। विद्यापति के पूर्वज देवादित्य, चडेश्वर, कर्मादित्य, धीरेश्वर आदि का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

कला-कौशल, साहित्य

कर्णाट तथा ओइनवार राजाओ ने अनेक नये नगर बसाये।[2] कर्मादित्य का बनवाया सूर्य मन्दिर प्रख्यात है। अनेक छोटे-बडे मन्दिर बनवाये गए। तालाब खुदवाने की तो जैसे राजाओ एवं उनके मत्रियो मे होड-सी लगी हुई थी। ओइनवार राजाओ के खुदवाये हुए अनेक तालाब आज भी मिथिला के विभिन्न गांवो मे मिलते है।

सगीत तथा नृत्य-कला का इस काल मे अत्यधिक उत्कर्ष हुआ। विद्यापति की 'पदावली' स्वय इस बात का सूचक है कि गान-विद्या का कितना अधिक प्रचलन इस काल मे हो रहा था। विद्यापति के सभी पद किसी-न किसी राग रागिणी मे बद्ध हैं। विद्यापति तथा राजा शिवसिंह स्वय भी गान विद्या मे कुशल थे। विद्यापति के सरक्षण तथा निर्देशन म उनके पदो पर आधारित नृत्यो का उल्लेख मिलता है। विद्यापति के निर्देशन म सगीत-नृत्य कला का अभूतपूर्व उत्कर्ष हुआ। जयत नामक गायक-

---

[1] पुरुष परीक्षा, भूमिका—प० रमानाथ झा, पृ० १७। लेकिन महामहोपाध्याय प० परमेश्वर झा ने हरिसिंह देव के नव पजी प्रबन्ध को तत्कालीन मैथिल समाज की एकता को छिन्न-भिन्न करनेवाला कहा है। उनके अनुसार हरिसिंह देव के १२४८ (शाके) मे पराजित होने तथा कर्णाट राजवश के अन्त होने का एक मूल कारण नव पजी-प्रबन्ध से उत्पन्न मैथिलो के एक बडे तथा बहुसंख्यक वर्ग मे असन्तोष एव आक्रोश भी था। —मिथिला तत्त्व-विमर्श, पृ० १४३

[2] गजरथपुर, देकुली, सुगौणा, सिमरामा आदि।

नर्त्तन के विद्यापति द्वारा इन विद्याओं मे निष्णात किये जाने का उल्लेख 'रागतरगिणी' मे किया गया है।[१]

इस काल मे साहित्य के उत्कर्ष का मानदड तो विद्यापति की 'कीर्त्तिलता', 'कीर्त्तिपताका', 'पुरुषपरीक्षा' तथा उनकी पदावली ही हैं। विद्यापति कृत नाटक 'गोरक्षविजय' भी एक उच्च कोटि की रचना है। सस्कृत की एक सरल, सुबोध तथा सजीव शैली का विकास विद्यापति ने किया है। उनकी भाषा पर कहीं भी पाडित्य का बोझ नही, वस्तुत उनकी सस्कृत को हम "मैथिल सस्कृत"[२] कह सकते हैं। अनेक विदेशी शब्द इस समय सस्कृत मे अतर्भुक्त मिलने है। 'पुरुषपरीक्षा' की भूमिका मे प० रमानाथ झा ने दशाधिक ऐसे शब्दो का उल्लेख किया है जिनका विद्यापति ने प्रयोग किया है जो सस्कृत व्याकरण की कसौटी पर खरे नही उतरेंगे। प० झा ने इसका कारण विद्यापति का व्याकरण मे पारगत नही होना बताया है। पर अधिक सभव यह है कि यह युग की जीवन्त एव ग्राहिका सस्कृति की प्रेरणा थी जिसमे व्याकरण के बन्धन शिथिल हो रहे थे तथा लोक प्रचलित विदेशी शब्द ग्रहण किये जा रहे थे। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित शब्द लिये जा सकते हैं—सुरत्राण[३]—सुलतान, षोदाय[४]—खुदा, काफर—काफिर, महमद—मुहम्मद[५]। 'लिखनावली' को सरसरी दृष्टि से भी देखने पर, सस्कृत की कितनी सरल सुबोध शैली उस युग मे विकसित हो रही थी, इस पर विस्मय होता है।

विद्यापति ने अवहट्ठ तथा मैथिली मे अपनी कई रचनाएँ प्रस्तुत की। पर पडितो की, राजकाज तथा साहित्य की भाषा तो सस्कृत ही थी, विशेषकर मिथिला के पडित तो सस्कृत के वातावरण मे ही जैसे जीते थे। मिथिला न्याय, तर्कशास्त्र तथा दर्शन के अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र बहुत काल तक बनी रही। दूर-दूर से जिज्ञासु तथा छात्र यहाँ न्याय पढने आया करते थे। विद्यापति के सरस पदो का समग्र पूर्वी भारत मे प्रचार होने का एक कारण यह भी था। वस्तुत मिथिला का चिन्तन, साहित्य तथा सस्कृति बगाल, आसाम और उडीसा मे मूल प्रेरणास्रोत बन

---

[१] लोचन कवि कृत **रागतरगिणी**, पृ० ३७।

[२] **पुरुषपरीक्षा**, भूमिका—प० रामनाथ झा।

[३] **लिखनावली**, पत्र सख्या ५५।

[४] **वही**।

[५] **पुरुषपरीक्षा**, सत्यवीर कथा, पृ० ३० (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित)।

गये। ओइनवार राजाओं का काल इस दृष्टि से मिथिला का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।[1]

इसका पूर्ववर्ती कर्णाट राजवंश का युग भी सभ्यता-संस्कृति के परम उत्कर्ष का युग था। ज्योतिरीश्वर और विद्यापति इन्ही युगो की सन्तति थे। यह भी इतिहास की एक विडम्बना ही कही जा सकती है कि जिस युग मे स्वतंत्रता का दीपक बुझने-बुझने को हो वह दीपक की अन्तिम भभक की तरह सभ्यता-संस्कृति के चरमोत्कर्ष के लिए अमर हो जाय।

× ×　　× ×　　× ×　　× ×

उपर्युक्त पृष्ठो मे विद्यापति-युगीन मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी जिसके मुख्य सूत्र निम्नलिखित है—

(१) राजनीतिक अनिश्चितता तथा उथलपुथल की स्थिति बनी रहती थी।

(२) संप्रभुता का लोप हो चुका था, पर जब-तब उसे प्राप्त करने के प्रयास भी होते रहते थे।

(३) राजा शासक तथा सामाजिक जीवन का नियामक भी होता था।

(४) समाज के तीन वर्ग थे—सम्पन्न प्रभुवर्ग, राज्योपजीव्य तथा मध्यवर्ती गृहस्थवर्ग, सर्वहारा शूद्रवर्ग। शूद्रो का क्रय-विक्रय होता था।

(५) प्रभुवर्ग का समय युद्ध या विलास मे व्यतीत होता था। समाज में वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ एव पंडित को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। इससे राजनीतिक भूचालो का भी प्रभाव शास्त्रचर्चा तथा चिन्तन पर नही पडने पाता था। राजसभा नृत्य-संगीत एव राजप्रासाद विलास के केन्द्र बने रहते थे, पर ग्रामों मे श्रोत्रिय परिवारो के दालानो पर तर्कशास्त्र, न्याय, व्याकरण तथा साहित्य के जिज्ञासुओ का जमघट लगा रहता था। हरिसिंह देव के नव पंजी प्रबंध की यही सबसे बडी देन थी।

(६) समाज मे बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। यह रोग कुलीन ब्राह्मणो मे भी कम नही था। फलत पट्टमहिषी का स्थान गौरवपूर्ण होते हुए भी सामान्यत नारी का जीवन अनेक विडम्बनाओ से ग्रस्त रहा करता था। वैवाहिक जीवन की पवित्रता निभाने के लिए स्त्रियाँ ही बाध्य थी। "परपुरुषक सिनेह मन्द" की सीख स्त्रियों के ही लिए ही थी, पुरुष के लिए तो "सोरहसहस गोपीपति कान्ह" का ही आदर्श व्यावहारिक माना जाता था। ऐसे समाज मे रूपवती तरुणी के समक्ष "चोरी

---

[1] "The days of Oinwara rule over Mithila were indeed the golden age of Mithila's history when she was a centre of light and learning like the eternal Kashi."

—पुरुषपरीक्षा, भूमिका, पृ० २१

प्रेम ससारेरि सार" का प्रलोभन हमेशा बना रहता था तथा नारी की सबसे बडी कला उदासीन प्रिय को पुन अपने प्रति आकृष्ट करने मे मानी जाती थी ("गेल भाव जे पुनु पलटावए सेह कलामति नारि")।

साराश यह कि ज्योतिरीश्वर तथा विद्यापति की मिथिला जहाँ वेदज्ञो, शास्त्रज्ञो, तर्क-व्याकरण-साहित्याचार्यों का गढ थी, वही उसमे नैतिक स्खलन, भ्रातृद्रोह, भ्रष्टाचार तथा सामाजिक कुप्रथाओ का भी बोलबाला हो रहा था। ज्योतिरीश्वर एव विद्यापति के साहित्य का यही सामाजिक आधारफलक है। ज्योतिरीश्वर का 'धूर्त्त-समागम' उनके युग के सामाजिक जीवन पर एक कटुतम 'सेटायर' के समान है। विद्यापति की 'लिखनावली' मे सामाजिक जीवन की जो चित्ररेखा प्रकट होती है वह इससे अधिक भिन्न नही। उनकी प्रेमभावना का स्वरूप इसी सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य पर विकसित हुआ है।

(ख)

विद्यापति के प्रेमकाव्य के प्रेरणास्रोत

शिल्प-विधान

मानव बुद्धिसम्पन्न प्राणी है। पर वह भावसम्पन्न प्राणी भी है। दुख-सुख की अनुभूति उसे रुलाती-हँसाती है। रोना-गाना उसकी प्रकृति मे बद्धमूल है। सभ्यता-संस्कृति उसके आवेगो पर अनेक अंकुश किंवा नियन्त्रण के आवरण डालती रहती है। फिर भी उसका रोना-गाना बन्द कहाँ होता है ?

संगीत तथा गीतिकाव्य के इतिहास उतने ही पुराने हैं जितना कि मानव स्वय। आदिकाल से ही विस्मय, प्रेम, शोक एव ओज गीतिकाव्य के मूलभाव रहे हैं। आदिकाल का मानव शिशु की तरह सरल तथा निश्छल था। उसके चारो ओर प्रकृति का विराट् वितान अनियन्त्रित विस्तार लिये फैला होता था। उषा, सन्ध्या, कुहूनिशा की अँधियाली, पूनो की रुपहली चाँदनी, वर्षा की झडी और बिजली की कडक कभी उसके मन म विस्मय की सिहरन तो कभी आतक का त्रास उत्पन्न करती रहती थी। ऐसे क्षणो मे वह अपने आवेगो को छिपा नहीं पाता था, छिपाने की आवश्यकता भी नही हुई थी, अनायास ही उसके आवेग गीतो मे फूट पडते थे—कभी अकेले, कभी मिलजुल कर वह गीत गाता। इससे उसके हृदय के आवेगो की अभिव्यक्ति ही नहीं होती थी, उसके जीवन के अनेक कार्यों की सिद्धि मे भी सहायता मिलती थी।

गीत गाकर आदि मानव अपना दुख भुलाता था, अपना सुख प्रकट करता था, फसल बोने एव काटने की तैयारियाँ करता था, प्रकृति तथा अन्य मानव गिरोहो से निरतर होते रहनेवाले सघर्षों के लिए अपने को तैयार रखता था। मानव उस समय तर्कसकुल कम, भावसकुल अधिक होता था। इसमे भी सन्देह नही कि आदिम युगो म सामूहिक गायन का प्रचलन अधिक रहा होगा। सभ्यता के विकास के साथ क्रमश व्यक्ति-गीत (सोलो) का प्रचलन भी बढा होगा।

भारतीय जीवन में अनादिकाल से संगीत की तान मूर्च्छना और प्रेरणा भरती रही है। प्रागैतिहासिक काल में मोहनजोदडो और हडप्पा के ध्वसावशेषों में वहाँ के अधिवासियों की उच्च एवं सुसंस्कृत कलात्मक रुचि के प्रमाण मिले हैं। पशुपति शिव की मूर्तियाँ मिली हैं। स्त्रियों के शृंगार-प्रसाधन की सामग्रियों के आभास मिले हैं। ऐसे सम्पन्न एवं कलात्मक रुचि के समाज में संगीत का भी पर्याप्त विकास तथा प्रचलन अवश्य ही हुआ होगा।

वैदिक साहित्य में संसार का प्राचीनतम गीतिकाव्य मिलता है। सामवेद में संगीत की ही प्रधानता है। सामवेद को संसार का प्राचीनतम गीतिकाव्य कह सकते हैं। साम संगीत भारत के शास्त्रीय संगीत—उसकी राग-रागिनियों, उसके रगरूप, स्वर-ताल, समय-वेला, प्रभाव और सहकारी वाद्यों के प्रेरणास्रोत रहे है।

ईसवी पूर्व पहली-दूसरी शताब्दी मे रचित भरत कृत नाट्यशास्त्र को गीत, नृत्य, नाटक, काव्य आदि से सम्बधित ज्ञान का विश्वकोष ही कहा जा सकता है। संगीत के सभी अंगोपांगो—नाद, श्रुति, स्वर, मूर्च्छना और ग्राम का उसमें विस्तृत विवेचन किया गया है। संगीतशास्त्र का यह विस्तृत विवेचन यह सिद्ध करता है कि उस समय तक यहाँ संगीतकला का पूर्णोन्मेष हो चुका था।

भारत के प्रागैतिहासिक एवं प्राचीन ऐतिहासिक युगों मे गीतिकला, नृत्य-कला तथा नाट्यकला के सर्वाङ्गीण विकास को देखते हुए प्राचीन संस्कृत साहित्य में तुकान्त रागबद्ध गीति-रचनाओं का सर्वथा अभाव कुछ विचित्र-सा लगता है। संस्कृत का छन्दशास्त्र सुविकसित था। मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलंबित आदि कई छन्दों में गीतितत्त्व भरे हुए थे। गीतिरचनाओं के स्थान पर प्राचीन संस्कृत-काव्यों में इन छन्दों मे विरचित श्लोक ही मिलते हैं। तुकान्त गीतिपदों का प्रचलन प्राकृत तथा विशेष रूप से अपभ्रंशों में देखा जाता है। लौकिक संस्कृत में सर्वप्रथम रागबद्ध तुकान्त गीतिरचना जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' की विशिष्टता है। इसके पूर्व अपभ्रंशों में पूर्ण विकसित गीतिपदों की परम्परा बन चुकी थी। कदाचित् इसी हेतु पिशेल ने 'गीत-गोविन्दम्' को किसी अपभ्रंश रचना का संस्कृत रूपान्तर होने की कल्पना की है।[1]

संस्कृत साहित्य में तुकान्त रागबद्ध गीतिरचनाओं का प्रचलन नहीं होने के कुछ कारण अवश्य होगे। सभव है प्रथम-द्वितीय शताब्दी में आयी हुई गन्धर्व-किन्नर, विद्याधर आदि जातियों ने संगीत-नृत्य का पेशा अपना लिया होगा, उसके पूर्व ही छठी शताब्दी ई० पू० में हम बुद्ध तथा उनके अनुयायियों को संस्कृत की उपेक्षा कर पालि में अपना सन्देश प्रसार करते देखते है, जिससे संकेत मिलता है कि उस सुदूर अतीत में ही संस्कृत लोकजीवन मे विच्छिन्न होकर पण्डितों, विद्वानों तथा उच्च वर्ग के विशिष्ट लोगों की भाषा बन चुकी थी। फलतः बाहर से आयी हुई इन

---

[1] भारतीय वाङ्मय मे श्री राधा—प० बलदेव उपाध्याय, पृ० २४६।

जातियों ने अपनी कला की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत के स्थान पर तत्कालीन लोकभाषाओं को ही बनाया होगा। इस प्रकार लोकभाषाओं में रागबद्ध रचनाओं की परम्परा चल पड़ी होगी। उधर लोकरुचि तथा लोकभाषाओं से सम्बद्ध होने के कारण ऐसी रचनाओं को संस्कृत के गर्वीले पण्डित, कवि एवं लेखक इन विधाओं को बहिष्कृत-सा किये रहे। ऐसा मानने के और भी आधार हैं। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में ऋषि, राजा आदि विशिष्ट पात्रों के कथनोपकथन संस्कृत में तथा अन्य पात्र-पात्रियों के प्राकृतों में रखे जाने की व्यवस्था की गयी है। राजप्रासाद में रहनेवाली पट्ट-महिषी तथा ऋषि-आश्रम में रहनेवाली ऋषि-कन्या भी संस्कृत में नहीं बोल सकती। इससे जहाँ देववाणी की महत्ता एवं मर्यादा की प्रतिष्ठा का आभास मिलता है, यह अनुमान भी किया जा सकता है कि संस्कृत उस प्राचीन युग में भी समाज के बहुत थोड़े-से विशिष्ट जनों की बोलचाल की भाषा होगी, अन्यों के लिए वह ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन तथा शिष्ट साहित्य की ही भाषा रही। अतः संस्कृत में लोकसंवेद्य, रंगमंच के योग्य रागबद्ध तुकान्त गीतिरचनाओं का प्रचलन नहीं हो सका। यत्किंचित् रचनाएँ लिखी भी गई हों तो पण्डित-समाज द्वारा उपेक्षित होकर काल-गर्भ में भुला दी गयी।

स्तोत्र-साहित्य मध्यकालीन संस्कृत काव्य का एक सम्पन्न अंग है। इस साहित्य का रचनाकाल चौथी-पाँचवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। सबसे अधिक स्तोत्रों की रचना सातवीं से बारहवीं सदी के मध्य हुई, इसमें भी सन्देह नहीं। पर गीतिपद शैली का प्रवेश यहाँ भी नहीं हो सका। सुन्दर से सुन्दर स्तोत्र भिन्न-तुकान्त श्लोक पद्धति में ही लिखे गए। यद्यपि भाव और वस्तु-विधान के क्षेत्र में स्तोत्रकार युगप्रभाव से मुक्त नहीं रह सके। स्तोत्र चाहे विष्णु के हों या शंकर के, नग्नतम शृंगार के चित्र उनमें अनेक स्थलों पर मिलते हैं,[1] अपभ्रंश के गीतकार भी जहाँ संचरण करने से हिचकते वहाँ भी कई स्तोत्रकारों ने बेझिझक उड़ानें भरी हैं। पर विभिन्न राग-रागिनियों में बद्ध गीतिरचना या पद लिखने की जो परम्परा लोक-भाषाओं में सिद्धों की वाणी में देखने को मिलती है, वह संस्कृत के विशाल साहित्य-भंडार में जयदेव के पूर्व कहीं नहीं दिखाई पड़ती। जयदेव के पूर्व एक भी संस्कृत का स्तोत्रकार या कवि अपनी किसी रचना को 'मालवरागे', 'धनश्री रागे' 'कन्नड़ रागे' या 'भैरव-रागे' लिखने की आवश्यकता नहीं समझता और न तुकान्त रचना ही करता है।

बारहवीं सदी में जयदेव ने 'गीतगोविन्द' की रचना की। संस्कृत भाषा में यह पहली रचना है जिसमें राग-रागिनी के निर्देश सहित तुकान्त "कोमल कान्त पदावली" में राधा-कृष्ण की विहार-लीलाएँ वर्णित की गयी। शैली एवं भाव-विधान दोनों ही दृष्टि से 'गीतगोविन्द' की रचना एक ऐतिहासिक घटना थी। मैथिली, बंगला, असमिया, उड़िया तथा ब्रजभाषा के पदसाहित्य पर जितना अधिक इस रचना का प्रभाव पड़ा है उसकी समता केवल एक ही अन्य ग्रन्थ से की जा सकती

---

[1] उदाहरण—चंडीकुचपंचाशिका।

है, वह है आठवीं-दसवीं सदी में रचित श्रीमद्भागवत। 'गीतगोविन्द' वस्तुत. "गीतों का गीत"[१] है। इसमे सगीत की मूर्च्छना है, शृंगार की उत्तेजक उन्मादना है, शब्दशिल्प की पराकाष्ठा है। श्रुति-माधुर्य तथा गेयता तो इसमे इतनी अधिक है कि अपने रचनाकाल में ही कवि जयदेव तथा उनकी कोमलकान्त पदावली जिसके लिए उन्हे भी कम गर्व नहीं[२], समस्त 'पंचगौड' मे गूँज उठी। इसके अनुकरण पर १४वीं सदी के पूर्वार्द्ध मे भानुदत्त ने अपने 'गीत गौरीपति' की रचना की, विष्णुसुत कल्याण ने 'गीत गगाधर' लिखा, रामजित कृत 'गीत गिरीश' तथा कृष्णदत्त कृत 'गीत गोपीपति' रचे गए।[३] विद्यापति ने अपने को अभिनव जयदेव कहने मे गौरव का अनुभव किया।

विद्यापति से लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व ज्योतिरीश्वर भी 'गीतगोविन्द' से प्रभावित है। यद्यपि ज्योतिरीश्वर राधाकृष्ण प्रेम के गीतकार नहीं, न उन्होने किसी "पदावली" की ही रचना की, पर उनके 'धूर्त्तसमागम' मे जो गीतिपद हैं उनमे कम-से-कम एक पर तो जयदेव का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है—

चल सरोज सुन्दर नयने।
मामनुकम्पय शशिवदने ॥ ध्रुवं ॥
राज मराल विदित गमने।
रतिपति सब हुतवहु शमने ॥
विश लतिका मृदुभुज युगले।
काम कलामय रस कुशले ॥
कामनिधनि कलशपयोधरे।
संजत मुनि जन मनोहरे ॥
× × ×
कवि शेखर जोतिक भणिते ॥[४]

विद्यापति से लेकर उत्तर भारतीय भाषाओं मे कृष्ण-राधा को नायक-नायिका मानकर प्रेमवर्णन करनेवाले जितने भी पदकर्त्ता हुए हैं, सभी पर कुछ-न-कुछ जयदेव का ऋण अवश्य है। तब किसने कितना लिया तथा उसका किस रूप मे उपयोग

---

१ बंगाली लिटरेचर—डॉ० जे० सी० घोष, पृ० २८।

२ "साध्वी माध्वीक ! चिन्ता न भवति भवतः शर्करे ! कर्कशासि !
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत ! मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते।
मा क्रन्द ! क्रन्द कान्ताधर ! धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं।
यावच्छृंगारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः ॥
—गीतगोविन्दम्, १२-२३-१२, पृ० १४१।

३ गीतगोविन्द, भूमिका—विनयमोहन शर्मा, पृ० १४।

४ ज्योतिरीश्वर कृत धूर्त्तसमागम, सम्पादक—डॉ० उमेश मिश्र पृ० १२।

किया यह उसकी अपनी रुचि, देशकालजन्य परिस्थिति, मत तथा प्रतिभा पर निर्भर था।

पर जयदेव का यह ऋण भावविधान के क्षेत्र मे जितना है शिल्पविधान के क्षेत्र मे उतना नही। गीतिपद की परम्परा लोकभाषाओ मे आठवी-नौवी शताब्दी से ही चली आ रही थी। लोकभाषाओ मे यह परम्परा तो समस्त उत्तर-भारत मे—पजाब से लेकर कामरूप तक—फैली हुई थी, पर इसका सबसे अधिक प्रचलन भारत के पूर्वी क्षेत्रो मे था। बौद्धो की वज्रयान तथा सहजयान शाखा के गढ़ भी यही थे। सिद्ध सन्तो का "कार्यक्षेत्र बिहार, उडीसा, बंगाल और हिमालय एवं नीचे तराई मे कामरूप से हिंगजाल तक फैला था।"[1]

सिद्धो तथा जैन मुनियो की वाणी मे वैराग्य, नीति, शृंगार, ऋतु तथा देश-वर्णन आदि विविध विषयो पर प्रचुर रचनाएँ मिलती है। आठवी से बारहवी शताब्दी के मध्य का अपभ्रंश—राहुलजी के अनुसार 'देशी'[2] भाषाओ का काव्य—अत्यन्त सम्पन्न तथा वैभवपूर्ण है। सरहपा, वीणापा, कन्हपा, लुइपा आदि सिद्ध संत केवल उपदेशक, मत-प्रचारक या साधक ही नही थे, उनमे विलक्षण कवि-प्रतिभा भी थी तथा वे अच्छे सगीतज्ञ भी थे। नालन्दा और विक्रमशिला इनके बड़े ही महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। तुकान्त गीतिपदो के रचयिताओ मे इन्हे हम काल की दृष्टि से सबसे अग्रिम पक्ति मे रख सकते है। कामरूप, उत्कल, बगभूमि, मगध एवं हिमालय की तराई इनकी कार्यभूमि होने के कारण इन सभी प्रदेशो की क्षेत्रीय भाषाओ या बोलियो के प्रभाव तथा साँचे मे ढली इनकी वाणी प्रतीत होती है किंवा सिद्ध की जा सकती है। इसी हेतु म० म० हरप्रसाद शास्त्री, डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची, डॉ० शहीदुल्ला एवं विनयतोष भट्टाचार्य प्रभृति विद्वान् इन्हे बगभाषा साहित्य की प्रथम कर्ता मानते है, उधर राहुलजी, डॉ० रामकुमार वर्मा प्रभृति विद्वान् इन्हे मागधी क्षेत्र का मानते हुए इन पर पुरानी हिन्दी का अधिकार सिद्ध करते है।

भाषा सम्बन्धी इस विवाद मे पडना हमारा अभीष्ट नही। इस बात मे सभी सहमत है कि अधिकतर सिद्ध सत सगीत के पूर्ण मर्मज्ञ थे। इनकी वाणी मे शांत एवं शृंगार रस के पद अधिकतर मिलते है। इनके पद अक्सर राग-रागिनी मे बद्ध मिलते है, अनेक पदो मे किसी राग या रागिनी का स्पष्ट निर्देश किया गया है। जिन राग-रागिनियो का निर्देश इनके पदो मे अधिकतर मिलता है उनमे कुछ के नाम है—देशाख, भैरवी, पटमजरी, कामोद, गबड़ा, देवक्री, गुर्जरी, मल्लारी, बराडा, धनछी आदि।[3] विद्यापति के गीतिपदो मे भी अधिकतर इन्ही राग-रागिनियो का निर्देश किया गया है। 'रागतरंगिणी' मे सकलित उनके पद विभिन्न राग-रागिनियो मे गाये जाने के

[1] हिन्दी पद-साहित्य और तुलसीदास—डॉ० रामचन्द्र मिश्र, पृ० २४।
[2] हिन्दी काव्यधारा—राहुल साकृत्यायन, अवतरणिका, पृ० ५।
[3] विद्यापति : एक तुलनात्मक समीक्षा—प्रो० जयनाथ नलिन, पृ० १६।

उदाहरणास्वरूप प्रस्तुत किये गए है, उनमे भी उपर्युक्त राग-रागिनी का निर्देश मिलता है। 'नेपालपोथी' मे सकलित २६२ पदो मे 'मालव राग', 'धनछी', 'बरली', कनारी, केदार, सारगी, मलारी, गुजरी, ललित-विभास, नाट एव वसन्त राग का निर्देश किया गया है। इनमें भी मालव तथा धनछी रागो मे गाये जानेवाले पदो की सख्या सर्वाधिक है। इस दृष्टि से सिद्धों की वाणी का ऋण विद्यापति पर स्पष्ट हो जाता है। वस्तुत विद्यापति के गीतिपदो के शिल्प का प्रेरणास्रोत सर्वप्रथम सिद्धों की वाणी को ही कहा जा सकता है। विद्यापति को गीतिपदों का शिल्पविधान सिद्धो की वाणी मे बना-बनाया मिल गया होगा।

गीतिपदो की परम्परा विद्यापति से पूर्व मैथिली मे भी चल पडी थी, ऐसा जान पडता है। विद्यापति से लगभग ७५-८० वर्ष पूर्व कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णरत्नाकर' लिखा जा चुका था। 'वर्णरत्नाकर' बहुपठित रचना होगी इसमे सन्देह नही। विद्यापति पर इस पुस्तक का कितना अधिक प्रभाव था यह उनकी 'कीर्त्तिलता' तथा पदों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। कविशेखराचार्य की एक रचना 'धूर्त्तसमागम' भी है। इसका मैथिली अनुवाद भी कविशेखर ने किया था। 'धूर्त्तसमागम' के इस सस्करण मे कथनोपकथन सस्कृत-प्राकृत मे पात्रानुसार तथा गीत मैथिली मे है। यद्यपि भाषा इसकी बहुत ही मार्जित आधुनिक मैथिली के समीप जान पडती है, पर अनेक कारणों से इसकी प्रामाणिकता मे सन्देह नही किया जा सकता।[1] 'धूर्त्तसमागम' के मैथिली गीतिपदों मे 'कविशेखर जोतिक' की भणिता मिलती है। विद्यापति के 'गोरक्षविजय' की रचना 'धूर्त्तसमागम' के ही ढाचे पर हुई है। अत उनकी पदावली इस परम्परा की एक अगली तथा सुविकसित कडी मानी जा सकती है। ज्योतिरीश्वर एव विद्यापति के गीतिपदो को देखकर यह अनुमान पुष्ट होता है कि इनसे पहले से ही मैथिली मे गीतिपदो की परम्परा प्रतिष्ठित हो चुकी होगी, सम्भव है कि वह लोकजीवन मे तथा लोकगीतो के रूप मे ही रही हो तथा ज्योतिरीश्वर एव विद्यापति ने इस परम्परा को लोकजीवन की मिट्टी से उठाकर अपने पारस-सस्पर्श से विशुद्ध स्वर्ण मे परिणत कर दिया। ग्रामगीत से उसे नागर सगीत बना दिया।

तात्पर्य यह कि बारहवी सदी मे जयदेव ने जिस प्रकार देशी भाषाओ मे प्रचलित गेय पद परम्परा को सस्कृत की कोमलकात पदावली से अभिमडित कर "भारतीय गीतो के गीत" की रचना की, उसी तरह तेरहवी-चौदहवी सदी मे कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर एव विद्यापति ने उसे मैथिली गीतिपद साहित्य मे अभिभुक्त कर समस्त उत्तरी भारत के गीतिकाव्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी। बगभूमि म तो इसने लोकमन को इतना अधिक अभिभूत किया कि वहाँ 'ब्रजबुलि'

---

[1] धूर्त्तसमागम, भूमिका—म० म० उमेश मिश्र, डॉ० जयकान्त मिश्र, तीरभुक्ति प्रकाशन, प्रयाग, पृ० १०-११।

नामक एक कृत्रिम भाषा की ही सृष्टि हो गयी, कृष्ण-राधा प्रेम विषयक गीतिपदो का ऐसा प्रवाह उमड़ा कि उसमे मौलिक और अनुकरण की पहचान करना भी असम्भव-सा हो गया।

तेरहवी-चौदहवी सदी मे उत्तरपूर्वी भारत मे गीतिपदो का उद्गमस्रोत एक अन्य दिशा मे भी खोजना अनुचित न होगा। बगाल के सेन तथा मिथिला के कर्णाट राजवश के भूपाल नृत्य एवं सगीत के न केवल आश्रयदाता थे वरन् उनमे कई स्वय ही इन कलाओं के मर्मज्ञ भी थे। कर्णाट राजा नान्यदेव ने सगीतशास्त्र पर एक ग्रन्थ भी लिखा था। इन राजाओ के दरबार मे दक्खिनी नर्तको तथा गायको का आना-जाना लगा रहता था इसका प्रमाण मिलना है। विद्यापति के 'गोरक्षविजय' मे तेलग नृत्य की चर्चा की गयी है।[1] तेलग नृत्यविशारद के छद्मवेश मे ही गोरखनाथ को कदलीवन स्थित मीननाथ की राजपुरी मे प्रवेश करने का सुयोग मिलता है। मिथिला के कर्णाट तथा ओइनवार राजाओ के यहाँ भी तेलग नर्त्तको एव गायको को आदर-मान मिलता होगा, यह अनुमान असगत नही। इनके साथ गीतिपद भी आये होगे, सम्भवत उनके अनुकरण पर स्थानीय भाषाओं मे भी पद लिखे गए होंगे तथा उनका गायन होता होगा, ज्योतिरीश्वर तथा विद्यापति को इनसे भी प्रेरणा मिली होगी। विद्यापति स्वयमेव कवि थे, सगीतकला के मर्मज्ञ थे, राजा शिवसिह के उत्कर्ष के दिनो मे राज-सभा तथा राज-परिवार के लिए सगीत-नृत्य का आयोजन उनके आदेश-निर्देश पर होता होगा, अत. मैथिली मे गीतिपद साहित्य के प्रणयन की आवश्यकता उन्होंने अनुभूत की होगी। सामयिक आवश्यकता के अनुसार वे 'लिखनावली' तथा 'विभाग-सार' जैसी रचनाएँ लिख सकते थे, फिर उनका कवि यदि मैथिली गीतिपदो की रचना मे पूरे मनोयोग से समय-समय पर लीन हो जाता हो तो इसमे आश्चर्य नही। तात्पर्य यह कि विद्यापति के गीतिपदो के प्रेरणास्रोत मे तेलग नर्तको तथा गायको की देन भी अत्यन्त क्षीण ही पर नितान्त अस्वीकरणीय नही है। यह कल्पना इसलिए भी युक्तिसगत जान पडती है कि प्रथम-द्वितीय सदी मे संकलित हाल की 'गाथासप्तशती' मे गोदावरी तट का उल्लेख कई गाथाओ मे मिलता है।[2] इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि दक्खिनी भारत मे उन्मुक्त शृङ्गार का चित्रण करने-वाली मुक्तक रचनाओं का प्रचलन अवश्य था। विद्यापति के कई पदो पर

---

१ "अहो अहो महाराओ तेलंग एदी नटे तिट्ठद यया आणवेदि।"

मलारी रागे—

तेलंग देशकं नट चतुरंग। नाचये चाह मण्डि रसरंग॥

—विद्यापति, 'गोरक्षविजय', पृ० ७ (ख)।

२ गाथा सप्तशती, २/३, पृ० २५।

'गाथासप्तशती' का प्रभाव दृष्टिगत होता है, अत गीतिपदो के सभावित प्रेरणास्रोतों मे तेलग प्रभाव भी माना जा सकता है ।

उपर्युक्त विवेचन से विद्यापति द्वारा गीतिपदो की विधा के विकास का उद्गम-स्रोत बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाता है । अब उनके पदो के भावविधान तथा शैली के प्रेरणास्रोत पर विचार किया जायगा ।

प्रेमभावना

विद्यापति के गीतिपदो की मूल भावधारा प्रेम एव भक्ति की है । या तो प्रेमगीत लिखने के लिए आवश्यक नही कि कवि प्राचीन या समकालीन साहित्य का ऋणी हो ही, प्रेम और भक्ति तो मानव जीवन की सामान्य किंवा नैसर्गिक अनुभूतियाँ है । हृदय म प्रेम की पीर जब तक घनीभूत नही होती, प्रेमगीतो की सवर्पणा कहाँ से होगी ! महर्षि के हृदय की भी करुणा की स्रोतस्विनी के फूट पडने के लिए किसी क्रौंच-वध की अपेक्षा होती है । विद्यापति के गीतिपदो म प्रेम के जो बहुविध चित्र मिलते है, प्रेम के अश्रुहास की जो एक दुनिया बसी है उसकी प्रेरणा के उत्स तो उनके अपने, अपने युग तथा अपने समाज के जीवन मे ही मिले होंगे । पर विद्यापति के पूर्ववर्ती, मैथिली के सर्वप्रथम सुलेखक कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर की किसी रचना मे राधा-कृष्ण प्रेम का सकेत नही मिलता । उनके समकालीन (?) उमापति उपाध्याय[१] के 'पारिजातहरण' नाटक मे भी इसका कोई आभास नही अत इसी सदी के अन्तिम चरण मे विद्यापति के गीतो मे किस प्रकार कृष्ण-राधा प्रेम की शतधा फूट पडा यह किंचित् विस्मय का विषय अवश्य जान पडता है ।

विद्यापति की प्रतिभा बहुमुखी थी । वे कृतविद्य लेखक एव सहृदय कवि थे । शिवसिंह के अभ्युदयकाल मे उन्हें यौवन, सौन्दर्य एव प्रेम की मधुलहरी से मिथिला को निनादित करने का यथेष्ट एव अनुकूल अवसर मिला होगा । बाद मे जब शिवसिंह नही रहे होगे तथा कवि राजकुल के साथ स्वय भी विपन्नावस्था मे होगा, उसकी गीतिगगा फिर भी सहृदयजनो को रसाप्लावित करती होगी, पर इस समय उसका स्वर वेदनासकुल एव गम्भीर हो गया होगा । यो जब-तब किसी विशेष व्यक्ति या अवसर के आग्रह से कवि को परिणत वय म भी सभोग शृगार के पद लिखने पडे हो, उसकी 'पदावली' मे इसके उदाहरण मिलते है ।

सौन्दर्य एव प्रेम की काव्यधारा मे राधाकृष्ण प्रेम का चित्रण विद्यापति के युग तक प्रचलित ही नही किंचित् रूढ तथा परम्परागत भी हो गया था, इसके यथेष्ट प्रमाण है ।[२] 'श्रीमद्भागवत' तथा 'गीतगोविन्द' इस काल तक अत्यन्त लोकप्रिय हो

---

[१] भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा—प० बलदेव उपाध्याय, पृ० २३१,
पारिजातहरण—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित भूमिका, स०—कृष्णनन्दन पीयूष, पृ० ११-१३ ।

[२] श्री राधा का क्रमविकास—शशिभूषण दासगुप्ता, पृ० १२१-२५ ।

चुके होंगे। स्वयं विद्यापति ने 'श्रीमद्भागवत' की एक हस्तलिखित प्रति तैयार की थी तथा अभिनव जयदेव उनकी सर्वप्रिय उपाधि थी, ये इसका सबूत करते हैं। कृष्णलीला की 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित परम्परा के अतिरिक्त एकाधिक अन्य परम्परा के प्रचलित होने का अनुमान भी किया जाता है।[1] जयदेव एवं विद्यापति इस दूसरी परम्परा का ही अनुसरण करते प्रतीत होते हैं क्योंकि दोनों ही ने वसंतकालीन रास का वर्णन किया है, जबकि श्रीमद्भागवत में शरत्कालीन रास ही वर्णित है। विद्यापति के कृष्ण श्रीमद्भागवत के कृष्ण से और भी कई बातों में भिन्न हैं।[2] कृष्ण-लीला की यह क्रमागत एवं भारत के पूर्वी अंचलों में बहुप्रचलित परम्परा विद्यापति के पद-साहित्य में चित्रित प्रेम का एक प्रमुख प्रेरणास्रोत थी।

विद्यापति ने इस परम्परा को बहुत कुछ जयदेव से ग्रहण किया होगा। वैसी ही कोमलकान्त पदावली, वही रागबद्ध गीतिशैली, उसी तरह नायिकाभेद के शास्त्रीय ढाँचे में ढली राधिका, जगह-जगह राधा का वही केलि-विलासवती रमणी रूप कवि के गीतिपदों में झलक उठता है। कई स्थलों पर तो जयदेव की भाषा तक की ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है।[3]

विद्यापति पर जयदेव के प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी उसे बहुत दूर तक नहीं ले जाना चाहिए। विद्यापति ने जयदेव से एक परम्परा ग्रहण की, राधा-कृष्ण के माध्यम से सौन्दर्य और प्रेम का सजीव चित्रण करने की एक मान्य शैली पायी। रागबद्ध एवं तुकान्त छन्दों को संस्कृत रचना-प्रणाली में स्थान देकर जयदेव ने उन्हें एक प्रतिष्ठा प्रदान की थी, विद्यापति को उन्हें अपने प्रेमकाव्य की विधा के रूप में ग्रहण करने में किसी तरह का संकोच करने की आवश्यकता नहीं रह गयी। जयदेव और विद्यापति के प्रेमकाव्य में असमानताएँ भी कई हैं। जयदेव की राधा प्रारम्भ से ही विलासवती, पूर्णयौवना एवं कन्दर्पज्वर पीडिता तरुणी है। विद्यापति की नायिका आरम्भ में किशोरी, फिर प्रेममयी तरुणी तथा अन्त में प्रौढ़ा उपेक्षिता है। नारी का

---

१ मध्यकालीन धर्म-साधना—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १४३।

२ "विद्यापति-वर्णित प्रेम लौकिक या भागवत" शीर्षक अध्याय में इस पर विस्तार के साथ विचार किया गया है।

३ तुलनीय—"श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति कामपि रामाम्"

—गीतगोविन्द

"काहु आलिगए काहु निहारि काहु लिलोपम मलाउ भार।
काहु बुझाय विसेसिसिनेह पुलके मुकुल मण्डित देह।
बहुल कामिनि एकल कन्त—कृष्णपति आएल सपनतन्त।।"

—गोरक्षविजय, पृ० १०।

तथा
"राजा कामपोडितोत्पलनयना स्पृशति कामपि, पश्यति काम् आलिंगति च"

—गोरक्षविजय, पृ० ७ (ब)।

यह चित्रण अधिक पूर्ण, सर्वाङ्गीण तथा सत्य है। विद्यापति का प्रेमचित्रण जयदेव के प्रेमचित्रण की अपेक्षा कम उन्मादक तथा मासल है। विद्यापति के कृष्ण न तो राधा का चरण-सवाहन करते और न ही उसका शृगार करते दीख पडते है। जयदेव की विरहिणी हमेशा कन्दर्पज्वर से ही पीडित रहती है। यह मदनज्वर ही उसे कृष्ण की ओर अनुप्रेरित करता रहता है। विद्यापति की राधा कामसतप्त होती हुई भी अधिक भावमयी एव विरहविधुरा है। 'के पतिया लय जायत रे मोरा पियतम पास" अथवा "मन करे तहँ उड जाऊँ सखी री" जैसे उद्गार विद्यापति की विरहिणी का पारिवारिक प्रोषितपतिका के बहुत समीप ला देते है। निष्कर्ष यह कि विद्यापति पर जयदेव का ऋण स्वीकार करते हुए भी हम उनकी मौलिकता, भावुकता एव मर्मस्पर्शिता को नहीं भूलना होगा।

विद्यापति के प्रेमचित्रण का दूसरा प्रेरणास्रोत सस्कृत प्राकृत एव अपभ्रश का मुक्तक शृगार काव्य है। विद्यापति इन भाषाओ के साहित्य से पूरी तरह परिचित होंगे, इसम सन्देह नही। उनके पीछे भारतीय भाषाओ के शृगार-काव्य की हजारो वर्ष से आती हुई एक अति सम्पन्न परम्परा थी। केवल मुक्तक काव्य ही नही, सस्कृत के महाकाव्यो मे भी रसराज के छोटे-मोटे सागर भरे हैं। कवि ने उनका अवगाहन अवश्य ही किया होगा। विद्यापति के युग तक सस्कृत की सूक्तियो के कई सग्रह-ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें एक श्रीधर दास का 'सदुक्तिकर्णामृत' ऐसी सूक्तियो का पारावार ही है। इसमे विभिन्न विषयो पर दो हजार से भी अधिक श्लोक सकलित किए गए है।[1] ग्रन्थकर्ता ने यह भी लिखा है कि गौडाधिपति लक्ष्मणसेन के राज्याभिषेक के सत्ताइसवें वर्ष मे इसकी रचना पूरी हुई, अत विद्यापति ने जिन्होंने लक्ष्मणाब्द २५० के बाद ही काव्य-रचना शुरू की होगी, अवश्य ही इस पुस्तक को देखा होगा। कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर' के अतिरिक्त विद्यापति को सबसे अधिक प्रेरणा इस सकलन-ग्रन्थ से मिली होगी, यह असभव नही। 'सदुक्तिकर्णामृत' म सकलित कितने ही श्लोको के भाव या शैली की छाया विद्यापति के एक या दूसरे पद पर पडी है। एकाधिक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सौन्दर्य वर्णन

यूना पुरः सपदि किंचिदुपेतलज्जा
वक्षो रुणद्धि मनसैव न दोर्लताभ्याम्।
प्रौढाङ्गनाप्रणयकेलिकथासु बाला
शुश्रूषुरन्तरय बाह्यमुदास्त एव ॥[2]—श्री हनुमनतस्य।

विद्यापति के एक पद मे इससे मिलता-जुलता भाव है—

सुनइत रस-कथा थापए चीत। जइसे कुरंगिनि सुनए सगीत ॥

---

[1] सदुक्तिकर्णामृत—श्रीधरदास, पृ० ३२८।

[2] सदुक्तिकर्णामृत, पृ० ६९।

कवि राजशेखर का किंचिदुपारूढयौवना का एक चित्र—

पदभ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्यां
श्रोणीबिम्बं त्यजति तनुतां सेवते मध्यभागः ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयम् च वक्त्रं
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥

—स० क०, पृ० ६६ ।

विद्यापति का अंकुरितयौवना नायिका का चित्र—

सैसव-जोवन दरसन भेल । दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल ॥
मदन किलाव पहिल परचार । भिनजने देयल भिन अधिकार ॥
कटिक गौरव पाओल नितम्ब । इन्हीके खीन उन्हीं के अवलम्ब ॥
चरण चपल गति लोचन पाव । लोचन के धैरज पदतले धाव ॥
नव कविसेखर कि कहिते पार । भिनभिन राज भिन वेवहार ॥

—मि० म० वि०, ६२१ ।

ऐसा ही चित्र विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' के एक उदाहृत श्लोक में भी मिलता है—

मध्यस्य प्रथिमानमेति जघनं वक्षोजयोर्मन्दता ।
दूरं यात्युदरंच रोमलतिका नेत्रार्जवं धावति ।
कन्दर्पः परिवीक्ष्य नूतन मनोराज्यभिषिक्तं क्षणा—
रंगानीव परस्परं विद्धते निलुण्ठनं सुभ्रुवः ॥[1]

'सदुक्तिकर्णामृत' में सकलित एक अन्य श्लोक में भी ऐसा ही चित्र प्रस्तुत है।[2]

'विदग्धासती' प्रकरण में संकलित एक श्लोक—

ग्रामान्ते वसतिर्ममातिविजने दूरप्रवासी पति—
र्गेहे देहवती जरेव जरती श्वश्रूद्वितीया परम् ।
एतात्पान्य वृथा विडम्बयति मा बाल्यातिरिक्तं वयः
सूक्ष्मं वीक्षितुमक्षमेह जनता वासोन्यतद्विषन्त्याताम् ॥

—बलभद्रस्य, स० क०, १५/१, पृ० ७७-७८ ।

विद्यापति का ऐसा ही सामान्या स्वयंदूतिका का चित्र—

हमे इकसरि पिअतम नहि गाम । ते मोहि तरतम देईत ठाम ॥
अनतहुँ* कतहुँ देइतहुँ वाम । जौं केओ दोसरि पड़उसिनि पास ॥

---

[1] साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद ।

[2] सदुक्तिकर्णामृत, २/५, पृ० ६६ ।

चलचल पथुक चलह पथ माह। वास नगर बोलि अनतहु जाह ॥
आंतर पांतर साझक बेरि। परदेस बसिअ अनागत हेरि ॥
घोर पयोधर जामिनि भेद। जेकर वह ताकर परिछेद ॥
भनइ विद्यापति नागर रीति। व्याज बचने उपजाव पिरीति ॥

—मि० म० वि०, ५६० ।

इस प्रकरण के अन्य श्लोकों से भावसाम्य रखनेवाले विद्यापति के और भी कई पद हैं।[1]

'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित ऐसे अनेक श्लोक उद्धृत किये जा सकते हैं जिनसे विद्यापति के पदों मे भावसाम्य मिलता है। कवि ने अपने स्पर्श से ऐसे स्थलों को चमका दिया है। अन्धानुकरण या मात्र पुनरावृत्ति विद्यापति नहीं करते, यह उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है।

संस्कृत के शृंगार काव्य की कितनी छाया कवि के पदों पर पड़ी है इसके कुछ और भी उदाहरण प्रस्तुत हैं।

विरह सम्बन्धी विद्यापति की एक मार्मिक उक्ति है—

चिर चन्दन उर हार न देल। से अब नदि गिरि आंतर भेल ॥

—मि० म० वि०, ७१३ ।

दामोदर मिश्र रचित 'महानाटक' में एक श्लोक में ठीक यही भाव है—

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमावयोर्मध्ये सरित् सागर भूधराः ॥

'सदुक्तिकर्णामृत' में यह श्लोक धर्मपाल के नाम से संकलित है, शार्ङ्गधर पद्धति में कुछ पाठान्तर के साथ बाल्मीकि के नाम से।

इसी प्रकार 'भ्रमराष्टक' के एक श्लोक[2] में विद्यापति के एक पद (मि० म० वि०, ४२६) में व्यक्त भाव बहुत ही मिलता-जुलता है। 'भ्रमराष्टक' के श्लोक में भ्रमर का कमल के भ्रम में केतकी के गर्भ में गिरना तथा परिमल-धूलि से अन्ध एवं कण्टकों से पक्ष उच्छिन्न होने के कारण वहाँ ठहरने या जाने—दोनों—में उसकी असमर्थता व्यक्त की गयी है। विद्यापति का पद कहीं अधिक मार्मिक है। यहाँ नायिका को अचानक आये हुए नायक के प्रति अनुकूल होने का सन्देश देती हुई दूती कह रही है कि रसलोभ से भ्रमर तुम्हारे पास आया है, क्या यहाँ भी उसे निराश ही होना

[1] मि० म० वि०, ५८८-८९ ।
[2] गन्धाढ्या सौ भुवनविदिता केतकी स्वर्णवर्णा
पद्मभ्रान्त्या क्षुधित मधुप पुष्पमध्ये पपात।
अन्धीभूतः कुसुमरजसा कण्टकैश्छिन्न पक्षः
स्थातुं [illegible] मपि सति [illegible]

पड़ेगा। भौंरा अनेक फूलों का मधुपान करता ही है, अतः उसे निराश करना युक्ति-युक्त नहीं। कवि की यह विशेषता है कि भाव चाहे जहाँ से ग्रहण किया गया हो, प्रेरणा-स्रोत चाहे जो भी हो, पर सर्वत्र उसने अपने पारसस्पर्श से उसे चमका दिया है, अनूठा बना दिया है।

विद्यापति के सुप्रसिद्ध पद में जो भाव मिलता है—

"पिया जब ओओब इ मझु गेहे।
मंगल जतन करब निज देहे॥"

'अमरुकशतक' के एक श्लोक[1] में ठीक ऐसा ही भाव मिलता है। 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' नामक संग्रह ग्रन्थ के एक श्लोक में भी कुछ ऐसा ही भाव प्रस्तुत किया गया है।[2]

विद्यापति की खण्डिता के चित्र पर भी 'अमरुकशतक' के एकाधिक श्लोकों की छाया परिलक्षित होती है। 'गाहा सत्तसई' या 'गाथासप्तशती' मुक्तक शृंगार की अनूठी उक्तियों का एक रस-पारावार ही मानी जाती है। विद्यापति के लिए यह ग्रन्थ एक अक्षय प्रेरणास्रोत-सा जान पड़ता है। विद्यापति के अनेक पदों में जो एक ग्रामीण अकृत्रिमता का वातावरण मिलता है, 'गाथासप्तशती' की शृंगार-भावना भी वैसे ही वातावरण में विकसित हुई थी। फलतः प्रेमकाव्य की अनूठी उक्तियों के लिए यह ग्रन्थ एक अक्षय प्रेरणास्रोत बहुत काल तक बना रहा। अठारहवीं सदी के कवि बिहारी के कितने ही दोहों पर हाल की किसी-न-किसी 'गाथा' की स्पष्ट छाप पड़ी है। निम्नांकित उदाहरण यथेष्ट होंगे—

अज्जं गओ त्ति, अज्जं गओ त्ति अज्जं गओ त्ति गणरीए।
पढम च्चिअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ॥
—गाथा सप्तशती, ३/८।

[प्रिय आज ही गया है, आज ही गया है, आज ही गया है इसकी सूचक रेखाओं से घर की सारी दीवार को ही भर दिया है।]

कालिक अवधि करिअ पिया गेल।
लिखइते कालि भीति भरि गेल॥ —विद्यापति

---

[1] दीर्घा चंदनमालिका विरचित·······
—अमरुकशतकम्, ४५, पृ० ३६।

[2] यौवन-शिल्पि-सुकल्पित नूतन-तनुवेश्म विशति रति नाथे।
लावण्य पल्लवां के मंगल कलशौ स्तनावस्याः॥
—कवीन्द्रवचन समुच्चय, १५/७

'गाथासप्तशती' की नायिका "प्रिय आज ही गया है" यह गणना करती हुई एक-एक दीवार पर रेखा खींचती जा रही है, जो उतना मार्मिक नहीं जितना विद्यापति की नायिका का 'कल प्रिय आएँगे' यह सोचकर कल-सूचक रेखायें खींचना।

'गाथासप्तशती' के चतुर्थ स्तवक में भी एक ऐसा ही पद है।[1] नायिका के हाथ-पैर की उँगलियाँ दिन गिनते गिनते घिस गयी पर प्रिय नहीं आया—गाथाकार की रचना सचमुच विरहिणी की चरम व्यथा की सूचक है।

विद्यापति की विरहिणी भी ऐसा ही कुछ कहती है—

कतदिन माधव रहव मथुरापुर कबे घुचव विहि वाम।
दिवस लिखि लिखि नखर खोआओल विछुरल गोकुल गाम॥

दिन सूचक रेखाएँ खींचते-खींचते हाथों के नख खिया गए—ग्रामीण सरलता का यह कितना सजल चित्र है!

विरह के सजल गायक चण्डीदास इससे भी एक चरण आगे कहते हैं—

आसिवार आसे लिखिनु दिवसे खोयाइनु नखेर छन्द।
उठिते वसिते पथ निरखिते दुइ आँखि हइल अंध॥

गाथाकार तथा विद्यापति की नायिका के तो केवल हाथ-पैर के नख ही खिया गये थे, पर चण्डीदास की नायिका की प्रिय की राह देखते-देखते दोनों आँखों की ज्योति भी जाती रही। उठते-बैठते वह उसकी राह जो देखती रही है।

एक सहेली नवोढा को मान की शिक्षा दे रही है। पर नायिका प्रिय के सम्मुख जाते ही प्रेम-विवश होकर अपना तन-मन भूल जाती है, वह कैसे मान कर सकेगी, इसके सम्बन्ध में गाथाकार की निम्नलिखित उक्ति है—

अच्छीइं ता थइस्सं दोहिं वि हत्थेहिं वि तस्सि दिट्ठे।
अंग कलम्बकुसुम व पुलइअ कहंणु ढक्किस्सं॥

—गाथासप्तशती, ४/१४।

[उसके सामने आते ही अपने दोनों हाथों से दोनों आँखों को तो ढक लूँगी, पर सारा शरीर जो कदम्ब की तरह रोमांचित होने लगता है उसे किस प्रकार छिपाऊँ?]

धसमस करए रहओ हिय जाति।
सगर शरीर धरए कत भाँति॥
गोपहि पारिअ हिदय उलास।

—विद्यापति

---

[1] हत्थेसु अ पाएसु अ अंगुलि गणणाइ अइगआ दिअहा।
एण्हि उण केण गणिज्जउ त्ति भणेउ रुअइ मुद्धा॥

—हिन्दी गाथासप्तशती, ४/७, पृ० ७४।

[हृदय की धडकन को तो हाथों से दबाकर छिपाया जा सकता है, पर सारा शरीर जो कंटकित-रोमांचित होने लगता है, उसे भला किस प्रकार दबाकर छिपाया जायगा ? वस्तुत हृदय का उल्लास छिपाने से नही छिप सकता।]

पूर्वराग की विरहिणी का एक चित्र—

ऐच्छइ अलद्धलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ ।
जह जम्पइ अफुडत्थं तहसे हिअअट्ठिअं किअपि ॥

—गाथासप्तशती, ३/६६ ।

[तरुणी निरुद्देश्य इधर-उधर देख रही है, दीर्घ नि श्वास ले रही है, फीकी हँसी हँस रही है तथा अस्पष्ट भाव से न जाने क्या प्रलाप कर रही है ! ऐसा जान पडता है कि उसके मन मे कुछ विशेष बात है ।]

विद्यापति की पूर्वानुरागिणी नायिका का चित्र—

जुवति चरित बड विपरीत
बुझए के बहु धार ।
बुझए चेतन गुन निकेतन
भुलल रह गँवार ॥
साजनि नागरि नागर रंग ।
संग न रहिअ, तेसर न बुझ
लोचन लोल तरंग ॥
वलित वदन बाँक विलोकन
कपट गमन मन्दा ।
दुहु मन मिलत ठाम अंकुरल
प्रेम तरुअर कन्दा ॥[१]

इसी प्रकार सद्य स्नाता, मान, बहुवल्लभ नायक आदि के चित्र 'गाथा सप्तशती' के विभिन्न पदो मे मिलते हैं। विद्यापति के इन प्रसगो के एकाधिक पदो मे इनसे आश्चर्यजनक भावसाम्य मिलता है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना अयुक्त नही जान पडता कि पूर्ववर्ती शृंगार-काव्य ने विद्यापति को अत्यधिक प्रभावित किया होगा। 'गाथासप्तशती' का उनमे मुख्य स्थान है।

विद्यापति गीतिपद की विधा के लिए सिद्धो की वाणी के ऋणी है यह हम ऊपर देख आए हैं। उनके एकाधिक पदो मे "अकथ कथा" देखकर यह अनुमान और भी पुष्ट होता है।[२]

---

१ मि० म० वि०, ८३५, पृ० ५३७।

२ "साजनि अकथ कहि न जाए" —मि० म० वि०, २६, पृ० २४।

डॉ० दिनेशचन्द्र सेन के अनुसार चण्डीदास विद्यापति के समकालीन थे तथा विद्यापति ने जब काव्य-रचना आरम्भ की होगी उस समय तक चण्डीदास के मार्मिक प्रेमगीतों की ख्याति गौड एव उसके पडोसी क्षेत्रो मे फैल चुकी होगी। चण्डीदास के विद्यापति के साथ मिलने की अनुश्रुति बगीय वैष्णवो मे बहुप्रचलित है। इस सम्बन्ध के चार पद 'वैष्णव पद कल्पतरु' (पृ० २७०) मे सकलित हैं जिनमे ग्रियर्सन ने दो को प्रामाणिक माना है।[१] यदि प्रेमकाव्य के इन दो महान् कलाकारो के मिलने की बात लोक प्रचलित अनुश्रुति मात्र भी हो तब भी यह मानन मे कोई बाधा नही कि दोना ही एक-दूसरे के गीतामृत से परिचित होंगे तथा उनका आस्वाद किया होगा। विद्यापति चण्डीदास से आयु मे छोटे होगे, अत उनके काव्य से प्रेरणा ग्रहण करना स्वाभाविक होगा। बगाली वैष्णवो मे प्रचलित धारणा के अनुसार तो विद्यापति चण्डीदास से मिलने के बाद उनकी प्रेरणा से ही राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। अनुमान यही जान पडता है कि विद्यापति को चण्डीदास के प्रेमगीता से प्रेरणा मिली होगी। कही-कही दोनों के एकाधिक पदो मे अद्भुत भावसाम्य मिलता है जो सर्वथा आकस्मिक ही नही कहा जा सकता।

विद्यापति पर कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर का ऋण भी कम नहीं। कविशेखराचार्य का 'वर्ण रत्नाकर' उस काल के कवियो का मुख्य प्रेरणास्रोत रहा हो, यह असभव नही। विद्यापति ने कविशेखर के अनुकरण पर 'नव कविशेखर' उपाधि धारण की, कविशेखर के 'धूर्त्तसमागम' के ही ढाँचे पर 'गोरक्षविजय' की रचना की। कविशेखर के उन पर व्यापक प्रभाव के ये कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। और तो और, "पाउअँ रस को मम्म न पावई" कहकर जिस प्राकृत की विद्यापति ने 'कीर्त्तिलता' मे उपेक्षा की थी, 'गोरक्षविजय' मे 'धूर्त्तसमागम' के अनुकरण पर उन्होंने उसी प्राकृत मे कथनोपकथन लिखा है। 'कीर्त्तिलता' से लेकर 'पदावली' तक कई स्थल ऐसे मिलते हैं जिनमे विद्यापति ने कविशेखर के भाव ही नही भाषा भी लगभग ज्यो की त्यो ग्रहण कर ली है।[२]

---

[१] हिन्दी काव्य मथन—दुर्गाशकर मिश्र, पृ० २१।

[२] देखिए विद्यापति का सौन्दर्य-वर्णन सम्बन्धी निम्नलिखित पद

कबरी भये चामर गिरि कन्दरे, मुख भये चाँद अकासे।
हरिनि नयन भये, स्वर भये कोकिल, गति भये गज बनवासे।
सुन्दरि काहे मोहि सम्भासि न यासि।
तुअ डरे इह सब दुरहि पलायल तुहुँ पुनु काहि डरासि॥
कुच भये कमल-कोरक जले मुँदि रहु घट परवेसे हुतासे।
दाडिम सिरिफल गगने वास करु सम्भु गरल करु ग्रास॥
भुज भये कानक मृनाल पक रहु कर भये किसलय काँपे।
विद्यापति कह कत कत ऐसन कहब मदन परतापे॥
—मि० म० वि०, ६२६, पृ० ४१४।

उमापति उपाध्याय का 'पारिजात हरण' शिल्पविधान मे 'गोरक्षविजय' से भिन्न नही। इस नाटक का ढाँचा भी 'किरतनिया' नाटक जैसा ही है—सस्कृत, प्राकृत मे कथनोपकथन तथा मैथिली के गीत। 'पारिजात हरण' के गीतिपदो का शिल्प 'धूर्त्तसमागम' तथा 'गोरक्षविजय' के गीतिपदो के समान है। यद्यपि इसकी भाषा इतनी परिमार्जित एवं आधुनिक मैथिली के समीप जान पडती है कि सहसा विश्वास नही होता कि यह कर्णाट राजा हरिसिंह के किसी आश्रित कवि की रचना हो सकती है। पर यदि ऐसा हो तो विद्यापति पर इसके गीतिपदो का किंचित् प्रभाव मानना असगत नही होगा।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति के पूर्व अपभ्रंश मे—जिसे राहुलजी ने 'देसी' भाषा या पुरानी हिन्दी कहा है—राग, सुर एवं तालबद्ध गीतिपदो की रचना होने लगी थी। आठवी से बारहवी शताब्दी के अन्तर्गत ऐसी रचनाएँ पर्याप्त संख्या मे लिखी गयी। विद्यापति को गीतिपद की विधा इन रचनाओ से मिली।

(२) लोकजीवन मे गीतिपदो का प्रचलन लोकगीतो तथा गीतिरूपको के रूप मे रहा होगा, विद्यापति को इनसे भी प्रेरणा मिली।

(३) कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'धूर्त्तसमागम' नाटक मे परिमार्जित मैथिली मे १४-१५ गीतिपद मिलते हैं। विद्यापति के गीतिपद का शिल्प-विधान इनसे अभिन्न है।

(४) गीतिपदो की भावधारा तथा उनमे चित्रित प्रेमप्रसंगो के लिए विद्यापति यत्किंचित् सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के मुक्तक शृंगार काव्य के ऋणी हैं। एकाधिक स्थलो पर उनके कतिपय गीतिपदो मे किसी न किसी सस्कृत या प्राकृत की रचना की ध्वनि सुन पडती है। पर अधिकतर ऐसे स्थलो पर विद्यापति के मौलिक सस्पर्श पाकर उनके पद अत्यधिक मनोहारी हो गए हैं।

तुलनीय—'वर्णरत्नाकर' के सखी-वर्णना प्रसग का निम्नांकित अंश—

"एकें अपूर्व विश्वकर्मा‍जें निर्म्मउलि—याक मुखक शोभा देखि पद्म जल-प्रवेश कएल—आँखिक शोभा देखि हरिण वण गेल—केशक शोभा देखि चमरी "पलाएन कएल—दाँतक शोभा देखि दालिवें हृदय विदीर्ण कएल—अधरक शोभा देखि प्रवाल दिपान्तर गेल—कानक शोभा देखि बौद्ध ध्यानावस्थित भेल—कण्ठक शोभा देखि कम्बु समुद्र प्रवेश कएल—स्तनक शोभा देखि चक्रवाक उन्द्रम भेल—बाहु युगलक शोभा देखि पद्मनाल पंक निमग्न भेल—"" जंघयुगलक शोभा देखि कदली विपरीत गति कइलि""—वर्णरत्नाकर, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी द्वारा संपादित, पृ० ६।

(५) विद्यापति के गीतिपदों पर संस्कृत के स्तोत्रसाहित्य—'श्रीमद्भागवत' तथा 'गीतिगोविन्द'—के प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं। पर श्रीमद्भागवत की कृष्ण-राधा परम्परा से विद्यापति के गीतिपदों की कृष्ण-राधा परम्परा में साम्य की अपेक्षा वैभिन्न्य ही अधिक है।

(६) विद्यापति के गीतिपदों में शृंगार के सभी अंगोपांग, संभोग शृंगार के बहुविध चित्र, विप्रलंभ की सभी दशाएँ, सभी श्रेणी तथा अवस्था की नायिकाएँ वर्णित हैं, इनके प्रेरणास्रोत का उद्गम वात्स्यायन का 'कामसूत्र', भरत का 'नाट्यशास्त्र' तथा ज्योतिरीश्वर का 'पंचशायकम्' हो सकता है।

(७) कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' का ऋण विद्यापति की प्रारम्भिक रचनाओं पर स्पष्ट दीख पड़ता है। गीतिपदों के भाव एवं वस्तुविधान की प्रेरणा भी कवि को इस ग्रन्थ से मिली होगी।

(८) विद्यापति के प्रेमकाव्य का मूल उत्स उनके युग के सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में निहित था। सामन्ती समाज, 'बहुवल्लभ कन्त' का पारिवारिक ढाँचा, पुरुष की भोग्यामात्र होने की नारी की विवशता, "सोरह सहस गोपीपति कान्ह" का स्वीकृत आदर्श—विद्यापति के युग के सामाजिक परिवेश के मुख्य उपादान थे। सम्पन्न सामन्त वर्ग तथा सामान्य लोकजीवन दोनों में ही गीत, नृत्य और नाट्य का खूब प्रचलन था। राजन्य-सामन्त वर्ग का जीवन या तो युद्धक्षेत्र में या विलास-पर्यंकों पर ही बीतता था। मिथिला का तत्कालीन इतिहास बताता है कि विद्यापति के सखा-सुहृद-आश्रयदाता राजा शिवसिंह का मुसलमानों के साथ युद्ध इस क्षेत्र में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना का अन्तिम प्रयत्न था। ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में युद्ध और प्रेम के गाथा-साहित्य के लिए उपयुक्त भूमि तथा जलवायु मिलती है। विद्यापति ने दोनों ही की प्रचुर परिमाण में रचना की। युद्ध-वर्णन के लिए अवहट्ठ उन्हें अधिक उपयुक्त जान पड़ा और प्रेमगीत के लिए मैथिली। 'कीर्तिपताका' नाम से प्रचलित उनकी रचना बताती है कि कवि ने अवहट्ठ में शृंगार-काव्य भी लिखा है, पर इसके लिए मैथिली का नैसर्गिक माधुर्य उन्हें अधिक रुचा होगा, अतः उनके गीतिपदों की रचना इसी भाषा में हुई। मैथिली लोकजीवन की भाषा थी, अवहट्ठ विद्वानों की ही हो सकती थी। तात्पर्य यह कि विद्यापति के प्रेमकाव्य की प्रेरणा का सबसे बड़ा उत्स उनके युग की सामाजिक-सांस्कृतिक अवस्था में निहित था। उनके युग और समाज के हृदय का स्पन्दन उनके गीतों में स्पष्ट सुन पड़ता है। विद्यापति के गीतिपदों में कामिनी-विलास का अष्टयाम नहीं वर्णित है, उसमें जीवन की विभिन्न स्थितियों के मार्मिक अनुभव मुखरित हुए हैं।

२

प्रेमकाव्य और विद्यापति

(क) भारतीय काव्य में प्रेमभावना की परम्परा और विद्यापति।
(ख) विद्यापति साहित्य में प्रेमचित्रण के विविध स्वरूप।
(ग) विद्यापति की प्रेमभावना—भागवत या लौकिक।

(क)

भारतीय काव्य में प्रेमभावना की परम्परा और विद्यापति

भारतीय साहित्य में प्रेमभावना का स्वरूप

सुपहुँ-सुनारि सिनेह । चाँद कुमुद सम रेह ॥
दिवसे दिवसे धर जोति । सोना मेलाओलि मोति ॥[1]

विद्यापति का दाम्पत्य प्रेम का आदर्श इन पंक्तियों में प्रस्तुत है । चंद्रमा और कुमुद के सम्बन्ध को प्रेम का आदर्श मानकर कवि ने उसकी पवित्रता, गम्भीरता अनन्यता तथा सजीवता एक साथ ही व्यक्त की है । सच्चा प्रेम कभी मलिन नहीं पड़ता, वह दिन-दिन नयी दीप्ति धारण करता है । सोने के आभूषण में जैसे मोती जड़कर जौहरी सुन्दर तथा बहुमूल्य आभूषण बनाता है, परस्परानुरक्त "सुपहुँ सुनारि" की जोड़ी भी वैसी ही होती है । दोनों एक-दूसरे का सुख-सौभाग्य, श्री-शोभा बढ़ाते हैं । यह निःस्वार्थ सर्व-समर्पणकारी प्रेम का आदर्श है जिसमें प्रिय से किसी बात की अपेक्षा नहीं की जाती, जो क्यों होता है इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता । महाकवि भवभूति ने ऐसे ही प्रेम के विषय में कहा था—

व्यतिषजति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतुः ।
न खलु बहिः उपाधीन प्रीतयः संश्रयन्ते ॥[2]

[यह तो कोई अज्ञात कारण है जो दो हृदयों को मिला देता है, कोई बाहरी वस्तु इसका कारण नहीं ।]

---

[1] मि० म० वि०, ४११ ।

[2] उत्तररामचरितम्—भवभूति, ६/१२ ।

प्रेम—दो व्यक्तियों का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण, पारस्परिक अनुराग, अभिन्न सम्बन्ध—मानव के कर्मसकुल जीवन मे रस की आर्द्रता एव शीतलता देनेवाला माना जाता है।

व्यापक अर्थ मे प्राणीमात्र के प्रति प्रेम, विश्वप्रेम, देशप्रम, बधु-बान्धवो के प्रति प्रेम, भाई-बहन का प्रेम, बच्चे के प्रति प्रेम, प्रकृति-प्रेम—मानव के न जाने कितने सम्बन्धो तथा भावग्रन्थियों को प्रेम की सज्ञा प्रदान की जाती है। लोकोत्तर सत्ता के प्रति, परमात्मा के प्रति जीवात्मा की जिज्ञासा—भागवत प्रेम या ईश्वर प्रेम भी बहु चर्चित विषय है। वैष्णवो के यहाँ कामगधहीन प्रेम की जय मनायी जाती है, उनके अनुसार प्रेम के आलबन केवल भगवान् कृष्ण हैं, लौकिक नायक-नायिका के सम्बन्ध तो काम के अन्तर्गत ही आते हैं। अर्थात् कृष्ण के साथ प्रेम प्रेम है, अन्य प्रेम काम।

मध्ययुगीन यूरोप मे शौय (शिवेलरी) की भावना के अतर्गत तरुण-तरुणी के बीच भी कामगधहीन प्रेम (प्लैटोनिक लव) की कल्पना की गयी थी, उस युग के वहाँ के साहित्य मे इसकी गाथाएँ भरी पडी है। प्रेयसी की एक झलक पाकर, उसकी एक अँगुली अपनी आँखो से लगाकर, उसके केश की एक लट को देखते-देखते उच्च कुल-सम्भूत सामन्ती तरुण सारी जिन्दगी बिता देता था, अपने प्राणो की बाजी लगाने को हमेशा तैयार रहता था।

प्रेम दो व्यक्तियो के सान्निध्य, सौहार्द तथा पारस्परिक सहानुभूतिजन्य चित्त की स्थायी वृत्ति है, ऐसा भी कहा गया है।

एक ओर तो प्रेम सम्बन्धी उपर्युक्त स्थापनाएँ प्रचलित है, दूसरी ओर 'वासना का परिष्कृत नाम ही प्रेम है, प्रेम अन्धा होता है।'[१] "मानव मन की सबसे बडी सुन्दरता प्रेम है"—ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं। किसी ने कहा, "प्रेम हरिको रूप है त्यो हरि प्रेमस्वरूप'[२] तो दूसरे न यह भी कहा—

इश्क है एक आतिश गालिब
जो लगाये न लगे और बुझाये न बुझे।

इस प्रकार प्रेम की परिभाषा तथा इसके स्वरूप को लेकर जितने लोग है, उतनी तरह के विचार है, अपने-अपने अनुभव, रुचि या सस्कार के अनुसार भिन्न-भिन्न धारणाएँ। प्राचीन ऋषि ने इसके स्वरूप की गम्भीरता और विशदता के कारण ही इसे अनिर्वचनीय माना है—गूँगे के स्वाद की भाँति।[३] जिसके विषय म ठीक-ठीक कुछ

---

१ "Love looks not with eyes but with mind
And therefore is winged cupid painted blind."
—Shakespeare, *A Midsummer Night's Dream*

२ रसखान।

३ "अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्'
—नारद भक्ति सूत्र, ५१-५२।

नही जाना या कहा जा सके, उसे अनिर्वचनीय कहने की प्राचीन परम्परा-सी थी, ब्रह्म भी इसी प्रकार अनिर्वचनीय बन गया।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज चिन्तक तथा लेखक अल्डूस हक्सले ने लिखा है कि प्रेम का इतिहास यदि कभी लिखा जाय, तो वह कला के इतिहास की तरह होगा—क्रमश बदलते तरीको, प्रभाव, क्रान्तियों एव नयी तकनीकों के आविष्करण का।[1]

प्रेम, जो काव्य का वर्ण्य है, शृंगार का स्थायी भाव है, का सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे वासना से रहता आया है। नारी-पुरुष के बीच रूप, गुण, वैभव या शक्ति अथवा किसी अन्य कारण से जो सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, उसे सामान्य भाषा मे प्रेम की संज्ञा देते है। प्रेम दो हृदयो का सम्बन्ध है, पर शरीर से नितान्त असपृक्त नही। प्रेम एक भावना या भाव-संस्थान है जो प्रणयी-युग्म को एक-दूसरे के बिना अपूर्ण समझने की प्रेरणा देता है। प्रेम एक सम्बन्ध भी है जो दो व्यक्तियो को एक सूत्र मे आवद्ध करता है। प्रेम दो व्यक्तियो के हृदय मे उत्पन्न परस्पराकर्षणजन्य विकार को भी कहते है।

प्रेम मे वासना का रहना अनिवार्य है या नही, इस पर भी मतैक्य नही। पाश्चात्य मनोविज्ञानवेत्ता काम को मानव की एक मूलभूत अन्तर्वृत्ति मानते हैं। उनके अनुसार नारी-पुरुष के मध्य प्रेम मे काम-भावना किसी न किसी रूप मे रहना अनिवार्य है। मनोविज्ञानवेत्ता मैकडुगल के अनुसार काम प्रणयी-युग्म के अन्तर्सम्बन्ध के मूल मे अनिवार्य उपादान है। उनके आपसी व्यवहार एव दृष्टिकोण कितने भी परिष्कृत तथा जटिल हों, पर उनके मूल मे काम का सस्पर्श अवश्य रहेगा।

प्रेम और काम एक नही। मात्र वासना की विवृत्ति को प्रेम की संज्ञा नही दी जा सकती। वासना शरीर का धर्म है, प्रेम हृदय की वृत्ति है। वासना रूपलोभ तथा यौनक्षुधा की तृप्ति तक ही सीमित है, प्रेम इससे ऊपर उठता है। वासना सामान्योन्मुख है, प्रेम विशेषोन्मुख।[2] काम-सम्बन्ध किसी से भी स्थापित किया जा सकता है, प्रेम-सम्बन्ध किसी एक से ही। क्रोध, लोभ, मोह आदि की तरह काम मानव की पतनोन्मुखी वृत्ति है; प्रेम उसका उन्नयन, परिष्कार तथा उन्मेष करता है।

भारतीय चिन्तनपरम्परा मे काम को भी केवल शरीर का धर्म नही माना गया है। काम देवता के मनोभव, मनोज, मनसिज, मदन आदि पर्याय इसी का संकेत करते हैं। काम को मन्मथ भी कहा गया है—मन का मथन कर देनेवाला। प्रेम इसके

---

१ "The history of love, if it were ever written would be like the current histories of art—'a record of succeeding styles' and 'schools of influences', 'revolutions', 'technical discoveries'."

—**Aldous Huxley**, *Fashions in love in Do What You Will*, pp. 131-32

२ तुलनीय—"लोभ सामान्योन्मुख होता है प्रीति विशेषोन्मुख"—प० रामचन्द्र शुक्ल।

विपरीत आनन्दस्वरूप माना गया है। तभी तो कहते है प्रेम भगवान् है, भगवान् प्रेम।

प्रेम के मूल म कुछ मनोवैज्ञानिक और कुछ शरीरधर्मी तत्त्व निहित है। देश-काल-भद से इनम कोई परिवर्तन होता हो ऐसा नही दीखता, पर इसकी अभिव्यक्ति के तरीको एव स्वरूप पर देश और काल का प्रभाव अवश्य पडता है। उसे व्यक्ति और समाज की रुचि तथा विशेषताएँ भी प्रभावित करती हैं। कवि इनका चित्रण करता है, अत उसकी रचनाओ पर सामाजिक आवेष्टन का प्रभाव पडना आवश्यक है। फलत देशकाल-भेद से साहित्य म प्रेमचित्रण के विभिन्न स्वरूप विकसित होते रहे हैं।

प्रेम का प्राचीनतम चित्रण ऋग्वेद क यम-यमी सम्वाद[1] को कहा जा सकता है। यह सम्वाद या तो वर्णनात्मक है, पर यमी का प्रणयनिवेदन इतना मार्मिक है कि उसमे काव्य के संस्पर्श भी आ गय हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसम यमी अपने भाई से ही प्रणययाचना कर रही है, जिसस प्रतीत होता है कि यह उस काल की रचना होगी जब परिवार संस्था का पूर्ण विकास नहीं हुआ होगा तथा मुक्त यौन-सम्बन्ध के प्रचलन का पूरी तरह से अन्त नहीं हुआ होगा। ऋग्वेद के इसी मडल मे उर्वशी-पुरुरवा सम्वाद भी है।[2] यह भी विवाहेतर प्रणय-सम्बन्ध का एक मार्मिक चित्र है। पर यहाँ क्रम उलट जाता है, इसम अपन प्रणय की उपेक्षा करनेवाली एक नारी के प्रति प्रेमविह्वल पुरुष की व्यथा एव आकुल प्रणयनिवेदन वर्णित हैं। इस प्रसग के अन्त मे नारी की सहज चचला प्रकृति का उल्लेख किया गया है।[3]

इन चित्रो को स्वतत्र स्वच्छन्दतावादी प्रेमचित्रण की पद्धति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यम-यमी सम्वाद म जहाँ वासनापक्ष प्रधान है, उर्वशी-पुरुरवा प्रसग मे भावपक्ष की प्रधानता है। नायक की विरह-कातरता, विलाप इसमे वर्णित है तथा प्रसग का अत सुखान्त न होकर दुखान्त है। परवर्ती संस्कृत साहित्य मे ये सभी क्रम उलट जाते हैं।

ऋग्वद के दसवें मडल म ही विवाहित जीवन की महत्ता, पवित्रता की भी प्रशसा की गयी है। दाम्पत्य प्रेम मे मगल-भावना की सर्वोपरिता का सकेत हमे इन प्रसगो म मिलता है। वर-वधू क मध्य अविच्छिन्न सम्बन्ध हो, इसके लिए देवी-देवताओ स प्रार्थना की गयी है तथा उन्हे साक्षी बनाया गया है।[4]

दाम्पत्य प्रेम की पवित्रता एव लोकमगल के लिए आत्मसुख की बलि का महान् आदर्श लौकिक संस्कृत के महान् ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण मे प्रतिष्ठित किया

---

[1] ऋग्वेद मडल—१०, सूक्त १०।
[2] वही, सूक्त ६५।
[3] वही, १०/६५/१५।
[4] ऋग्वेद मडल, १०/८५/४७।

गया है। नारी-पुरुष के एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त होने मे केवल रूप-यौवन का ही नही, एक-दूसरे के गुणो से प्रभावित होने का भी हाथ रहता था। राम और सीता का पारस्परिक प्रेम एक-दूसरे के रूप-गुण के कारण निरन्तर परिवर्द्धमान था। इसी प्रसग मे कवि ने यह सकेत किया है कि प्रेम कहने-बोलने की वस्तु नही, यह तो हृदय-सवेद्य है, प्रणयी-युग्म ही इसका अनुभव करते है, वह भी मन ही मन, शब्दो मे कहकर तो उसकी विवृत्ति ही होती है।[1]

रामायण मे नारी-सौन्दर्य के चित्र भी मिलते है, पर वे भी अत्यन्त सक्षिप्त एव सयत है।[2] सभोग-शृ गार के उत्तेजक, मादक चित्र जो परवर्त्ती सस्कृत-काव्य के अविच्छिन्न उपादान बन गये, यहाँ सर्वथा अनुपस्थित है। यहाँ तक कि विवाहोपरान्त प्रथम रात्रि जानकी कौशल्या के कक्ष म बिताती है, इस प्रकार प्रथम मिलन का चित्रण करने से कवि ने अपने को बचा लिया है। वस्तुत रामायण मे प्रेम पर कर्तव्य की विजय दिखाना कवि का एक अभीष्ट था। सीता जब-तब भाव क प्रवाह म बह भी जाती है[3] पर राम सर्वत्र कर्तव्य की कठोर डोर मे बँधे रहते हैं। अरण्यकाण्ड मे वे सीता से कहते हैं—मैं अपन जीवन का, तुम्हारा या लक्ष्मण का त्याग भी कर सकता हूँ, पर ब्राह्मणो से की गयी अपनी प्रतिज्ञा से स्खलित नही हो सकता।[4]

प्रेमचित्रण की दृष्टि से वाल्मीकि की रामायण दाम्पत्य जीवन के उच्चतम आदर्श की प्रतिष्ठामात्र करके रह जाती है। यह आदर्श बहुत ऊँचा है, प्रशसनीय तथा अनुकरणीय है, इसमे सदेह नही, पर पुरुष और नारी का जीवन केवल कर्तव्यनिष्ठा, कर्मसाधना या आदर्श-प्रतिष्ठामात्र से पूर्ण नही होता, उसे दाम्पत्य प्रणय के रगीन क्षणो की भी अपेक्षा रहती है। रामकाव्य-परम्परा की इस पहली (महान्) कडी का जो स्वरूप है वह इसके महान् रचयिता (एक महर्षि) के सर्वथा उपयुक्त ही है, पर यदि इसका रचयिता अन्य कोई सामान्य व्यक्ति होता तो शायद इसमे जीवन की ऊष्मा कुछ अधिक होती और तब इस परम्परा की परवर्ती रचनाओ का भी रूप किंचित भिन्न होता।

रामायण से जब हम महाभारत मे आते है, तो यहाँ एक सर्वथा ही भिन्न दुनिया मिलती है। दोनो महाकाव्यो का ठीक रचनाकाल चाहे जो भी हो, पर दोनो मे चित्रित समाज के स्वरूप की कल्पना करना कठिन नही। रामायण मे चित्रित समाज जटिल नही, चतुर्वर्ण तथा चार आश्रमो की व्यवस्था अधिक शिथिल नही हुई

---

[1] वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, ७७/२७–२८।

[2] वही, वही, ३२/१२–१३।

[3] जसे वनगमन-प्रसग म या वन म राम के राक्षसो को मारने का सकल्प करते समय।

[4] वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड।

थी। समाज मे ऋषियो, ब्राह्मणो का आदर-सम्मान बना था, क्षत्रिय राजा का स्थान समाज मे उनके बाद ही था। रामायण का समाज राजनीतिक दाँव-पेंच, भ्रातृद्वेष, नैतिक स्खलन, आचार-भ्रष्टता आदि से बहुत कुछ अपरिचित रहा होगा। इसके विपरीत महाभारत म चित्रित समाज म सब कुछ बदल जाता है। यहाँ छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त एक नागरिक सभ्यता का चित्र प्रस्तुत है। महाभारत की दुनिया घोर अहम्मन्यता, क्षुद्र स्वार्थों क सघर्ष, नैतिक पतन, द्वेष, प्रतिस्पर्द्धा, असहिष्णुता, उच्छृखल विलास तथा जर्जर ह्रासोन्मुख सस्कृति की दुनिया है।[1] आचारभ्रष्ट, आदर्श-भ्रष्ट तथा कर्मभ्रष्ट समाज म नारी की कितनी हीन अवस्था थी इसका कुछ आभास मिलता है अम्बा, अम्बालिका क अपहरण म, द्रौपदी क भरी सभा म नगी किये जाने के प्रयत्न मे, जुए मे धर्मराज कहलाने वाले व्यक्ति क द्वारा अपनी पत्नी को दाँव पर चढाकर हार जान मे, कृष्ण क सकेत पर अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण किय जाने मे। महाभारत मे चित्रित समाज सामन्ती समाज का मूर्त्त रूप है। इस समाज मे नारी की कोई मर्यादा, उसका कोई गौरव ही नही रह गया हो जैसे। महाभारत के अन्तर्गत अनेक उपाख्यान तथा अन्तर्कथाएँ हैं। एक से एक मनोहर प्रेम-प्रसग भी इसमे मिलते हैं। महाभारत मे वर्णित कुछ प्रमुख नायिकाएँ हैं—सत्यवती, दमयन्ती, शकुन्तला, लोपामुद्रा, देवयानी, मेनका, उषा आदि। कुन्ती, द्रौपदी आदि तो इसकी प्रमुख पात्रियाँ ही हैं। महाभारत मे प्रेमचित्रण के कुछ प्रसग है—उर्वशी-अर्जुन सम्वाद, विश्वामित्र मेनका सम्वाद, उषा-अनिरुद्ध सम्वाद, अगस्त्य-लोपामुद्रा सम्वाद प्रभृति। इसमे नल-दयमन्ती का प्रसग सबसे मधुर तथा दाम्पत्य प्रणय की एक मनोहर गाथा है। इसी प्रकार कच-देवयानी प्रसंग बडा ही मार्मिक एव भावपूर्ण है।

महाभारत के प्रेमोपाख्याना म (एक दो अपवादो को छोडकर) नारी का कामिनी रूप बारबार उभर कर आँखो के सामने आता है। दैहिक रूप-लावण्य ही महाभारत की नायिकाओ की एकमात्र पूँजी है। पुरुष उसे विलास के एक सजीव उपकरण के रूप म ही अधिकतर देखता है, त्रेतायुग मे एक सीता के अपहरण ने राम-रावण युद्ध का सूत्रपात किया, महाभारतयुगीन समाज मे युधिष्ठिर अपनी पत्नी को ही जुए मे दाँव पर चढाकर हार जाते हैं, तात्पर्य यह कि 'महाभारत' मे वर्णित प्रेम-गाथाएँ किसी आदर्श की प्रतिष्ठा नहीं करती पर रामायण के मर्यादावादी प्रेम-चित्रण की अपेक्षा वे कहीं अधिक विस्तृत तथा रसमय हैं। 'महाभारत' का प्रेमचित्रण वीरगाथात्मक काव्य के प्रेमचित्रण के समीप है। इसके प्रेमचित्र सजीव एव मासल है, अत शृगार के उपादानो से भरपूर। 'महाभारत' के प्रेमलोक मे त्याग, कष्ट-सहिष्णुता तथा साधना की उच्च भूमि नहीं मिलती, पर नारी-सौन्दर्य, सभोग-शृगार एव विप्रलभ के सजीव चित्रों का अभाव नही।

---

[1] हिन्दी साहित्य बीसवी सदी—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ४५-४६।

प्रेमचित्रण का तीसरा रूप हमें कालिदास के 'मेघदूत', 'मालविकाग्निमित्र', 'ऋतुसंहार' तथा 'आभिज्ञान शाकुन्तलम्' में मिलता है। वर्ण्य वस्तु के वैभव, भावना की अतल गहराई, कल्पना की उडान तथा मानव प्रकृति की पहचान आदि की दृष्टि से कालिदास की रचनाएँ अन्यतम हैं। मुक्तक, प्रबंधकाव्य, नाटक—कालिदास ने सभी काव्यविधाओ मे अपनी रचना प्रस्तुत की। शिल्प की दृष्टि से भी वे अद्वितीय है। कालिदास द्वारा वर्णित प्रेम सामन्ती युग के अभिजात वर्गीय सभ्यो का प्रेम है, जिसमे नायक हो या नायिका, दोनो के हृदय मे वासना का अगरुधूम भरा रहता है। 'मेघदूत' का यक्ष अपने कामार्त्त होने का इजहार खुद ही करता है[1] उसे नदी मे 'विवृतजघना' की छाया दीख पडती है। पर्वतशृंग उसे पीनोन्नत स्तन जान पडते है तथा पार्वत्य गुफाओ मे सुरत-श्रान्त यक्षिणियाँ विश्राम करती प्रतीत होती हैं। प्रिया मे अत्यधिक आसक्त रहने के दण्डस्वरूप उसे यह निर्वासन मिला था यह तो वह भूल ही जाता है। विछोह उसकी उद्दाम वासना से परिपूरित वृत्तियो का तनिक भी उन्नयन नही कर पाता।

'ऋतुसहार' मे कवि ने छह ऋतुओ म नायक-नायिका के विलास का चित्रण किया है।

'आभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे वर्णित प्रेम भी वासनाजन्य है तथा वासना की रजना से ही रंजित है। कई रानियो का पति दुष्यन्त कण्व की अनुपस्थिति मे उसके आश्रम मे प्रवेश करता है, ठीक उसी समय जबकि शकुन्तला अपनी कचुकी के बन्द कस रही है। दुष्यन्त को उसके वक्ष की एक झलक मिलती है, वह उस "अनाघ्रात कुसुम" का रस लेने को आतुर हो जाता है। इसे चाहे प्रथम दर्शन मे प्रेम कहे या तरुणी को देखते ही कामान्ध हो जाना—बात एक ही होगी।

'विक्रमोर्वशीयम्' तथा 'मालविकाग्निमित्र' मे भी प्रेम का यही स्वरूप चित्रित है। सभोग शृगार का सबसे उद्दाम एव खुला वर्णन 'कुमारसम्भवम्' के पचम-षष्ठ सर्गों म कवि ने प्रस्तुत किया है। कामदेव को रुद्र के तृतीय नेत्र ने भस्म तो कर दिया पर अनग होकर वह और भी शक्तिशाली हो गया है, ऐसा जान पडता है।

कालिदास प्रेमकाव्य के महान् कलाकार हैं। नारी-सौन्दर्य का चित्रांकन करने मे उनकी कोई समता नही कर सकता। वात्स्यायन के कामसूत्र तथा भरत के नाट्य-शास्त्र के प्रभाव कालिदास के प्रेमचित्रण पर पूरी तरह पडे हैं। कालिदास का प्रेम-चित्रण रसानुभूति की दृष्टि से अद्वितीय है। प्रेम-जगत् के सभी क्रिया-व्यापार, सूक्ष्म-स्थूल चेष्टाएँ, भाव-सस्पर्श उनके काव्य मे चित्रित हुए है।

साथ ही कालिदास के प्रेमचित्रण की परिसीमाएँ भी स्पष्ट है—यहाँ नारी हमेशा कामिनी है, पुरुष उसके रूप-यौवन का प्यासा भ्रमर। कालिदास का प्रेम जीवन

[1] मेघदूत, पूर्वमेघ, प्रथम श्लोक।

'गाथासप्तशती' मे वर्णित प्रेम की मर्यादा उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाती है। 'गाथासप्तशती' मे परकीया प्रेम के अनेक पहलू चित्रित हैं। पुरुष यदि अन्य रमणियों का संग प्राप्त करने के लिए कोई भी युक्ति अपनाता है तो स्त्रियाँ भी उनकी आँख बचाकर परपुरुष के रमण का आयोजन करती रहती हैं। इस होड मे स्त्रियो की एक विवशता अवश्य है, पुरुष किसी भी आयु का हो छल-बल या धन से अपने मनोरंजन की सामग्री प्राप्त कर सकता है, पर स्त्री का यौवन ढल जाने पर कौन उसका आदर करेगा ?[1] 'गायासप्तशती' मे भी ऐसी उपेक्षिता नारी की मर्मव्यथा के आँसू एकाधिक स्थलों पर ढुलक पडे हैं[2]। वस्तुत प्रेमभावना की मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्ति ऐसी ही गाथाओ मे हुई है। अन्यत्र तो प्रेम के नाम पर चोचलेबाजी या सस्ती रसिकता के ही आभास मिलते हैं।

'गाथासप्तशती' मे प्रेम के उच्च धरातल की झलक कहीं नही मिलती। प्रेम-चित्रण की इस पद्धति मे प्रेम का प्रेरक केवल काम है, उसके अतिरिक्त इसमें कुछ भी उदात्त या उन्नयनकारी नही। वासना की तृप्ति इसका एकमात्र अर्थ एव इति है। इस प्रेम मे हृदयपक्ष का विकास होना सभव नही दीखता। आश्चर्य होता है यह सोच-कर कि क्या सचमुच कभी भारतीय समाज का कोई वर्ग इतना उच्छृंखल एव नैतिक चेतना मे शून्य भी होगा !

'गाथासप्तशती' के प्रेमचित्रण म कुछ बातें और महत्त्व की हैं। नायिका के अग-प्रत्यग के मासल चित्रण का अपेक्षातर अभाव तथा विरहिणी की विरहदशा का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण। जिस साहस तथा स्पष्टता के साथ नायिकाएँ परपुरुष के प्रति अपनी आसक्ति की चर्चा 'गाथासप्तशती' मे करती हैं वह सम्पूर्ण भारतीय प्रेमकाव्य मे अन्यत्र शायद नही दीख पडे। स्त्रियाँ अधिक भावनामयी होती हैं, प्रेमकाव्य के कलाकारो ने इसलिए उसे अधिक रुलाया है, अभिसार-पथ मे भी उसे ही आगे बढाकर उसका चित्रण किया है, नायिकाभेद के सख्यातीत भेदोपभेद कर दिये हैं, पर स्वय उसी के मुँह से परपुरुष से रमण करने या प्रेम-सम्बन्ध रखने का इजहार नही कराया है। इनके अतिरिक्त ग्रामीण प्राकृतिक छवि-छटा मे सजीव ग्राम्य परिवेश के एकाधिक रेखाचित्र भी यत्रतत्र मिल जाते है। "पाटलि" फूल की चर्चा कई गाथाओ मे की गयी है।[3]

अनेक विघ्न बाधाओ के बीच रहकर, उनसे सघर्ष करते हुए प्रणयी-युग्म का एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त रहना, प्रेम के लिए अपने सर्वसुख का त्याग तथा प्राणो को भी समर्पित करने को तैयार रहना प्रेम की गभीरता एव अनन्यता के लक्षण हैं।

---

[1] तुलनीय—यौवन रतन अछल दिन चारि।
तावे से आदर कएल मुरारि ॥—विद्यापति

[2] हिन्दी गाथासप्तशती, ४/८६, पृ० ९३, ३/१, पृ० ४६।

[3] हिन्दी गाथासप्तशती, ५/६८, ६६, पृ० ११२-११३।

सघर्षों की भट्टी मे तपकर प्रेम शुद्ध स्वर्ण की तरह हो जाता है, मानव मन की वृत्तियो को उदात्त बनाता है तथा उनका उन्नयन करता है। भारवि के 'उत्तर रामचरितम्' तथा 'मालती माधव' मे प्रेम का यही उज्ज्वल एव गम्भीर रूप चित्रित हुआ है। शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' मे चित्रित वेश्यापुत्री वसन्तसेना एव चारुदत्त का प्रेम भी इसी उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित है। प्रेमचित्रण की इस पद्धति मे प्रेम-त्रिभुज (एटरनल ट्रैंगिल इन लव) का चित्रण किया गया है। नायिका के अतिरिक्त एक प्रतिनायक होता है जो उनके मिलन म अनेक बाधाएँ उपस्थित करता है। 'मृच्छ-कटिकम्' मे राजश्यालक तथा 'मालतीमाधव' मे राजा ऐसे ही प्रतिनायक है। 'मृच्छ-कटिकम्' की विशेषता यह भी है कि प्राचीन भारतीय नाट्य परम्परा के प्रतिकूल यह एक दुखान्त नाटक है। दोनो रचनाओ मे प्रेम का जो उच्च स्वरूप चित्रित हुआ है वह साहित्य मे प्रेमचित्रण की दृष्टि से अन्यतम ही कहा जायगा। यहाँ न तो वासना की वीभत्स विवृति है, न कामुकता की उत्कट गध है, न नारी के अगो का नग्न चित्रण है। प्रेम-भावना की अतल गहराई, एक दूसरे के लिए अपने को उत्सर्ग कर देने की कामना इस प्रेम की विशेषता है। दुर्भाग्यवश प्रेमचित्रण की यह पद्धति ह्रासोन्मुख विलासरत सामन्ती समाज के साहित्य मे अपनी स्थायी परम्परा नही बना सकी। रसराज के भक्त काव्यरसिको ने "एको रस करुण एव" की उद्घोषणा करनेवाले भवभूति की प्रशसा करते हुए भी उनकी प्रेमपद्धति की परम्परा को आगे नही बढाया।

बारहवी सदी के प्रथम चरण मे विरचित जयदेव के 'गीतिगोविन्द' मे प्रेम-चित्रण का एक नया स्वरूप व्यक्त हुआ। इसके लिए पृष्ठभूमि दो-तीन सदी पूर्व से ही तैयार हो रही थी। वज्रयानी सिद्धो की रचनाओ मे धर्म का झीना आवरण डालकर कामाचार का खुला वर्णन किया जा रहा था।[1] वज्रयान का वज्र शब्द लिंग का ही प्रतीक है।[2]

---

[1] तिअड्डा चापि जोइनि दे अकवाली
(क) कमल कुलिश घोंटि करहु विआली
जोइनि तइं बिनु खनहि न जीवमि।
तो मुह चुम्बि कमल रस पीवमि।
—हिन्दी काव्यधारा, पृ० १९२।

(ख) नाडि शक्ति चिढ धरिआ खाटे। अन्हा डमरु बजइ विनाटे॥
काण्ह कपाली जोई पइठ अचारे। देह नअरि विहरइ एकाकारे॥
—हिन्दी काव्यधारा, पृ० १५०।

[2] हिन्दी काव्य मे शृंगार परम्परा और महाकवि विहारी
—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० १२३।

भक्तिमूलक शृंगार के लिए पृष्ठभूमि तैयार की सिद्धों ने, उसके लिए बनी-बनायी सामग्री प्रस्तुत कर दी श्रीमद्भागवत ने। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में विवाद है किन्तु सामान्यतः नवीं शताब्दी स्वीकार किया जाता है। इस ग्रन्थ के दशम स्कन्ध में कृष्ण और गोपियों के प्रेम का विस्तृत वर्णन किया गया है। यों तो महाभारत में कृष्ण सर्वप्रमुख पात्र हैं, एकाधिक स्थलों पर गोपी-गोपाल की चर्चा भी उसमें आयी है, 'गाथासप्तशती' में एकाधिक स्थलों पर राधा कृष्ण तथा गोपियों का उल्लेख भी मिलता है। पर गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेमलीलाओं का विस्तृत वर्णन सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में किया गया है। इन लीलाओं को भक्ति का जामा भी सर्वप्रथम भागवतकार ने ही पहनाया है।

प्रेमचित्रण की दृष्टि से श्रीमद्भागवत की कई विशेषताएँ हैं—(१) शृंगार यहाँ अध्यात्म की चादर ओढ़कर प्रस्तुत है (२) लौकिक नायक के स्थान पर कृष्ण के आ जाने से सभी कुछ कहने की छूट मिल जाती है, 'विलासकला में कुतूहल" रखने-वाले भी "हरिस्मरण" का बहाना रख कुछ भी लिख-पढ़ सकते थे, तथा (३) अब तक प्रणयी युग्म के प्रेमव्यापार का चित्रण किया जाता था, पर कृष्ण-गोपी प्रसंग में तो नायक के एक साथ ही अनेक रमणियों के साथ विहार करने का चित्रण किया जा सकता है। 'दिलष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति कामपि रामाम्"[१] कृष्ण-गोपी प्रसंग में ही लिखा जा सकता था। वज्रयान, सहजिया सम्प्रदाय, कौलसाधना जिस युग ने जनमानस को विभोर किये हुए हो उसमें श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की रचना आश्चर्य की बात नहीं, यद्यपि भागवत में कृष्ण तो फिर भी अपना लोकोत्तर रूप बहुत कुछ बनाये रखते हैं। इस ग्रन्थ के अन्त में व्यथाकुल गोपियों की विरहानुभूति का मार्मिक चित्रण किया गया है जो प्रेमकाव्य का एक अनमोल अवदान है। एक नायक के साथ अनेक रमणियों के एक साथ ही प्रेम करने में जो अस्वाभाविकता है उसके बावजूद भी विरहिणी गोपियों के उद्‌गारों में कहीं-कहीं प्रेम का बड़ा ही उज्ज्वल रूप दीप्त हो उठा है।[२] एक ऐसे युग में जब आचरण की पवित्रता एवं नैतिक मर्यादा के स्थान पर भ्रष्टाचार को ही धर्म और साधना का आवरण पहना कर जनमानस को विवृत्त करने का जोरदार आन्दोलन चल रहा हो, भागवतकार ने कृष्ण-गोपी प्रेम का चित्रण करके समाज का उपकार ही करना चाहा था। दुर्भाग्यवश परवर्ती कवियों ने भागवत के कृष्ण में जो कुछ उदात्त या आदर्श था, उसे भूलकर उनकी विलास-लीलाओं के चित्रण को ही अपना अभीष्ट बना लिया। इस धारा के अग्रणी हुए जयदेव।

जयदेव के 'गीतगोविन्द' को "भारतीय गीतों का गीत" कहा गया है। कृष्ण-राधा के प्रेमविहार का चित्रण इसमें ऐसी उद्दाम मांसलता के साथ किया गया है

---

१ गीतगोविन्द—सं० विनयमोहन शर्मा, पृ० ८६।

२ श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, ३२/१७।

जिसकी बराबरी करनेवाली दूसरी रचना सारी दुनिया मे शायद ही मिले। फिर भी यह एक जीर्ण गुलाब है अपने सौरभ की अति से जीर्ण।[1] 'गीतगोविन्द' की रचना भारतीय भाषाओं के साहित्य मे प्रेमचित्रण की एक नयी परम्परा का प्रारम्भ कही जा सकती है। स्वय जयदेव की मौलिक देन इस रचना मे उनकी कोमलकान्त पदावली के अतिरिक्त अन्य शायद ही कुछ हो। उन्होंने विषय-वस्तु ली श्रीमद्भागवत् से, रागबद्ध गीतिपद्धति ली अपभ्रंशों के पद-साहित्य से, नायिका-भेद लिया प्राचीन आलकारिको से तथा काम-केलि के चित्रण के लिए वे वात्स्यायन के ऋणी है। 'गीत-गोविन्द' की राधा हो या कृष्ण—कामोन्मादना से दोनों एक समान आक्रान्त हैं। सारा वातावरण ही यहाँ उत्कट कामगध से उच्छ्वसित हो रहा है। इस उन्मुक्त कामुकता का चित्रण उसे शृगार या प्रेम कहकर करने की पद्धति चली आ रही थी, पर 'गीतगोविन्द' ने इसे "हरि स्मरण" का नुस्खा बनाकर मर्यादा से अभिमण्डित कर दिया। जयदेव के अद्भुत शब्दशिल्प ने उसे लोककण्ठ मे उतार दिया। कुछ ही दिनो म मिथिला से आसाम तक, नेपाल से उत्कल तक "सखि हे केशि मथनमुदारम्" की स्वरलहरी से गूँजन लगा। इस गीतिलहरी से लोकमन इस प्रकार मत्रमुग्ध हो उठा कि लोकभाषाओ म भी इस परम्परा की नयी कडियाँ जोडी जाने लगी। बगला मे चण्डीदास न 'कृष्ण कीर्तन' लिखा, मैथिली मे विद्यापति ने सरस गीतिपदो की रचना करके 'अभिनव जयदेव' की उपाधि पायी। हिन्दी का समस्त कृष्णकाव्य श्रीमद्भागवत' और 'गीतगोविन्द', चण्डीदास और विद्यापति का किसी-न-किसी रूप मे ऋणी है।

निष्कर्ष

(१) प्रेमभावना मानव प्रकृति मे मूलभूत है। व्यापक अर्थ मे मानव-प्रेम, विश्व-प्रेम, ईश्वर-प्रेम तक की बात की जाती है। प्रेम का स्थायी भाव रति है।

(२) सौन्दर्य, यौवन एवं काम प्रेमभावना के विभिन्न उपादान हैं प्रेमभावना के चित्रण मे इनमे से एक या सभी का चित्रण किसी-न-किसी रूप मे होता है।

(३) प्रेमचित्रण एक छोर पर भावात्मक, उदात्त एव आदर्श होता है, दूसरे छोर पर निरा मासल, उद्दाम एव घोर यथार्थवादी भी हो सकता है। भावतत्त्व की मात्रा उसमे जितनी अधिक होगी उतना ही उसे उच्च कोटि का माना जायगा।

(४) शृगार के उन्मादक-उत्तेजक चित्र मानव की वृत्तियो का उन्नयन नही करते। यदि साहित्य का मानवी वृत्तियो के उन्नयन से कुछ भी सम्बन्ध माना जाय तो प्रेमचित्रण की इस पद्धति को ऊँचा स्थान नही दिया जा सकता।

(५) प्रेमचित्रण कभी-कभी अध्यात्म की आड लेकर भी किया जाता रहा है, भारतीय भाषाओ के साहित्य मे यह प्रवृत्ति दसवी सदी के बाद से प्रमुखतया प्रारम्भ हुई।

---

[1] **Bengali Literature—J C Ghosh, O U P 1948, page 28.**

(६) धर्म के आवरण मे या धर्म-मिश्रित प्रेम का चित्रण कुछेक प्रतीक, अलौकिक आश्रय या आलम्बन एव कतिपय रहस्यात्मक सकेतो को छोड लौकिक प्रेमचित्रण से भिन्न नही होता।

(७) प्रेमभावना के चित्रण की विभिन्न पद्धतियो के उदाहरण भारतीय साहित्य से दिये जा सकते हैं। सामान्यत ये प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(क) विवाह प्रथा के विकास के पूर्व का उन्मुक्त प्रेम—यम-यमी सवाद।

(ख) वाल्मीकीय रामायण म वर्णित मर्यादाबद्ध दाम्पत्य प्रेम।

(ग) महाभारतकालीन नागरिक मामन्ती समाज का प्रेमचित्रण।

(घ) कामजन्य प्रेम—कालिदास।

(ङ) ग्रामीण समाज का उच्छृखल, नैतिकताविहीन प्रेम—गाथासप्तशती।

(च) अनेक सकटों के बीच प्रगाढ होनेवाले प्रेम का उदात्त रूप—'मालती-माधव', 'मृच्छकटिक'।

(छ) कामाचार का प्रतीकों की भाषा मे वर्णित चित्रण।

(ज) कृष्ण-गोपी प्रेम—(अ) श्रीमदभागवत,
(ब) गीतिगोविन्द,
(स) ब्रजभाषा का कृष्ण-काव्य।

(झ) गीतिपद्धति मे भावतरल, व्ययासजल प्रेमचित्रण—विद्यापति, चण्डीदास।

(ञ) रूढिबद्ध प्रेमचित्रण—हिन्दी का रीतिकालीन शृङ्गार।

(ट) स्वच्छन्दतावादी भावप्रधान प्रेमचित्रण—घनानन्द।

(ठ) रहस्यवादी प्रेमचित्रण—(अ) कबीर, मीरा आदि।
(ब) महादेवी—आधुनिक रहस्यवाद।

(ड) छायावादी काव्य मे प्रेमचित्रण।

(ख)

विद्यापति-साहित्य में प्रेमचित्रण के विविध स्वरूप

विद्यापति सौन्दर्य एव प्रेम के कवि थे। उनके आठ सौ से अधिक पदो मे १०० से भी कम अन्य विषयो के हैं। उनकी दो उपाधियाँ—"अभिनव जयदेव" तथा "सरस कवि" भी इसी ओर इ गित करती हैं। विद्यापति ने शृङ्गार रस को "त्रिभुवनसार", "सगर ससारक सारे" आदि कहकर उसकी महत्ता एव अपनी रसिकता का परिचय दिया है।

विद्यापति की विभिन्न रचनाओ मे प्रेम के विभिन्न स्वरूप चित्रित मिलते है। एक मे विवाहित जीवन की मर्यादा से परिपूरित दाम्पत्य प्रेम का चित्रण उन्होंने किया है तो दूसरे मे एक नायक का अनेक रमणियो के साथ एक साथ विलास के चित्र प्रस्तुत किये हैं। कही वेश्याओ और नागरिकाओ का सौन्दर्य वर्णित है तो अन्यत्र उपेक्षिता पत्नी की मर्मव्यथा के गीत मुखरित हो रहे हैं। प्रेमचित्रण की इस विभिन्नता के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) विद्यापति ने अपने ग्रन्थो की रचना विभिन्न परिस्थितियो एव परिवेश मे तथा विभिन्न उद्देश्यो से की थी।

(२) विद्यापति की रचनाएँ भिन्न भाषाओ तथा विधाओ मे हैं, जैसे सस्कृत मे 'पुरुषपरीक्षा' एक कहानी-सग्रह है। अवहट्ठ की 'कीर्तिपताका' का पूर्वार्द्ध राय अर्जुन के लिए रमणी-विलास के उत्तेजक मादक चित्र प्रस्तुत करने के उद्देश्य से रचित प्रतीत होता है। मैथिली मे पदो की रचना कवि ५० वर्षों के अपने कवि-जीवन मे करता रहा। ये मुक्तक गीतिपद हैं।

(३) विद्यापति ने समय-समय पर विशेष परिस्थितिवश, किसी राजा के आदेश से, किसी ग्रन्थ की रचना की है। इसमे उस राजा की रुचि का ध्यान रखना आवश्यक था।

विद्यापति के गीतिपद मध्यकालीन प्रेमकाव्य-परम्परा की एक अनमोल कड़ी है। इनके अतिरिक्त कवि ने 'पुरुषपरीक्षा' तथा 'गोरक्षविजय' में भी एकाधिक स्थलों पर प्रेमचित्रण किया है। 'कीर्तिपताका' के उपलब्ध प्रारम्भिक दशाधिक पृष्ठों में उन्मुक्त रमणी विलास वर्णित है। पदावली की प्रेमभावना का निरूपण करने के पूर्व कवि की इन अन्य रचनाओं में चित्रित प्रेम के विभिन्न स्वरूपों का परिचय दिया जा रहा है।

पुरुषपरीक्षा

'पुरुषपरीक्षा' विद्यापति कृत एक कहानी संग्रह है। इसके काम प्रकरण में दाम्पत्य प्रेम सम्बन्धी तीन कहानियाँ प्रस्तुत हैं। ये कथाएं हैं—अनुकूल-कथा, दक्षिण-कथा तथा धस्मर-कथा।[1] इन कहानियों के नायक हैं क्रमशः राजा शूद्रक, राजा लक्ष्मण-सेन तथा राजा जयचन्द।

'अनुकूल-कथा' के प्रारम्भ में कवि ने शृंगार रस की व्याख्या करते हुए कहा है–जिसका स्थायी भाव रति है तथा जो पुरुषों के लिए परम मोददायक है, उसे शृङ्गार रस कहते हैं। शृंगार से प्राप्त सुख काम है। काम का महत्त्व बताते हुए कवि कहता है—

त्रिवर्गेष्वपर काम फलधर्मार्थयोरपि[2]

कवि ने कामियों के पाँच प्रकार बताये हैं—अनुकूल, दक्षिण, विदग्ध, धूर्त्त तथा धस्मर। इनमें अनुकूल, दक्षिण तथा धूर्त्त तो आलंकारिकों के अनुसार नायकों की तीन श्रेणियाँ हैं। अनुकूल नायक अपनी भार्या में अनुरक्त, एक पत्नीव्रती होता है। उसे धर्म शृगारी भी कहते हैं।[3] विदग्ध एवं धस्मर नायक कवि की अपनी उद्भावना जान पड़ते हैं। इनमें विद्यापति ने केवल धस्मर नायक का ही उदाहरण एक कथा में प्रस्तुत किया है।

विदग्ध नायक की कोई कहानी 'पुरुषपरीक्षा' में नहीं मिलती। संभवतः इसलिए कि विदग्ध नायक का चित्रण 'पुरुषपरीक्षा' के वर्ण्य—आदर्श पुरुष की खोज—के उपयुक्त नहीं होता। धस्मर नायक गर्हित होते हुए भी वर्णित है, उसकी कैसी दुर्दशा होती है यह दिखाने के लिए। विदग्ध नायक तो नहीं पर विदग्ध विलास के चित्र एकाधिक गीतिपदों में कवि ने प्रस्तुत किये हैं। इन पदों में विदग्ध नायक का चित्रण करके विरह की लम्बी अवधि के उपरान्त नायक के वापस लौटने पर नायिका के हृदय का उल्लास वर्णित है।[4]

---

१ पुरुषपरीक्षा—सं० चन्द्रकान्त पाठक, कथा ३५, ३६ और ३७, पृ० १६०–२१३।

२ वही, ३५/२, पृ० १६०।

३ वही, ३५/३ ४, पृ० १६०।

४ मि० म० वि०, ७५८ ६७, पृ० ४६२–६७।

अनुकूल-कथा

अनुकूल-कथा मे दाम्पत्य जीवन के चरम आदर्श का उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है। कथा निम्नलिखित है—

शूद्रक नामक एक राजा था। उसकी पत्नी का नाम सुखासना था। रानी पूर्ण पतिव्रता थी, राजा भी उसी मे पूर्णतया अनुरक्त था। राजा कभी किसी अन्य स्त्री की ओर आँख नही उठाता था। दाम्पत्य सुख का आनन्द भोग करते हुए दोनों का जीवन बीत रहा था। एक बार एक काले साँप ने रानी को डंस लिया। वैद्यों के अथक उपचार से रानी मरी तो नही, पर उसके शरीर का सारा रूपलावण्य जाता रहा। राजा शूद्रक अब भी अपनी पत्नी से पहले की ही तरह प्रेम करता रहा। अपनी प्रिया के दु ख से वह दुखी रहता। उसकी व्याधि दूर हो इसके लिए कोई उपचार नहीं छोडता, उसकी सेवासुश्रूषा मे अपना खाना-पीना तथा सोना भी भूला रहता। न तो वह अपना शृंगार-प्रसाधन करता, न राजकाज मे ही उसका मन लगता। मन्त्रियों ने उसे दूसरा विवाह करने की सलाह दी पर राजा इसके लिए तैयार नही हुआ। अपने राजा-रानी को इस प्रकार घोर दुख से अभिभूत देखकर मन्त्रियों ने रानी के उपचार के लिए देशदेशान्तर से वैद्य तथा झाड़ने-फूँकने वालों को बुलाया। उनके उपचार से वह रानी नागपत्नी के रूप मे परिणत हो गयी। नागपत्नी ने नाचते हुए राजा से कहा कि तुम्हारे शासन मे तुम्हारे एक सेवक ने मेरे पति की हत्या कर दी इसीलिए बदला लेने के लिए मैंने रानी को डस लिया तथा उसके शरीर मे प्रविष्ट हो गयी। राजा ने नागपत्नी से कहा कि तुम्हारे पति को मारा मेरे सेवक ने, उसका बदला मुझसे क्यो ले रही हो। नागपत्नी ने कहा कि सेवक के अपराध का दायित्व राजा पर ही होता है। राजा के अनेक प्रकार से क्षमायाचना एव अनुनयविनय करने पर नागपत्नी ने कहा कि वह अब उसकी पत्नी को मुक्त कर देगी पर इसके बदले मे राजा को अपने प्राणों की बलि देनी होगी। राजा अविलम्ब तलवार से अपना सिर काटने को उद्यत हो गया। नागपत्नी ने राजा का यह अनन्य प्रेम देखकर उसकी पत्नी को मुक्त कर दिया। रानी पुन अपना पहला स्वरूप प्राप्त करके जी उठी। पति के अनन्य प्रेम ने पत्नी को मृत्यु के मुँह से भी छीन लिया। दोनो चिरकाल तक दाम्पत्य प्रेम का आनन्दभोग करते हुए जीवित रहे।

कवि ने दाम्पत्य प्रेम की अनन्यता, पवित्रता तथा महत्ता की प्रशसा करते हुए इस कथा में कहा है—

भूयादनश्वर प्रेम पुनोर्जन्मनि जन्मनि।
धर्म शृङ्गार संपृक्त सीताराघवयोरिव ॥[1]

धर्ममण्डित शृंगार की प्रशसा कवि ने 'कीर्तिपताका' में भी की है।[2]

---

[1] पुरुषपरीक्षा, ३५/४, पृ० १६१ (ल० वें० प्रे०)।

[2] विद्या बसओ विवेक सयँ खेमा सत्तुएओ संग।
धम्म सहित सिंगार रस कव्व कला बहु रंग॥ —कीर्तिपताका, पृ० २।

दक्षिण-कथा

अन्य कार्यों में तथा तरुणियों में रत रहने पर भी जो अपनी पत्नी की उपेक्षा नहीं करते, उसका मान हमेशा रखते हैं, उन्हें दक्षिण नायक कहते हैं।[1] दक्षिण नायक के उदाहरण के रूप में विद्यापति ने गौड देश के राजा लक्ष्मणसेन की कहानी प्रस्तुत की है। लक्ष्मणसेन की प्रियतमा पत्नी थी रत्नप्रभा। राजा का उसके प्रति इतना प्रेम था कि वह यही समझती थी कि एकमात्र वही राजा की प्रियतमा है तथा अन्य स्त्रियाँ जिनके साथ वह रमण करता है, उसकी परिचारिकाएँ हैं।

एक बार काशी के राजा के साथ युद्ध छिड गया। राजा ने वर्षाकाल आते ही हजारों नौकाओं पर एक बडी सेना लेकर काशीश्वर के विरुद्ध प्रस्थान किया। रानी ने राजा से जाते समय कहा कि वह दीपावली की पूजा अकेले कैसे करेगी। राजा ने उसे आश्वस्त किया कि वह उसकी दूसरी राजलक्ष्मी है, अन्य रमणियाँ उसके लिए फूल, पान आदि के समान क्षणिक सुख-भोग के लिए हैं। अत. दीपावली के समय वह अवश्य लौट आयेगा।

काशीश्वर के साथ भीषण युद्ध हुआ। युद्ध-संचालन में संलग्न रहने के कारण राजा रानी को दिये गये अपने वचन को भी भूल गया। दीपावली आ गयी। राजा को कुछ भी याद नहीं था। पर नागरिकों को दीपावली-पूजन का संभार करते देखकर उसे अकस्मात् अपनी प्रतिज्ञा याद आयी। राजा अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने के लिए अतीव दु खी हुआ। वह सोच रहा था कि प्रियतमा पत्नी को दिये हुए वचन को पूरा न करने का प्रायश्चित् एकमात्र मृत्यु ही हो सकता है।

राजा इस प्रकार अनुतप्त हो रहा था। उसके मन्त्रियों ने उसे सान्त्वना दी। उन्होंने कहा कि दुनिया में ऐसा कौनसा काम है जो राजशक्ति से पूरा नहीं किया जा सके। नाविकों को प्रचुर धन देकर तैयार किया गया। रात होते-होते राजा अपनी राजधानी लक्ष्मणावती नगर में पहुँच गया। रानी रत्नप्रभा ने राजा को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके आया हुआ देख समझा कि उसका प्रेम सचमुच सच्चा है।

दाम्पत्य प्रेम की पवित्रता की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहानी के अन्त में कहा है—

आज्ञा यत्र न लङ्घ्यते न विनये वैषम्यमारोप्यते।
सद्भावः प्रथमोत्थितो न हृदये वाच्यास्पदं नीयते॥
अन्योन्यं सुख दुःखयो. समतया यद्भुज्यते वैभवं।
तत्प्रेम प्रिययोर्मुदे तदितरत्कन्दर्पकारागृहम्॥[2]

दाम्पत्य प्रेम का एक सुन्दर एवं आदर्श रूप कवि ने यहाँ भी प्रस्तुत किया है। पुरुष प्रकृत्या रसिक होता है। सुख-विलास के लिए वह अनेक रमणियों के साथ रमण

---

[1] पुरुषपरीक्षा, ३६/१, पृ० १९७ (ल० वें० प्रे०)।
[2] वही, ३६/४, पृ० २०० (ल० वें० प्रे०)।

करता है, 'अनुकूल-कथा' मे एक पत्नीव्रत के महन् आदर्श की प्रशसा करके भी विद्यापति मानव प्रकृति के इस यथार्थ को नही भुलाना चाहते है। पर अन्य रमणियो के साथ रमण करते हुए भी किसी एक के साथ प्रेम किया जा सकता है। दक्षिण नायक लक्ष्मणसेन ऐसे ही प्रेमी का उदाहरण है।

कवि दाम्पत्य प्रेम का मनोहर रूप व्यक्त करते हुए कहता है—एक-दूसरे के सुखदुख मे सहभागी होकर जो वैभव का उपभोग करते हैं उनका ही प्रेम पारस्परिक आनन्द देनेवाला होता है, अन्यथा इसके अतिरिक्त तो काम के कारागार मे ही बसने के समान होगा।

घस्मर-कथा

घस्मर नायक का लक्षण कवि ने इन शब्दो मे बताया है—

अपि शूरः सविद्योऽपि सुबुद्धिरपि पुरुषः।
भ्रूभग शृ खलाबद्ध स्त्रीवश्यो घस्मरो भवेत्।[1]

पत्नी के वश मे रहनेवाले काशीश्वर राजा जयचन्द्र की दुर्गति की कहानी कवि ने इस प्रसग मे प्रस्तुत की है। घस्मर-कथा मे नारी की चचलता तथा अल्प प्रयास से ही दूसरे के वश मे हो जाने की उसकी दुर्बलता भी वर्णित है। राजा जयचन्द्र अपनी पत्नी रानी शुभदेवी मे इस प्रकार अनुरक्त था कि उसके परामर्श के बिना कोई काम नही करता था। एक बार योगिनीपुर (दिल्ली) का राजा सहावदीन (शहाबुद्दीन) ने उस पर आक्रमण कर दिया। घोर युद्ध हुआ, जिसमे जयचन्द्र की विजय हुई। अब यवनेश्वर सहावदीन इस षड्यत्र मे लगा कि कैसे जयचन्द्र की शक्ति क्षीण की जाय तथा उसे पराजित किया जाय। उसने गुप्तचरो से पता लगाया कि जयचन्द्र का मन्त्री विद्याधर बहुत ही सुयोग्य है तथा राजा अपनी पत्नी शुभदेवी की बात बहुत सुनता है। यवनेश्वर ने छद्मवेश मे अपना गुप्तचर भेजकर शुभदेवी को अपने प्रति अनुरक्त कराया। रानी सहावदीन के वश मे होकर जयचद्र के विनाश के षड्यत्र मे सम्मिलित हो गयी। राजा भी अपनी पत्नी के वश मे रहने के कारण विद्याधर के सत्परामर्श की उपेक्षा करता हुआ दुर्बल पडने लगा। विद्याधर को भी सहावदीन ने अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया पर उसने राजा का अनिष्ट करने से इन्कार कर दिया। उपयुक्त अवसर जानकर यवनेश्वर ने जयचन्द्र पर पुन आक्रमण कर दिया। विद्याधर दुर्ग की रक्षा करता हुआ मारा गया। जयचन्द्र की हार हुई। उसका फिर कुछ पता नही चला। इधर विजयी सहावदीन ने रानी शुभदेवी को अपने सामने बुलवा कर कहा कि अपने पति के प्रति विश्वासघात करनेवाली का विश्वास वह कैसे करे। यह कह कर उसके शरीर को खण्ड-खण्ड करके फिकवा दिया।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी मे स्त्री के वशीभूत होनेवाले की कैसी दुर्गति होती

---

[1] पुरुषपरीक्षा, ३७/१, पृ० २०१।

है यह दिखाने के साथ कवि ने विश्वासघातिनी नारी की दुर्दशा भी वर्णित की है। एक श्लोक मे कवि ने नारी-प्रकृति की अद्भुत परख का परिचय दिया है—

> चमत्कारिषु चित्रेषु भूषणेष्वंबरेषु च।
> लोभो भवति नारीणां फलेषु कुसुमेषु च ॥[१]

जादू-टोना, वस्त्रालकार, फूल-फल के लिए किस युग या देश की स्त्रियों की दुर्बलता नही रही है ?

कहानी का अन्त निम्नलिखित श्लोक के साथ किया गया है—

> सुखोपकरणं नारी, प्रेम तस्यां प्रियोचितम्।
> वश्यता च निषिद्धेव स्त्रीवश्यो याति दुर्गतिम् ॥[२]

उपर्युक्त कथाओ मे विद्यापति ने दाम्पत्य प्रेम की श्रेष्ठता बतायी है। राम-सीता के प्रेम की भूरि-भूरि प्रशसा की है। धर्मसहित शृङ्गार को आदर्श बताया है। साथ ही नारी के प्रति उस युग मे किस तरह की धारणा थी इसका भी सकेत उनकी इन कथाओ मे मिलता है। अनुकूल नायक का राम-सीता का आदर्श तो महान् है, पर कितने इसे निबाह पाते है अथवा इसको अपने जीवन मे लाना ही चाहते है ? विद्यापति-युग की नारी-भावना तो लक्ष्मणसेन की उस उक्ति मे व्यक्त हुई है जहा वह स्त्रियों की तुलना पूल-पान से देकर उन्हे क्षणभर के सुखभोग की सगिनी कहता है। तुर्रा यह कि यह बात एक नारी से ही की जा रही है। ऐसे युग मे दाम्पत्य प्रेम मे अनन्यता का आदर्श कहाँ तक अक्षुण्ण रह सकता था ? कवि की 'पदावली' या 'गोरक्षविजय' की शृङ्गार भावना इसी युग-परिवेश की पृष्ठभूमि पर आधारित है।

कीर्त्तिलता

अवहट्ठ मे रचित विद्यापति का एक वीर काव्य 'कीर्त्तिलता' है। इसमे वीर सिंह-कीर्त्तिसिंह के सुल्तान इबराहिमशाह की सहायता से अपना खोया राज पुन. प्राप्त करने की कथा वर्णित है। युद्ध की तैयारियों तथा घमासान लडाई के बडे ही ओजपूर्ण वर्णन इस रचना मे प्रस्तुत है। आनुषंगिक रूप मे नगरशोभा, राजकुमारो का यात्रा मे अनेक कष्ट उठाना आदि भी बडी ही सूक्ष्मता के साथ वर्णित किये गए है।

'कीर्त्तिलता' म शृङ्गार के चित्र नगरवर्णन के प्रसग मे कवि ने प्रस्तुत किये हैं। 'जोनापुर' नगर मे प्रवेश करते ही वहाँ की अट्टालिकाओ, उपवनो, सडको की शोभा देखकर कवि विस्मित हो जाता है। अन्य वस्तुओं के बीच दो वस्तुएँ विशेष रूप से कवि को आकृष्ट करती हैं—शिवालय और कमलनयनी स्त्रियाँ। वहाँ की स्त्रियो की सुन्दरता का चित्रण कवि इन शब्दो मे करता है—

१ पुरुषपरीक्षा, ३६/४, पृ० २०३।
२ वही, ३७/७, पृ० २१३।

पलकमलपत्त समान नेत्तहि मत्तकु जरगामिनी ।
चोहट्ट वट्ट पलट्टि हेरहि साछ सार्द्धहि कामिनी ॥[1]

कवि को स्त्रियों की गज-गति का उल्लेख करना विशेष रुचता है ।[2]

दोपहर के समय नगर के राजपथ पर अपार भीड उमड पडती थी । उस समय के दृश्य का वर्णन करते हुए कवि की रसिकता पुनः जाग पडती है । भीड इतनी है कि स्त्रियों की चूडी धक्के के कारण टूट-टूट जाती थी, वेश्याओं के पीन वक्ष का स्पर्श होने से सन्यासियों के मन मे भी हलचल मच जाती थी ।[3]

इसके अनन्तर कवि की दृष्टि राजपथ के दोनों ओर कतार मे बैठी वणिक-स्त्रियों की ओर जाती है । ये कहीं-कहीं दो-चार एक साथ पण्य की विभिन्न वस्तुओं का विक्रय कर रही है । उनकी सख्या कम नहीं, कवि को लगता है, हजारों होगी वहाँ । राजपथ पर उमडती भीड म सुन्दरी स्त्रियाँ, गलियों मे, सडक के दोनों ओर स्त्रियाँ—कवि को जान पडता है जैसे रूप-यौवन का ही बाजार लगा है वहाँ ।

जानापुर के नागरिक भी रसिक हैं, कवि परखने मे देर नहीं करता । वे कुछ तो क्रय विक्रय के लिए, कुछ या ही खरीदने के बहाने उनसे दो बातें कर लेते हैं, आँखें मिलाकर कुछ मन को गुदगुदा लेते है । कवि की नजर उन नवोना तरुणियों पर भी पडती है, जो पहलेपहल किसी से चोरी-चोरी प्यार करना सीख रही होगी । इन्हे दूसरों की सीधी, निर्व्याज दृष्टि भी वक्र जान पडती हैं, क्योंकि वे अपने ही अपराध से सशक जो बनी रहती है ।[4]

यह चोरी का प्रेम विद्यापति की शृङ्गार का बहुमूल्य अवदान जान पडता है । एक जगह तो उसे ससार का सार ही बना दिया है कवि ने ।[5]

---

१ कीर्त्तिलता, द्वितीय पल्लव (सं० बाबूलाल सक्सेना), पृ० २२६ ।

२ "चलन्त गोपकामिनी गजेन्द्रमत्तगामिनी"—कीर्त्तिपताका ।
"गेल कामिनी गजहु गामिनी'
"गलि गजराजक भाने"—पदावली ।

3 ""यात्रा टूलहु परस्त्रीक वलया भाँग । ब्राह्मणक यज्ञोपवीत चाण्डाल हृदय लग्न, वेश्यान्हि करो पयोधर जतीक हृदय चूर
—कीर्त्तिलता (स० बाबूलाल सक्सेना), पृ० ३० ।

४ सब्बहुं केरा रिज नअन तरुणी हेरहि बक ।
चोरी पेम पियारिओ अपने दोष सशक ॥
—कीर्त्तिलता (स० बाबूलाल सक्सेना), पृ० ३२ ।

५ मि० म० वि०, ८६, पृ० ६६ ।

इस प्रसग मे सबसे आवर्षक वेश्यालय तथा वेश्याओ का वर्णन है। कवि ने उनके सौन्दर्य, केशविन्यास, वेशभूषा, हावभाव तथा अग-सौष्ठव का चित्रण किंचित् विस्तार के साथ किया है।[१]

विद्यापति के इस सौन्दर्य-वर्णन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने वेश्याओ के अग प्रत्यग का स्थूल या मासल चित्रण न करके उनके हाव-भाव, वस्त्र-प्रसाधन तथा रूपजन्य प्रभाव का ही वर्णन किया है। यद्यपि इस प्रसग के लिए विद्यापति को ज्योतिरीश्वर का ऋण स्वीकार करना ही पडेगा, पर यथासम्भव उन्होंने उसे रूढिबद्ध होने से बचाया है।

वेश्याप्रेम कृत्रिम ही नही निन्दनीय भी है, कवि ने इसका स्पष्ट सकेत किया है। वे धन के निमित्त ही प्रेम करती है, यह स्पष्ट रूप से कहकर कवि ने उन्हे शृङ्गार रस का आलम्बन बनने क गौरव से वचित कर दिया है। उनके केश मे टके फूल मानो उनके यहाँ आय हुए रसलोलुप सभ्रान्तजनो की मुखच न्द्रचन्द्रिकारप अन्धकार की उपहासजन्य हँसी है, यह कहकर वेश्यागमन का अनौचित्य भी सिद्ध कर दिया है।

'कीर्त्तिलता' के थोडे-से प्रसगो मे ही विद्यापति की शृङ्गार भावना की उपर्युक्त कई विशेषताओ पर प्रकाश पडता है।

कीर्त्तिपताका

इस नाम से अभिहित विद्यापति की रचना के प्रथम १४-१५ पृष्ठो मे शृङ्गार-प्रसग वर्णित हैं। कवि की प्रेमभावना के एक अभिनव स्वरूप का चित्रण इस अश मे मिलेगा। कवि को परम्परागत शृङ्गार-काव्य मे नायक की कामुकता तथा उसके केलि-विलासो के अनेक चित्र मिले होंगे। पर 'कीर्त्तिपताका' (तथा 'गोरक्ष-विजय' के एक स्थल पर) को छोड अन्यत्र उसने इस प्रकार का नग्न तथा मर्यादारहित कामाचार का चित्रण नही किया है जैसा कि इन पृष्ठो मे प्रस्तुत है। उस पर भी खूबी यह कि कवि ने इस नग्न शृङ्गार वर्णन का औचित्य सिद्ध करने के लिए तर्क भी दिये हैं। इस तर्क मे कृष्ण तथा राम दोनों ही आ गए है।[२]

---

[१] कीर्त्तिलता, पृ० ३४–३६।

[२] तद्यथा रामेण सीता-विरहदावानलदग्धमानसेन तत् खेदोपनोदाय कृष्णावतारेण गोपकुमारेण सनन्द सुन्दरीवृन्द सहस्र साहित्य समुपजातकुतुकेन कदाचित् व्रजसुन्दरीभि काक्कणित चन्द्रमुखीभि पीनपयोधराक्रान्त कदाचित् स्वाधीन भर्तृकाया मण्डलानि गृहीत्वासु महाभाग गृहीत्वा खेदित ।
—'कीर्त्तिपताका' (स० डॉ० उमेश मिश्र, तीरभुक्ति प्रकाशन प्रयाग), पृ०, ८–९।

रचना का प्रारम्भ करते हुए कवि ने पण्डितों पर एक छींटा मारा है[१], उसकी इन नग्न शृंगारमयी रचना की मर्यादावादी पण्डित समाज घोर निन्दा करेगा, यह शंका उसे पहले ही हो जाती है।

'कीर्त्तिपताका' के पाँच (९–१४) पृष्ठों मे वर्णित विलासलीला का प्रेरणास्रोत जयदेव का 'गीतिगोविन्द' हो सकता है। संस्कृत के कुछ महाकाव्यों (जैसे किराता-र्जुनीयम् तथा शिशुपालवधम्) मे पानगोष्ठी एव रमणी-विलास का विस्तृत तथा नग्न चित्रण किया गया है। विद्यापति को उनसे भी प्रेरणा मिली होगी। प्रेरणास्रोत चाहे जो भी हो, 'कीर्त्तिपताका' के ये पाँच-छ पृष्ठ नग्न शृङ्गार वर्णन मे अपने युग की रचनाओं मे भी अकेले ही होंगे।

विद्यापति के इस शृङ्गार चित्रण मे एक ही नायक अनेक तरुणियों के साथ एक संग विहार करता है। कवि ने जयदेव का अनुसरण करते हुए प्रारम्भ मे ही आठों अवस्था की नायिकाओं के नाम भी गिना दिये हैं—उन्ही नायिकाओं के, जिनका उल्लेख 'गीतगोविन्द' मे किया गया है। पर आगे के वर्णनों मे उनकी कोई चर्चा नही मिलती।

'कीर्त्तिपताका' के काम-सौध मे हृदय-पक्ष के विकास के लिए कोई स्थान नही हो सकता था। अत यहाँ कामक्रीडाओं का ही वर्णन है, प्रेम के गीत नही।

'कीर्त्तिपताका' के इन पृष्ठों में चित्रित नग्न शृङ्गार और भी आश्चर्यजनक जान पडता है, क्योंकि पुस्तक के प्रारम्भ मे कवि ने 'धम्मसहित सिंगार रस' का संदेश दिया था। यद्यपि उसी स्थल पर उल्लिखित 'तिरहुत्ति मज्जादा वहि रहिअ' राय अर्जुन की अमर्यादित उच्छृंखल विलास-लीलाओं के प्रति कवि के आक्रोश का संकेत भी हो सकता है।

साराश यह कि 'कीर्त्तिपताका' के इन पृष्ठों मे विद्यापति ने 'गीतगोविन्द' मे प्रस्तुत शृङ्गार-भावना के स्वरूप का अनुकरण किया है। अपने पदों से भी अधिक वे यहाँ गीतगोविन्दकार के समीप हैं। केवल यहाँ राधा और कृष्ण के नाम काम-क्रीडाओं के अन्तर्गत स्पष्ट या प्रत्यक्ष रूप से नही लिये गए है।

गोरक्ष-विजय

'गोरक्ष-विजय' विद्यापति कृत नाटिका है। इसमें कथनोपकथन पात्रानुसार संस्कृत मे तथा गीत मैथिली मे प्रस्तुत किये गए हैं।

'गोरक्ष-विजय' के गीतिपद काव्य-वैभव की दृष्टि से अधिक उच्च स्तर के नही।[२] पर विद्यापति की शृङ्गार भावना तथा उनके प्रेमकाव्य की विशेषताओं के

---

[१] पण्डिअ मण्डइ बद्धगुणे भीयम कौर मुहेन।
वाणी महुर महग्घरस पिअउ सुजन सवनेन॥
—कीर्त्तिपताका (स० डॉ० उमेश मिश्र, तीरभुक्ति प्रकाशन, प्रयाग), पृ० ५।

[२] गोरक्ष-विजय, भूमिका—डॉ० जयकान्त मिश्र, पृ० ३ (तीरभुक्ति प्रकाशन)।

अध्ययन के लिए इसमे बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध है। अन्यत्र की तरह यहाँ भी कवि ने शृङ्गार रस की महत्ता बतायी है।[१] साथ ही विलास-पक मे फँसे रहना पुरुष का श्रेय नही, यह सन्देश भी दिया है।

गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के कामरूप मे जाकर वहाँ की सुन्दरियो के प्रेम-फाँस मे फँसने, योग-जप-तप भूलने तथा पुन अपने शिष्य द्वारा उद्धार किये जाने की अनुश्रुति नाथपथी साहित्य एव निजन्धरी कथाओ मे अति प्रचलित है। 'गोरक्ष-विजय' की कथावस्तु भी यही है। अत इस नाटक मे शृङ्गार-प्रसगो के चित्रण के लिए उप-युक्त अवसर था। 'गोरक्ष-विजय' मे वर्णित केलि-प्रसगो की उन्मुक्त एकतानता की तुलना केवल 'कीर्त्तिपताका' के शृङ्गार-प्रसगो से की जा सकती है।[२]

एक पद मे कवि ने मत्स्येन्द्रनाथ के केलि-विलास का वर्णन करते हुए बहु-बल्लभ कृष्ण का भी उल्लेख किया है।

योगभ्रष्ट मत्स्येन्द्रनाथ के रमणी-विलास के प्रसग मे कृष्ण के उल्लेख तथा 'कीर्त्तिपताका' मे राम-जन्म मे सीता विश्लेष दुख के कारण केलि-विलास करने के हेतु कृष्णावतार की चर्चा[३] से विद्यापति की कृष्ण-गोपी लीला विषयक मान्यता का कुछ आभास मिलता है। इस मान्यता मे कृष्णभक्त वैष्णव लीलापदकर्त्ताओ की-सी भक्ति-भावना की रजना नही प्रतीत होती है।

---

१ कि करिबो जपतप योगधेआँन। कि करिबो दान कि परम गेआँन॥
भनइ विद्यापति युवति समाज। बड़े पुण्ये पाइअ यौवन-राज॥
—गोरक्ष-विजय, पृ० ७ (क)।

२ (अ) 'राजा कामपीडनो (तो) त्यलग्ना स्पृशति काम्यपि, पश्यति कामालिर्गातच,
—गोरक्ष-विजय, पृ० ७ (ग)।

(ब) खेल नरपति युवति संगे।
काहु आलिगए काहु निहार। काहु लिलोपत मलाजे मार॥
काहु बुझाव विसेषि सिनेह। पुलके मुकुल मण्डित देह॥
बहुल कामिनी एकल कन्त। कृष्णपति आयल सयनतन्त॥
रूपे से नागर रससिगार। कौतुके गाव कविकण्ठहार॥
—गोरक्ष-विजय, पृ० ७ (ख)।

(स) न तमसि परिच्छतां ···· ··· · ···· · समाधौ
न च विषयसमीहात्याग त्यक्तो विवेकाः।
तदिहल (न) लघुम्यः पूर्ण चंद्राननाभ्य :
कुसुमविशेषवत्योदन्त एयान्तरात्मा॥—गोरक्ष-विजय, पृ० ९ (ख)।

३ सीताविश्लेषदुखादिव रघुतनयो न.. . कृष्णावतार :
—कीर्त्तिपताका, पृ० ८।

साथ ही विद्यापति ने इस रचना मे सासारिक सुखो की सारहीनता भी बतायी है। 'गोरक्ष-विजय' का यही सदेश है। जैन कवियो की रचनाओ मे इसी प्रकार सौन्दर्य तथा प्रेमवर्णन एव उनकी निस्सारता का सदेश देने की पद्धति मिलती है।[1] गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ को रमणी-विलास-वारुणी की मोहनिद्रा से जगाता हुआ कहता है—

केओ अनुरागिनि केओ अनुराग।
सुपुरुष तेओ निते निते जाग॥
भनइ विद्यापति अनुभव जानि।
साएर छाडि कहा बस पानि॥
—गीत १७, पृ० १० (ख)।

इस ससार मे माया किसे नही अपने पाश मे बाँधकर पथभ्रष्ट कर देती है? धन, यौवन—ये सभी भुलाये रखनेवाली चीजें क्षणस्थायिनी हैं, सारहीन हैं, ये वचन विद्यापति की परिणत वय के ही पदो मे नही 'गोरक्ष-विजय' मे भी जो उनके जीवन के सबसे अधिक सुख-आनन्द, वैभव-उत्कर्ष, कीर्त्ति-ख्याति के दिनो मे प्रणीत रचना है, मिलते है।[2]

रमणी-विलास मन के पखो को अन्तर्नयन की ज्योति को स्वयप्रकाशिता बुद्धि की तीक्ष्णता को निष्क्रिय कर देता है, विद्यापति ने 'गोरक्ष-विजय' म यह चेतावनी दी है।[3]

पर नारी को नरक का द्वार न कहकर विद्यापति ने उसे 'सुकृतिक वाट'[4] कहा है। 'गोरक्ष-विजय' का वर्ण्य प्रेम या शृङ्गार नही। ये तो आनुषगिक रूप मे ही इसमे वर्णित हुए हैं। पर 'गोरक्ष विजय' के शृङ्गार पद भाव एव भाषा दोनो मे ही विद्यापति के कई गीतिपदो से बहुत मिलते हैं। प्रेम का गभीर रूप तो इनमे चित्रित नही हुआ है, पर जो कुछ भी है वह रसपूर्ण तथा आकर्षक है।

'पुरुष परीक्षा', 'कीर्त्तिपताका' तथा 'गोरक्ष विजय' के प्रेम एव शृङ्गार के चित्र कवि की पदावली मे चित्रित प्रमभावना के लिए एक परिप्रेक्ष्य-सा प्रस्तुत करते हैं।

---

[1] हिन्दी काव्य मे शृङ्गार काव्य की परम्परा—डॉ० गणपति चन्द्रगुप्त, पृ० १२९।

[2] माया बध ससार सबे अरुझायल ब्रह्म नेआने।
विद्यापति कवि गाया। ई धन यौवन पानिक छाया॥
—गोरक्ष-विजय, पृ० ११ (क)।

[3] पाँखि अछइते पाँखक नहि उडयो।
युवतिहि सगे विसरिगेल चन्द।
भनइ विद्यापति फोहअ फन्द॥
—गोरक्ष-विजय, पृ० ९ (ख)।

[4] सुकृतिक वाट विचित्रनओ नारि। —गोरक्ष-विजय, पृ० ११ (ख)।

इस परिप्रेक्ष्य पर विद्यापति के प्रेमगीत लौकिक शृङ्गार के हैं या भागवत प्रेम के यह निर्णय करने मे सहायता मिलती है । विद्यापति-साहित्य की भावधारा, कवि की प्रेम-भावना आदि के विषय मे इनका अत्यधिक महत्त्व है ।

इन तीनो रचनाओ के आधार पर विद्यापति के प्रेमचित्रण सम्बन्धी मेरी स्थापनाएँ—

(१) विद्यापति ने दाम्पत्य प्रेम के क्षेत्र म अनुकूल एव दक्षिण नायक का आदर्श रखा है । दम्पति की परस्परानुरक्ति ही प्रेम है, इससे इतर कामाचार मात्र ।

(२) दाम्पत्य प्रेम मे विश्वासघात गर्हित एव दण्डनीय है ।

(३) नारी रमणी है । विद्यापति उसे नरक का द्वार नही मानते, वह 'सुकृतिक वाट' है ।

(४) अनियन्त्रित रमणी-विलास के चित्रण कृष्ण-गोपी प्रसग मे आवरण मे ही किया गया है ।

जैसा कि कहा जा चुका है, विद्यापति के उपर्युक्त ग्रन्थो के प्रेम एव शृङ्गार के चित्र उनकी प्रेमभावना के अध्ययन के हेतु एक परिप्रेक्ष्य के रूप मे है । विद्यापति के प्रेमकाव्य का पूर्ण एव प्रसन्न रूप उनके गीतिपदो मे ही देखा जा सकता है । उनके गीतिपदो मे चित्रित प्रेमभावना के विवध पक्षो का विस्तृत विवेचन चौथे अध्याय मे किया जा रहा है अत यहाँ उसकी रूपरेखा का सकेतमात्र देकर इस प्रगग को समाप्त करेंगे ।

विद्यापति के प्रेमगीतो का अध्ययन करते समय उनकी जिन विशेषताओ पर सर्वप्रथम ध्यान जाता है वे निम्नलिखित हैं—

(१) विद्यापति के प्रेमगीत जिस रूप म आज उपलब्ध हैं उन्हे मुक्तक प्रणगीत-काव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है । यद्यपि कई सम्पादको तथा सकलन-कर्त्ताओ ने उनके पदो को विपयानुकूल सजा दिया है, पर इसका कोई प्रमाण नही कि कवि ने उसी क्रम मे उनको रचना की होगी । किसी एक समय तथा किसी निश्चित क्रम मे उनकी रचना कवि ने की हो इस पर विश्वास नही होता । विद्यापति के पद पूरे अर्थ मे मुक्तक ही हैं—प्रत्येक पद स्वत सम्पूर्ण ।

(२) विद्यापति के अधिकतर प्रेमगीतो की रचना किसी रसिक या सहृदय श्रोता के सम्मुख अथवा किसी विशेष अवसर पर गाये जाने के लिए हुई होगी, वैसे ही जैसे भक्त सूरदास के कृष्णलीला के अधिकतर पद श्रीनाथजी के मन्दिर मे भजन-कीर्त्तन के लिए रचे गए थे । विद्यापति स्वय कृष्णभक्त वैष्णव नही थे । उनके जीवनकाल मे मिथिला मे वैष्णव भक्ति का प्रचार भी नहीं था । अत विद्यापति ने राधाकृष्ण प्रेम के जो गीत लिखे है वे वैष्णव भक्ति पद-साहित्य की परम्परा की अग्रिम कडी न होकर प्राचीनकाल से चली आती हुई कृष्ण की गोपियो के साथ प्रेमकेलि की लौकिक परम्परा मे अधिष्ठित हैं ।

(३) विद्यापति के पदो म कोई क्रम या पूर्वापर सम्बन्ध नही है पर उनमे प्रेम-काव्य के विविध पक्षो का विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। अत आलकारिको द्वारा निर्दिष्ट शृगार-काव्य के क्रम अथवा परवर्ती गौडीय वैष्णव पद-साहित्य म वर्णित राधाकृष्ण प्रेम के अनुक्रम मे विद्यापति के पदो को सजाने मे कोई कठिनाई नही होती। वेनीपुरी तथा मित्र मजूमदार प्रभृति सम्पादको ने ऐसा ही किया है। विद्यापति के प्रेम-काव्य म प्रेम चित्रण का कोई भी पक्ष छूटा नही है अत उनके पदो के ऐसे अनुक्रम मे कही व्यवधान या रिक्त स्थान नही रहता।

(४) विद्यापति पूर्ववर्त्ती आलकारिको या परवर्त्ती रीतिवादियो की तरह शृङ्गार के सागोपाग चित्रण की योजना बनाकर पदो की रचना मे प्रवृत्त नही हुए फिर भी उनके पद-पारावार मे रसराज की शास्त्रीय मान्यताओ के अनुसार भी लगभग सभी उपादान उपस्थित हैं। शृङ्गार के दोनो पक्ष—सभोग शृङ्गार और विप्रलभ शृङ्गार का शायद ही कोई चित्र हो जो उनसे छूटा हो। विभिन्न श्रेणी की नायिकाएँ, उनके अलकार, कामदशाएँ, भाव, अनुभाव, सचारीभाव आदि इस अद्भुत रस-पारावार मे भरे हुए मिलेंगे। भरत और वात्स्यायन, अमरुक और जयदेव—सभी से विद्यापति ने बहुत-कुछ पाया है, उनकी स्थापनाओ को मानकर वे चले है, उनकी सरस उक्तियो की माधुरी से अपने शब्दो को अभिसिंचित किया है। इसमे तनिक भी अत्युक्ति नही कि विद्यापति शृङ्गार-काव्य के मर्मी शिल्पकार हैं।

(५) विद्यापति के प्रेमगीतो मे रीति-सकेत मिलते हैं, पर उनकी शैली रीति-बद्ध नही। उन्होंने परम्परा से प्राप्त अभिव्यजना-रूढियो कवि-प्रसिद्धियो तथा प्रौढोक्ति सिद्ध उपकरणो का मुक्तहस्त से व्यवहार किया है, फिर भी उनके पदो मे एक ताजगी है, जिसकी सोधी गन्ध कभी मन्द नही होती।

'पदावली' मे कवि ने प्रेमचित्रण की मुख्यत तीन पद्धतियाँ अपनायी है—(क) राधा-कृष्ण को नायक-नायिका मानकर प्रेमचित्रण, (ख) सामान्य नायक-नायिका के प्रेमगीत, तथा (ग) शकर पार्वती के दाम्पत्य जीवन के भक्तिरसरजित चित्र। यद्यपि विद्यापति के अधिकतर पदो म राधा-कृष्ण के नाम औपचारिक रूप से ही आये है इनम प्रेम के विप्रलभ या सभोग पक्ष का चित्रण करना ही कवि का अभीष्ट है, पर कुछ पदो म वैष्णव पदावलियो मे वर्णित राधा-कृष्ण प्रेम की झलक भी मिलती है। गौडीय भक्तो के मध्य अधिक प्रचलित पदो मे ऐसे रसस्पर्श सबसे अधिक हैं।

'पदावली' म विद्यापति ने कृष्ण का अनेक गोपियो के साथ विहार करने का उल्लेख[१] कई बार किया है पर विहार-लीला का सागोपाग चित्रण एक भी पद म नही

[१] मि० म० वि०, ७१७ ७१८, पृ० ४६८।

मिलेगा। विद्यापति के पदों मे "दिलष्यति कामपि, चुम्बति कामपि, रमयति कामपि रामाम्"[१] जैसे मसृण चित्र नही मिलते।

ऐसे पद जिनमे राधा या कृष्ण या दोनो के नाम आये है, सख्या म सबसे अधिक है। इनमे वर्णित प्रेम मे ग्रामीण अकृत्रिमता या सरलता की भलक उतनी नही मिलती जितनी नागर चातुर्य की।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे "विद्यापति ने राधिका की जिस प्रेम-मयी मूर्ति की कल्पना की है उसमे विलासकलावती किशोरी का रूप स्पष्ट ही प्रधान है।"[२] फिर भी विद्यापति की यह राधा कृष्ण के चरणो पर अपने को पूर्णतया न्योछावर कर देती है। यहाँ तक कि कृष्ण के बहुवल्लभ होने का भी उसे खेद नही। वह सामान्य नायिकाओ की तरह ईर्ष्या की ज्वाला मे विदग्ध नही होती। जयदेव की राधा कहती है—

गोविन्द व्रजसुन्दरीगणावृत पश्यामि हृष्यामि च।[३]

विद्यापति की राधा भी कृष्ण के चरणा पर आत्मसमर्पिता होकर कहती है—

ए कन्हाई तोहर बचन अमोल।
जाव जीव प्रतिपालब बोल॥
भलजन बचन दुअओ समतूल।
बहुल न जानए रतनक मूल॥
हमे अबला तुअ हृदय अगाध।
बड भए खेमिअ सकल अपराध॥"[४]

कृष्ण-राधा जिन पदो मे नायक-नायिका के रूप मे आये हैं उन पर 'गीत-गोविन्द' का प्रभाव अनेक स्थलो पर दीख पडता है। जयदेव की विप्रलब्धा या विरहोत्कण्ठिता कृष्ण को निश्चित समय पर भी नही आये हुए देखकर अनुतप्त होती हुई कहती है—

कथित समयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम्।
मम विफलमिदममल रूपमपि यौवनम्॥[५]

विद्यापति की विरहिणी राधा अपने रूप-यौवन ही नही अपने जीवन को भी व्यर्थ मानने लगती है—

की मोरा जीवने, की मोरा यौवने, की मोरा चतुरपने।

जीवन, यौवन, चातुरी—सभी कुछ व्यर्थ हैं, विफल हैं यदि कृष्ण को वह नही रिझा सकी।

---

१ गीतगोविन्द, १/४/८, पृ० ८६।
२ मध्यकालीन धर्मसाधना—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १८३।
३ गीतगोविन्दम्, २/६/ १०, पृ० ९४।
४ मि० म० वि०, ४१०, पृ० ३२१।
५ गीतगोविन्द, ७/१२/१, पृ० ११३।

के कई पदो का वर्ण्य है। अन्य किसी गोपी का नाम विद्यापति के पदो में नही मिलता। कृष्ण के विरह मे कातर ब्रज की गायो, यमुना, वृक्ष, लता आदि का वर्णन जैसा कि सूर आदि परवर्ती कृष्ण-भक्त कवियो ने किया है विद्यापति नही करते। कृष्ण के 'मथुरापुर' म बस जाने तथा राधा को विसरने का उल्लेख एकाधिक पद मे विद्यापति ने किया है, पर कुब्जा के प्रेम म आसक्त होने की चर्चा उन्होने नही की है। विरह के कुछ पदो में नायिका यह कहकर अपने भाग्य को कोसती हुई दिखायी गयी है कि कृष्ण गोपाल या गोआर[1] है उन्ह करामति नारी की पहचान नही, वे जहाँ-तहाँ प्रेम करते रहते है जबकि उनके विरह म कुलवती नायिका खिन्न रहती है। इन पदो मे कृष्ण का उल्लेख इतना ही मात्र है।

बगीय वैष्णवों मे राधाकृष्ण विषयक जो पद अधिक लोकप्रिय रहते आये हैं उनमे प्रोषितपतिका राधा या उपेक्षिता राधा के चित्रण वाले पद अधिक नही। उपेक्षिता राधा तो विद्यापति-युग के रनिवासा की देन हो सकती है। वैष्णवो की राधा अक्षययौवना है वह भला "जीवन रतन अछल दिन चारि, तावे से आदर कएल मुरारि" कह कर क्यो रोयेगी ?

'पदावली' मे वर्णित प्रेम का आदर्श है—

सुपहुँ सुनारि सिनेह। चाँद कुमुद कर रेह॥

यह भी कुछ विचित्र लगता है कि जिस कवि ने परकीया प्रेम का चित्रण सैकडो पदो मे किया है वह स्त्री को दाम्पत्य प्रेम की मर्यादा एव उसकी पवित्रता का उपदेश दे। "चारि प्रेम ससारेरि सार" और "परपुरुषक सिनेह मन्द"—दोनो में सगति कहाँ बैठती ? नारी का प्रेम सागर के जल की तरह अपनी सीमा का अतिक्रमण नही करता है, कवि ने एक पद मे कहा है—

अइसन कए बोलहु निअसिम तेजि कहूँ
उछल पयोनिधि नीरे।[2]

प्रीति की लगन दोनो ओर होती है पर यदि किसी के दिन ही अच्छे नही हो तो उसका क्या वश—

पीरिति गुन विपरीत होए साए
विपरीत न कर नाह।

---

[1] गोप को विद्यापति ने अन्यत्र भी अविवेकी कहा है, यथा—
'हीयते हीनसंसर्गाद् बुद्धिमानपि मानवः।
गवां संसर्गमात्रेण गोपो भवति बालिश॥'
—पुरुषपरीक्षा, १४/१, पृ० ९०

[2] मि० म० वि०, २६३, पृ० १२१।

दिवस दोसे को नहि सम्भव
पेम परानहु चाहु ।[१]

विद्यापति ने दाम्पत्य प्रेम के कुछ बडे ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रवत्स्यत् पतिका का निम्नांकित चित्र कितना सजीव तथा स्वाभाविक है—

उठु उठु सुन्दरि हम जाइछी विदेस ।
सपनहु रूप नहि मिलत उदेस ॥
से सुनि सुन्दरि उठलि चेहाय ।
पहुँक वचन सुनि बैसलि भमाय ॥
उठइत उठलि बैसलि मन मारि ।
विरहक मातलि खसलि हिय हारि ॥
एक हाथ उबटन, एक हाथ तेल ।
पिय के नमनओ सुन्दरि चलि देलि ॥[२]

नायिका गाढी नीद मे सोयी हुई थी। विदेशगमन को उद्यत नायक उसे जगाकर अपनी विदेश-यात्रा की बात कहता है। नायिका यह सुनते ही 'चेहा' उठती है स्तब्ध हो जाती है, उसके मुँह से शब्द नही निकलते, उठती है, फिर बैठ जाती है, उसका चेहरा विवर्ण हो जाता है, उसे तन-मन की सुधबुध नही रहती। फिर यह सोच कर कि विदेश जाते हुए पति को प्रणाम करके विदा तो करना होगा, वह उसके लिए उठती है, पर उसे घबराहट, व्यथा और हडबडी मे इसकी भी सुध नही रहती कि कौनसी वस्तु हाथ म लेकर वह अपने पति को विदा करे जिसमे उसकी यात्रा मगलमय हो। जल्दीबाजी और घबराहट मे वह अपने प्रसाधन की ही वस्तुओं को—एक हाथ मे उबटन और एक हाथ मे तेल लेकर—उसे प्रणाम करने लगती है। आसन्नविरह की स्थिति मे वह जो कुछ भी हाथ मे लेकर चल पडती है वह यात्रा-समय के अनुकूल नही।

शास्त्रीय दृष्टि से इस पद मे प्रवत्स्यत्पतिका का मार्मिक चित्र मिलेगा। अनेक अनुभावो (चेहाय, भमाय) एव सचारी भावो से परिपूर्ण यह पद गागर मे सागर भरने के समान है। पर उसकी वास्तविक विशिष्टता तो नायिका में आसन्नविरह की सूचना अकस्मात् पाने पर स्तब्ध जडीभूत हाने की अवस्था में सहज स्वाभाविक चित्रण म है।

सभोग शृङ्गार के चित्रो मे भी ऐसी ही स्वाभाविकता की झलक मिलती है। नवीना नायिका एव नया प्रेम होन पर तो नायक यो ही उसका दास बना रहता है पर कुछ दिन बीतने पर आकर्षण कम होने लगता है, इस समय नायिका को अपनी प्रणय-

---

१ मि० म० वि०, १८२, पृ० १३९।
२ वही, ८७५, पृ० ५५७।

कला का प्रयोग कर नायक के मद पडते हुए आकर्षण को पुनर्दीप्त करना आवश्यक होता है। विद्यापति की सीख है—"गेल भाव जे पुनु पलटावए सेहे कलमति नारि"।

'गेल भाव" को पलटाने का तरीका क्या है ? कवि ने वह भी बताया है—

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिव जोख नागर दे दस लाख॥
केओ दे हास सुधा सम नीक।
जइसन परहोक तइसन बीक॥
सुनु सुन्दरि नव मदन-पसार।
जनि गोपह आओव बनिजार॥
रोस दरस रस राखव गोए।
धएले रतन अधिक मुल होए॥
भनइ विद्यापति सुनह्नु सयानि।
सुहित वचन राखव हिय आनि॥[१]

प्रीति की लता आँखो ही आँखो मे अकुरित होकर सम्पूर्ण मन-प्राण पर छा जाती है, पर नागर नायक को अपने वश मे रखने के लिए नारी को 'कलामती' होना भी आवश्यक है। विशुद्ध भावात्मक प्रेम के चिर सुन्दर लोक मे चाहे जो हो, पर मध्यकालीन भारतीय नारी का दाम्पत्य जीवन एक प्रकार के 'मदन-पसार' ही के समान होता था, जिसमे उसके प्रिय के उसकी ओर से विमुख होकर अन्य रमणियो मे आसक्त होने की सभावना हमेशा बनी रहती थी। कवि ने ऐसे समाज के उपर्युक्त इस पद मे नायिका को प्रेम की कला की सीख दी है। प्रेमभावना की गम्भीरता इस पद मे नही मिलेगी, पर मध्यकालीन दाम्पत्य जीवन के यथार्थ का एक चित्र कवि ने इसमे अवश्य ही प्रस्तुत किया है। विद्यापति के पद-साहित्य मे प्रेमचित्रण के विविध स्वरूप का यह एक महत्वपूर्ण एव बडा ही रोचक पक्ष है।

विद्यापति की 'पदावली' मे दाम्पत्य प्रेम का एक अभिनव रूप कतिपय महेश वाणियो मे मिलता है।[२] ये पद शकर-स्तुति सम्बन्धी है, इनमे स्थायी सुर भक्ति-भावना का है, पर एकाधिक पद मे शकर-पार्वती के प्रेम की बडी ही मनोहर व्यजना कवि ने प्रस्तुत की है। एक पद मे भवानी का भगवान शकर की आराधना करने का चित्रण किया गया है। भवानी फूल और बेलपत्र लेकर शकर-पूजन करने जाती है, शकर उन्हें अपने तीनों नयनो से देखने लगते हैं। गौरी का चित्त प्रेम-विह्वल हो जाता है। शरीर मे कम्पन होने लगता है, हाथों से फूल गिरकर चारो ओर बिखर जाते है। कवि कहत

[१] मि० म० वि०, २७३, पृ० २०० ।

[२] वही, ७८८–९१, पृ० ५१२–१३।

है कि भगवान के दर्शन से गौरी का चित्त विचलित हो गया है। फिर कहाँ रहता जप-तप का ध्यान भावावेग में ?[1]

गौरी और महेश का दाम्पत्य जीवन भी विचित्र है। आशुतोष महेश, जो अवढर दानी है, अपनी गृहस्थी की चिन्ता नही करते, उनके घर में हमेशा अभाव का साम्राज्य रहता है। उनकी सम्पत्ति है केवल एक 'भाग घोटना' और दरवाजे पर 'वसहा बैल'। कभी शकर पार्वती से स्थूलकाय गणेश की शिकायत करते है, तो पार्वती अपने पुत्र का पक्ष लेकर उन्ही पर बरस पडती है।[2] कभी पति-पत्नी मे कुछ खटपट हो जाती है, शकर रूठ कर कही चले जाते हैं, गौरी विकल चित्त होकर उनके विषय मे पथिक जनो से पूछती चलती है—

एं पथ देखल कहूँ बूढ बटोही
अग मे विभूति अनूपे।
कतेक कहब ओही जोगिक सरूपे।[3]

रूठे महेश की खोज मे गौरी पागल-सी हो जाती है—

गौरी हर लए भेलि बताही।

दाम्पत्य प्रेम के ये चित्र यद्यपि हर-गौरी विषयक हैं तथा ऐसे पदो का गान करते हुए लोग भक्ति-भावना मे विभोर हो जाते हैं पर इनमे पारिवारिक जीवन का एक रूप कितनी सत्यता के साथ पाठक की आँखो के समक्ष साकार हो उठता है यह हमारे देश के ग्रामीण जीवन से परिचित किसी भी सहृदय व्यक्ति से छिपा नही रह सकता। विद्यापति-साहित्य मे चित्रित प्रेम का यह स्वरूप भारतीय नारी जीवन के एक सुपरिचित पक्ष को रूपायित करता है।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति ने प्रेमभावना का चित्रण समग्र जीवन के परिप्रेक्ष्य पर किया है। विद्यापति-साहित्य मे चित्रित प्रेम एकागी या एकपक्षीय नहीं। जीवन के विस्तृत आधारफलक से विच्छिन्न किसी रोमानी कल्पनाकुज मे उनका प्रेमलोक नही बसा है।

(२) परकीया प्रेम का चित्रण करते हुए भी विद्यापति ने दाम्पत्य नैतिकता के आदर्श पर बल दिया है। परपुरुष प्रेम को गर्हित बताकर नारी के प्रेम को सागर की तरह गम्भीर एव मर्यादा का सीमातिक्रमण नही करनेवाला बताया है।

(३) विद्यापति के प्रेमकाव्य के एक बहुत बडे अश म कृष्ण-राधा नायक-नायिका के रूप मे चित्रित हुए हैं। इनमे कुछ पदा मे कृष्ण-राधा का प्रेम ही वर्ण्य है, ऐसा जान

---

[1] मि० म० वि०, ७६०, पृ० ५१३।

[2] वही, १३, पृ० १३।

[3] वही, ७६१, पृ० ५१४।

पडता है, पर अधिकतर पदो मे कृष्ण या राधा के नाम औपचारिक रूप से ही लिये गए हैं।

(४) विद्यापति की 'पुरुषपरीक्षा', 'कीर्त्तिपताका', 'कीर्त्तिलता', 'गोरक्ष विजय' तथा गीतिपदो मे उनकी शृङ्गार-भावना के विभिन्न स्वरूप चित्रित हुए हैं—

(क) 'पुरुषपरीक्षा' मे कवि ने दाम्पत्य प्रेम की पवित्रता तथा मर्यादा का चित्रण किया है। उस युग की नारी-भावना का सकेत भी इसमे मिलता है।

(ख) 'कीर्त्तिलता' मे आनुषगिक रूप से ही शृङ्गार-प्रसग आये हैं, इसमे नारी-सौन्दय के चित्रण तथा नारी-मनोविज्ञान सम्बन्धी कवि की सूझ की झलक मिलती है। उस युग की स्त्रिया के शृगार प्रसाधन, केशविन्यास आदि का चित्रण भी कवि ने किया है।

(ग) 'कीर्त्तिपताका' मे कवि ने 'पुरुषपरीक्षा' म प्रतिपादित "धर्म सहित शृङ्गार" के आदर्श को फिर दोहराया है, पर पृष्ठ ६-१४ तक एक नायक के अनेक नायिकाओ के साथ विहार करने का विस्तृत चित्रण किया है। 'कीर्त्ति-पताका' के शृ गार प्रसग पर 'गीतगोविन्द' का प्रभाव भी हो सकता है। प्रारम्भ मे विभिन्न अवस्था-नायिकाओ के उल्लेख से प्रतीत होता है कि कवि ने इसे रूढिबद्ध शृगार वर्णन का स्वरूप देने का भी प्रयत्न किया होगा, पर पुस्तक के खडित होने से कुछ कहा नही जा सकता। विद्यापति-साहित्य के प्रेमचित्रो मे यह सबसे अधिक मासल एव नग्न है।

(घ) 'गोरक्ष-विजय' पर जैन काव्यो का प्रभाव है। पर इसका शृ गारचित्रण 'गीतगोविन्द' से प्रभावित है। नग्नता मे यह 'कीर्त्तिपताका' के शृंगार-चित्रण से मिलता है। 'बहुल कामिनी एकल कन्त" के प्रेमविहार का चित्रण कवि ने इसमे भी किया है। साथ ही नारी को 'सुकृतिक वाट' कहकर उसे गौरव भी दिया है। कामिनी विलास मे डूबे रहने को त्याज्य कहा है।

(च) गीतिपदा मे कवि ने मुक्तक शृ गार-काव्य की शैली मे शृगार रस का सागोपाग चित्रण किया है। इसमे किसी रूढि या परम्परा मे कवि ने अपने को नही बँधने दिया है। अधिकतर पदो मे प्रेम की मार्मिक अनुभूतियाँ वर्णित हैं। पर कुछ पदो मे कायिक पक्ष भी मुखर हो उठा है। ३०-४० पदो मे व्यक्त भावधारा कृष्ण-राधा विषयक वैष्णव पद-साहित्य की भाव-धारा से मिलती-जुलती है, जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

(५) महेशवाणी मे शकर-पार्वती के दाम्पत्य प्रेम सम्बन्धी एकाधिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। इन पदो का मूल स्वर भक्तिभावनापरक है पर दाम्पत्य प्रेम की मनोहर व्यजना भी इनमे मिलती है।

विद्यापति की प्रेम-भावना—भागवत या लौकिक ?

विद्यापति के गीतिपद शृगारिक हैं या वैष्णव भक्तिपरक यह विवाद उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों से लेकर बीसवीं सदी के प्रथम दो-तीन दशकों—लगभग एक अर्द्ध-शताब्दी तक—चलता रहा। इनमें ग्रियर्सन, शारदाचरण मित्र, महा-महोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री, श्री कुमारस्वामी, नगेन्द्रनाथ मित्र, डॉ० जनार्दन मिश्र, डॉ० उमेश मिश्र, प० शिवनंदन ठाकुर आदि अनेक विद्वानों ने अनेक तर्क, युक्तियों एव उदाहरण के साथ अपने विचार व्यक्त किये। बँगला तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों मे यह भी विवाद उठाया गया है। अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' मे प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"आजकल आध्यात्मिक ढग के चश्मे बहुत सस्ते हो गए हैं.......... . ... ."[1]

पर विद्यापति को भक्त कवि होने का गौरव 'आजकल' नहीं दिया जाने लगा है। ५०० वर्षों से बगदेश, कामरूप एवं उत्कल मे उन्हे वैष्णव भक्त एवं वैष्णव पद-कर्त्ताओं मे अग्रगण्य माना जाता रहा है। सोलहवीं शताब्दी के हरिभक्त कवि गोविन्द दास (१५३५–१६१३) अपने को विद्यापति का शिष्य मानने मे गौरव का अनुभव करते थे। उनका एक पद है—

> विद्यापति-पद युगल-सरोरुह निष्पन्दित-मकरन्दे।
> तछु मझु मानस-मातल मधुकर पिवइते करु अनुबन्धे॥
> हरि हरि आर किये मंगल होय।
> रसिक-शिरोमणि नागर-नागरि लीला स्फुरव कि मोय॥[2]

गोविन्ददास ही नहीं 'ब्रजबुलि' और बँगला के अनेक प्रथम श्रेणी के वैष्णव पदकर्त्ता कवियों ने विद्यापति के गीतिपदों से प्रेरणा पायी तथा उनके शिल्प का अनु-करण किया, यह बँगला साहित्य के इतिहासकार मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं।[3] यहाँ उस विवाद मे न पडकर दोनों पक्ष के तर्कों की सूत्र-रेखा मात्र प्रस्तुत की जा रही है।

विद्यापति के पदों को वैष्णवीय भक्ति रस का पद माननेवाले विद्वान् सामान्यत निम्नलिखित आधार प्रस्तुत करते हैं—

(१) चैतन्यदेव विद्यापति के पदों का बडे ही प्रेम से गान करते थे, उन्हे सुनकर वे भक्तिविभोर होकर नृत्य करने लगते थे तथा मूर्च्छित भी हो जाते थे।[4]

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५७।
[2] ब्रजबुलि साहित्य—रामपूजन तिवारी, पृ० १२८ १२६।
[3] बंगभाषा ओ साहित्य—दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १४८।
[4] चैतन्य चरितामृत—कृष्णदास कविराज।

(२) चण्डीदास और विद्यापति की भेंट हुई थी[1] तथा इस भेंट के फलस्वरूप चण्डीदास वैष्णव भक्तिरस के पद लिखने लगे।

(३) गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय विद्यापति के पदों का भजन-कीर्तन चार-पाँच सदियों से करता आया है।

(४) 'व्रजबुलि' का उद्भव तथा उसमे पद-साहित्य की रचना विद्यापति के प्रभाव एव अनुकरण पर हुई। क्योकि वह वैष्णवीय भक्तिरस का साहित्य है अत यह भी उससे भिन्न नही हो सकता।

(५) बग, कामरूप तथा उत्कल तक विद्यापति के पद फैले हुए है, सर्वत्र वैष्णव भक्तिरस के पद के रूप मे ही उन्हे गाया जाता है, लौकिक शृगार के पदो के सम्बन्ध मे इतने बड भूभाग मे इतनी बडी भ्रान्ति इतने लम्बे अर्से तक नही हो सकती।

(६) विद्यापति के पदो मे कृष्ण एव राधा या उनके पर्यायवाची नाम बार-बार आये है।

(७) विद्यापति के कुछ पदो[2] मे स्पष्ट एव निर्विवाद रूप से लोकोत्तर प्रेम की व्यजना होती है, इसे परवर्ती काल में प्रतिपादित उज्ज्वल रस से अभिन्न नहीं कहा जा सकता।

(८) विद्यापति के कुछ पदो मे यमुना, मथुरापुर, कदम्ब-तरु, वशी आदि का स्पष्ट उल्लेख है, इससे उनका कृष्णलीला विषयक होना सिद्ध होता है।

(९) कुछ पदो मे रास तथा राधा-माधव विहार का स्पष्ट उल्लेख है।[3]

(१०) कृष्ण की वशी का उल्लेख दो-तीन पदो मे विद्यापति ने किया है।[4]

(११) विद्यापति के पदो पर जयदेव के 'गीतगोविन्द' का स्पष्ट प्रभाव है। उनकी एक उपाधि 'अभिनव जयदेव' भी थी।

(१२) हजारो वर्षो तक मिथिला पचगौड के अन्तर्गत मानी जाती थी, बगाल से उसका बहुत ही घनिष्ठ सास्कृतिक एव राजनीतिक सम्बन्ध रहता आया है मिथिलाक्षर एव बँगला लिपि मे आश्चर्यजनक साम्य है। दोनो ही प्रदेशो मे शाक्त प्रभाव रहा है। अत वैष्णवीय भक्ति के प्रभाव से मिथिला का एकदम दूर रहना विश्वसनीय नही जान पडता, जबकि पडोसी देश मे उसका इतना व्यापक प्रभाव हो।

(१३) यह कहना ठीक नही कि विद्यापति के सारे पूर्वपुरुष शैव थे एव समसामयिक लोग भी वैष्णव धर्म के पक्षपाती नही थे क्योकि उन्ही के एक पूर्वज गोविन्ददत्त ने 'गोविन्दमानसोल्लास' की रचना की, जिसके मगलाचरण मे अपना परिचय हरिकिकर कहकर दिया है। 'दण्डविवेक' विद्यापति के एक आश्रयदाता भैरवसिंह के मन्त्री वर्द्धमान की रचना है, जिसके मगलाचरण म निम्नलिखित श्लोक सम्मिलित है—

---

[1] चैतन्य एण्ड हिज एज—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १५-१७।
[2] मि० म० वि ७३६, ७६८ आदि।
[3] वही, ७१७-१८, पृ० ४६८।
[4] वही, ६३६, पृ० ४२३ आदि।

साधं राधिकया धनेषु विहरन्तस्याञ्च कपोलस्थले ।
धर्माम्भोविसर प्रसारिणमपाकर्त्तं करेण स्पृशन्
तत्र प्रयुत सात्त्विकाम्बुमिलनादोजायमाने जवाद
व्याहो विफल प्रयास विफलो गोपालाख्यो हरिः ॥[1]

इस मगलाचरण मे व्यक्त भाव वैष्णव भक्तिरस से ओतप्रोत है, अत वैष्णवीय प्रभाव चाहे सीमित ही हो पर मिथिला के सुधी समाज पर एकदम नही था यह कहना भ्रमात्मक है ।

(१४) विनय के पदो[2] मे कवि ने माधव या कृष्ण की ही पुकार की है, बडे ही कातर स्वर मे कवि की आर्त्तपुकार इन पदो मे सुन पडती है, इससे उनका कृष्ण-भक्त होना ध्वनित होता है ।

उपर्युक्त तर्को मे कोई बल नही या वे नितान्त तथ्यहीन है, ऐसा कहना कठिन होगा । विद्यापति के पद बगदेश मे पाँच सदियो तक वैष्णव भजन-कीर्तन के पद के रूप मे मान्य रहे है, आज भी गौडीय वैष्णवो के घरो मे उनके कुछ पद बडे ही प्रेम तथा भक्ति के साथ गाये जाते हैं । पर वास्तविकता यह है कि विद्यापति न तो वैष्णव भक्त थे और न वैष्णव पदकर्त्ता ही, इसके लिए निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) मिथिला स्मार्त वैष्णवो, शैव एव शाक्त मत का गढ रही है, यहाँ वैष्णव भक्तिरस की साधना कभी भी लोकप्रिय नही हुई । साथ ही यहाँ व्यक्तिगत रूप मे किसी उपासना-पद्धति को अपनाने पर कोई रोक भी नही रही है, विद्यापति के परवर्ती गोविन्ददास गौडीय वैष्णवो की पक्ति मे बैठने योग्य है, पर विद्यापति की जीवनी, व्यक्तित्व या उनकी रचनाओ से ऐसा सकेत नही मिलता कि वे राधा-कृष्ण के भक्त रहे हो तथा उनके लीलापदो का सकीर्तन करते हो ।

(२) ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' मे विद्यापति-युगीन मिथिला के सामाजिक जीवन, सभ्यता-सस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है । मिथिला के कर्णाटवशीय राजाओ की राजधानी सिमराओनगढ के जनसमूह का उल्लेख लेखक ने बडे ही विस्तार के साथ किया है, पडितो, पुरोहितो, विद्वानो, लोरिक[3] गानेवालो, यहाँ तक कि 'चउलिया' की चर्चा भी नही छूटी है । पर उसमे कहीं भी लीला सकीर्त्तन या वैष्णवीय भक्ति सम्प्रदाय का सकेत नही है ।

(३) विद्यापति के प्रेमगीत मिथिला मे प्रेमगीतो के ही रूप मे लोकजीवन मे बसे हुए है । हरिकीर्तन मिथिला म आज भी होता है, पूर्वी क्षेत्रो म इसकी परम्परा सदियो पुरानी है, पर विद्यापति के पद इन अवसरो पर नही गाये जाते ।

---

[1] विद्यापति, भूमिका—मित्रमजूमदार, पृ० १०२-३ ।
[2] मि० म० वि०, ७६६, ७७०, ७७१ ।
[3] वर्णरत्नाकर—ज्योतिरीश्वर ठाकुर (स० डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी), पृ० २ ।

(४) विद्यापति के पद विवाह-शादी, यज्ञोपवीत, झूला या यात्रा मे गाये जाते है। उनके "माधव हम परिणाम निराशा" आदि शीर्षको से आरम्भ होनेवाले विनय के पदों का मिथिला मे प्रचलन नही है।

(५) विद्यापति की 'नचारी' तथा महेशवाणी' मिथिला के भक्तिगीत है।

(६) विद्यापति की परिणत वय की रचनाएँ है 'शैवसर्वस्वसार' तथा 'दुर्गाभक्ति तरगिणी', 'विभागसार' तथा 'दानवाक्यावली', 'वर्षकृत्य' तथा 'गयापत्तलक'। इनकी रचना के पूर्व श्रीमद्भागवत की प्रतिलिपि उन्होंने राजवनौली प्रवास की अवधि मे तैयार की थी। अत यह कहना ठीक नही कि विद्यापति परिणत वय मे राधाकृष्ण के भक्त हो गए थे।

(७) विद्यापति परिणत वय म राय अर्जुन की छत्रछाया म रहकर पद रचना नही कर रहे थे जैसा कि श्री विमानविहारी मजूमदार ने लिखा है।[१] जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है, राय अर्जुन को समर्पित कवि की नग्न श्रृङ्गार की रचना है जो 'कीर्त्तिपताका' नाम से अभिहित ग्रन्थ मे प्रथम (उपलब्ध) १४ पृष्ठो मे सकलित है। इसम न तो शब्दों की मितव्ययिता है और न भावो का गाम्भीर्य ही। राय अर्जुन विद्यापति की परिणत वय मे सभवत्त जीवित भी नही थे, शिवसिंह के मुसलमानो से अन्तिम युद्ध के पूर्व ही वे रजाबनौली-नरेश पुरादित्य गिरिनारायण द्वारा मारे जा चुके थे। इसका सकेत कवि ने 'लिखनावली' के प्रारम्भ मे ही दिया है।[२]

(८) विद्यापति के पद-साहित्य की भावधारा को उनके अन्य ग्रन्थो से पृथक करके देखना ठीक नही। 'पुरुषपरीक्षा', 'कीर्त्तिलता', 'कीर्त्तिपताका' एव 'गोरक्ष-विजय' विद्यापति की अन्य साहित्यिक रचनाएँ है। इनमे कवि के राधाकृष्ण का भक्त या वैष्णव पदकर्त्ता होने का कोई सकेत नही मिलता। विद्यापति ने किसी भी रचना के आरम्भ मे विष्णु-लक्ष्मी या कृष्ण-राधा की स्तुति नही की है। 'पुरुष-परीक्षा' और 'कीर्त्तिलता' के आरम्भ मे आदि शक्ति एव शिव की स्तुति क्रमश की गई है। •

(९) 'पुरुषपरीक्षा' मे कवि ने मानव जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारो पुरुषार्थों की साधना इसका मूल सूत्र है। यह

---

[१] 'दुख के दिनो मे अर्जुन राय के आश्रम मे बैठकर कवि ने जो विरह के गीत गाये (पद स० २१२) उनमे शब्द कम परन्तु भाव गम्भीर है।"

—मि० म० वि०, भूमिका, पृष्ठ ६६।

[२] जित्वा शत्रुकुलन्तदीयवसुभिर्येनार्थितर्स्तर्पिता—
दोर्द्दर्पार्जित सप्तरी जनपदे राज्यस्थिति' कारिता।
संग्रामेषु'न भूपतिर्विनिहतो बन्धो नृशसायित-
स्तेनेयं लिखनावली नृपपुरादित्येन निर्मापिता ।

—लिखनावली, मगलाचरण

देखिए—बि० रा० ञा० प० पदावली, भूमिका, पृ० ६७।

(१३) 'कीर्त्तिपताका' के प्रारम्भ मे कवि ने कृष्णावतार का कारण बताते हुए कहा है :

सीता विश्लेष दुःखादिव रघुतनयो... .... कृष्णावतारः पूर्व कृष्णो यथा-भूदरिकुलदमनः साधितं तादृशस्तम् ।........

तद्यथा रामेण रामजन्मनि सीता विरह दावानलदग्ध मानसेन तत् खेदोपनोदनाय कृष्णावतारेण गोपकुमारेण सनन्द सुन्दरी वृन्द सहस साहित्य समुपजातेन कुतुकेन ''''''''महाभागः गृहीत्वा खेदितः ।[१]

कृष्णावतार का उद्देश्य ही जिनके अनुसार रामावतार के समय के विश्लेष दुख को सहस्र गोपागना वृन्द के साथ विहार करके दूर करना हो उनके कृष्ण-भक्त होने का कोई आधार नही जान पडता ।

(१४) शिवसिंह की प्रशसा कवि ने 'एकादस अवतार', "नारायणो रूपनारायणो वा" आदि कहकर की है । वैष्णव भक्त ऐसा नही लिख सकता था ।

(१५) नायिका कृष्ण का नाम क्यो लिया करती है इसका रहस्य कवि ने अपने एक पद मे स्वय बताया है—

सिवसिंघ राय तोरा मन जागल
कान्ह कान्ह करसि भरमे ।[२]

(१६) 'पुरुषपरीक्षा' मे कवि ने राधाकृष्ण के प्रेम को आदर्श न बताकर सीता-राम के प्रेम को आदर्श बताया है—

भूयादनश्वरं प्रेम पुनोर्जन्मनिजन्मनि ।
धर्म शृङ्गार संपृक्त सीतारायवयोरिव ॥[3]

(१७) विद्यापति के समक्ष 'श्रीमद्भागवत' तथा 'गीतगोविन्द' कृष्ण की लीलाओ के चित्रण करनेवाले ये दो ग्रन्थ मुख्यतः रहे होंगे । उनके पदो के अनुशीलन मे यह स्पष्टतः व्यक्त हो जाता है कि विद्यापति के कृष्ण श्रीमद्भागवत के कृष्ण से अनेक बातो मे भिन्न है । विद्यापति के कृष्ण मोरपखधारी नही, उनकी वशी का उल्लेख तीन ही पदो मे मिलता है । करील कुजो का उल्लेख विद्यापति ने नही किया है । विद्यापति ने कृष्ण-राधा के प्रेम-विहार के अतिरिक्त अन्य किसी भी लीला का वर्णन नही किया है । तीन पदो मे रास का उल्लेख है, पर यह न तो श्रीमद्भागवत और न गीतगोविन्द के ही रास से मिलता है । विद्यापति ने रास का उल्लेख वसन्त-रजनी मे किया है, श्रीमद्भागवत मे शरद पूनो का रास

---

[१] **कीर्त्तिपताका, पृ० ७-८ ।**
[२] **मि० म० वि०, ३५, पृ० ३२ ।**
[3] **पुरुषपरीक्षा, पृ० १६१ (ल० वें० प्रे०) ।**

वर्णित है। 'गीतगोविन्द' की तरह अनेक गोपियों के साथ कृष्ण के विहार करने का चित्र उनके पदों में नहीं मिलता।

(१८) कतिपय पदों में 'सोरहसहसगोपीपति कान्ह' का उल्लेख है, पर 'गोरक्ष-विजय' में मत्स्येन्द्रनाथ को भी कवि ने ऐसा ही कहा है।

(१९) विद्यापति के सम्बन्ध में प्रचलित अनुश्रुतियाँ उनके शिवभक्त होने का संकेत करती हैं। ये अनुश्रुतियाँ "उगना" के रूप में उनके भगवान शंकर के यहां रहने के सम्बन्ध में तथा गंगा के उनके हठ पर घूम जाने की घटना सम्बन्धी है।

(२०) विद्यापति के वासस्थान बिसफी में बाणमहेश्वर का तथा उनके समाधि-स्थान बाजितपुर में शंकर का मन्दिर उनके शिवभक्त होने का प्रमाण है।

(२१) परिणत वय में राधाकृष्ण का भक्त ब्रजभूमि का तीर्थाटन करता है, न कि गंगातट की ओर प्रयाण, विद्यापति जीवन की अवसान-वेला निकट जान गंगातट की ओर प्रयाण करते हैं।

(२२) कृष्णभक्त वैष्णव होने के प्रमाणस्वरूप विद्यापति के तीन विनय विषयक पद (मि० म० वि०, ७६६-७१) प्रस्तुत किये जाते है। पर उन्होंने विनय तथा निर्वेद के अन्य पद भी लिखे हैं जिनमें कहीं 'हरि, हर' कहीं 'महेसर', कहीं 'राम भगति अछ लाभ' तथा कहीं गंगा का उल्लेख है।[1] उनकी नचारियाँ शिवस्तुति विषयक हैं।

उपर्युक्त विवेचन विद्यापति के पद-साहित्य की भावधारा भक्तिपरक है या शृंगारपरक इसके सम्बन्ध में निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त है।

विद्यापति के गीतिपद मिथिला में प्रेमगीत के रूप में ही प्रचलित रहे, जबकि पड़ोसी बंगदेश में उन्हें वैष्णव पद-साहित्य की अग्रिम कड़ी के रूप में सहज ही स्थान मिल गया तथा पाँच शताब्दियों तक वहाँ के वैष्णव उन्हें गा-गाकर भक्तिविभोर होते रहे। बंगाल में विद्यापति के प्रेमगीतों पर यह भागवत रंजना क्यों और कैसे चढ़ गयी इसके कारण मिथिला और बंगाल की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अवस्था में निहित है।

बंगाल पर आठवीं सदी से ग्यारहवीं सदी तक पाल राजवंश का आधिपत्य रहा। पाल राजा बौद्ध थे। फलतः इन सदियों में बंगाल पर बौद्ध धर्म तथा संस्कृति पूरी तरह छायी रही। बिहार, विशेषकर पूर्वी बिहार, पाल साम्राज्य के अन्तर्गत था। पर हिमालय की गोद में बसी सुदूर मिथिला में पाल राजाओं या बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव का कोई प्रमाण नहीं मिलता।[2] पाल राजवंश का उत्तराधिकारी सेन राजवंश हुआ। सेन राजा वैष्णव थे। उनका आश्रय, संरक्षण तथा प्रोत्साहन पाकर बंगाल में वैष्णव मत का प्रभाव बढ़ा। बारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में समस्त बंग जयदेव के 'गीतिगोविन्द' की रस-माधुरी में निमज्जित हो रहा था। पर जयदेव का 'गीतगोविन्द' भी "क्या लीलारस की दृष्टि से, क्या काव्य की दृष्टि से, किसी भी दृष्टि से आकस्मिक

---

१ मि० म० वि०, ६१२—१५।

२ विशेष देखिए—मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक अवस्था, प्रथम अध्याय।

नहीं।"[1] जयदेव के युग में और उसके दो एक शताब्दी पहले ही में राधाकृष्ण प्रेमयुक्त वैष्णव कविता का कितना व्यापक प्रचार हो चुका था यह 'सदुक्तिकर्णामृत', 'कवि वचन-समुच्चय' तथा रूप गोस्वामी द्वारा सगृहीत 'पद्यावली' नामक सग्रह-ग्रन्थो के अवलोकन से सहज ही स्पष्ट हो जाता है। 'पद्यावली' म तिरहुत वग उत्कल तथा दाक्षिणात्य मे भी राधा-कृष्ण प्रेम विषयक कविताएँ सकलित है।[2]

वगाल पर मुस्लिम आधिपत्य जिस आसानी से स्थापित हो गया, उससे भी वहाँ की सामाजिक अवस्था का कुछ अनुमान किया जा सकता है। बख्तियार खिल्जी के आकस्मिक आक्रमण के आतक से वृद्ध गौडाधिपति राजा लक्ष्मणसेन के पलायन की कथा इतिहासप्रसिद्ध है। तेरहवी सदी के अत तक समस्त वगदेश मुस्लिम आधिपत्य को स्वीकार कर चुका था। इसके विपरीत मिथिला के राजाओ ने पद्रहवी सदी के प्रारम्भिक दशको तक मुस्लिम वश्यता अन्तिम रूप से स्वीकार नही की थी। इसके बाद भी आन्तरिक व्यवस्था मिथिला के स्थानीय राजाओ के ही हाथो म बहुत काल तक रही जबकि वगाल पूरी तरह मुस्लिम प्रशासन के अन्तर्गत पहले ही आ गया था।

चण्डीदास विद्यापति के समकालीन थे, पर ऐसा जान पडता है कि चौदहवी सदी के अन्तिम दशक एव पन्द्रहवी सदी के प्रथम दशक तक उनके मधुर गीतिपद वगाल मे लोकप्रिय हो चुके थे।[3] उनका 'कृष्णकीर्त्तन' विद्यापति के पदो के वगाल म पहुँचने के बहुत पूर्व ही जनमानस मे बस चुका था। राधाकृष्ण प्रेम का जितना मासल तथा ग्राम्य वर्णन 'कृष्णकीर्त्तन' के पदो मे किया गया है उसकी समता अन्यत्र कम ही मिलेगी। चण्डीदास के पद वैष्णव पद-साहित्य के अन्यतम अवदान माने जाते हैं। उन के जीवनकाल मे तथा परवर्त्ती कई सदियो तक उनके अन्य पदो के साथ कृष्ण-कीर्त्तन के पद भी भक्ति भावना के साथ लीलापदो के रूप मे गाये जाते होंगे। इसका एक प्रमाण तो ग्रन्थ का नामकरण ही है। ऐसे परिवेश मे विद्यापति के पदो का वैष्णव भक्तिरस के पद के रूप मे अपनाया जाना स्वाभाविक ही था।

पर विद्यापति के गीतिपदो को वैष्णव रस-साहित्य की अनमोल एव अग्रिम कडी होने का गौरव दिलाने का सबसे बडा श्रेय है महाप्रभु चैतन्यदेव को। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के पद महाप्रभु को सबसे अधिक प्रिय थे। इनके पदो को सुनकर महाप्रभु भावविभोर हो जाते थे, नृत्य करने लगते थे तथा मूर्च्छित भी हो जाते थे। स्वाभाविक था कि गौडीय वैष्णवो की भावविभोर टोलियो के साथ विद्यापति के पद भी समस्त बग में फैल गये। उत्कल, दाक्षिणात्य और सुदूर व्रजमडल तक वे गूँज उठे। यह सोलहवी सदी की बात है। तब से परवर्त्ती तीन सदियो तक बंगाल म वैष्णव मत का जोर रहा। चण्डीदास और विद्यापति, गोविन्ददास और उमापति के

---

[1] श्री राधा का क्रम विकास—डॉ० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १३७।

[2] वही, पृ० १३८।

[3] चैतन्य एण्ड हिज एज—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १७-२०।

पद वैष्णव सम्प्रदाय मे अत्यन्त लोकप्रिय रहे। विद्यापति को वैष्णव पदकर्त्ता ही नही, परम भक्त वैष्णव भी मान लिया गया।[1] इतना ही नहीं चण्डीदास की रामी रजकिनी की तरह विद्यापति की एक कल्पित प्रेमिका भी गढ ली गयी।[2]

इधर विद्यापति के समकालीन तथा परवर्त्ती युग मे मिथिला मे उनकी सभी रचनाएँ जनमानस के सम्मुख रही होगी—'कीर्त्तिपताका' तथा 'गोरक्ष-विजय', 'शैवसर्वस्वसार' तथा 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' आदि भी—फलत उनके व्यक्तित्व, विचार-दर्शन तथा भावधारा से पूर्णतया परिचित होने के कारण यहाँ के लोगो को उनके सहजिया वैष्णव होने का भ्रम नही हो सकता था। इसके प्रतिकूल बगाल मे—गौड या नदिया मे, उत्कल या कामरूप मे—कवि के ४०-५० पद ही अधिक प्रचलित होगे, वहाँ के वैष्णव रसाप्लावित परिवेश मे उनकी अन्य कोई व्याख्या स्वीकृत होना ही अस्वाभाविक होता।

मिथिला का ज्ञान-गर्वीला पण्डित समाज बहुत काल तक लोकभाषा तथा उसके कवि की उपेक्षा करता रहा। विद्यापति को 'अतिलुब्ध नगरयाचक' कह कर इन्ही मे किसी एक ने उनकी अवज्ञा की थी।[3] विद्यापति के कुछ प्रेमगीत सर्वप्रथम हम लोचन कवि की 'रागतरंगिणी' मे विभिन्न राग-रागिनियो के उदाहरण के रूप मे सकलित पाते हैं। रागतरंगिणीकार ने विद्यापति की प्रशसा, गीत एव नृत्य-कला मे प्रवीण होने के

---

[1] It is said that the Padavalies of Jaydev, like the Maithili songs of Vidyapati had a great appeal for Chaitanya himself It is not surprising, therefore, that Chaitanya's followers would try to transform Jaydev as well as Vidyapati into a Vaishnav of the orthodox type"—S K De, *Early History of "Vaishnav Faith and Movement in Bengal"* page 8

[2] चण्डीदास ही नहीं, उस काल के कई अन्य वैष्णव भक्त एव कवियो की प्रेमिकाओ का उल्लेख तथा स्तवन उनके काव्यों मे किया गया है। अभिराम गोस्वामी नामक वैष्णव भक्त शिरोमणी की मालिनी नामक एक प्रेमिका थी, वैष्णव-साहित्य मे उसकी प्रशसा की गयी है। जयदेव ने 'गीतिगोविन्द' के प्रारम्भ मे अपने को 'पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती' कहा है, यह पद्मावती जगन्नाथजी के मन्दिर की एक देवदासी थी तथा लक्ष्मणसेन की राजसभा मे अवसर नृत्य करती थी। (देखिए दिनेशचन्द्र सेन लिखित 'चैतन्य एण्ड हिज एज', पृ० ७)

बगीय वैष्णवो मे विश्वास है कि विद्यापति का राजा शिवसिंह की पत्नी लखिमा के साथ प्रेम-सम्बन्ध था। इस आशय की एक फिल्म भी १९३४-३५ के लगभग कलकत्ते की न्यु थियेटर्स कम्पनी ने बनायी थी।

[3] प्रो० रमानाथ झा, पटना विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, पुरुषपरीक्षा भूमिका, पृ० ३८।

लिए की है। 'रागतरगिणी' सत्रहवी सदी की रचना है, इस काल तक पडोसी बग मे विद्यापति का नाम घर-घर मे वैष्णव भक्त तथा पदकर्त्ता के रूप मे प्रचलित हो गया होगा, इसमे सन्देह नही, पर मिथिला मे उनके गीति-साहित्य का प्रकृत रूप ही लोकमन के सम्मुख रहा।

ऐसी बात भी नही कि मिथिला की भूमि ही वैष्णव पद-साहित्य की रचना के के लिए अनुर्वर हो। गोविन्ददास ने, जो विद्यापति के कुछ परवर्त्ती होगे, वडे ही भक्तिपूर्ण पदों की रचना की है। शिल्प की दृष्टि से उनके पद विद्यापति के पदो से अधिक प्रौढ जान पडे गे। पर इसमे सन्देह नही कि बगाल मे उपयुक्त सामाजिक परिवेश के कारण बारहवी सदी से ही वैष्णव-रस का स्रोत फूटने लगा था तथा सोलहवी सदी से उसने सहस्रधारा बनकर समस्त बगदेश को आप्लावित कर दिया। मिथिला मे ऐसा कुछ नहीं हुआ, सभवत होना सभव भी नही था। वैष्णव मत यहाँ कुछेक व्यक्तियों तक ही सीमित रहा। फलत विद्यापति के पद जो अपने देश मे प्रेमगीत ही बने रहे, अन्यत्र वैष्णव-रस साहित्य के अनमोल अवदान बन गये।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि विद्यापति-साहित्य की भावधारा भक्तिमूलक नही। विद्यापति-साहित्य की रचना जीवन के विस्तृत धरातल पर हुई है, उनके गीतिपदो मे, जैसा कि उनकी अन्य रचनाओं मे, जीवन के विभिन्न पक्षों की मार्मिक अनुभूतियाँ व्यक्त हैं। किसी म प्रमुखता हैं शृगार की, किसी मे वीर रस की, किसी म वैराग्य की। अत विद्यापति भक्ति के कवि है या शृगार के यह प्रश्न उठाना उनकी रचनाओं मे जीवन के बहुपक्षीय तथा बहुमुखी अनुभवो के चित्रण को ध्यान म रखने पर अधिक सगत नही प्रतीत होता। देश, काल एव रुचि के अनुसार उनके गीतिपदों को एक या दूसरे रूप मे ग्रहण किया जाता रहा है।

विद्यापति के पद-साहित्य की मूल भावधारा शृगारिक है। किन्तु विद्यापति शृ गार को जीवन के अन्य पक्षो से पृथक् या जीवन के सामान्य धरातल से विच्छिन्न करके नही चित्रित करते। उनकी प्रेमभावना जीवन के अनेकपक्षीय प्रसार के बीच उसके सामान्य धरातल पर ही उद्भूत एव अनुभूत होती है। प्रेम की एकागिता या प्रेम की सर्वस्वता विद्यापति के पदो से ध्वनित नही होती। इसका प्रमाण है उनके गीतिपदो मे जीवन की मर्मानुभूतियों की अभिव्यक्ति, धर्म, नीति, आचार, व्यवहार सम्बन्धी अनमोल सूक्तियों का प्रेमगीतों मे गुम्फन।[1]

विद्यापति के नाम से प्रचलित पद-साहित्य मे आठ सौ से कुछ अधिक पद आज प्रामाणिक माने जाते हैं। इन पदो मे भी काल-प्रवाह मे कितना परिवर्तन हुआ होगा या कितनी पक्तियाँ प्रक्षिप्त होंगी यह कहना अभी असमव-सा है। इन ८०० से कुछ अधिक पदा मे एक भी पद राधा-कृष्ण का प्रेम-विषयक या भक्तिमूलक प्रतीत होने-

---

१ परिशिष्ट—ख।

वाला नही हो यह कहना कठिन है। कुछ पद, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है, भाव एव शैली मे लीला-विषयक पदो से मिलते-जुलते हैं। पर इससे कवि की मूल भावधारा मे कोई भेद नहीं होता और न यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि परिणत वय मे कवि वैष्णव हो गया एव लीलापदो की रचना करने लगा।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति का प्रेमचित्रण भक्तिमूलक नही है। उन्होंने भागवत प्रेम का चित्रण अपने पद-साहित्य मे नही किया है।

(२) विद्यापति की प्रेमभावना एकागी नही। प्रेम को वे जीवन के अन्य पक्षो से विच्छिन्न करके नही देखते।

(३) विद्यापति के प्रेमचित्रण की एक विशेषता यह है कि उसमे जीवन की विभिन्न स्थितियो तथा अनुभूतियो को व्यक्त करनेवाली मूर्त्तियाँ गुफित रहती हैं, जिससे प्रेम की तल्लीनता की अवस्था मे भी जीवन का परिप्रेक्ष्य आँखो से ओझल नही होता।

(४) कृष्ण-राधा विद्यापति के पदो मे नायक-नायिका के रूप मे चित्रित हैं। पर यह औपचारिक ही है, "बहुवल्लभ कन्त" के लिए कृष्ण की उपयुक्तता थी। शृंगार-काव्य के आश्रय-आलम्बन के रूप मे कृष्ण-राधा के चित्रण की परम्परा विद्यापति युग तक रूढ किवा बद्धमूल हो चुकी थी। कृष्ण-राधा के साथ यमुना, मधुरापुर, वृन्दावन के नाम भी आये हैं। पर ब्रजभूमि, करील-कुज आदि का उल्लेख नही किया गया है। 'पदावली' का वृन्दावन भी मिथिला के प्रकृति-परिवेश से ही मिलता-जुलता है।

(५) कुछ पद भाव एव शैली मे परवर्त्ती पदकर्त्ताओ द्वारा रचित लीलापदो से मिलते-जुलते हैं। एकाधिक पदो मे रास का उल्लेख है।

(६) वगदेश मे पद्रहवीं शताब्दी या उससे पूर्व से ही भक्ति का आवरण लिये हुए राधाकृष्ण के प्रेमगीत लोकजीवन मे प्रचलित थे। सोलहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे चैतन्य ने मधुर रस मे वग के जनमानस को निमज्जित कर दिया। उनके पूर्व भी मधुर रस की भक्ति के सदेशवाहक वहाँ हो चुके थे। उस वैष्णव भक्ति से आप्लावित वातावरण मे विद्यापति के गीत सहज ही मधुर रस की पद-परम्परा की अग्रिम कडी बन गये।

(७) विद्यापति-साहित्य का बहुत थोडा ही अश—१००-१५० पद—वगीय जिज्ञासुओ के द्वारा बगाल पहुँच पाये, उनकी अन्य भाषा की रचनाओ का तो प्रश्न ही नही उठता, अत उन थोडे से पदों का वैष्णव लीलापदो मे घुल-मिल जाना स्वाभाविक था। मिथिला मे जहाँ न तो वैष्णव भक्ति का आप्लावन ही हो रहा था, और न विद्यापति-साहित्य का आशिक रूप ही जनमानस के समक्ष था, उनके गीतिपद अपने प्रकृत रूप मे ही गृहीत हुए।

३

विद्यापति के प्रेमकाव्य का शास्त्रीय अध्ययन

(क) नायिकाभेद
(ख) रसतत्व
(ग) अलंकार-योजना
(घ) प्रकृति का उद्दीपक रूप

(क)

नायिकाभेद

विषय-प्रवेश

भारतीय वाग्मय की परम्परा वैदिक युग से आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। कई सहस्राब्दियो के इस सुदीर्घकाल मे कितने पटाक्षेप हुए, कितने युग-परिवर्तन हुए, कितने उत्कर्ष-विकर्ष, विभव-पराभव, जय-पराजय के अध्यायो से हम गुजरे, पर हमारे जातीय जीवन का अबाध प्रवाह कभी अवरुद्ध नही हुआ है। प्रत्येक युग प्राचीन की विरासत लेकर इस महान् परम्परा म कुछ योगदान करता हुआ उसे आगे बढाता आया है। भारतीय साहित्य की पावन गगा मे हर युग की देन रही है। सहस्राब्दियो प्राचीन इस महान् साहित्य-परम्परा के अपार वैभव, अछोर विस्तार एव असीमित अनेक-रूपता को देखकर हम विस्मित हो जाते है, उसके किसी एक खण्ड को ही सम्पूर्ण मानकर उसके आदि-अन्त की रूपरेखा निर्णीत करने लगते हैं। हजारो वर्ष की इस सुदीर्घ अवधि मे हमारे साहित्य की भाषा बदली, छन्द बदले, नयी अभिव्यजना-रूढियाँ तथा कवि-प्रसिद्धियाँ मान्य हुई, दृष्टिकोण एव दार्शनिक पृष्ठाधार बदले, पर इन सभी परिवर्तनो के मूल उनके पहले युगो के साहित्य मे निहित रहे हैं। वैदिक साहित्य, वाल्मीकि से पडितराज जगन्नाथ तक का लौकिक सस्कृत का विशाल साहित्य तथा प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी, बगला, उडिया, मराठी, गुजराती आदि की महान् साहित्य-परम्पराएँ एक दूसरी से कारण-कार्य के रूप मे सम्बन्धित हैं। प्रत्येक उत्तरकालीन भाषा अपनी पूर्ववर्ती की सन्तति-सी रही है। विशेषता यह है इस भाषा एव साहित्य की सहस्रधारा की कि एक दूसरी से विकास की दृष्टि से पूर्वापर सम्बन्ध रखते हुए भी समानान्तर भी अनेक काल तक उनकी धाराएँ प्रवाहित होती रही है। सस्कृत तथा

प्राकृत की साहित्य-परम्परा, सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रशो की परम्परा, फिर सस्कृत, अपभ्रश तथा वगला, मैथिली, गुजराती आदि लोकभाषाओं की परम्परा को हम एक साथ तथा समानान्तर रूप से विकसित होते हुए देखते है। अत हिन्दी बगला गुजराती आदि के साहित्य के आदिकाल अग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओ के साहित्य के आदिकाल से तत्वत भिन्न जान पड़ेगे।

अपभ्रशो का पर्यवसान जिन सदियो मे आधुनिक भारतीय भाषाओ में हो रहा था उस काल को हम सामान्यत इन भाषाओ के साहित्य का आदिकाल कहते हैं। राजनीतिक दृष्टि से वह काल—आठवी-नवी शताब्दी से वारहवी-तेरहवी शताब्दी तक—बडी ही अनिश्चितता तथा घोर उथलपुथल का था। सम्पन्न भूमिपति-सामन्त वर्ग का जीवन युद्ध, आखेट या विलास म बीतता था। सामान्य जनता—कृषक और श्रमिक— का उस समाज म कोई महत्त्व नही था। वणिज वर्ग सम्पन्न था पर वह भी सम्पत्ति-अर्जन तथा राग-रग म ही डूबा हुआ था। ऐसे युग म सामन्त-भूमिपति अधिपति वर्ग का जीवन ही साहित्य मे चित्रित होता था। वीरगाथा काव्य—युद्ध और प्रेम की गाथाएँ—इस साहित्य के स्वाभाविक वर्ण्य हो सकते थे। पर भारतीय साहित्य की यह विशेषता रही ह कि यहा एक परम्परा जब चल पडती है तो अन्य परम्पराओ के विकसित होन पर भी वह किसी-न किसी रूप म चलती रहती है। फलत हिन्दी, वगला आदि के साहित्य के आदिकाल मे केवल वीरगाथा काव्यो का ही प्रणयन नही हुआ किंवा पूर्ववर्त्ती व पूर्वागत सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश की काव्य, परम्पराओ से अनुप्रेरित एव प्रभावित नवीन विधाओ का विकास भी होता रहा।

आठवी से वारहवी शताब्दी तक बिहार और वगाल पर पाल राजाओं का आधिपत्य रहा। ये राजा बौद्ध थ। पाल साम्राज्य के अवशेषो पर सेन राजवश की स्थापना हुई। मिथिला म इसी समय नान्यदेव ने कर्णाट राजवश की स्थापना की। ये दोनो क्षत्रिय राजवश थे। सेन राजा लक्ष्मणसेन वैष्णव था, वह स्वय कवि था तथा काव्य, नृत्य एव सगीत का मर्मज्ञ एव सरक्षक था। वारहवी से चौदहवी सदी तक का बिहार एव वगाल का सस्कृत साहित्य मुक्तक शृगार रचनाओ एव राधाकृष्ण प्रेम के मधुगीतो से भरा है। इस शृगार-काव्य पर भक्ति की रजना चढाने की प्रथा भी इसी समय सुदृढ हुई होगी। जयदेव इस परम्परा के सबसे प्रौढ शिल्पी थ। रागबद्ध तुकान्त प्रबन्धात्मक गीतिशैली म रचना करके वे सस्कृत म शृगार-काव्य की एक नयी परम्परा के प्रवर्त्तक भी बन गय। इस शृगारात्मक गीतिरचना पर राधाकृष्ण प्रेम का रग चढ़ाकर उन्होने उसे वैष्णव भक्तो का कण्ठहार भी बना दिया।

जयदेव केवल राधाकृष्ण के भक्त ही नही थे। अपना परिचय उन्होने "पद्मावती चरण चारण चक्रवर्त्ती"[1] कह कर दिया है। यह पद्मावती राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा

---

[1] गीतगोविन्द, १/२, पृ० ८५।

की एक नर्तकी थी।[1] जयदेव के लक्ष्मणसेन के विरुद में लिखे गये कुछ वीर रसात्मक श्लोक भी 'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित हैं।[2] इनसे उनके बहुपक्षीय व्यक्तित्व का कुछ आभास मिलता है। 'गीतगोविन्द' का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस "गीतों के गीत" के रचयिता ने वात्स्यायन के 'कामसूत्र' का तथा प्राचीन आलंकारिकों के लक्षण ग्रन्थों का भी गहरा अध्ययन किया था। 'गीतगोविन्द' की राधा में हमें विभिन्न अवस्था-नायिकाओं के दर्शन होते हैं। 'गीतगोविन्द' के कृष्ण भी आलंकारिकों द्वारा वर्णित नायकों के साँचे में ढले हैं। 'गीतिगोविन्द' की रचना का एक उद्देश्य कवि ने विलास-कला में कुतूहल रखनेवालों का मन तोष भी बताया है। काम-ग्रंथों की रचना तथा नायिकाभेद की कल्पना भी इसी उद्देश्य से की गयी होगी। ई० पूर्व या ई० सन् प्रथम-दूसरी शताब्दी में रचित भरत के 'नाट्यशास्त्र' तथा वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के प्रभाव से परवर्त्ती संस्कृत का शृंगार-काव्य कभी मुक्त तो नहीं ही हुआ, उत्तरोत्तर ये प्रभाव बढ़ते ही गए। नायिकाभेद का क्षेत्र-विस्तार भी होता गया, बारहवीं सदी के पूर्व तक ही नायिकाओं की तीन सौ से भी अधिक श्रेणियों की कल्पना की जा चुकी थी। संस्कृत के स्तोत्र-साहित्य की रचना भी इसी परिवेश में होती आ रही थी। भारत के पूर्वी अंचलों में बारहवीं सदी से राधा-कृष्ण प्रेम की गीति-रचनाओं की परम्परा लोकप्रिय होती गयी। वह न केवल कामशास्त्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों से ओतप्रोत है, वरन् नायिकाभेद आदि रीति-उपादानों से भी पूर्णतया प्रभावित है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में विद्यापति इस परम्परा की अग्रिम कड़ी हैं।

विद्यापति प्रेम के गीतिकार हैं। जयदेव और ज्योतिरीश्वर का उन पर गहरा प्रभाव है। जयदेव के 'गीतगोविन्द' में किस तरह रीति-संकेत भरे हैं यह हम देख चुके हैं, ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर' के "नायिका वर्णना" एवं "सखी वर्णना" प्रकरणों में भी ये संकेत मिलते हैं। विरह-दशाओं का उल्लेख कविशेखराचार्य ने किया है। विद्यापति के सम्मुख संस्कृत के मुक्तक शृंगार-काव्य तथा आलंकारिकों के ग्रन्थ भी थे ही, अतः उनके काव्य पर इन ग्रन्थों का प्रभाव न पड़ना ही अस्वाभाविक होता। फलतः विद्यापति का प्रेमकाव्य रीति-संकेतों से रिक्त नहीं। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में "हिन्दी में वास्तव में सबसे पहले कवि विद्यापति हैं जिनमें रीति-संकेत असंदिग्ध रूप से मिलते हैं। रीतिकाल की ऐन्द्रिक शृंगारिकता का तो विद्यापति में अपार वैभव ही है। उसकी रीतियों का भी उनको अत्यन्त मोह था। विद्यापति के शृङ्गार चित्र सभी अलंकृत हैं और प्रायः उन सभी के पीछे नायिकाभेद का पृष्ठाधार स्पष्ट है।"[3]

---

१ बंगभाषा ओ साहित्य—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १३४।

२ सदुक्तिकर्णामृत—श्रीधरदास, ३/२०/५, पृ० २०१।

३ रीतिकाव्य, की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र, पृ० १८७।

इस सम्बन्ध मे हमे यह नही भूलना होगा कि विद्यापति मूलत एव सर्वांशतः कवि हैं। नायिकाभेद अथवा रीतिकाव्य के अन्य उपादानो का योजनाबद्ध निरूपण करना उनका अभीष्ट नही हो सकता था। पर उनके गीतिपदो मे हमे मुग्धा से प्रगल्भा तक तथा वासकसज्जिका से प्रोषितभर्तृका तक अनेक विभिन्न श्रेणियो की नायिका के चित्र मिलते हैं। इस अध्याय मे सर्वप्रथम हम विद्यापति के पदो मे चित्रित नायिका की विशेषताओ का विवेचन करेंगे।

नायिकाभेद की परम्परा

नायिकाओ की विभिन्न श्रेणियो का सर्वप्रथम निरूपण अपने 'नाट्यशास्त्र' के सामान्याभिनय प्रकरण (अध्याय १३) मे भरतमुनि ने किया था, पर उनका कामशास्त्र से ही सम्बन्ध हो सकता है, काव्यशास्त्र से सम्बन्धित भरत मुनि द्वारा अन्य निरूपण हैं। इसी प्रकरण के श्लोक (१४५-७) मे नायिका की त्रिविध श्रेणियाँ उन्होंने बतायी हैं। ये है बाह्य, आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तर। उच्चकुलोत्पन्ना एवं स्वपरिणीता पत्नी—कुलस्त्री को आभ्यतर तथा वेश्या वा सामान्या नायिका को बाह्य श्रेणी मे रखा गया है।[1]

प्रकृति के अनुसार नायिकाओ को तीन श्रेणी मे रखा जाता है—उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा।[2]

आठ अवस्था-नायिकाओ की चर्चा भी भरत मुनि ने ही पहलेपहल की, परवर्त्ती ग्रन्थकर्त्ताओ ने उनके निरूपण को ग्रहण किया है। ये आठ अवस्था-नायिकाएँ हैं—

(क) वासिकसज्जिका, (ख) विरहोत्कण्ठिता, (ग) स्वाधीनपतिका, (घ) कलहान्तरिता, (च) खण्डिता, (छ) विप्रलब्धा, (ज) प्रोषितभर्तृका, और (झ) अभिसारिका।[3]

रुद्रभट्ट ने स्वकीया, परकीया तथा सामान्या[4]—इन तीन प्रकार की नायिकाओं

---

[1] भृङ्गार मंजरी, भूमिका—वी० राघवन्, पृ० १६-१७।

त्रिविधाः प्रकृतिः स्त्रीगणा नाना सत्वसमुद्भवा ।
बाह्या चाभ्यंतरा चैव स्याद्वाह्याभ्यंतरापरा ॥
कुलीनाभ्यन्तरा ज्ञेया बाह्या वेश्यागंना कृते ।
कृतशौचा च या नारी सा बाह्याभ्यंतरा स्मृता ॥

[2] काव्यमाला, तृतीय गुच्छक, १/८८, पृ० १३०।

[3] भारतीयम्, अध्याय २२, श्लोक १९७-२०६।

[4] भृङ्गारतिलकम्—रुद्रभट्ट।

स्वकीया परकीया च सामान्य वनिता तथा ।
कलाकलापकुशलस्तिस्रःतस्येह नायिका ॥ १/३३
× ×
मुग्धा मध्या प्रगल्भा च स्वकीया त्रिविधा मता ॥ १/३४
मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवन भूषिता ।
नवानंगरहस्यापि लज्जाप्राप्तरतिर्यया ॥ १/३५

—काव्यमाला, तृतीय गुच्छक, पृ० ११७।

का उल्लेख किया है। भरत मुनि के आभ्यन्तर, बाह्य तथा बाह्याभ्यन्तर से यह अधिक समीचीन था, अतः परवर्त्ती चिन्तकों ने इसी को अधिक अपनाया। इनमे स्वकीया की तीन श्रेणियाँ उसने बतायी—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा या नववधू भी तीन तरह की हो सकती है—नवयौवना, नवअनङ्गरहस्या, लज्जाप्रायरति; तत्पश्चात् मध्या के धीरा, धीराधीरा तथा अधीरा—ये तीन उपभेद बताये गये हैं। नायक के किसी अन्य नायिका के प्रति आसक्त होने या उसके साथ रमण करने पर उसके व्यवहार के आधार पर ये उपभेद किये गए हैं। मध्या के चार उपभेद और भी हैं—उसके यौवन, प्रेम करने की रीति, प्रणयालाप तथा रतिकेलिप्रगल्भता के अनुसार। फिर प्रगल्भा के भी प्रणय-केलिकुशलता एवं अभिरुचि के अनुसार चार उपभेद किये गये हैं, अन्यासक्त नायक के प्रति उसके व्यवहार के आधार पर तीन उपभेद और भी हो सकते हैं।[1]

परकीया के दो भेद किये गए हैं—कन्या तथा परोढा।[2] कन्या के दो उपभेद—रक्ता, विज्ञात नायिकाचित्ता—हैं।[3] तदनन्तर सामान्या तथा वेश्या का उल्लेख किया गया है। सामान्या या वेश्या केवल धनार्जन के लिए प्रेम करती है या उसका भी किसी एक के प्रति प्रेमभाव रहता है इस पर कई ग्रन्थकारों ने विस्तृत विवेचन किया है। रुद्रभट्ट के अनुसार सामान्या नायिका भी किसी के प्रति प्रेम करती है, अन्यथा यदि धनार्जन मात्र के लिए उसकी प्रणय-क्रीड़ा व प्रेम-चेष्टा मानी जाय तो उसमे रसाभास हो सकता है, शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक नहीं।[4] 'कीर्तिलता' मे विद्यापति ने 'जोनापुर' की वेश्याओं का वर्णन करते हुए लिखा है—"धननिमित्ते धरु प्रेम लोभेविनय"[5]। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने भी इसकी चर्चा की है[6]। इस विषय पर परवर्त्ती ग्रन्थकर्त्ताओं ने भी विवेचन किया है।

इसके अनन्तर आठ अवस्था-नायिकाओं का विवेचन किया जाता है। भरत मुनि द्वारा निरूपित अवस्था-नायिकाओं की चर्चा की जा चुकी है। रुद्रभट्ट ने इस प्रसङ्ग मे विरहोत्कण्ठिता के स्थान पर उत्का, प्रोषितभर्तृका की जगह प्रोषितप्रिया

---

१ काव्यमाला, तृतीय गुच्छक, पृ० ११८-१२१-३६-४५।

२ अन्यदीया द्विधाप्रोक्ता कन्योढाचेतिते प्रिये
दर्शनाच्छ्रवणाद्वापि कामार्त्ते भवतो यथा।
—काव्यमाला, तृतीय गुच्छक, १/५०, पृ० १२२।

३ काव्यमाला, तृतीय गुच्छक, १/५२-५३, पृ० १२४।

४ वही, १-६१-६८, पृ० १२६-१२७।

५ कीर्त्तिलता, पृ० ३६ (स० शिवप्रसाद मिश्र)।

६ (क) वर्णरत्नाकर, पृ० २६ (S. K. Ch.)।
(ख) "भअवं धणाधीणो—(क्खु) अग्रं जणो ग्रात्कि (? रच श्रंचणोताकि) एत्थ अरण्णरुदिअं कदुअ अप्पाणअं विलम्बेसि" —धूर्त्तसमागम, पृ० १४

तथा कलहन्तरिता के बदले अतिराधिका का उल्लेख किया है।[१] किसी-किसी ने वक्रोक्तिगर्विता नामक एक नयी अवस्था-नायिका का उल्लेख भी किया है।

अवस्था-नायिकाओं के चित्र विद्यापति के पदों में बारम्बार आये हैं अतः इनकी विशेषता का निरूपण किया जा रहा है —

(i) **स्वाधीनपतिका**—जिस नायिका का पति पूर्णतया उसके वश में हो, अनुकूल हो।[२] इसके भी मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया एवं सामान्या आदि उपभेद होंगे।

(ii) **वासकसज्जिका**—प्रिय के आगमन का समय जान कर उसके लिए शृङ्गार-प्रसाधन करके उसकी प्रतीक्षा करती हुई नायिका[३]। अवसितप्रवासपतिका अर्थात् नायक प्रवास से आनेवाला हो, यह उपभेद इसके अन्तर्गत किन्हीं के मतानुसार है। मुग्धा आदि उपभेद तो होंगे ही।

(iii) **विरहोत्कण्ठिता या उत्का**—सामान्यतः विरहोत्कण्ठिता नायिका उसे कहेंगे जो प्रिय-मिलन के अभाव में, उसके लिए उत्कण्ठित हो पर शृङ्गार रस के पारखियों ने इस पर विवेचन करके प्रोषितभर्तृका आदि से इसे भिन्न माना है। किन्हीं ग्रन्थकारों के अनुसार संकेतस्थल पर प्रिय की प्रतीक्षा में उत्कण्ठिता नायिका ही इस श्रेणी में आती है। एक ही नगर या स्थान पर रह कर भी मिलन के अभाव की स्थिति में नायिका विरहोत्कण्ठिता होती है, यह भी किसी-किसी का मत है।[४] इस अवस्था में

---

[१] काव्यमाला, तृतीय गुच्छक, १-७२-८२, पृ० १२७-२६।
स्वाधीन पतिकोत्का च तथा वासकसज्जिका।
खंडिता विप्रलब्धा च खण्डिता चाभिसारिका॥
प्रोषितप्रेयसी चैव नायिकाः पूर्वं सूचिताः।
ता एवात्र भवन्त्यष्टावस्थाभिः पुनर्यथा ॥—वही, पृ० १२७।

[२] शृङ्गार मंजरी, पृ० १५ (वी० राघवन् द्वारा सम्पादित)।

[३] मि० म० वि०—विद्यापति, ३४५, ११२।

[४] "प्रियागमनवेलायां मण्डयन्ती मुहुर्मुहुः केली गृहमयात्मानं सा स्याद्वासक सज्जिका
"प्रतापरुद्रीय यशोभूषण"—१/४४।
विद्यापति—
कुसुमे रचित सेजा दीप रहलतेजा परिमल अगर चन्दने।
जबे जबे तुअ मेरा निफल बहलि बेरा तबेतबे पीडलि मदने।
माधव तोरि राही वासकसज्जा।
चरन शबद चौदिस चापए काने पिया लोभे परिनतिसज्जा।
सुनअ सुजन नामे अवधि न चुकए ठामे जनिवन परपलहरी।
से तुअ गमन आसे निन्द न आवे पासे, लोचन लागल देहरी॥
—मि० म० वि०, पद स० ३५८, पृ० २५३।

केवल नायिका के मन मे मिलन की उत्कण्ठा रहती है। ईर्ष्या या निराशाजन्य व्यथा नही, यह ध्यातव्य है।[१]

(iv) विप्रलब्धा—सकेतस्थल पर पहुँचकर अपने प्रिय को वहाँ न पाकर तथा यह जान कर कि वह कही अन्यत्र किसी अन्य नायिका के साथ रमण कर रहा है, निराशाजन्य व्यथा से आपूरित नायिका। परवर्त्ती कुछ ग्रन्थकर्त्ताओ ने सकेतस्थल पर नायिका का होना आवश्यक नही माना है, स्वकीया तथा सामान्या के लिए सकेतस्थल पर जाना आवश्यक भी नही। नायक की वचकता के कारण निराशा इस अवस्था-नायिका की अनिवार्य विशेषता है। विद्यापति के कई गीतिपदो मे इस अवस्था-नायिका के चित्र मिलते हैं।[२]

(v) खण्डिता—भरत तथा रुद्रभट्ट ने खण्डिता और विप्रलब्धा मे अधिक भेद नही माना है। उनके अनुसार खण्डिता अपने घर पर तथा विप्रलब्धा सकेतस्थल पर प्रिय-मिलन से निराश नायिका को कहते हैं। परवर्त्ती ग्रन्थकारो ने प्रिय के अन्य रमणी के संग रमण करने की निश्चित स्थिति मे ही खण्डिता अवस्था मानी है।[३] विप्रलब्धा तथा खण्डिता में भेद निराशा तथा ईर्ष्या का है। ईर्ष्या के साथ कोप भी होने पर मानवती नायिका की अवस्था होगी। किन्ही के अनुसार खण्डिता तथा मानवती मे इतना भी भेद नही।[४] इनके अनुसार मानवती अधिक-से-अधिक खण्डिता का ही एक उपभेद हो हो सकती है।

भरत ने नायिका की ईर्ष्या के चार कारण बताये हैं—नायक का वैमनस्य, व्यालीक, विप्रिय तथा मन्यु।[५] नायिका के समक्ष प्रेम प्रकट करना तथा अन्य मे आसक्ति विप्रिय, रोकने पर भी अन्य रमणी के साथ प्रेम करना व्यालीक, अन्य रमणी के साथ रमण करने के चिह्न मे युक्त नायक को देखकर व्यथा वैमनस्य तथा नायिका के सम्मुख अनेक रमणियो को अपने प्रति आसक्त बताना मन्यु की अवस्था है। ये चारो खण्डिता के अन्तर्गत आते है। विद्यापति की पदावली मे इनके चित्र कई पदो मे मिलते है।[६]

---

१ शृङ्गार मंजरी, भूमिका—वी० राघवन्, पृ० ७९।

२ मि० म० वि०, पद स० ३६०-६२, ३७०, ३७३-७४ आदि।

३ दशरूपक, (II—२५)।

४ "कोपोत्पत्ति समये खण्डिताः सेवमानं कुर्व्वंतोचेन्मानवती।"

—शृङ्गार मजरी, पृ० २३।

५ यत्र स्नेहो भयं तत्रयत्रेर्ष्या मदनस्ततः। चतस्रो यो नयस्तस्या कीर्त्यन्तेता निबोधता।
वैमनस्यं व्यलीकं च विप्रियं मन्युरेव च। एतेषा संप्रद-यामि लक्षणानि यथाक्रमम्॥

—भारतीयम्

६ मि० म० वि०, ३५९, ३७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२ प्रभृति।

खण्डिता का एक भेद अन्यसभोगदुखिता किसी-किसी ने माना है। इसी के अन्तर्गत दूतीसभोगदुखिता भी आयेगी।

(vi) कलहान्तरिता—खण्डिता तथा कलहान्तरिता मे इतना ही भेद है कि खण्डिता अवस्था-नायिका कोप एव ईर्ष्या के अतिरेक की स्थिति मे है तथा कलहान्तरिता मे कोप की अपेक्षा या उसके स्थान पर नैराश्य अनुताप एव व्यथा की स्थिति प्रधान रहती है। खण्डिता मे प्रमुखता ईर्ष्या की तथा कलहान्तरिता मे अनुताप एव दुख की रहती है। विद्यापति के पदो मे इस अवस्था-नायिका के चित्र अधिक नही मिलते।

(vii) प्रोषितभर्तृका—पति या प्रेमी से वियुक्त नायिका का चित्रण कवियों को विशेष प्रिय रहा है। वस्तुत विरह की अन्य अवस्थाओ (पूर्वराग, मान) की अपेक्षा प्रवास अधिक व्यथादायी तथा मार्मिक होगा भी। प्रोपितभर्तृका या प्रोपित-पतिका की दो श्रेणियाँ है—आसन्न प्रवासपतिका तथा प्रवासपतिका। विद्यापति ने दोनो के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये है।

प्रोषिपतिका का एक भेद और भी कतिपय आलकारिको ने बताया है—अवसत्प्रवासपतिका, अर्थात् जिस नायिका के प्रिय का प्रवास खत्म होनेवाला है तथा वह उसकी प्रतीक्षा मे अत्यन्त आतुर हो रही है। इस अवस्था-नायिका को वासकसज्जिका की ही श्रेणी मे या उसी के समान मान सकते हैं, पर दोनो मे कुछ भेद अवश्य ही दीख पडेगा। अवसत्प्रवासपतिका अपने प्रवासी प्रिय की प्रतीक्षा मे ही व्याकुल रहेगी, वह शीघ्र ही आनेवाला है यह प्रतीति उसकी उत्कण्ठा को और भी अधिक बढाती रहेगी, उधर वासिकसज्जिका का प्रिय प्रवासी नही है। उसकी प्रतीक्षा मे व्यथा का दशन नही होगा। एक मे विरह की अँधियाली रात के बाद आनेवाले प्रभात की झुटपुटी होगी, दूसरी मे मिलन की गुलाबी रात की सोहागभरी सध्या।

(viii) अभिसारिका—अभिसारिका का चित्रण भारतीय शृङ्गार काव्य का प्रिय विषय रहा है। विद्यापति ने भी अनेक पदो मे अभिसारिका का चित्रण किया है। विशेषकर सावन-भादो की काली अँधियाली रात मे जब वर्षा की झडी लगी हो, हाथ को हाथ नही सूझता हो, बिजली की चमक मे ही राह दिखायी पडती हो, कीच और पानी से धरती लबालब भरी हो, रास्ते मे पग-पग पर साँप बिच्छुओ का भय हो, प्रिय-मिलन को अत्यन्त साहस करके सकेतस्थल पर जाती हुई नायिका का चित्रण उनके अनेक पदो मे किया गया है।[1]

कृष्णाभिसारिका तथा शुक्लाभिसारिका—अभिसारिका के दो भेद किये गए हैं। स्वय अभिसार पथ पर आनेवाली तथा नायक को अपने पास बुलानेवाली—ये दो और भेद किये जाते हैं, पर यह दूसरा भद, वासकसज्जिका से भिन्न नही प्रतीत होता है।

---

[1] मि० म० वि०, १०४-७, ३२२-२७, ३३१-३४, ३३५-४० आदि।

जल थल घर बाहर समनेह। आरसि कए मोर देखित देह ॥
मात परान गेले होअ लाज। भल नहि अनुवद सुपहु समाज ॥
—वि० रा० भा० प०, ४०, पृ० ५७-५८।

(iii) उपेक्षिता वा परित्यक्ता का प्रेम एकागी है पूर्ण आत्मसमर्पण भाव से वह अपने प्रिय को भजती है उसका गोहार करती है उसके साथ बीते दिनो की स्मृतियो से मन बहलाती है, प्रिय से उसे इसका प्रतिदान कभी मिलेगा भी इसकी आशा उसे नही। अपने प्रिय के स्वभाव को वह जानती है। उसकी प्रकृति, उसकी भ्रमरी-वृत्ति उससे छिपी नही है। "पुरुषक चचल थीक सोभाव" यह सामन्ती समाज की नारी मे अधिक कौन जानेगा फिर भी वह जिसके साथ भी हो, सुखी रहे यही मगल-कामना उसके रोम-रोम से मुखरित होती रहती है। प्राचीन वा मध्ययुगीन आलका-रिको द्वारा निर्दिष्ट अवस्था-नायिकाओ मे यह किंचित भिन्न है इससे भी प्रमाणित होता है।

(iv) विरहोत्कठिता म उत्कठा, खण्डिता मे ईर्ष्या, मानवती मे कोप, कलहान्त-रिता म प्रणयकलह की पृष्ठभूमि, विप्रलब्धा मे सकेतस्थल पर विफल प्रतीक्षा, प्रोषित-पतिका मे नायक का प्रवासी होना—ये क्रमश अनिवार्य विशेषताएँ है, विद्यापति की उपेक्षिता मे इसम एक भी विशेषता नही। प्रिय के अपने प्रति पुन अनुरक्त होने की उसको आशा टूट चुकी है अत मिलन की उत्कण्ठा उसके मन मे नही होती, सपत्नी से वह ईर्ष्या करे इतनी ओछी वह नही, प्रिय के आचरण पर वह कुपित हो तथा मान करे यह अधिकार ही उसे अब कहा, जब प्रिय ने उसकी ओर से आँखें मोड ही ली, तो फिर कलह के लिए अवसर व स्थान भी नही रहा, उसके सकेतस्थल पर जाने या घर मे बैठी प्रिय के आने की प्रतीक्षा करने की भी बात नही उठती, एक ही नगर मे, एक ही घर मे रहकर भी उसका प्रिय उससे एक बात भी नही करता, अत प्रवासी की प्रणयिनी होने का गौरव या सात्वना भी उसे नही, निष्कर्ष यह कि विद्यापति की यह नायिका अन्य सबा से पृथक् है, उसकी अपनी एक अलग श्रेणी है। ऐसे युग तथा समाज मे जहाँ "बहुल कामिनि एकल कन्त" अपवाद न होकर नियम-सा हो, हर घर मे ऐसी स्त्रियाँ मिलती होगी। उसे परित्यक्ता न कहकर पतिप्रेम वचिता चाहे कह लीजिए, उपेक्षिता तो वह थी ही। "जौवन रतन अछल दिन चारि, तावे से आदर कएल मुरारि" कह कर ठडी आहे भरनेवाली नायिकाएँ किस सम्पन्न सामन्त के घर मे नही हागी ? यह स्थिति शृगार के अधिक उपयुक्त है अथवा करुण के यह विवाद का विषय हो सकता है, पर सवेदनशील कवि की चेतना इस श्रेणी की नारी की मर्म-व्यथा से क्षणभर के लिए अभिभूत न हो जाय—यह विस्मयकी ही बात हो सकती है। विद्यापति को व्यापक सवेदनशीलता एव नारीजीवन की व्यथा-विवशता के प्रति उनकी गहरी जागरूकता का ज्वलत प्रमाण है—इस विशेष श्रेणी की नायिका का उनके अनेक पदो मे चित्रण।

(v) उपेक्षिता प्रिय के प्रेम से वंचित होकर भी शृंगार रस का आश्रय नही है ऐसा नही कहा जा सकता। इसलिए कि प्रिय की ओर से भुला दी जाने पर भी उसके हृदय मे अपने प्रिय के प्रति प्रेम ज्यों का त्यो बना रहता है। उसका प्रेम मन्द नहीं होता। तरुणाई का नशा उतर जाने पर भी मनोजन्मा देवता उसे सन्तापित नही करता हो ऐसा कवि ने नही चित्रित किया है, प्रकृत्या यह स्वाभाविक भी नही जान पडता। वसन्त की सुषमा, बरसात की झडी, कोयल की कूक और दादुर का शोर विद्यापति की उपेक्षिता के अकेलेपन को और भी बढा देते हैं, उनका उद्दीपनकारी दशन उसके लिए कुछ मन्द भले ही पड गया हो पर एकदम खत्म हो गया हो ऐसा नही जान पडता। अत इस श्रेणी की नायिका के शृंगार रस का आश्रय होने मे कोई आपत्ति नही हो सकती। यद्यपि नायक की पूर्ण उपेक्षा के कारण शृंगार रस के पूर्ण परिपाक मे किंचित बाधा अवश्य मानी जा सकती है।

(vi) उपेक्षिता नायिका सामान्यत स्वकीया, मध्या, धीरा, प्रौढा व प्रगल्भा होगी। पर कृष्ण के प्रसग मे वह परकीया ही होगी, अन्य नायको के प्रसग मे भी वह परकीया हो सकती है। विद्यापति ने इस श्रेणी की नायिका के मनोभावो का चित्रण सामान्यत 'बहुवल्लभकन्त' की कुलीन पर उपेक्षिता पत्नियो को ही ध्यान में रखकर किया होगा। विद्यापति के एकाधिक पदो मे 'कुलमन्ती' नारी की विवशता तथा व्यथा अनायास ही फूट पडी है।[1] कई अन्य पदों मे नायिका यह सोचकर अनुतप्त तथा व्यथित होती हुई चित्रित की गयी है कि 'कुलमन्ती' होकर भी वह कुलटा हुई, आज उसके प्रेमी ने भी उसे भुला दिया है, उसने धर्म भी गँवाया और प्रेम भी उससे छिन गया, लोक-परलोक दोनो मे एक भी उसे सिद्ध नही हो सका। उसके हृदय मे ग्लानि, व्यथा तथा निराशा भरी होती है।

कवि द्वारा इस श्रेणी की नायिका का चित्रण बडा ही मर्मस्पर्शी हुआ है। ऐसे पदो मे कवि ने जीवन-सचित कटु-मधु अनुभूतियो की मार्मिक अभिव्यक्ति के मोती पिरो दिये हैं। "फल बारने तए अवलवल छाहरि भेल सन्देह"[2] अथवा "आगु गुनि जे काज न करए पाछे हो पचताओ"[3] जैसी पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है। उपेक्षिता नायिका की मनोव्यथा का चित्रण विद्यापति के प्रेमकाव्य की मौलिक देन है।[4]

---

[1] मि० म० वि०, ४५२।

[2] वही, ३६६।

[3] वि० रा० भा० प०, ३४।

[4] मि० म० वि०, ३८२-८४, ३८६, ३६७-६६, ४०२, ४१३-१४, ४२१-२२, ४४०, ४५५-६१ आदि।

नायक

भारतीय प्रेमकाव्य-परम्परा मे नायिका का जितना अधिक चित्रण किया गया है, नायक का उसका दशमांश भी नही। और तो और अभिसार प्रसग मे भी नायिका ही प्रमुख रही है। अधिक भावनामयी होने के कारण प्रेम जगत् मे नायिका की प्रमुखता अस्वाभाविक भी नही। पुरुष के लिए प्रेम या विलास उसके जीवन का एव अश या पक्ष ही हो सकता है। पर नारी के लिए तो वही उसका समग्र जीवन ही है। विशेषकर ऐसे युगो की नारी के लिए जिनमे वह पूर्णतया तथा सर्वाशतया पुरुष की आश्रिता रहने को बाध्य किंवा विवश हो उसका प्रणयिनी रूप ही सर्वोपरि महत्त्व का हो सकता है। भारतीय कवि एव कलाकार इस तथ्य को अगीकृत करके प्रेमकाव्य मे हमेशा नारी को ही आगे रखते आये है। इस परम्परा मे कोई रतनसेन किसी पद्मावती की खोज मे कभी व्यथा-विकल होकर निकल भी पडता है तो विरह की सजल-तरल गीतिका किसी नागमती के ही हृदय मे फूटती है।

अत नायिकाभेद पर जितना इस विषय के चिन्तको एव कलाकारो ने बल दिया है, इसमे जितना उनकी वृत्ति रमी है, नायक के भेदोपभेद निरूपण मे उतना विस्तार नही आने पाया है।

विद्यापति ने नायकारब्ध रति के कतिपय चित्र अपने गीतिपदो मे प्रस्तुत किये हैं। पर उनके पदो मे विभिन्न श्रेणियो के नायको का वर्णन नही किया गया है।

प्राचीन परम्परानुसार नायक के अधिक प्रचलित भेद है—(I) उत्तम, मध्यम, अधम, (II) प्रकृत्या—सात्विक, राजस, तामस, (III) प्रवृत्या—अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ठ।[1] भरत के नाट्यशास्त्र में धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत तथा धीरप्रशात—नायक के ये चार भेद भी वर्णित हैं।[2]

विद्यापति के गीतिपदो मे धीरललित तथा धीरोद्धत एव दक्षिण, अनुकूल, शठ तथा धृष्ठ नायको का उल्लेख मिलता है। 'पुरुषपरीक्षा' मे अनुकूल एव दक्षिण नायक के अतिरिक्त धस्मर नायक (स्त्रैण, पत्नी के वश मे रहनेवाला) की कहानी वर्णित है।[3] उनके गीतिपदो मे कही अधम नायक का कोई चित्र नही मिलता। 'गोरक्षविजय' का मछेन्द्रनाथ भी धीरललित तथा मध्यम नायक ही कहा जा सकता है। यद्यपि बाद मे वह धीरप्रशात श्रेणी मे आ जाता है।

विद्यापति के पदो मे चित्रित अवस्था-नायिकाएँ

विप्रलभ शृगार के अन्तर्गत विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका, अभिसारिका, खण्डिता, कलहान्तरिता, वासिकसज्जिका तथा अन्यसभोगदुखिता नायिकाओ

[1] शृगारप्रकाश—भोज (मद्रास सस्करण), अध्याय १५, तृतीय खण्ड, पृ० ८४।
[2] नाट्यशास्त्र—भरत, अध्याय २४।
[3] पुरुषपरीक्षा—विद्यापति, कथा सख्या ३८, पृ० २०१।

का चित्रण किया जाता है। विद्यापति के पदो मे प्रिय द्वारा उपेक्षिता वा परित्यक्ता नारी के मनोभावो का भी अत्यन्त सजीव तथा मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है। कवि ने जिन अवस्था-नायिकाओ का अधिक चित्रण किया है उनमें मुख्य हैं विरहोत्कठिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका। खण्डिता का चित्रण भी कतिपय पदो मे उपलब्ध है। कलहान्तरिता तथा वासिकसज्जिका के चित्र एकाधिक पदो मे ही मिलते हैं।

(1) विरहोत्कंठिता

विरहोत्कठिता के हृदय मे विछोहजन्य उत्कठा सर्वोपरि रहती है। यह पूर्वराग की स्थिति मे भी सभव है। नायिका के हृदय मे नायक के प्रति प्रेम अकुरित हो चुका है, प्रिय से मिलने के लिए उसके मन म आतुर उत्कठा भरी है, उसके अग-अग प्रियमिलन के लिए उत्सुक, आतुर हैं, नायिका ऐसी स्थिति मे अनायास ही कह उठती है—

अब ने धरम सखि वाँचत मोर।
दिन-दिन मदन दुगुन शर जोर॥

वह विरहताप मे दग्ध होती हुई जलविहीन मीन की तरह छटपटाती है, तडपती है, सखियाँ अनेक तरह के उपचार करती हैं। उसके प्रिय के पास सन्देश पहुँचाती है और उससे निवेदन करती हैं, प्रार्थना करती हैं कि नायिका को इस विरह-वारिधि से वह उबार ले—प्राचीन एव मध्ययुगीन कवियो ने इस स्थिति का बडा ही हृदयग्राही चित्रण किया है। कृष्ण-काव्य का मुख्य वर्ण्य है यह। विद्यापति ने विरहोत्कठिता के चित्र दशाधिक पदो म बडी ही सजीवता के साथ प्रस्तुत किये है। यद्यपि इस प्रसग मे वे परम्परागत काव्य की रूढियो का ही अधिकतर अनुसरण करते हैं, फिर भी उनके कतिपय पदो मे नाटकीयता आदि आ जाने से किंचित् मौलिकता अवश्य दीख पडेगी। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

हृदयक हार भुअगम भेल। दारुन वाढ मदने रिस देल॥
नखसिख लहरि पसर विपधाधि। तुए पदपकज अहलिहु कल ब्राधि॥
ए हरि त लागहि तजे गोहारि। सद्य पललि अछए बरनारि॥
केओ सखि मन दए चरण पखाल। केओ सखि चिकुर चीर सभार॥
केओ सखि उठि निहारए सास। मजे सखि अएलाहु कहए तुअ पास॥
—रा० भा० प०, २०३, पृ० २८०।

[नायिका प्रियमिलन की उत्कठा मे आतुर होती हुई मरणासन्न-सी हो रही है। उसके गले का हार काले नाग की तरह उसे प्रतीत हो रहा है। उसी के रूप म मानो मदन कुपित होकर उसे दशित कर रहा है। सारे शरीर मे लहर भर गयी है, विष की धधक सर्वत्र फैल गयी है। एक सहेली नायक के पास आकर कहती है कि नायिका के प्राण सकट मे हैं, वह उससे निवेदन करने आयी है कि उसकी रक्षा करे। अपनी सहेली

की दारुण दशा का चित्रण करती हुई वह कहती है कि मदनताप दूर करने को कोई सखी उसका चरण पखारती है, कोई उसके केश तथा वस्त्र सँभालती है, कोई रह-रह कर उसकी साँस की परीक्षा करती है। इस दारुण विरह-यातना से उसकी सहेली की रक्षा हो सके इसके लिए वह दौड़ी आयी है नायक के पास।]

विद्यापति के इस पद मे विरहोत्कंठिता नायिका का एक मार्मिक चित्र मिलेगा। प्रकृति के अनुसार नायिका उत्तमा मुग्धा होगी। नायिका आश्रय है, नायक आलवन, नववय, यौवन आदि उद्दीपन विभाव, व्याधि, जडता आदि विरह-दशायें हैं। शृंगार रस के पूर्ण परिपाक के लिए आवश्यक सामग्रियाँ प्रस्तुत हैं।

विद्यापति की यह विरहिणी जयदेव की विरहिणी राधा से तुलनीय है। जयदेव की राधा यह सोच-सोचकर ईर्ष्या से दग्ध होती रहती है कि उसकी अनुपस्थिति मे कृष्ण न जाने किन-किन गोपिकाओ के साथ रमण कर रहे होगे। पर विद्यापति की राधा को इसकी चिन्ता नही। कालिदास की शकुन्तला ने जैसे यह नही सोचा था कि दुष्यन्त के और भी रानियाँ तो होगी, विद्यापति की नायिका भी अपने प्रिय से अखड निश्छल प्रेम करती है। इसमे ईर्ष्या के लिए स्थान नही।

विद्यापति विरह प्रसग मे भावचित्र ही अधिकतर प्रस्तुत करते है। उनके काव्य मे वेदना की विवृति नही करायी गयी है। विभिन्न स्थितियो मे मानव के मनोरागा के गीतकार हैं विद्यापति। उनके कई पदो मे विरहोत्कठिता का चित्रण मिलता है।[1]

(ii) विप्रलब्धा

सकेतस्थल पर पहुँचकर भी नायक से यदि मिलन नही हो सका तो नायिका का निराश होना स्वाभाविक है। इस स्थिति मे पडी हुई नारी को विप्रलब्धा नायिका प्राचीनो ने माना है। कतिपय अन्य के अनुसार विप्रलब्धा उसे भी कह सकते है जो अपने घर पर ही नायक की प्रतीक्षा करती रही, पर दोनो की भेंट नही हो सकी। विद्यापति ने दोनो ही स्थितियो का चित्रण किया है। सकेतस्थल पर प्रतीक्षाकुल एव निराश नायिका का चित्रण विद्यापति के ३६२, ३३६, ६७, ६८, ३७०-७४, ३८० (मि० म० वि०) प्रभृति पदो मे अभिसार पथ की समस्त बाधाओ तथा सकटो को पार कर, सकेतस्थल पर सारी रैन प्रिय की प्रतीक्षा मे बिता देनेवाली नायिका के मनोभाव वर्णित हैं। कतिपय अन्य पदो मे अपने भवन मे ही प्रिय की प्रतीक्षा करनेवाली नायिका के हृदय की घनीभूत निराशा की अभिव्यक्ति कवि ने की है।[2]

विद्यापति की विप्रलब्धा का सुपरिचित चित्र निम्नाकित पद मे प्रस्तुत है—

मधु रजनी सगहि खेपवि कत कति छलि आस।
विहि विपरिते सबे विघटल रहु रिपु जनँ हास॥

---

[1] मि० म० वि०, ४०-४१, ३६२, ४५३, ४४८ आदि।
[2] वही, १५०, १५२।

हे सुन्दरि कान्त न बूझ विसेख।
पिसुन वचन उचित विसरि अपदहो निरपेख॥
कत गुरुजन कत परिजन कत पहरी जाग।
एतहु साहस मझे चलि अइलहु एहन छल अनुराग॥
—वि० रा० मा० प०, १५२

[दूती से नायिका कह रही है कि आज की मधुयामिनी प्रिय के साथ वह बिताएगी, इसकी उसे कितनी आशा थी। पर भाग्य ही प्रतिकूल था उसका, उसकी आशा भग हो गयी, उसकी सारी योजना विफल हुई, शत्रुओ को उस पर हँसी उडाने का अवसर मिला। दूती नायिका को सात्वना देती है और कहती है कि तुम्हारे प्रिय का सामान्य-विशिष्ट की पहचान नही है। वह चुगलखोरो की बात को सही मानकर तुम्हारे प्रति अकारण ही उदासीन हो गया है। नायिका फिर अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है—गुरुजन-परिजन और गाँव के प्रहरी सभी जगे हुए थे, सबो की नजर बचाकर वह यहाँ सकेतस्थल पर आयी, इतना साहस करके वह आयी, इतना तो उसका अनुराग पक्का था, पर उसका प्रिय तो जैसे उसे भुला ही चुका है।]

(iii) प्रोषितपतिका

विप्रलभ शृगार मे प्रोषितभर्तृका के चित्र सबसे अधिक मार्मिक होते है। प्रोषितपतिका के तीन उपभेद किये जाते हैं—आसन्न प्रवासपतिका, प्रवासपतिका, अवसित प्रवासपतिका। इन्हे प्रवत्स्यत्, प्रवसत् तथा प्रोषित पतिका भी कहा जा सकता है।[1]

विद्यापति के अनेक पदो मे चित्रित प्रोषितपतिकाएँ स्वकीया मध्या प्रतीत होती हैं। जायसी की नागमती की तरह ये नायिकायें भी परिणीता वधू है जिनके प्रिय उन्हे छोडकर विदेश चले गये हैं या जाने को उद्यत हैं। गये थे देश विजय करने या वणिज-व्यापार करने, पर वहाँ जाकर पता नही क्यो लौटे नही, वही बस गये या किसी अन्य रमणी मे आसक्त हो गये, यहाँ एकाकिनी विरहिणी कभी मदन-ताप से, कभी अपने 'सून मन्दिर' की एकातता से, कभी सखी-सहेलियो के व्यग्य से, कभी गुरुजन-परिजन क्या समझते होंगे इस ग्लानि से, कभी पडोसियो की अपने रूपयौवन की ओर ललचायी दृष्टि से सतप्त-व्यथित होती रहती है।

विद्यापति की प्रोषितभर्तृका 'कुलमन्ति' नारी है। वह अपने प्रवासी प्रिय के लिए अहर्निश मगलकामना मे रत रहती है। उसके हृदय से, रोम-रोम से "जुग जुग जीवथु वसथु लाख कोस" की मगलवाणी मुखरित होती रहती है। प्रिय उसे भूला बैठा है, दूर परदेश मे। वह घरबार, नवयौवना पत्नी तथा स्वदेश को भूलकर प्रवासी बना हुआ है इसे विद्यापति की विरहिणी अपना ही भाग्यदोष मानती है, उसके पूर्वजन्म की

---

[1] शृङ्गार-मंजरी, भूमिका—डॉ० वी० राघवन्, पृ० ८२-८३।

ऐसी ही अर्जना थी तो इसमे उसके प्रिय का क्या दोष ? विद्यापति की नायिका का पूर्ण आत्मसमर्पण भाव प्रोषितभर्तृका के रूप मे मूर्त्तिमान होकर उसके व्ययासजल गीतो मे फूट पडा है ।

इस प्रसग का एक पद निम्नलिखित है—

> जाहि देस पिक मधुकर नहि गुंजर कुसुमति नहि कानने ।
> छव ऋतु मास भेद नहि जानए—सहजहि अबल मदने ॥
> सखि हे से देस गेल पिअ मोरा ।
> रसमति वानी जतए न जानिज सुनि पेम बड थोला ॥
> कहलिओ जतए न बूझए की करति अगित काजे ।
> कओनपरि ततए रतल अछ बालभु निरभय निगुण समाजे ॥
> हमे अपना के धिक कए मानल कि कहब तिन्हिकि बड़ाइ ॥
> कि हमे गरबि गमारि (नि) सबतह की रति विरत कन्हाइ ॥[१]

नायिका का प्रिय परदेश मे है । यहाँ एक-पर-एक ऋतुएँ—वर्षा, वसन्त, शरद—आ-जा रही है । नायिका, प्रियविछोह में एकाकिनी विरहिणी का जीवन दुख भरे दिन और सूनी रातें बिता रही है । अपनी सहेली से अपनी अवस्था क्या बताये, मदन-ताप उसे जो जलाता रहता है, उसका भेद क्या खोले, पर बात-ही-बात मे वह क्या नही कह देती । उसका प्रिय 'बालमु', पता नही किस देश मे जाकर बस गया है, पर इतना तो वह कह सकती है कि उस देश म छ ऋतुएँ नही होती हागी, वसन्त मे वहाँ फूल नही फूलते होंगे, रसाल मजरियाँ समीर को सुरभिसिक्त नही करती होगी, भ्रमर नही गुजार करते होंगे, पावस के मेघ नही उमडते होंगे, शरद की चाँदनी शायद वहाँ धरती को रुपहली साड़ी नही पहना जाती होगी और कोयल कूक-कूककर विरही प्राणो मे हूक तो नही ही भरती होगा । वहाँ मदन का पराक्रम कोई अनुभव ही नही करता होगा, तभी तो उसका प्रिय वहाँ अकेला भी दिन बिता रहा है ।

नायिका की इन बातो मे वसन्त-पावस-शरद आदि छहो ऋतुओ मे किस प्रकार उसको मदन का खरतरवाण-दश सहना पड रहा है इसका सकेत मिल जाता है । साथ ही वह यह भी नही विश्वास कर पाती है कि उसका प्रिय किसी अन्य रमणी मे आसक्त हो गया होगा, इसीलिए उसे भूल विदेश म बैठा है । वह तो यही सोचती है कि शायद उसके प्रिय को रति से ही विरति हो गयी है । चाहे जो हो, वह तो अपने भाग्य को ही दोष देती है । उसका प्रिय बदलती ऋतुआ के निमन्त्रण-उद्दीपन पर भी घर नही लौट रहा है, तो उसको अपने रूप-यौवन पर, अपने 'रसमन्ति' होने पर ही सन्देह हो जाता है । शायद उस देश म कोई 'कलामति' भी नही बसती है जो सकत से उसके प्रवासी प्रियतम को उसकी विरहिणी प्रिया की याद दिलाती, अथवा जिसक हाव-भाव

---

[१] वि० रा० भा० प०, २६२, पृ० ३६६ ।

को देखकर उसे अपनी प्रिया की याद आती। अबला जीवन ही शायद व्यथा के सागर में डूबने-उतराने के लिए बना है, अत मे वह सोचती है, पर अपने प्रिय को भी वह क्या कहे, जो सब कुछ भूलकर परदेश मे पड़ा है।

प्रोषितभर्तृका के मनोभाव, उसके हृदय मे उमडते व्यथा के बादल तथा बरसते आंसू इस पद की पंक्ति-पंक्ति मे भरे हैं। और सर्वोपरि है नायिका का पूर्ण आत्मसमर्पण भाव। 'रतिविरत कन्हायी' में नायिका कभी स्वाधीनपतिका होगी इसकी ध्वनि भी मिलती है। फूल से भरे उपवन, कोयल की काकली और भ्रमर की गुंजार, 'कलामति' नारियो के प्रेम-विलास—ये सब नायिका के चित्त को उत्कंठित किंवा उद्वेलित करते रहते हैं, मिलन के दिनो मे उसका प्रिय भी इनसे रागोद्दीप्त हो जाता होगा, कवि के इस गीतिपद मे नायिका यह सब बता देती है, बडे ही कौशल से, अपने विषय मे कुछ नही कहकर भी क्या नही कह देती ? विद्यापति की 'कलामति' नायिका यहाँ सम्पूर्ण कलात्मकता के साथ प्रस्तुत है।

प्रोषितभर्तृका के मनोभावो का चित्रण सम्बन्धी विद्यापति का एक अन्य पद—

विपत अपत तरु पाओल रे पुनु नवनव पात।
विरहिनि नयन विहल विहि रे अविरल बरसात ॥
सखि अन्तर विरहानल रे नित बाढ़ल जाय।
बिन हरि लख उपचारहु रे हिय दुख न मेटाय ॥
पिय-पिय रटय पपिहरा रे हिय दुख उपजाय।
कुदिना हित जन अनहित रे थिक जगत सोभाव ॥
कवि विद्यापति गाओल रे दुख मेटत तोर।
हरखित चित तोहि भेटत रे—पिय नन्दकिसोर ॥

—मि० म० वि०, ५४४, पृ० ३६४

मिथिला के लोककंठ से प्राप्त यह कवि के प्रख्यात पदो मे है। प्रोषितपतिका के मनोभावों का चित्रण इस पद मे जितना मर्मस्पर्शी हुआ है वह विद्यापति के भी अन्य पदो मे कम मिलेगा। इस पद मे विद्यापति के मौलिक संस्पर्श—उनका भावगाम्भीर्य, व्यथासजलता, उक्तिविदग्धता, जग-युग-जीवन की अनुभूति—सरल अकृत्रिम अभिव्यंजना शैली—सभी कुछ एकत्र हैं।

विरहिणी नायिका सर्वप्रथम दो बड़ी मर्मस्पर्शिनी बातें कहती है—उसका विरहरूपी पत्रहीन वृक्ष आज नव-नव पल्लवों से युक्त होकर सघन हो रहा है, विरहिणी के घर मे विधाता अविरल—कभी नहीं थम्हनेवाली—बरसात जो सिरज देता है। उसकी आँखें हमेशा बरसती रहती है।[1] पर इस अविरल बरसात के बावजूद भी

[1] तुलनीय— निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हमपे जब ते स्याम सिधारे ॥
—सूरदास

हृदय की ज्वाला पल भर के लिए भी कम नहीं होती। अन्तर में विरह का निरन्तर बढता ताप, आँखों में, सम्पूर्ण घर में अविरल बरसात, विरहिणी के लिए ये दिन सचमुच कुदिन हैं, बुरे दिन हैं। फिर कोई सान्त्वना देनेवाला, सहानुभूति के दो शब्द कहनेवाला भी तो नहीं, जगत् की रीति जो है, कुदिन आने पर हितजन भी अहित चाहनेवाले हो जाते हैं, अपने भी पराये बन जाते हैं। यही जगत् का स्वभाव है, विरहिणी को प्रेम के विछोह में यह अनुभव पूरी तरह हो चुका है। दुःख-सुख हर किसी के जीवन में आते हैं। पर इनमे हमारे कुछ अनुभव व्यक्तिगत न रहकर सर्व-युगीन तथा सर्वजनीन हो जाते हैं। कवि ऐसे ही अनुभवों को अपने गीत में गुम्फित कर उन्हे सर्वसवेद्य बना देता है। विद्यापति के पद-साहित्य में जगत् और जीवन के ऐसे मार्मिक अनुभवो के मोती गुम्फित हैं। अद्वितीय तथा मर्मस्पर्शी विरहकाव्य कविवर जायसी तथा भक्तवर सूर ने लिखे हैं, पर "कुदिना हितजन अनहित रे थिक जगत् सोभाव" जैसी पक्तियाँ उनके काव्य में बहुत खोजने पर भी कम ही मिलेंगी।

प्रोषितपतिका के मनोभाव के मार्मिक चित्र विद्यापति के लगभग शताधिक पदो में मिलते है।[1] इनमे एक पद में कवि ने बारहमासा[2] तथा एक में षड्ऋतु[3] वर्णन की पद्धति अपनायी है। इन पदो में हर मास मे प्रकृति के बदलते पृष्ठपटल पर प्रोषितपतिका वियोगिनी बाला किस प्रकार व्यथा का अनुभव करती है यह बडे ही मर्मस्पर्शी शब्दो में कवि ने वर्णित किया है।

बारहमासा पद्धति में विरह-वर्णन की परिपाटी भारतीय काव्य में प्राचीन काल से चली आ रही है। लोकभाषा काव्य में अद्दहमान (अबदुर्रहमान) कवि के 'सदेशरासक' में हमे इस पद्धति पर वर्णित विरहिणी की व्यथागीतिका मिलती है। जायसी कृत 'पद्मावती' में नागमती-विरह-वर्णन प्रसङ्ग का बारहमासा हिन्दी विरह-काव्य का अन्यतम अवदान माना जाता है। विद्यापति द्वारा प्रस्तुत बारहमासा की अपनी कई विशेषताएँ हैं—

(१) यह एक ही गीतिपद मे प्रस्तुत है, पूर्णतया गेय है। यह एक बार में सम्पूर्ण गाया जा सकता है, क्योकि इसमे ज्यादा विस्तार नही।

(२) बारहमासा बरसात की झडी मे गाये जाते हैं, झूला पर या जाता पीसती हुई या रोपनी करती हुई धान के खेतो में कृषक वनिताओ के कठस्वर मे, अतः आषाढ़ मास से बारहमासा का प्रारम्भ करके कवि ने स्थानीय ससर्श अपने पद में तो दिया ही है, उसमे सहज स्वाभाविकता भी भर दी है।

---

[1] मि० म० वि०, १७३-७८, १८०, १८४, १८६-८६,[^]१४५, १४६, १५८-६६, ४१५, ५१०-१६, ५२०-६०, ७१६-७६२।

[2] वही, १७४।

[3] वही, ६१०, ७२५

(३) विद्यापति के बारहमासा में नवपरिणीता प्रवासपतिका के हृदयोद्गार वर्णित है। उसमे अकृत्रिम ग्राम्य परिवेश[1] की छाप मिलती है।

(४) जो प्रकृति-चित्र इस प्रसङ्ग मे कवि ने प्रस्तुत किये है वे मिथिला के स्वाभाविक प्रकृति परिवेश के सजीव चित्र हैं।[2]

(vi) अभिसारिका

अभिसारिका का चित्रण शृङ्गार-काव्य का एक रोचक अश है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे अभिसारिका का चित्रण किया है।[3] कृष्णाभिसारिका तथा शुक्लाभिसारिका—अभिसारिका के इन दो भेदो मे विद्यापति ने कृष्णाभिसारिका का ही चित्रण अधिक किया है। विद्यापति की अभिसारिका रात की घनी अँधियाली मे घर से निकलती है। रात भी अधिकतर पावस की जब नदी-नाले भरे हुए होते हैं, कीच-कादव से रास्ते दुर्गम हो जाते है, पग-पग पर साँप का भय होता है, बिजली की कौंध ही पथदीप होती है, ऐसी कठिन बेला मे अभिसारिका अपने प्रिय से मिलने परिजन-गुरुजन की नजर बचाकर घर मे बाहर होती है। कभी-कभी तो वह उमडती-उफनती धारा भी हाथो के सहारे ही तैर कर पार हो जाती है। उसके उस विकट साहस तथा लगन पर उसके सग की सहेली या दूती को भी विस्मय होता है, पर जहाँ मदन प्रेरक हो, प्रियमिलन की लगन सकेतस्थल की ओर खीच रही हो वहाँ अभिसारिका के कदम रुकते नही। और तो और, साँप-बिच्छुओ की परवाह न करती हुई उन्हे भी कुचलती-रौदती वह बढ़ती जाती है और पथ की सारी बाधाओ को पार कर अपने प्रिय से मिलने सकेतस्थल पर पहुँच ही जाती है।

सहज सकोचमयी तथा शालीनताप्रिय भारतीय नारी की प्रकृति के कहाँ तक अनुकूल अभिसारिका का यह चित्र पडता है, नही कहा जा सकता। पर भारतीय शृङ्गार-काव्य मे परकीया प्रेम को जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है उसके परिप्रेक्ष्य मे अभिसारिका का चित्रण अस्वाभाविक भी नही कहा जा सकता।

---

[1] "कौन पुरुष सखि कौन से हो बेस।
करब मयें तहाँ जोगिनि बेष॥"

—मि० म० वि०, ६७४।

[2] (क) "साओन मास बरिस घन वारि।
पन्थ न सूझे निसि अँधियारि॥
चौदसि बेखिअ बीजुरि रेह।
से सखि कामिनि जिवन संदेह॥"

(ख) "पूस खोन दिन दीघरि रात"

(ग) "जेठ मास उजर नव रग" —मि० म० वि०, ६७४।

[3] मि० म० वि०, ६१-१०८, ३११-१४, ३२२-२७, ३३१-४०, ४४६, ४५४, ६४१-४२, ६४४, ८३८।

भारतीय साहित्य का सबसे सरस अंश होने का गौरव कृष्णकाव्य को प्राप्त है। कृष्ण के गोपिकाओ के साथ प्रेम-विहार का चित्रण भारतीय भाषाओ मे काफी प्राचीनकाल मे ही प्रारम्भ हो गया होगा। 'गाथा सप्तशती' की एकाधिक गाथाओ (जैसे ७/५५) मे कृष्ण के राधा की आँख मे धूल झाडने पर अन्य गोपियो के ईर्ष्या करने का वृत्त वर्णित है। 'श्रीमद्भागवत' तथा 'गीतगोविन्द' के प्रणयन के उपरान्त तो भारतीय भाषाओ म कृष्ण, राधा तथा गोपिकाएँ शृङ्गार-काव्य का सर्वस्वीकृत आलम्बन एव आश्रय बन गयी। जो शृङ्गार का खुलकर वर्णन करने मे सकोच का अनुभव करते थे उन्हें भी भक्ति का झीना आवरण चढाकर कृष्ण की राधा एव अन्य गोपियो के साथ विहारलीला का बडा ही मासल किवा उन्मद-चित्रण करने की छूट-सी मिल गयी। परवर्त्ती युगो मे पूर्वी क्षेत्रो मे चैतन्य महाप्रभु एव अन्यत्र स्वामी बल्लभाचार्य ने कृष्ण-लीला-सकीर्तन को भक्ति का सर्वसुलभ सोपान ही बना दिया। कृष्णकाव्य मे परकीया भाव श्रद्धा एव आदर के साथ प्रतिष्ठित हुआ। अभिसारिका को इस काव्य मे विशेष गौरव का स्थान सहज ही मिल गया।

अभिसारिका के चित्रण मे प्रेममार्ग की बाधाओ का आभास अवश्य मिलता है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों मे नायक जो ब्रह्म के जिज्ञासु का प्रतीक होता है, अपार दुर्निवार बाधाओं को पार कर प्रिया से मिलता है। कबीर की परम्परा के सन्तो की वाणी मे जीवात्मा द्वारा प्रेमिका के रूप मे प्रिय से मिलने को असख्य दुर्लंध्य विघ्न-बाधाओ के पार करने का उल्लेख किया गया है। अभिसार-पथ मे साँप-बिच्छुओ का दशन माया के प्रलोभन तथा विघ्न-बाधाओ का प्रतीक बन जाता है। यह सत्य है कि भारतीय चिन्तन या साहित्य म जीव और ब्रह्म के बीच दाम्पत्य प्रणय की भूमिका सूफी-सम्पर्क के बाद की ही देन है। पर बज्रयानी बौद्ध सम्प्रदाय, वाममार्गी, एवं शाक्त उपासना पद्धति का भी इसमें किंचित् अप्रत्यक्ष प्रभाव हो सकता है। अभिसार-वर्णन के अन्तर्गत समय तथा पथ की दुर्ल्लंध्य कठिनाइयों का उल्लेख इन सबस किंचित् सम्बन्धित हो तो इसमे आश्चर्य नही।

विद्यापति के गीतिपदो मे प्रस्तुत अभिसारिका का एक मर्मस्पर्शी चित्र निम्नाकित पद मे मिलेगा—

रयनि काजर बम भीम भुअंगम कुलिस पलए दुरवार।
गरज तरज मन रोसे बरिस घन संशय पलु अभिसार॥
सजनी वचन बोलइते मोहि लाज।
से जानि जे थरु सबे अगरु साहस मन देल आज॥
ठामहि रहिअ घुमि, परसे चिन्हिअ भुमि, दिगमग उपजु सन्देहा।
हरि हरि, सिव-सिव, तावे जाइह जिव, जावे न उपजु सिनेहा॥[1]

[1] वि० रा० भा० प०, २४०, पृ० ३३६।

"एकादश अवतारा"[१] कह कर उनकी प्रशस्ति की गयी है। इस पद मे भी अभिसारिका को राधारूपिणी कहा गया है।

(v) खण्डिता

खण्डिता के चित्र विद्यापति ने अधिक नही प्रस्तुत किये हैं। जिस ईर्ष्याविदग्ध मनस्थिति मे नायिका को खण्डिता कहा जाता है, वस्तुत विद्यापति की पूर्ण आत्मसमर्पण भाव से प्रेम करनेवाली नायिका के लिए वह न तो स्वाभाविक था और न समीचीन। नायक का बहुवल्लभ न होना ही जिस समाज मे उसकी पत्नी के भी विस्मय का कारण हो उसमे खण्डिता के लिए अनुकूल वातावरण नही हो सकता था। यह बात दूसरी है कि रसराज के कलाकार एव कलाबाजो की रुचि उसके चित्रण मे रमती रही है। खण्डिता के अन्तर्गत धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा, उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा—ये उपभेद होते हैं। खण्डिता स्वकीया या परकीया दोनो हो सकती है विद्यापति ने दोनो के चित्र प्रस्तुत किये हैं। विद्यापति की खण्डिता अधिकतर परकीया, मध्या तथा धीरा है। उसमे मुग्धा की-सी प्रणय-अनभिज्ञता नही, वह अधीरा की तरह नायक के प्रति कठोर या कटु शब्द नही व्यवहार करती।[२] वह अन्य रमणी के साथ रमण करके आये नायक को उसके पूर्वप्रेम का स्मरण कराती है, उसकी कही हुई बातो की याद दिलाती है, वह उपालम्भ भर देती है, झगडते या कुपित होकर कटु शब्द कहते उसे हम नही देखते।[३]

दो पदों[४] मे अन्य रमणी के साथ रात बिता कर रतिचिह्नो से युक्त आये हुए नायक की भर्त्सना करती हुई नायिका का चित्र प्रस्तुत किया गया है। एक पद मे शठ नायक का चित्रण है, वह अनुतप्त भी नही होता, नायिका की भर्त्सना सुनकर

---

१ "भनइ विद्यापति अपरूप मूरति राधारूप अपारा।
राजा सिविसिंघ रूपनरायण एकादस अवतारा॥"

—मि० म० वि०, ८६१, पृ० ७१।

२ अण्णमहिलाप्रसङ्ग दे देव करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एकान्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति॥

(हे देव हमारे प्रियतम के निमित्त दूसरी महिला की प्रसक्ति का विधान करो, नही तो पुरुष एक-रसास्वादी हो जायँगे एव किसी के दोष तथा गुण को विशेष भाव से नही समझ पायेंगे।)

—गाथा सप्तशती, १/४८

और भी देखिए, पं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित, 'हिन्दी गाथा सप्तशती' की भूमिका, पृ० २३-२४।

३ मि० म० वि०, ११३-१६, ३८५, ४११, ४७७, ६४६,।

४ वही, ११५-१६।

हँसता है, एक अन्य मे नायक को वही लौट जाने को नायिका कह रही है, जहाँ उसने रात वितायी है ।

एक पद मे दूतीवंचिता खण्डिता वर्णित है । दूती जिसे उसने नायक के पास भेजा था, स्वय उसके साथ रमण कर आयी है, नायिका उसका कपट समझ जाती है । वह और क्या कहे । बडी ही मार्मिकता के साथ इतना ही दूती से कहती है कि और वह उस नायक की बात उससे कहकर उसका हृदय न दुखाये । उसकी बातें सुनकर जाडे मे भी नायिका के हृदय मे आग लग जाती है—

तन्हिकर कथा कहसि का लागि । जूडिहु हृदय पजारसि आगि ॥
तन्हिकर कउसल मोरा पञ दोस । कहलेओ कहिनी बाढ़य रोस ॥[1]

कुछ पदो मे खण्डिता के एक उपभेद मानवती का चित्रण है । मानवती मे ईर्ष्या की अपेक्षा कोप की अधिकता रहती है ।[2]

अन्यसभोगदुखिता तथा मानवती नायिकाओ के चित्र कतिपय अन्य पदो मे मिलेंगे ।[3] अन्यसभोगदुखिता को किन्ही-किन्ही ने एक पृथक् अवस्था-नायिका माना है । पर कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, खण्डिता—तीनो श्रेणियो की नायिका मूलत अन्य-सम्भोगदुखिता है, प्रकृति तथा अवस्था-भेद से कही किसी मे निराशा, किसी मे ईर्ष्या और किसी मे कोप की प्रमुखता रहती है ।

मानवती के कतिपय चित्र रोचक तथा कलात्मक है। एक पद मे नायक मानवती नायिका से मानमोचन करने के लिए अनुनय-विनय कर रहा है। कभी उसके सौन्दर्य की प्रशसा करता है, कभी उसके अविचारित हठ को अनुचित बताता है कभी उसका मान पत्थर की तरह अखण्ड बन गया है यह कह कर उसे अपने अनुकूल करना चाहता है ।[4] एव अन्य पद मे नायक कहता है कि प्रेम की लता

---

[1] मि० म० व०, ११६, पृ० ७१ ।

[2] शृङ्गार मजरी, भूमिका—वी० राघवन, पृ० ८० ।

[3] मि० म० वि०, १२१-२५ ।

[4] वदन चाँद तोर नयन चकोर मोर रूप अमिअरस पीवे ।
अधर मधुरि फुल पिअ मधुकर तुल मधुविनु कतखन जीवे ॥
मानिनि मन तोर गढ़ल पसाने ।
अपने रभसें हसि किछुओ उतर देसि सुखे जाओ निसि अवसाने ॥
निज मने न गुनसि परबोल न सुनसि न छेंल विरानी ।
अपन अपन कजा कहे ते परम लजा अरथि न आदर हानी ॥
भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति सबे खन न करिअ माने ।
राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमा देई रमाने ॥—
—मि० म० वि०, १२१, रागतरगिणी, पृ०

मान का आघात नही सह सकेगी, प्रेम-लता की तोडना नही चाहिए, उसे पाप लगेगा।[1] एक मे वसन्त मे मानिनी का मान अधिक नही रह सकता, यह बताया गया है, मान मे सी अधिक वहाँ वसन्त का उद्दीपनकारी प्रभाव वर्णित है।[2]

विद्यापति ने मानवती का अधिक चित्रण नही किया है। जान पडता है कि विद्यापति की नायिका अपने प्राणवल्लभ के अनेक रमणियो मे आसक्त होने की स्थिति से बहुत ही जल्द समझौता कर लेती है। "जुग-जुग जीवथु वसथु लाख कोस,' "गेल दीन पुनु पलटि न आवए", "पुरुब करमे दिवस दूखने सबे विपरित भेल" जैसी पक्तियाँ कवि की नारी-भावना की परिचायक हैं। विद्यापति की नायिका विरह-व्यथा से सतप्त होती है, नायक का अपने प्रति उपेक्षाभाव देखकर व्यथित होती है, पर वह इसके लिए नायक से झगडती नही, द्वेष से विदग्ध होकर कोप नही करती, वह मान करके प्रिय का खोया प्रेम पुन प्राप्त करने के आग्रह मे भी विश्वास नही करती। "गेल भाव जे पुनु पलटवाए मे हे कलामति नारि" दूती की इस शिक्षा को उसने हृदयगम किया है। विद्यापति की नायिका चण्डीदास की नायिका की तरह नायक के क्षीण पडते प्रेमदीप को पुन दीप्त करने के लिए अनुनय-विनय ही अधिक करती है। विद्यापति की नायिका की ऐसी स्थिति मे स्वाभाविक उक्ति होगी—

जतहि प्रेमरस ततहि दुरन्त। पुनु कर पलटि पिरित गुनमन्त॥
सबकहु सुनिए ऐसन बेवहार। पुनु टूटए पुनु गाँथिए हार॥
ए कानु ए कानु तोहहि सयान। विसरिए कोप करिए समधान॥
प्रेमक अकुर तोहे जल देल। दिनदिन वाढि महातरु भेल।
तुअ गुन म गुनल सजनि आछ। रोपि न काटिए विसहुक गाछ।
जे नेह उपजल प्रानक ओर। से न करिअ दुर दुरजन बोल॥
जगत विदित भेल तोह हम नेह। एक परान कएल दुइ देह॥
भनइ विद्यापति न कर उदास। बड़क बचने करिए विसवास॥[3]

---

[1] "प्रेम लता तोड़ले बड़ पाप"—मि० म० वि०, १२२, पृ० ६४।

[2] नव रतिपति नव परिमल नव मलयानिल धार।
नव नागरि नव नागर विलसय पुनफले सब सबे पार॥
मानिनि आब कि मान लोहार।
अपन मान पावक मए पइसल लुलए मन भण्डार॥
एक दिन मान भलेहुँ तोहें राखल पंचवान छल थोल।
अबे अनङ्ग हे सरीरी वेखिअ समय पाय की मोल॥
विद्यापति कह के वसन्त सह मुनिहुँक मन हो लोभे।
लखिमा देविपति रूपनरायण षट्ऋतु सबे रस सोभे॥
—मि० म० वि०, १२३, पृ० ६४।

[3] मि० म० वि०, ४७०।

ऐसे मर्मस्पर्शी भाव कई अन्य पदो मे भी मिलेंगे। विद्यापति ने मध्या, मुग्धा, धीरा तथा गुप्ता नायिका का चित्रण अनेक पदो मे किया है। ये स्वकीया तथा परकीया दोनों ही हो सकती हैं। पर राधा-कृष्ण प्रसङ्ग में परकीया प्रेम ही चित्रित किया गया है। अधीरा का चित्रण कवि ने विरले ही किया है। सामान्यत विद्यापति की नायिका गर्वीली नही, ईर्ष्या या कोप मे अभिभूत उसे हम अधिक नही देखते। नायक के प्रति उसका प्रेम अनन्य किंवा पूर्ण आत्मसमर्पणकारी है। सयोग मे या वियोग मे, स्वाधीनपतिका हो या पतिप्रेमवचिता, विद्यापति की नायिका प्रिय के चरणो मे अपने को पूर्णतया समर्पित कर देती है। उसका प्रिय उसकी लाख उपेक्षा करे, अन्य रमणियो के प्रति आकृष्ट वा उनमे आसक्त हो, उसको सर्वथा भूल ही जाय, एक ही भवन म रहते हुए भी उसकी सुधि न ले, विदेश मे जाकर रम जाय, अवधि की आशा देकर वापस लौटना भूल जाय, विदेश मे रहकर दूसरी स्त्रियो के साथ प्रेम करे, पर वह अपनी "पुरुव पिरीति" की अलख जगाती अपने को भूलनेवाले प्रिय की मगलकामना करती हुई जीवन के शेष दिन बिताने का सकल्प करती है। उसका सौन्दर्य, उसका रूप-यौवन, उसके पडोसी—सभी उस अन्य मे आसक्त होने को बहकाये, पर विद्यापति की नायिका अपनी प्रीति की डगर को नही छोडती। वह अपने रूठे, भूले नायक के पास दूती भेजती है, स्वय उसे "पुरुव पिरीति" का स्मरण दिलाकर अपनी सुधि लेने की अनुनय विनय करती है। पुरुष तो बहुवल्लभ होता ही है। "कतेक मालति, "एकल भमर"—यह उसे अविदित नही, पर उसका प्रेम सच्चा है, अनन्य है। वह अपने प्रेम को नही भुला सकती है। विद्यापति की नायिका सच्ची अनुरागिणी है, वह स्वकीया हो या परकीया, पर है अपनी प्रेम-साधना मे पूर्णतया आत्मनिवेदिता। यह निर्व्याज आत्मसमर्पण विद्यापति की नायिका की खास पहचान है।[1]

---

[1] (क) सबे परिहरि अएलाहु तुअ पास।
विसरि न हलये दए विसवास॥
× × ×
हमे अबला तुअ हृदय अगाध।
वड भए खेमिअ सकल अपराध॥
भनइ विद्यापति गोचर गोए।
सुपुरुष सिनेह अन्त नहि होए॥
—मि० म० वि०, ४७१।

(ख) झटक झाटक छोडल ठाम। कएल महातरु तर विसराम॥
से जानल प्रिय रहल हमार। सेस डाल टूटि पलल कपार॥
चल चल माधव कि कहब जानि। सागर अछल थाह भेल पानि॥
हम जे अनओले की भेल काज। गुरुजने परिजने होएत लाज॥
—मि० म० वि०, ४७०।

नायक यदि उसकी उपेक्षा कर रहा है, यदि वह उसे भूल कर अन्य रमणी मे आसक्त हो रहा है तो इसे वह अपना अभाग मानती है, अपना ही दोष मानकर नायक से क्षमायाचना करती है। अथवा "वाँक विधाता की न करावे" वह कर अपने मन को समझाना चाहती है।

विद्यापति की नायिका कभी भी अपने प्रिय का (प्रत्यक्ष या परोक्ष मे) शठ, धूर्त, निष्ठुर आदि कहकर सम्बोधित नही करती। नायक यदि उसको भूल रहा है, यदि वह उसकी उपेक्षा करता है, तो इसके लिए वह पिशुन वचन अपना कर्मदोष या रूप-यौवन की अस्थिरता[१] को ही दोष देती है इन्ही को उत्तरदायी मानती है।

विद्यापति की दूती भी नायिका को ऐसा ही कुछ समझा कर अपनी ओर से प्रीति की शिखा को मन्द नही करने की शिक्षा देती रहती है। पुरुष तो भ्रमर की प्रकृति का होता ही है। भ्रमर अकेला और कुसुम अनेक, फिर नायक यदि उसकी उपेक्षा करने लगे तो इसमे नायिका भी अपने को दोष क्यो दे, यह तो जगत् की रीति ही है। बडे ही मर्मस्पर्शी शब्दो मे कवि ने इसे अपने एक पद मे व्यक्त किया है—

> गगन मडल दुहुक भूखन—एकसर उग चन्दा।
> गए चकोरी अमिअ पीबए—कुमुदिनि मानन्दा॥
> मालति काँइए करिअ रोस।
> एकल भमर बहुत कुसुम—कमन तोहरि दोस॥
> जातकि केतकि नवि पदुमिनि सब सम अनुराग।
> ताहि अवसर तोहि न विसर एहे तोर बड भाग॥
> अभिनव रस रभस पओले कमन रह विवेक।
> भन विद्यापति पहर हितकर तैसन हरिपए एक॥
>
> —मि० म० वि०, ४४१

चन्द्रमा चकोरी और कुमुदिनी दोनो का बल्लभ है। इसके लिए उनमे न तो किसी को रोष है और न दु ख। दोनो अपने-अपने प्रेम मे मग्न रहती है। स्वीकृत बहुपत्नीत्व के युग मे, जहाँ ज्येष्ठा, कनिष्ठा—नायिका की ये श्रेणियाँ भी मान्य थी, कवि की यह सीख कितनी उपयुक्त तथा मर्मस्पर्शी है।

---

[१] जौवन रतन अछल दिन चारि। तावे से आदर कएल मुरारि॥
आवे भेल झाल कुसुम सब सब सूल। वारि विहुन सरके ओनहिं पूछ॥
हमरि तु विनति कहव सखि गोए। सुपुरुख सनेह अनुनहि होए॥
जावे से धन रह अपना हाथ। तावे से आदर कर संग साथ॥
धनिकक आदर सबका होए। निरधन वापुन पुछ नहि कोए॥
—मि० म० वि, ४६०।

(vi) कलहान्तरिता

कलहान्तरिता की नैराश्यपूर्ण वेदना विद्यापति के कई पदों मे साकार हो उठी है।[१] पररमणीरत प्रिय के प्रति नायिका के हृदय मे कोप एवं खीझ होना स्वाभाविक है। तज्जन्य कलह तथा फलतः दोनों का मिलन नही होना कलहान्तरिता की पृष्ठभूमि है। इस प्रकार के कलह, मान, रूठने-मनाने मे मिलन की अवधि बीत जाती है और नायक लौट जाता है। नायिका मिलन का अवसर उसने खो दिया यह सोचकर खिन्न तथा व्यथित होती है। कलहान्तरिता तब अपनी वर्तमान स्थिति से समझौता करने का प्रयत्न करती है। कवि के शब्दों मे—

> हे माधव भल भए कएलहु भूले।
> कांच कंचन दुहु सम कए लेखलहु न जानहु रतनक मूले॥
> तोहें हमें पेम जते दूरे उपजल सुमरहु से आवे ठामे।
> आवे परमनि रंगे तोहे भुललहु विहुँसिहु हसि हेर वामे॥
> ऐसन करम मोर तें तोहे जदि भोर हमे अबला कुल नारी॥
> पिसुनक वचन कान जदि धएलहु सांति न कएलहु विचारी॥
> भनइ विद्यापति सुनहु सुन्दरि जनु मानहु संका।
> दिवस याम सखि सबे खन न रहए चाँदहुँ लाग कलंका॥[२]

प्रस्तुत पद मे नायिका के हृदय की व्यथा, निराशा, अनुताप तथा ग्लानि फूट पडी है। उसका प्रिय पररमणीरत है, वह कांच-काचन मे भेद नही समझता, उल्टे उसी पर दोष लगाकर चला गया है, यह सब सोचती हुई वह अपने सुख का ओर-छोर नही देखती। कवि नायिका को धीरज बँधाता है। बुरे दिन आने पर ऐसा ही होता है, पर बुरे दिन हमेशा नही रहते। चाँद को भी कलक लगता है, उसका नायक पररमणीरत है, पर उसके अच्छे दिन फिर लौटेंगे, नायक फिर उससे प्रेम करेगा। कलहान्तरिता और उपेक्षिता मे केवल एक कदम का ही भेद होता है—जहाँ प्रियतम के फिर प्यार करने की आशा एकदम खत्म हो जाती है, कलहान्तरिता उपेक्षिता बन जाती है, फिर तो सारी जिन्दगी प्रिय का नाम जपना, बीते दिनों की याद करना, मदन-ताप सहते हुए एकाकिनी का जीवन व्यतीत करना ही रह जाता है। पर कलहान्तरिता की आशा नही टूटती, उसका प्रिय से झगडा तो क्षण भर का ही है, इधर वह कलह मे व्यर्थ खोयी हुई रात की बात सोचकर खिन्न होती है, उधर उसका प्रिय भी पुन उससे मिलने का आयोजन करता है। विद्यापति के एक अन्य पद मे ऐसा ही चित्र मिलता है—

---

[१] मि० म० वि०, ३७६, ३८८, ४०६, ४२७, ४४३, ४६७।
[२] वही, ३७६, पृ० २६५।

कि कहब अगे सखि मोर अगेयाने ।
समरिओ रात गमाओल माने ॥
जखने मोर मन पर सन भेला ।
दारुन अरुन तखन उगि गेला ॥[१]

(vii) वासिकसज्जिका

वासक शय्या का चित्रण विद्यापति के केवल एक ही पद मे मिलता है ।[२]

(viii) विद्यापति ने स्वाधीनपतिका, वक्रोक्तिगर्विता

रूपगर्विता, सौभाग्यगर्विता आदि का अत्यल्प चित्रण किया है ।[३]

अन्य नायिकाएँ—विद्यापति के विभिन्न पदो मे स्वाधीनपतिका, वक्रोक्तिगर्विता तथा कई अन्य नायिकाओ के चित्र भी मिलेंगे । परकीया के अन्तर्गत गुप्ता, वृत्तसुरत-गोपना तथा स्वय-दूती निपुणा, लक्षिता आदि श्रेणियो की नायिका के चित्र कवि ने कई पदो मे प्रस्तुत किये हैं । इसी तरह स्वकीया वा परकीया के अन्तर्गत मुग्धा, मध्या एव प्रगल्भा के चित्र, उनकी चेष्टाएँ, मनोभाव आदि कतिपय पदो मे वर्णित हैं ।

नायिका के सौन्दर्य, अगछवि तथा शृगार-प्रसाधन, रूपदर्शन की लालसा, मिलनपूर्व दूती शिक्षा आदि प्रसगो पर अनेक पद मिलेंगे । इन पदो मे सूक्ष्म अध्ययन करने पर एक या दूसरी श्रेणी की नायिका की झलक मिलेगी । 'मि० म० वि०' के ६१६-३४, १७-२७, २६-३०, ३२ सख्यक पदों मे रूपशोभा, अगछवि, वय-सधि, सौन्दर्य तथा यौवन का वर्णन है, २८ सख्यक पद मे रूपगर्विता नायिका के मनोभाव वर्णित हैं । ये विद्यापति के अति प्रख्यात, बहुप्रचलित तथा काव्योत्कर्षपूर्ण पदो मे हैं । इस प्रसग मे भाषा भी काव्य के समस्त आभरण से युक्त, मनोहर एव रसमयी हो गयी है । उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, विशेषोक्ति प्रभृति अलकारो से मडित इन पदो मे कविकर्म का अद्‌भुत कौशल तथा सुरुचिपूर्ण कलात्मकता दर्शनीय है । वस्तुत यदि विद्यापति ने कही अलकृत अभिव्यक्ति को खुलकर अपनाया है तो इसी प्रसग मे । स्वभावत इस प्रसग मे अनेक स्थलो पर भाव की अपेक्षा अभि-व्यक्ति ही प्रधान हो गयी है । ऐसा जान पडता है कि विद्यापति के कवि-जीवन के प्रारम्भिक चरणो मे इन पदो की रचना हुई होगी । इन पदो मे अधिकतर मुग्धा, ज्ञातयौवना, कन्या, ऊढा या अनूढा नायिका चित्रित की गयी है । पर कवि की दृष्टि नायिकाभेद पर न होकर उसके सौन्दर्य के उत्कर्ष या अंगो के उतार-चढाव, सौष्ठव, आकर्षण या फिर उसके बदलते मनोभावो पर ही अधिक रही है, यह स्पष्ट लक्षित होता है ।

---

१ मि० म० वि०, २८, ३४५-४६ ।
२ वही, ३५८, पृ० २५३ ।
३ वही, ३८८, पृ० ८७१ ।

सामान्या का चित्रण विद्यापति ने एकाधिक पदों मे ही किया है। इन पदों में संध्या समय ग्राम-मार्ग से जाते हुए पथिक को अपने हाव-भाव से तथा द्व्यर्थक वचन से अपनी ओर आकृष्ट करने या रति का खुला आमत्रण देने के प्रसग वर्णित हैं।[1] वेश्या का चित्रण केवल 'कीर्त्तिलता' मे ही मिलता है।

विद्यापति के गीतिपदो मे अज्ञातयौवना मुग्धा का चित्रण नही मिलता। वय-सन्धि की नायिका की अगछवि, सौन्दर्य तथा चेष्टाएँ कवि ने बडी ही कलात्मकता के साथ वर्णित की हैं।[2] उनकी वय-सन्धि की नायिका भी अज्ञातयौवना नही, "निरजने हसई उरज निहारि" इसका साक्षी है।

वस्तुतः विद्यापति के गीतिपदो मे प्रेम का चाहे जो भी प्रसंग हो, नायिका अपनी कुछ विशेषताएँ लिये हुए मिलती है। शास्त्रीय दृष्टि से विद्यापति की नायिका चाहे जिस श्रेणी मे भी रखी जाय, पर उसमे कुछ बातें सामान्यत एक समान मिलेंगी—ये मुख्यतः हैं पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव, सरलता, बदलती स्थिति से समझौता, अपने "कुलमन्ती" होने की चेतना, प्रेम की निश्छलता, कृत्रिम हाव-भाव की नातिशयता, सहज स्वाभाविक ग्रामीण अकृत्रिमता तथा मन के साथ शरीर की आवश्यकताओ के प्रति सजगता।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति की पदावली मुक्तक गीतिकाव्य है। सौन्दर्य और प्रेम के गीत इसमे सबसे अधिक हैं। प्रत्येक पद मे एक या दूसरी नायिका का चित्र आभासित होता है।

(२) विद्यापति के पद-साहित्य की मूल भावधारा है प्रेम। नायिका या नायक उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। नायिकाभेद पर किसी ग्रन्थ की रचना करना उनका अभीष्ट नही था, उनके काव्य मे विभिन्न प्रकृति या अवस्था-नायिकाएँ शृगार के आश्रय या आलबन रूप मे ही चित्रित हुई हैं।

(३) विद्यापति सभोग एव विप्रलम्भ—शृ गार के दोनो पक्षो—के कवि हैं। पर जैसा कि 'कीर्तिपताका' मे उल्लिखित नायिकाओं से सकेत मिलता है, उन्होंने

---

[1] हमे एकसरि पिअतम नहि गाम। तें मोहि तरतम देइते ठाम॥
अनतहु कतहु देइतहु वास। जों केउ दोसरि पलउसिनि पास॥
चलचल पथुक चलह पथ माह। वास नागर बोलि अनतहु याह॥
आँतर पाँतर साँझक बेरि। परदेसि वसिअ अनागत हेरि॥
घोर पयोधर जामिनि भेद। जे करवह ताकर परिछेद॥
भनई विद्यापति नागरि रीति। व्याज वचने उपजाव पिरीति॥
—मि० म० वि०, १६ (५८८–८६ भी इसी प्रसग के पद हैं)।

[2] मि०म०, ६१६–२२, १७–१९।

आठ अवस्था-नायिकाओ को प्रमुखता दी है। उनके पदो मे इनके मनोभाव एव चित्र अधिक मिलते हैं।

(४) अवस्था-नायिकाओ म विद्यापति ने सबसे अधिक प्रोषितपतिका एव विरहोत्कण्ठिता का चित्रण किया है। खण्डिता तथा मानवती के चित्र भी दशाधिक पदो मे मिलते है। अभिसारिका का चित्रण अनेक पदो मे किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य अवस्था-नायिकाओ के चित्र अधिक नही मिलते।

(५) विद्यापति ने पति या प्रिय द्वारा उपेक्षिता वा सर्वथा परित्यक्ता नारी की मनोव्यथा का मर्मस्पर्शी चित्रण अनेक पदो मे किया है। इन्हे किसी विशेष अवस्था-नायिका के अन्तर्गत नहीं रखकर पृथक् श्रेणी मे रखा जा सकता है। इनकी व्यथा मूक हो वा मुखर पाठक के हृदय मे करुणा का उद्रेक करती है।

(६) विद्यापति के सभोग शृङ्गार के पदो मे उत्तमा, मध्या, मुग्धा, प्रगल्भा या प्रौढा, ऊढा, अनूढा, स्वकीया तथा परकीया नायिकाओ के चित्र मिलते हैं। इनमे कुछ मे तो नायिका का सागोपाग चित्रण है, पर अधिकाश मे उसके मनोभावो की ही मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत है।

(७) नायिका का चित्रण करत समय विद्यापति ने नखशिख पद्धति का अनुसरण दो-तीन पदो मे ही किया है। इसमे परम्परागत रूढियो एव उपमानो का ही सहारा उन्होने लिया है। अन्य पदो मे नायिका के उन्ही अङ्गो या चेष्टाओ के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जिन पर पुरुष की दृष्टि अधिक एव सर्वप्रथम निक्षिप्त होती है, जैसे नायिका की मुखछवि, उसकी आँखें, वक्षस्थल, उसकी गजगति प्रभृति।

(८) विद्यापति ने सामान्या का चित्रण अधिक नही किया है।

(९) विद्यापति के काव्य मे वस्तु-विधान की अपेक्षा भाव-विधान अधिक प्रमुख है। नायक-नायिका के चित्रण मे भी उनके मनोभावो की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया गया है।

(१०) विद्यापति मुक्तक शृङ्गार के कवि हैं। वे यौवन एव सौन्दर्य के चित्रकार हैं, प्रेम के मधुर गायक हैं। हिन्दी की रीतिवादी परम्परा के कवियो से उनका साम्य नही। विभिन्न नायक-नायिकाओ के चित्र उनके प्रेमकाव्य के आनुषङ्गिक परिणाम हैं अथवा उसके आवश्यक आधार।

(ख)

रस-तत्त्व

विद्यापति की रसमयी वाणी मे नैसर्गिक मधुरता भरी थी। वाणी के वे अद्‌भुत शिल्पकार थे। संस्कृत, प्राकृत, अवहट्ट, मैथिली—चार भाषाओ के वे ज्ञाता थे, चारो मे समान अधिकार के साथ रचना उन्होंने की। विद्यापति काव्य-कला के जौहरी थे। उनके गीतिपद 'अमरुकशतकम्' के श्लोको की तरह हैं जिनमे प्रत्येक मे एक रस-पारावार लहरा रहा है।

कवि भावजगत् का पारखी होता है। उसकी अन्तर्वीक्षणी दृष्टि मे मानव मन के अन्तर्तम गह्वरो मे प्रवेश करके उसके रहस्यो को परखने की क्षमता रहती है। वहाँ वह कितनी आशा-आकाक्षाओ की, कितने अटूट विश्वासो की कही समाधियाँ, कही मीनारें देखकर विस्मित हो जाता है। कितनी प्रदमित कामनाएँ, कुचली प्रवृत्तियाँ वहाँ बन्दिनी बनी रहती है। विजय के क्षणो का उल्लास, विश्वास और आस्था की ज्योति भी उसे वही दीखती है। मानव का मन—एक अद्‌भुत दुनिया—जहाँ अधकार और प्रकाश, जीवन्त छवि और गध करती कुरूपताएँ, दैवी आनन्द की लहर और पैशाचिक अट्टहास—क्या नही देख-सुन पडता ! कवि का कला-सौध इन्ही उपादानो पर खडा है, इन्ही से बनता है। कवि मानव मन के रहस्यो को देखता है, परखता है—उनमे से अपनी रुचि के अनुसार कुछ चुन लाता है, उन्हे अपने गीतो मे सर्वसवेद्य बनाकर जगत् के सम्मुख बिखेर देता है। उसके ये गीत किसी के मन की किसी तन्त्री को छूकर भनभना देते हैं, वह क्षण भर के लिए सब कुछ भूलकर एक अनोखी सपनो की दुनिया मे खो जाता है जिसमे पीडा का दशन भी मीठा जान पडता है। यही है रस-दशा, कवि के ऐसे गीत रस की पूर्ण निष्पत्ति करते है। विद्यापति की 'पदावली' मे ऐसे पद पृष्ठ-पृष्ठ पर मिलेंगे।

कवि अपने युग से प्रभावित होता है। उसके जीवन का आवेष्ठन, उसके अपने सस्कार, उसकी प्रकृति एवं प्रवृत्तियाँ, उसके व्यक्तिगत जीवन के अनुभव, उसका आचार-विचार, उसकी अपनी विशेष रुचि-अरुचि युग-जीवन से सामग्रियाँ ग्रहण करते समय उसे किसी-न-किसी रूप मे प्रभावित करती है। तभी वाल्मीकि के राम आदर्श मानव रहे, कालिदास के राम महामानव और तुलसी के राम भगवान् बन गये। जिस किसी ने कहा कि कविता व्यक्तित्व से पलायन है, वह आंशिक सत्य ही कह रहा था।[१] मानव का मन संवेदनशील होता है, कविमानस तो अत्यन्त ही सवेदनशील होता है, कैमरे के लैन्स से उसकी कुछ तुलना की जा सकती है। जीवन के किसी एक ही पक्ष के पूर्ण प्रसार तथा गहराई का आकलन कर उसे अपनी कविता मे उतारे अथवा जीवन रूपी हीरे के सभी पहलुओ को देख-परखकर समग्रता मे उसका चित्रण करे—कवि इसमे पूर्ण स्वच्छन्द होता है। इस विषय मे उस पर कोई रोक नही। रसमयी कविता की रचना दोनो ही कर सकते हैं, यदि उनमे मर्मग्राहिणी दृष्टि, भाव एवं वस्तु विधायिनी कल्पना, कारयित्री प्रतिभा तथा अपने शिल्प का पूरा ज्ञान हो। हमारे देश मे वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, जयदेव, चण्डीदास, चंद, जायसी, कबीर, सूर, तुलसी प्रभृति ऐसे ही कवि हुए है। इन्ही महाकवियो की महती परम्परा मे विद्यापति का भी स्थान है।

यों तो वाक्य यदि रसात्मक नही हो तो उसे काव्य मानने मे भी आपत्ति हो सकती है। पर सभी वाक्य तो रसात्मक नही हो सकते, नैसर्गिक सौन्दर्य की कमी अलकार एवं प्रसाधनो से कुछ हद तक पूरी की जाती है। इसी तरह वाक्य की सहज रसात्मकता के अभाव की पूर्ति उक्ति-चमत्कार से करने का यत्न किया जाता है। पर असली और नकली मे जो मौलिक भेद है वह कहाँ छिपता ? "वक्रोक्ति काव्यस्य जीवितम्" की उद्घोषणा अपनी जगह पर है, जन-मन के मर्म को स्पर्श करानेवाली रसमयी कविता अपनी जगह पर।

प्रत्येक कवि ने दोनो ही तरह की रचनाएँ की हैं—कभी हृदय के तार झनझना उठे ऐसा मर्म स्पर्श करनेवाली रसमयी उक्ति, कभी कोरी शाब्दिक कलाबाजी। भाव-वैभव एव शब्द के जौहर का अद्भुत संगम इन दोनो का मध्यवर्ती है। विद्यापति-साहित्य मे जहाँ एक-एक पक्ति मे रस-पारावार हो ऐसे स्थल अनेक है, वहीं प्रहेलिका तथा दृष्टिकूट के पद भी मिलते हैं। कवि की कला का निराभरण रूप—"सहजहि आनन सुन्दर रे भौंह सुरेखल आँखि" देखकर रसिक मन झूम उठता है, साथ ही "द्विज

---

[१] "(Poetry) is not the expression of personality but an escape from personality."

—T. S. Eliot, *Tradition And Individual Talentt*, (1919), Selected Prose (Penguin Books), p. 30.

आहर आहर सुत नन्दन सुत आहर सुत रामा" जैसी पंक्तियाँ शब्द-कोष पारंगता को भी घण्टो मगजपच्ची करने को विवश कर देती है।

विद्यापति सौन्दर्य और प्रेम के कवि है, रसराज शृगार के निष्णात कलाकार हैं। पर वीर, शान्त, रौद्र, करुण, हास्य प्रभृति रसो की व्यजना करनेवाली रचनाएँ भी उनके साहित्य मे मिलती हैं, यद्यपि वीर एव हास्य के अतिरिक्त अन्य रस आनुषगिक रूप से ही उनके काव्य मे आये हैं।

वीर रस

विद्यापति न अवहट्ठ मे रचित अपनी 'कीर्त्तिलता' तथा 'कीर्त्तिपताका' मे में वीररस की व्यजना करनेवाले बडे ही ओज भरे प्रसङ्गो की उद्भावना की है। 'मि० म० वि०' के पृष्ठ ६ पर कवीश्वर चन्दा झा से प्राप्त नगेन्द्र गुप्त की विद्यापति-पदावली मे सकलित एक रचना प्रस्तुत है। अवहट्ठ मे रचित इस रचना मे राजा शिवसिंह के किसी मुसलिम राजा या आक्रामक को युद्ध मे हराकर उसका किला जीत लेने की घटना वर्णित है। अनुमानत यह स्वतन्त्र रचना न होकर 'कीर्त्तिपताका' के खोये हुए पृष्ठों म से एक हो सकती है। इस छोटी-सी रचना मे भी कवि ने बडी ही ओज भरी वाणी में राजा शिवसिंह के पराक्रम तथा उनकी विजय की वार्ता वर्णित की है। कुछ पंक्तिया उद्धृत की जा रही हैं—

दुग दुग्गम दमसि भजेओ—गाढ़ गढ़ गूढ़ीय गजेओ।
पातिसाह ससीम सीमा—समर दरसेओ रे॥
× × ×
तरल तर तरुआरि रगे—विज्जुदाम छटा तरगे।
घोर धन संघात वारिस काल दरसेओ रे॥
× × ×
पार भइ परिपन्थि गजिअ—भूमि मण्डल मुण्डे मण्डिअ।
चारु चन्द्र क्लेर कीर्त्ति—सुकेतु तुलिओ रे॥
देवसिंह नरेन्द्र नन्दन—सत्रु भरवइ कुल निकन्दन।
सिंघसम सिवसिंघ राजा सकल गुणक निधान गनिओ रे॥

—मि० म० वि०, पृ० ६।

इस रचना का प्रत्यक शब्द ओजपूर्ण तथा वीरदर्प से दमकता प्रतीत होगा। यहाँ राजा शिवसिंह को "रूपनरायन" न कहकर "सिंघसम"—सिंह से उनकी उपमा दी गयी है। राजा ने क्रोध म आकर एक ही झोंटे में बादशाह का दुर्गम किला जीत लिया, बादशाह की ताकत कितनी है, इसकी जानकारी उसे करायी। युद्ध का वर्णन भी विस्तार के साथ किया गया है, तलवारें इस तरह चल रही हैं जैसे बिजलियाँ चमक रही हों, युद्ध का रोर वर्षाकाल के मेघ के गर्जन की तरह प्रतीत होता है। पृथ्वी हताहतो से पट गयी है। राजा की कीर्ति चन्द्रकला की तरह आसमान के सितारो के बीच उद्भासित होने लगी।

इस रचना मे शब्द एव छन्द का चयन भी कवि की प्रौढ कला का प्रमाण है। भाषा इसकी 'कीर्त्तिलता' के अवहट्ठ से किंचित् अधिक घिसी-पिटी है। पर मैथिली की कोमलकान्त पदावली मे तो इतना ओज नही ही भरा जा सकता था। उन दिनो जबकि अपनी रचना गाकर कवि जनमानस मे वीर भाव जगाया करता था, राजसभाओ मे पुरस्कार पाता था, सामन्तकुमारो मे युद्ध प्रयाण करते समय वीरदर्प भरा करता था, "दुग्ग दुग्गम दमसि भजेओ" जैसी पक्तियाँ वातावरण मे अद्भुत नाटकीयता भर देती होगी।

वीर रस के पूर्ण परिपाक के लिए आवश्यक सामग्रियाँ यहाँ प्रचुरता के साथ प्रस्तुत की गयी हैं। आलम्बन हैं राजा शिवसिह, जो "सिघसम" हैं, उत्साह स्थायी भाव हैं, अमर्ष सचारी भाव। "पातसाहि" अपनी परिसीमा भूलकर राजा पर आक्रमण करने आया, उसे पराजित करके, उसका दुर्ग भजन करके उसकी शक्ति कितनी सीमित है, यह उसे बता दिया, अत "पातसाहि" का सीमातिक्रमण उद्दीपन विभाव है। क्रोध मे मुँह लाल हो जाना, तत्क्षण प्रयाण कर देना—ये सब अनुभाव है।

विद्यापति का युग तिरहुत पर मुसलमानो के अनवरत आक्रमण का युग था। आक्रान्त हिन्दू के लिए मुसलमान घृणा एव आक्रोश का पात्र था। 'कीर्त्तिलता' मे कवि ने इसका आभास दिया है। राजा शिवसिह को वह "रामरूपे स्वधम्म खिख्खअ" कहकर उनका विरुद गाता है। "स्वधर्म-रक्षक" के प्रति जनमानस मे कितनी श्रद्धा होगी यह अनुमानित की जा सकती है। तात्पर्य यह कि रसदृष्टि से यह रचना अन्यतम है।

"कीर्त्तिलता" के चतुर्थ पल्लव मे युद्ध का बडा ही ओजस्वी एव विशद वर्णन है। उस रचना मे पहले भी सुलतान की सेना के प्रयाण का दृश्य विद्यापति ने ओजपूर्ण भाषा मे प्रस्तुत किया है।[1] इसी प्रकार 'कीर्त्तिपताका' मे सुल्तान के शिवसिह के विरुद्ध अभियान करने तथा दोनो मे भयकर युद्ध होने का ब्योरेवार आँखो देखा जैसा वर्णन किया गया है। ये सभी प्रसग वीर रस से ओतप्रोत है।

शृङ्गार

रस दृष्टि से विद्यापति के काव्य का परीक्षण उनकी 'पदावली' को ही सामने रखकर करना समीचीन है। विद्यापति के पद सौन्दर्य एव प्रेम के, विनय एव भक्ति के अन्यतम गीत हैं। गौडीय वैष्णव प्रभाव के कारण बगदेश मे उनके पद वैष्णव भक्ति रस के गीत माने गये। उनमे कृष्णार्पित कामगन्धहीन प्रेम का रस-पारावार है, यह आस्था पूरे साढ़े चार सौ वर्षों तक बनी रही। आज भी यह पूरी तरह टूट चुकी हो ऐसा नही जान पडता।[2]

---

[1] कीर्त्तिलता, विद्यापति (स० बाबूराम सक्सेना), पृ० ६४-६८।
[2] मि० म० वि०, भूमिका, पृ० १०२-३।

निकटतर मैथिलीभाषी क्षेत्र मे विद्यापति के प्रेमगीत का वैष्णव लीलापदा से कोई सम्बन्ध नही माना गया। यहाँ या पडोसी नेपाल मे उन्हे लौकिक शृगार की रसमयी गीतिका के रूप मे जनमानस ने अपनाया। हम पहले उनके पदो का रसराज के उत्स, स्रोत एव परिपाक की दृष्टि से अध्ययन करेंगे। इनमे भी, उत्स एव स्रोत की विस्तृत विवेचना अन्यत्र की गयी है[१] अत इनके सम्बन्ध मे यहाँ कुछ नही कहकर उनके पद-साहित्य मे शृङ्गार का पूर्ण परिपाक कहाँ तक हो पाया है इसी का विवेचन किया जा रहा है।

"विभावानुभावसचारि सयोगात् रसनिष्पत्ति" का मूल सूत्र जितना ही प्राचीन है उतना ही मान्य भी। रसवाद का सिद्धान्त आज भी उतना ही सार्थक है, उसे वैज्ञानिक भी कई विचारक मानते हैं।[२] विद्यापति के काव्य की रचना तो मध्ययुगो के प्रथम चरण मे हुई थी। यहाँ हमे यह देखना है कि उनके पदो मे विभाव, अनुभाव, सचारी भावों का सयोग कहाँ तक हो पाया है, कहाँ तक इस सयोग से रस निष्पन्न होता है।

पर विभाव, अनुभाव और सचारीभावो के सयोग से निष्पन्न रस तो सहृदय-सवेद्य ही होता है। केवल सहृदय-सवेद्य होना काव्य के चारो ओर एक लक्ष्मणरेखा खीच देता है, काव्य की सर्वजनसवेद्यता आज कसौटी मानी जाती है। अत हमे यह भी देखना होगा कि विद्यापति के प्रेमगीत कहाँ तक जनमानस के लिए सहज-सवेद्य हैं।

विभाव दो है—आलम्बन और उद्दीपन। शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव है नायक या नायिका। इनमे भी नायिका ही आलम्बन होती है, नायक आश्रय। जहाँ नायक को देखकर नायिका के मन म प्रणयानुभूति वर्णित हो वहाँ नायक को आलम्बन तथा नायिका को आश्रय माना जा सकता है। विद्यापति ने दोनो स्थितियो का चित्रण किया है। उद्दीपन विभाव हैं नव वय, तारुण्य, सौन्दर्य, वसन्त, वर्षा प्रभृति प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप, नदी-तट, वाटिका प्रभृति। अनुभाव कायिक होते है—मुस्कान, अश्रु, स्वेद, कम्प प्रभृति। सचारी या व्यभिचारी भाव तैंतीस माने गये है। इनमे प्रमुख है स्मृति, हर्ष, औत्सुक्य, व्रीडा, विस्मय, सकोच आदि। इनके अतिरिक्त भी रसशास्त्रियो ने शृङ्गार रस की कई अन्य सामग्रिया का उल्लेख किया है—हाव, यत्नज एव अयत्नज अलकार आदि। इनका सयोग होने पर स्थायी भाव रति रसरूप म निष्पन्न होकर सामाजिको के लिए आस्वाद्य बनती है। रस के आस्वाद से प्राप्त आनन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा

---

[१] गीतिपदो की विधाश्तया प्रेम-भावना के प्रेरणास्रोत, अध्याय १/ख,
विद्यापति के काव्य मे प्रेम-भावना के विभिन्न रूप, अध्याय २/ख।

[२] आधुनिक हिन्दी काव्य मे शृङ्गार और प्रेम—रागेय राघव, पृ० ६।

गया है। कवि की किसी रचना में इनमें से जितनी अधिक सामग्रियाँ एकत्र दीखती हैं, रस निष्पत्ति की दृष्टि से उसे उतनी ही उच्च कोटि की माना जाता है।

विद्यापति के एक पद का परीक्षण इस कसौटी पर करना समीचीन होगा—

आसा मन्दिर बेस निसि गमावए सुखे न सूत सयान।
जखने जतने जाहि निहारए ताहि ताहि तुअ भान॥
बन उपवन कुंज कुटीरहि सबहि तोर निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरुछए अइसन पेम सरूप॥
मालति सफल जीवन तोर।
तोर विरहे भुवन भमए भेल मधुकर भोर॥
जातकि केतकि कत न अछ कुसुम रस समान।
सपनहि नहि काहु निहारए मधु कि करत पान॥
जकर हृदय जतए रहल धसि पए ततहि जाए।
जइअओ जतने बान्धि निरोधिअ निमन नीर समाए॥

—वि० रा० भा० प०, १८, पृ० २५-२६।

[दूती नायिका से कह रही है—मालती लता के समान सुन्दरि, तुम्हारा जीवन सफल है। नायक का तुम पर अनन्य प्रेम है। सुकुमार नयी केतकी के सुरभिसिक्त फूल तो कितने हैं, सभी फूलों में रस एक समान ही होता है, पर वह तो तुम्हें छोड़ कर सपने में भी अन्य किसी का नाम नहीं लेता, उसका रसपान क्या करेगा? दूती नायक की विरहदशा का उल्लेख करती हुई कहती है—वह तुम्हारी आशा में अपने घर में बैठा-बैठा सारी रात बिता देता है, चैन से बिछावन पर सोता भी नहीं, करवटें बदलते हुए ही उसकी रात बीतती हैं, जिधर भी जिसको भी देखता है उसमें उसे तुम्हारा ही भास होता है, वन-उपवन, कुंज-कुटीर सर्वत्र उसे तुम्ही-ही-तुम प्रतीत होती हो। और-तो-और तुम्हारे विरह में वह बार-बार मूर्च्छित हो जाता है। ऐसा है उसके प्रेम का स्वरूप! सच है जिसका मन जहाँ बसा रहता है उसी ओर वह बार-बार दौड़ता रहता है। जैसे पानी को चाहे कितना भी बाँधिए, रोकिए—वह नीचे की ओर ही जायगा।]

विद्यापति का यह पद रसनिरूपण की दृष्टि से अन्यतम है। पद की मूलभावधारा विशुद्ध शृंगार है, नायक की विरह-दशा की बातें की जा रही हैं नायिका से—नायिका आम्लबन विभाव प्रस्तुत हैं। नायिका सुन्दरी है, सुकुमारी है, नवयौवना है, 'मालति' सम्बोधन इसका प्रमाण है। नव वय, कुंज, कुटीर, वन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव है। व्यग्रता, भ्रम, उत्कंठा, औत्सुक्य आदि सचारीभाव हैं। विरह की नवमी दशा मूर्च्छा कही गयी है, नायक वहाँ तक आ गया है। वह जिधर भी

देखता है, जहाँ भी उसकी दृष्टि जाती है, उसे नायिका का ही आभास होता है। ऐसी है उसके प्रेम की अनन्यता। ऐसे नायक का प्रेम पाकर कौन तरुणी अपने को परम सौभाग्यवती नही मानेगी? 'मालति सफल जीवन तोर' कहकर दूती यही कहना चाहती है। साथ ही 'जातकी केतकी'—छोटे कचोडे का फूल—सौकुमार्य और सौरभ का प्रतीक—का अभाव नही दुनिया मे, वन उपवन उनसे भरा है, नायिका को इसका भी सकेत है कि एक वही सुन्दरी नही, ऐसे अनन्य प्रेमी को तन-प्राण सौंप कर वह अपना बनाये रहे। इस तरह नायिका को एक हल्का-सा सचेतक भी है। शृगार रस की निष्पत्ति के लिए सभी आवश्यक सामग्रियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं। अतिम पक्तियो में सच्चे प्रेम का स्वरूप भी कवि ने बता दिया है—दुनिया मे रूप-यौवन सम्पन्न नायक-नायिकाओ को कमी नही, पर जिससे प्रेम होता है उधर ही मन बारबार दौडता है, वही वह बसा रहता है। पानी जिस तरह ढलाव की ओर ही जायगा, लाख उसे रोकें-बाँधें, प्रेम की भी यही प्रकृति है।

एक अन्य पद मे रस-निष्पत्ति के लिए एकत्र सामग्रियो की राशि और भी बडी है—

> अवनत आनन कए हम रहलिहुँ वारल लोचन-चोर।
> पिया मुखरुचि पिबए धावल जनि से चाँद चकोर॥
> ततहुँ सजे हठि हटि मोञ आनल धएल चरन राखि।
> मधुप मातल उडए न पारए तइओ पसारए पाँखि॥
> माधवे बोललि मधुर बानी से सुनि मुदु मोयँ कान।
> ताहि अवसर काम वाम भेल धरि धनु पचवान॥
> तनु पसेब पसाहनि भासलि पुलक तइसन जागु।
> चूनि चूनि भए काँचुअ फाटलि बाहु वलया भागु॥
> भन विद्यापति कम्पित कर हो बोलल बोल न जाय।
> राजा सिवसिंह रूपनराएव सामसुन्दर काय॥

—मि० म० वि०, ३४, पृ० ३१।

नायक के समक्ष अकस्मात् पड जाने पर उसके अनुरागविह्वल तन-मन की कैसी अवस्था हो जाती है इसका वर्णन नायिका कर रही है। उद्दीपन-विभाव के रूप मे स्वय कामदेव अपने पचशर लिये प्रहार कर रहे हैं। स्वेद, रोमाच, कम्प, अगो का फूल उठना—अनुभावो की प्रदर्शिनी लगी है। फिर व्रीडा, सकोच, औत्सुक्य, हर्ष—सचारियो की भी क्या कमी है? इतनी इतनी रस-सामग्रियाँ का जहाँ सयोग हो रहा हो वहाँ रस का पारावार ही यदि नही छलक पडे तो वही आश्चर्य की बात होगी।

सबसे अधिक चमत्कार तो कवि ने हर्षोत्फुल्ल तन के फूल उठने से चुन-चुन कर कचुकी के फटने का उल्लेख करके इस पद में भर दिया है।[1]

एक विप्रलम्भ का पद—

कुन्द कुसुम भरि सेज सोहाओन चाँद इजोरिया राति।
तिला एक सुपहु समागम पाओल मास ब्ररख भेल साति॥
हरि कइसे पलटि मधुरपुर जाएब पुनु कइसे भेटब मुरारि।
चिन्ता जाल पडलि हरिनि सनि कि करत विरहिनि नारि॥
एक भमर भमि बहुल कुसुम रमि कतहु न केओकर बाध।
बहुवल्लभ सओ सिनेह बढ़ाओल पडल हमर अपराध।
दिवसे दिवसे बेआधि अधिकाएल दारुन भेल पचवान।
आओर बरख कत आसे गमाओब संसअ परल परान।
भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति मनचिन्ता कूर त्याग।
अचिर मिलत हरि रहु धैरज धरि सुदिने पलटए भाग॥

—मि० म० वि०, ५२३।

इस पद मे सामन्ती युग की नारी की मर्मव्यथा फूट पडी है। नायिका अपने घर मे अकेली बैठी सोच रही है, प्रिय उसे भुला चुका है, बहुवल्लभ—अनेक रमणियो के स्वामी—के साथ प्रेम जोडा उसने, यही तो उसके जीवन की सबसे बडी भूल हुई। पर एक ही भौरा क्या अनेक फूलो का रसपान नही करता? अनेक फूलो के साथ रमण करने मे कौन उसे बाधा देता है? लेकिन उसके 'पहुँ' ने तो उसे एकदम भुला दिया है। अब बीते दिनो के मधु-क्षणो की याद करके ही तो दिन काटना रह गया है। आज भी चाँद उगता है, रुपहली चाँदनी प्रकृति को रेशमी चादर ओढा जाती है, ऐसी ही

[1] 'अमरुकशतकम्' के एक श्लोक म दूती द्वारा मान की शिक्षा दिये जाने पर मुग्धा नवोढा कहती है कि वह और सब कुछ तो कर लेगी, पर जब पुलकित तन की उत्फुल्लता के कारण कचुकी के जोड टूक टूक हो जायेंगे तब उसका मान कैसे नही टूटेगा?

विद्यापति के इस पद म नायिका के अकस्मात् नायक के सम्मुख पड जाने पर प्रेमविवश होने का चित्रण किया गया है। वह लाख अपने मन के भाव, अपना प्रेम नायक से छिपाना चाहती है, पर उसके अग-अग प्रेमविवश होकर उसके मन का भेद खोल देते है। अन्य सबको वह किसी तरह छिपाती भी पर कचुकी फटने से जो 'चुनचुन' शब्द हुआ उसे कैसे प्रिय के कानो मे जाने से रोक सकती?

बिहारी ने नायिका की इस प्रेमविवश स्थिति का चित्रण करते हुए कहा है—"उर उछाह तन फूल"।

रातो मे कुन्द कुसुम मे भरे सेज पर किये गये केलिविलास की स्मृतियाँ कौध उठती है जब-तब। चाँदनी रात—कुन्द की धवल कुसुमराशि—आज उसके तन-मन में व्यथा भर देती है। ज्यो-ज्यो दिन बीतते हैं, उसकी विरह-व्याधि बढती जाती है। चिर तृपित कामनाएँ तो शान्त होती नही, और भी उग्र होती हैं, दारुण व्यथा उसे देती हैं। ऐसे ही एक दिन, दो दिन नही—उसका प्रिय शायद कभी उसकी सुध लेने लौट आये—इस आशा मे कितने बरस और उसे बिताने होंगे, सचमुच उसके प्राण संकट में पड़े है। कवि आशा-निराशा के झकोरो पर झूलती विरहिणी को धीरज रखने का सन्देश देता है। मन से चिन्ता दूर करे, कभी तो उसके दिन पलटेंगे, तब उसका प्रिय अवश्य ही उसकी सुध लेने आयेगा उसके पास।

विप्रलंभ शृगार के इस पद की प्रत्येक पंक्ति व्यथा-सजल है, हर शब्द अश्रु-सिंचित है। यद्यपि रस-सामग्रियों का अधिक विधान नही किया है कवि ने यहाँ, पर भावगाभीर्य एवं परिप्रेक्ष्य ने इसे मार्मिक रसानुभूति कराने मे अद्वितीय बना दिया है। इसमे नायिका आश्रय है; स्मृति, विषाद प्रभृति संचारीभाव; चाँदनी रात, कुन्द की कुसुमराशि आदि उद्दीपन विभाव हैं। पर इनके सयोग मात्र से यहाँ रस निष्पन्न नही होता है, उसमें इनका भी योग है, साथ ही बहुवल्लभ पुरुष की प्रणयिनी की विवशता उस युग की नारीमात्र की विवशता का सजल गीत बनकर इस पद मे फूट पड़ी है। कवि ने नारीजीवन की निस्सहायता तथा व्यथासंकुलता का जो चित्रण किया है इस पद मे वस्तुतः रसानुभूति कराने मे उसका योग कम नही। अंत मे, जीवन मे दुःख की तमिस्रा ही हमेशा नही रहती, सभी के दिन कभी-न-कभी पलटते हैं, इस सन्देश के साथ कवि अपने पद को समाप्त करता है।

विप्रलभ के ही एक अन्य पद के अध्ययन के साथ इस प्रसंग को समाप्त करना समीचीन होगा—

> बरिसए लागल गरजि पयोधर धरणी दर्दुरि मेली।
> नवि नागरि-रत परदेस बालभु आओत—आसा गेली।
> साजनि आबे हमे मदन असारे।
> सून मन्दिर पाउस के जामिनि कामिनि की परकारे॥
> लघु गुरु भए सरि पए-भरे बाढ़लि नोचेओ भयउ अगाधे।
> कओन परि पथिके अपन घर आओब सहजहिं सबकां बाधे॥
> एहि बेआज कहए पिया गेला आओब समअ समाजे।
> मोहि घर अतनु अतनु कये छाड़यु से सुखें भुञयु राजे॥
> सुअ गुन सुमरि कान्हे पुनु आओब विद्यापति कवि भाने।
> राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमा देवि रमाने।

यहाँ नायिका आश्रय है, प्रवासी नायक आलंबन। वर्षाऋतु, बादल की गरज, अँधियाली रात आदि उद्दीपन विभाव; शंका, भय, उत्कंठा आदि संचारीभाव हैं। इन

रस-सामग्रियों के संयोग के साथ इस पद मे प्रतिपादित भाव की मर्मस्पर्शिता, उत्कृष्टता, महत्ता तथा गभीरता विद्यापति के प्रेमकाव्य की महत्तम विभूति हैं। नायिका प्रोषितपतिका है। पति उपयुक्त समय पर वापस लौटेगा, यह वचन देकर गया था, पर अब तो उसको गए इतने दिन बीत गये कि उसके लौटने की आशा भी टूट चुकी है। पावस की काली अंधियाली रात मे अपने कमरे मे एकाकिनी पड़ी नायिका अपने प्रवासी प्रति की मगलकामना करती है, कामदेव भले ही उसके प्राण हर ले, पर उसका पति जहाँ भी हो, आनन्दमगल से रहे, इसके सिवा उसकी और कोई कामना नही। कामदेव का शरप्रहार भी अब उसे विह्वल नही करता।

रसानुभूति तो इस पद मे प्रोषितभर्तृका के हृदय की मूक-मुखर व्यथा करा रही है। दूर विदेश मे उसका प्रिय 'नव नागरि रत' हो, उसके वापस आने की आशा टूट चुकी हो, पर उसकी मंगलकामना ही वह करती रहेगी मृत्युपर्यन्त—काम के पचवाण की तीक्ष्णता भी यहाँ कुन्द पड जाती है। अपने लिए मृत्यु और प्रिय के लिए अनन्त मंगल, यह है विद्यापति की विरहिणी की मूल याचना।

किन्ही समीक्षको ने यह विचार व्यक्त किया है कि विद्यापति के काव्य मे करुण-विरह के उदाहरण नही मिलते,[१] कवि ने इसका विधान ही नही किया है। यह सत्य है कि प्राचीन रसशास्त्रियो की स्थापना के अनुसार विद्यापति के काव्य मे करुण-विरह का चित्रण नही हुआ है। विद्यापति की नारी जहाँ अपने बहुवल्लभ कन्त द्वारा उपेक्षिता वा पूर्णतया परित्यक्ता होकर एकाकी जीवन व्यतीत करती है, उसकी अवस्था तथा स्थिति करुणोत्पादक ही कही जा सकती है। प्रिय से उसके पुनर्मिलन की कोई आशा उसे नही रह जाती; यौवन के ढल जाने पर अब 'वारिविहीन सर' की तरह कौन उसे पूछेगा, यह वह स्वयं ही अनुभव करती है, अपनी सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भूल कर उससे प्रार्थना करती है कि घर मे उसे भी आश्रय वह कृपा करके दे, इसमे करुणा-मिश्रित शृंगार की ध्वनि मिलती है। वस्तुतः विद्यापति ने बहुपत्नीत्व प्रथा के समाज मे अथवा पुरुष की भ्रामरीवृत्ति के कारण नारी-जीवन की विवशता एवं व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति करके विरह-काव्य मे एक नूतन पृष्ठ ही जोड़ा है।[२] विरह की इस

---

[१] विद्यापति—सूर्यबली सिंह, लालदेवेन्द्र सिंह, पृ० ५२ (प्रकाशक सरस्वती मन्दिर, बनारस)।

[२] "विद्यापति से पूर्व संस्कृत के अनेक कवियों ने शृंगार के वियोग पक्ष का विभिन्न रूप से वर्णन किया है किन्तु प्रवंचित नारी के इस अथाह शोक-सागर का अवगाहन किसी ने नहीं किया .... 'वस्तुत: विद्यापति इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं।"

—'हिन्दी काव्य मे शृगार परम्परा और महाकवि बिहारी', ले० डॉ० गणपतिचन्द गुप्त, पृ० १६४।

अवस्था मे न तो मिलन की उत्कण्ठा, न सपत्नी के प्रति ईर्ष्या एव कोप और न प्रिय का प्रेम पुन प्राप्त करने की आशा ही रहती है। विरह की यह स्थिति सबसे अधिक दु ख, घोर निराशा से परिपूर्ण एव असीमित व्यथा से भरी होती है। प्रिय के मरण-जन्य विरह की स्थिति भी इससे ज्यादा करुणोत्पादक नही कही जा सकती। उपेक्षिता की व्यथा का चित्रण विद्यापति ने जिन पदो मे किया है उन्हे शास्त्रीय दृष्टि से करुण विरह की रचनाएँ तो नही कह सकते, पर विरहाकुल प्रणयिनी की मर्मव्यथा जो इन पदो मे फूट पडी है वह अत्यन्त करुणोत्पादक है, इसमे सन्देह नही।

हास्य

विद्यापति के काव्य मे हास्य की मधुर व्यजना की गयी है। शिवस्तुति सम्बन्धी पदो मे शिष्ट हास्य के सुन्दर उदाहरण मिलेंगे। इनमे अनमेल तथा वृद्ध विवाह की प्रथा पर व्यग्य भी किया गया है, ऐसा जान पडता है। इससे हास्य के साथ-साथ उसके अन्तराल मे मार्मिक व्यग्य किवा नारी-जीवन की एक अन्य विवशता भी व्यक्त होती है। विद्यापति की नचारियों मे ऐसे कई प्रसग मिलेंगे।[1]

एक पद प्रस्तुत है—

हम नहि आजु रहव एहि आँगन जौं बुढ़ होएत जमाई गे माई।
एक त बइरि भेल बीध विधाता दोसरे धिया केर बाप।
तेसरे बइरि भेला नारद बाभन जे बूढ आनल जमाई के माई॥
पहिलुक बाजन डामरु तोरव दोसरे तोरव रुण्डमाला।
बरद हाँक बरियात घेलाएब धिया लेय जाएब पराय गे माई।
धोती, लोटा पतरा पोथी एहो लवन्हि छिनाए।
जौं किछु बजता नारद बभना दाढ़ी धए घिसिआयब गे माई॥
भन विद्यापति सुनु हे मनाइन दिढ करु आपन गेआन।
सुभ सुभ कए सिरि गौरि बिआहू गौरि हर एक समान॥
—मि० म० वि०, ६०४।

[वृषभ-वाहन शकर बारात सजाकर गौरी व्याहने के लिए आये हैं। भूत-पिशाच बाराती, बैल की सवारी, गले मे मुण्डमाला—कहाँ सुकुमारी गिरिराजकिशोरी, कहाँ अपरूप भेषधारी महेश, मैना विगड उठती है, कहती है अपनी कन्या को लेकर वह भाग जायगी पर यह विवाह नही होने देगी। वृद्ध को वह अपना जामाता होते कैसे देख सकती है? वह घर-आँगन त्याग कर चली जायगी, पर यह अनर्थ नहीं होने देगी। फिर अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है कि उसके लिए विधाता तो वाम हुए ही, लडकी के पिता की भी अक्ल मारी गयी, और नारद—घटकराज, जिन्होंने यह व्याह पक्का किया, उन पर मैना अपना सारा क्रोध व्यक्त करती है। वह शकर का डमरु तोड देगी, उनके वाहन बैल को हका देगी, उनके गले की मुण्डमाला भी तोड

[1] मि० म० वि०, ६०३-५, ६०७।

पकेगी। यदि नारद कुछ बोलेंगे तो दाढ़ी पकड़ कर उन्हें यह घसीटकर बाहर कर देगी। कवि विद्यापति समझाते हुए कहते हैं कि शकर और पार्वती दोनो एक ही हैं, शुभ-शुभ कर के गौरी का ब्याह शकर के साथ कीजिए।]

इस पद मे विद्यापति के शिष्ट हास्य का उदाहरण मिलता है। शिव के वाहन वृषभ को हँकाने नारद के दाढ़ी पकड़ कर घसीटने आदि की बात हास्य की व्यजना करती है।

शात

शात रस का स्थायी भाव है निर्वेद। विद्यापति के विनय के पदा मे इस रस की सुन्दर व्यजना हुई है। ऐसे पद सख्या म अधिक नही पर जो हैं वे अत्यत मर्म स्पर्शी हैं, इसमे दो मत नही हो सकते।[1]

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त अन्य एकाधिक रसा की व्यजना करनेवाली पक्तियाँ विद्यापति के कतिपय पदो मे तथा 'कीर्त्तिलता' एव 'कीर्त्तिपताका' के विभिन्न प्रसगा मे मिलती हैं। विद्यापति के काव्य की मूल भावधारा की दृष्टि से उनका महत्व नहीं अत उनकी विवेचना नही की जा रही है।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति के काव्य मे शृगार और वीर रस की बड़ी ही प्रभविष्णु तथा मनोहर व्यजना हुई है—उनके गीतिपदो मे शृगार की तथा अवहट्ठ रचनाओ मे वीर रस की। 'कीर्त्तिलता' के एकाधिक प्रसगो मे तथा 'कीर्त्तिपताका' के राय अर्जुन वाले प्रसग मे भी शृगार रस की व्यजना हुई है। उनके कुछ विनय के पदो मे शात रस व्यजित है। शिवविवाह सम्बन्धी पदो म हास्य रस की व्यजना मिलेगी। कुछ अन्य स्थलो पर करुण, अद्भुत, वीभत्स तथा रौद्र रस की व्यजना करनेवाले प्रसग वर्णित हैं।

(२) विद्यापति शृगार के सिद्ध कवि है। उनके काव्य मे सभोग तथा विप्रलभ —शृगार के दोनो पक्षो का विस्तृत एव सर्वागीण निरूपण हुआ है।

(३) रस-परिपाक के लिए अपेक्षित रस-सामग्रियों की योजना करने मे विद्या पति सिद्धहस्त हैं। यहाँ उनकी वस्तुविधायिनी तथा भावविधायिनी कल्पना के योग से रसमय काव्य की शतधा फूट पड़ती है।

(४) सयोग-पक्ष मे कवि ने वस्तु विधान का अधिक सहारा लिया है, विप्रलभ मे भाव विधान का।

(५) सभोग-शृगार के प्रसगो मे भाव, हाव और हेला—तीनो का एकत्र तथा चमत्कारपूर्ण विधान होने से रस-परिपाक मे सहायता मिली है।

(६) विद्यापति ने विप्रलभ शृगार मे पूर्वराग के अन्तर्गत अप्रस्तुत योजना तथा कामदशाओ के वर्णन का सहारा लिया है। इन प्रसगो मे एकाधिक पद मे वर्णन

[1] मि० म० वि०, ६१३–१४, ७६६–७१।

किंचित् ऊहात्मक भी हो गया है। रस-तत्त्व की दृष्टि से विद्यापति का विरह काव्य अद्वितीय है।

(७) प्रिय द्वारा पूर्णतः उपेक्षिता वा परित्यक्ता नारी की मनोव्यथा का चित्रण विद्यापति के अनेक पदो मे किया गया है। इनमे कुछ पदा मे करुण विरह की-सी मर्मस्पर्शिता भर गयी है। इस प्रकार विप्रलम्भ शृगार के चित्रण मे कवि ने मानो एक नया पृष्ठ जोडा है।

(८) विद्यापति वस्तुत आभ्यतर के कवि हैं, रस-सृष्टि के लिए वे भाव की मार्मिकता पर अधिक ध्यान देते हैं। रस परिपाक के लिए उन्होने नायक-नायिका की चेष्टाओ या वाह्यक्रिया-व्यापार से कम सहायता ली है।

(६) विद्यापति की अप्रस्तुत-योजना सर्वत्र रस सृष्टि की सहायक है, कही भी उसकी विरोधी नही। मात्र चमत्कार के लिए अप्रस्तुत-योजना करके अथवा ऊहात्मक प्रसगो की उद्‌भावना से वे अपने काव्य को खिलवाड नही बनने देते। उक्ति का रस-मय होना काव्य की पहली तथा सबसे बडी शर्त है, विद्यापति यह कभी नही भूलते।

(१०) रस-सृष्टि के लिए भाव के अनुरूप भाषा एव शैली अपेक्षित है, विद्यापति के काव्य मे सर्वत्र इसका ध्यान रखा गया है। तभी उन्होंने वीर रस की व्यजना के के लिए अवहट्ट तथा शृगार के लिए मैथिली को अपनाया।

(११) विद्यापति के पदो मे जीवन के मार्मिक अनुभव तथा नीति एव आचार सम्बन्धी सूक्तियाँ बडी ही कलात्मक रीति से गुम्फित की गयी हैं। विद्यापति की काव्य-कला की यह विशेषता है कि इससे कही भी रसानुभूति मे किसी तरह का व्यवधान नही आने पाता।

(ग)

अलंकार-योजना

विद्यापति एक ओर हजारो वर्ष से चली आती हुई परम्परा की सन्तान थे, दूसरी ओर एक नवीन परम्परा के प्रवर्तक। उनकी रुचि सुसस्कृत थी, बनी-बनायी लीको पर ही चलते रहना उन्हे नही भाता था, युग की राजनीतिक हलचलो के साथ उत्कर्ष-विकर्ष के दिन उनके जीवन मे आते रहे, जिससे उनकी वाणी प्रभावित होती रही। विद्यापति राज्याश्रय मे पलनेवाले मात्र चारण-कवि नही थे, उनके सुख दु ख के सच्चे अर्थ मे भागी थे। फलतः उन्होने कभी वासना और सौन्दर्य के पूरी रसिकता के साथ गीत गाये, कभी सर्व-समर्पणकारी प्रेम के परमोज्ज्वल रूप का चित्रण अपने पदो मे किया। पहले मे चतुर शब्द-शिल्पी के हाथ की सफाई, उक्ति-चमत्कार एव अलकारो की सजावट है, दूसरे मे भाव-तल्लीनता, मार्मिक सस्पर्श तथा नारी जीवन की शाश्वत वेदनाजन्य "मौन मधि पुकार" है।

विद्यापति अलकारवादी कवि नही थे। मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए लिखे गये दस-पाँच पदो की बात अलग है, पर सामान्यत उनकी काव्य-कला का सौन्दर्य, अलकारो की झकार और चमक-दमक पर आधारित नही। नायक-नायिका की अग-छवि का चित्रण करते समय विद्यापति ने उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा प्रभृति कई अलकारो का सहारा लिया है, पर कही भी वे उसे अतिशयता की सीमा तक नही ले जाते। विद्यापति इन प्रसगो मे अलकार विधान की अपनी कारयत्री प्रतिभा का प्रदर्शन नही करने लग जाते है, उनका अभीष्ट प्रस्तुत का उत्कर्ष दिखाना ही रहता है।[1] साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि विद्यापति की अभिव्यजना-शैली के साथ अलकार इतने सहज

---

[1] हिन्दी काव्य में शृङ्गार परम्परा और बिहारी—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० १५७।

रूप से जुडे हैं कि दोनो को पृथक् करके देखना भी कठिन प्रतीत हो
कविता अलकारो के भार से कही भी दबी हुई नही प्रतीत होती, जो
आये है वे यथास्थान, अनायास एव सहज-स्वाभाविक जान पडते है। वस्तुत
स्वाभाविकता विद्यापति के काव्य का स्थायी सुर है। चाहे नायिकाभद हो या रस-
निरूपण या जीवन की मार्मिक अनुभूतियो का अभिव्यजन या विषम स्थितियो का
चित्रण, विद्यापति सर्वत्र अकृत्रिम, अयास स्वाभाविकता के साथ अपनी बात कहते
हैं। उनके अनेक पद जो लोकजीवन मे घुलमिल कर लोकगीत-से बन गए है उसका यही
रहस्य है। विद्यापति पडितो के कवि नही, पाडित्य प्रदर्शन के लिए उन्होने कभी कुछ
लिखा हो ऐसा नही जान पडता ('पुरुषपरीक्षा', 'लिखनावली इसके प्रमाण है)। प०
रमानाथ झा ने ठीक ही कहा है कि विद्यापति की शैली इतनी सहज सवेद्य है कि उनके
नाम की कोई दुरूह या क्लिष्ट रचना देखकर शका होने लगती है कि वह उनकी
रचना वस्तुत है भी या नही।[1]

विद्यापति 'पुरुषपरीक्षा' मे बच्चो तथा किशोरो के लिए कहानियाँ लिख रहे
थे। 'गोरक्षविजय' की रचना उन्होने शक्तिपूजा के अवसर पर रङ्गमच के लिए की,
पदो की रचना नृत्य-गीत के आयोजनस्वरूप अधिकतर करते रहे, इसलिए भी उनके
लिए क्लिष्ट कल्पना, ऊहात्मक वर्णन तथा मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलकार-
योजना करना कठिन होता।

उपर्युक्त विवेचन का यह तात्पर्य नही कि विद्यापति की काव्य-शैली निराभरण
है। विद्यापति के पद-साहित्य मे ही नही, 'कीर्तिलता' तथा 'कीर्तिपताका' मे भी
विभिन्न शब्दालङ्कारो तथा अर्थालङ्कारो से अभिमण्डित अभिव्यजना शैली मन को मोहती
जान पडती है पर उनकी अलकार-योजना की यह विशेषता है कि वह कही भी मात्र
चमत्कार प्रदर्शन या भावो का अभाव छिपाने के लिए नही की गयी है। दृष्टिकूट या
प्रहेलिका तथा दस-पाच अन्य पदो म कवि शब्दो की कलाबाजी दिखाने का लोभ नही
सवरण कर सका है पर इन्हे छोडकर अन्यत्र सर्वत्र विद्यापति ने अलकारो का बडा
ही सहज एव स्वाभाविक प्रयोग किया है।

'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका' एव 'पदावली' का सामान्य अवलोकन भी
इस बात की प्रतीति करा देगा कि विद्यापति को अलकारो का व्यामोह नही था
पर अलकारशास्त्र की बारीकियो का उन्हे अच्छा ज्ञान था। साथ ही यह भी कि
उनकी प्रतिभा प्रसूत शैली म ही कुछ ऐसी विशेषता थी जिससे उनके एक एक पद मे
तीन-तीन, चार-चार अलकार अनायास ही जुट कर उसकी रसमयता बढाते रहते थे।
रससिद्ध वाणी के कवि की यह विशेषता होती है। इसके साथ ही जीवन और जगत्

[1] पुरुषपरीक्षा, भूमिका—प० रमानाथ झा, पृ० ५८।

के उनके इतने व्यापक एव सूक्ष्म अनुवीक्षणजन्य अनुभव[1] थे तथा उन्हें भावविधायिनी कल्पना का ऐसा वरदान प्राप्त था जिससे उनकी अप्रस्तुत योजना की मौलिकता, प्रभविष्णुता तथा भावोत्कर्ष करने की क्षमता सहज ही अद्वितीय प्रतीत होने लगती है। 'उपमा कालिदासस्य' इस विरुद से सभी परिचित हैं। उत्तर भारतीय लोकभाषाओं के क्षेत्र मे विद्यापति उपमा के अद्वितीय जौहरी है यह कहना अत्युक्ति नहीं। मौलिक, ताजे एव नये अप्रस्तुतो के विधान मे वे सचमुच बेजोड हैं।

अप्रस्तुत की योजना सादृश्यमूलक तथा साधर्म्यमूलक होती है। इनमे साधर्म्य के आधार पर प्रस्तुत अप्रस्तुतविधान सजीव तथा अधिक हृदयग्राही किवा उत्कर्षकारी होता है। विद्यापति ने अधिकतर साधर्म्यमूलक अप्रस्तुतो का ही प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक सबसे अधिक प्रचलित अलकार हैं। इनका प्रयोग तो हम सामान्य वार्तालाप मे भी करते रहते हैं। किधो, मानो, मनहुँ आदि की सहायता से व्रजभाषा तथा अवधी के कितने ही कवियो ने उत्प्रेक्षा का इतना ढेर लगा दिया कि कही कही तो वह खिलवाड ही बन गया, बेचारा प्रस्तुत तो उस ढेर के नीचे दब ही जाता है विद्यापति इस अलकार व्यामोह मे नहीं पडे हैं। उत्प्रेक्षा का उन्होंने प्रयोग किया है विशेषकर नायिका या नायक के रूप-सौन्दर्य वा अगछवि का उत्कर्ष दिखाने के हेतु विद्यापति-साहित्य से उत्प्रेक्षा के एकाधिक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) कीर्त्तिलता

> ताम्हि केस कुसुम बस, जनु मान्यजनक लज्जावलम्बित
> मुख चन्द्र चन्द्रिका करी अधओगति देखि
> अन्धकार हस। नयनाजल संचारे भ्रू लता भग जनु
> कज्जल कल्लोलिनि करी वीचि विवर्त्त बडी-बडी
> शफरी तरङ्ग। अति सूक्ष्म सिन्दूर रेखा निन्दन्ते पाप
> जनु पंचशर करो पहिल प्रताप॥
>
> —कीर्त्तिलता, द्वितीय पल्लव, पृ० ४०

वेश्याओ ने अपने केश का शृङ्गार फूल से किया है। कवि उत्प्रेक्षा करत है कि उनकी कुन्तल-राशि मे गुँथे ये फूल मानो उनके रूप-रस का पान करने वा आये हुए मान्यजनो की मुखचन्द्र चन्द्रिका पर अधकार की उपहासजन्य हँसी हो कामिनी के केश मे टँके फूल की उपमा अधकार की हँसी से हिन्दी के किसी अन्य क

---

[1] एक उदाहरण—

> ततहि धाओल दुहु लोचन रे जेहि मधे गेलि वर नारि।
> आसा लुबुधल न तेजए रे कृपणक पाछु भिखारि॥
>
> —वि० रा० भा० प०, ७४, पृ० १००

विद्यापति के पाँच सौ वर्ष बाद आधुनिक युग के कवि सुमित्रानन्दन पन्त ग्रन्थि' मे ऐसा ही प्रयोग किया है।

ने शायद ही दी होगी। इसमें अंधकार का हँसना—यह लाक्षणिक प्रयोग भी ध्यातव्य है। साथ ही फूलों की समता अंधकार की हँसी से की जा रही है, यह स्थूल का सूक्ष्म के द्वारा अभिव्यंजन, छायावादी युग में जिसको लेकर इतनी धूम मचायी गयी, विद्यापति की कला की श्रेष्ठता, मौलिकता तथा महत्ता का एक प्रमाण है।

(ii) कीर्त्तिपताका

दीर्घ केश कलाप कुटिल कोमल घन सामर।
दप्पमत्त कन्दप्प धनुजनि वढ्ढिअ चामर॥

—कीर्त्तिपताका, पृ० ६।

कवि रमणियों के काले कुंचित केश-कलाप की छवि वर्णित कर रहा है। ये काले कुटिल केश-कलाप, आकाश में सावन-भादों की उमड़ती कादम्बिनी की तरह काले-साँवले, मानो दर्पोन्मत्त कामदेव का चँवर हों। कवि का यह प्रयोग भी अभिनव ही कहा जायगा।

(iii) गीतिपद

चिकुर गरए जलधारा। जनु मुखशशि भए रोआए अधारा॥

—मि० म०, २३३।

अवनत आनन कए हम रहलिहु वारल लोचन-चोर।
पिया मुखरुचि पिबए धाओल जनि से चाँद चकोर॥

—मि० म०, ३४।

चन्दने चरचु पयोधर गिम गज मुकता हार।
भसमे भरलि जनि शंकर सिर सुरसरि जलधार॥

—मि० म०, ३८।

कनक कुच लोटायली घन सामरि वेनी।
कनय परय सूतली जनि कारि नागिनी॥[१]—मि० म०, १६८।

---

[१] उत्प्रेक्षा के कतिपय अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

१. सुन्दर वदन सिन्दुर विन्दु सामर चिकुर भार।
जनि रवि ससि सगहि ऊगल पाछु कए अंधकार॥
२. धनि अलप वयेस बाला। जनि गाँथलि पुहुप माला॥
३. जमुना तीर जुवति केलि कर उठि उगल सानन्दा।
चिकुर सेमार हार अरुझायल जूये जूये उग चन्दा॥
४. उर हिल्लोलित चाँचर केस। चामर झाँपल कनक महेस॥
५. ननुआ नयन नलिनि जनु अनुपम बक निहारइ थोरा।
जनि सृंखल मे खगवर बाँधल दीठि नुकाएल मोरा॥

—मि० म० वि०, २३, ३१, २३४, ६२२, ६२७।

नायक नायिका की अगच्छवि तथा पूर्वराग की अवस्था मे नायक-नायिका की कतिपय चेष्टाओ का चित्रण करने मे विद्यापति ने उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया है। हेतूत्प्रेक्षा तथा गम्योत्प्रेक्षा—दोनो के यथावसर प्रयोग मिलेंगे। नायिका या नायक की चेष्टाओ का इन प्रसगो मे बडा ही मनोहर चित्रण कवि कर सका है।

नायिका की आँखो के लिए कवि ने कितनी उत्प्रेक्षाएँ प्रस्तुत की हैं—

१. नीर नीरजन लोचन राता।
सिन्दुरे मण्डित जनु पकज-पाता॥
२. लोचन जनु थिर भृङ्ग आकार।
मधु मातल किये उडए न पार॥
३. चचल लोचन बक नेहारनि, अजन शोभन भाय।
जनु इन्दीवर पवने ठेलल, अलिभरे उलटाय॥

विद्यापति के काव्य मे सबसे अधिक उपमा का वैभव मिलता है। इस अलकार का शायद ही कोई भेदोपभेद हो जो उनके किसी-न-किसी पद मे नही मिले। विद्यापति के उपमान कुछ तो रूढ एव परम्परागत हैं, पर कुछ उनकी मौलिक उद्भावना भी है। कवि के एकाधिक चामत्कारिक प्रयोग के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

चिकुर निकर तमसम पुनु आनन पुनिम ससी।
नअन पक्ज के पतिआओब एक ठाम रहु बसी॥

—मि० म०, ३२।

बाला की कुन्तलराशि अधकार की तरह हैं, उधर मुखछवि पूनो के चाँद के समान, यहाँ तक कोई मौलिकता नही, पर दोनो पक्तियो को मिलाकर देखने पर सिद्धहस्त कवि का जौहर प्रकट हो जाता है। कवि अन्यत्र भी केशराशि की उपमा अंधकार और मुख-छवि की चद्रमा से दे चुका है,[१] पर वहाँ भीगे केश से पानी झडने का उल्लेख करके कवि ने सगति बैठायी है, मुखशशि के डर से अधकार को रोना ही चाहिए। इस पद म ऐसा कुछ नही। यहाँ पूनो के समान मुख और अधकार के समान केश दोनो ही एकत्र है—यह विराध मे अविरोध का सुन्दर उदाहरण है अत विरोधाभास अलकार की व्यजना होती है। फिर अधकार और पूनो का चाँद तो एकत्र थे ही, नयन-पकज (रूपक) भी वही है। अधकार, पूनो का चाँद, कमल—यह अद्भुत मेल, अधकार और चाँद कमल के दोनो वैरी—पर यहाँ तो तीनो ही एकत्र बसे हैं, बसते ही नही, एक-दूसरे से उत्कर्ष पा रहे हैं, एक-दूसरे की शोभा बढा रहे है। विरोधाभास का कितना सुन्दर उदाहरण है! उपमा और विरोधाभास की यह ससृष्टि भी अतुलनीय है। एक उदाहरण और—

---

[१] चिकुर गरए जलधारा।
जनु मुखससि भय रोअए अंधारा॥　　—मि० म० वि०, २३३, पृ० १७४।

आंचर विघटु अकामिक कामिनि करे कुच झांपु सुछन्दा ।
कनक सम्भु सम अनुपम सुन्दर दुइ पंकज दस चन्दा ।।[1]

स्तनो के लिए 'कनक-सम्भु' का उपमान तो विद्यापति का बहुत ही सस्ता-सा प्रयोग है, पर आंचल के अस्तव्यस्त हो जाने पर नायिका लज्जाविवश होकर झटपट अपने दोनो हाथों से उन्हे ढक लेती है । बडी ही स्वाभाविक चेष्टा है यह तरुणी की । दोनो हाथ कमल के समान हैं, दसो नख दस चन्द्रमा की तरह । हिन्दी के शायद ही किसी कवि की दृष्टि नखों की ओर भी गयी है, विद्यापति ने अन्य कई पदो मे भी नखों को उपमा चन्द्रमा से दी है । एक ही चाँद उगने पर तो सारा कमलवन कुम्हला जाता है, पर यहाँ दस-दस चाँद हैं, फिर भी दो कमल फूल रहे हैं—कवि-कल्पना का यह चमत्कार देखते ही बनता है । पंकज को स्तनो का भी उपमान माना जा सकता है, तब कनक सम्भु के समान दो कमल और दस चांद का एकत्र होना—यह और भी चमत्कारपूर्ण होगा ।

कवि की उपमा-योजना की मुक्त कठ से प्रशसा करते हुए डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने कहा है—

"..........ताहार उपमागुलि एतो सुन्दर ।....... ....एइ रूप उपमागुलिर सख्या नाई । उपमाभिन्न कथा नाई ।....... ......विद्यापति सेई रूप एई पृथिवीर अति सचराचर हृदय हइते उत्कृष्ट सौन्दर्य आविष्कार करियाछेन । उपमार यशे भारतवर्षे मात्र कालिदासेरई एकाधिपत्य यदि द्वितीय एक जन किछू भाग दिते आपत्ति ना थाके तबे बोध हये विद्यापतिर नाम करा असंगत हइबे ना ।[2]

रूपक विद्यापति को अतिप्रिय है । सौन्दर्य-वर्णन, पूर्वराग तथा मिलन प्रसंगो मे शायद ही कोई पद हो जिसमे रूपक का प्रयोग नही किया गया हो । यहाँ भी कवि ने रूढ उपमानो का प्रयोग मुक्त रूप से किया है । कुछ अपने अभिनव अप्रस्तुतों का विधान भी किया है । इसका भी एकाधिक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

१. ऋतुपति हटवए नहि परमादी । मनमथ मधथ उचित मूलवादी ।
द्विज-पिक-लेखक, मसि मकरन्दा । कांप भमर पद साखी चन्दा ।।[3]

२. बदन चांद तोर नयन चकोर मोर रूप अमिय रस पीवे ।
अधरि मधुर फुल पिया मधुकर तुल बिनु मधु कतखन जीवे ।।[4]

रूपक और उपमा की संसृष्टि, नायिका का सौन्दर्य, नायक की चेष्टाएँ, प्रेम और वासना का मधुर संगम, नायक की व्यग्रता, नायिका को अनुकूल होने का संकेत-

---

[1] मि० म० वि०, ३६, पृ० ३५ ।
[2] बंगभाषा ओ साहित्य—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १४५ ।
[3] मि० म० वि०, ११२, पृ० ८७ ।
[4] वही, १२१, पृ० ९३ ।

अनेक बातो की व्यजना एक साथ यहाँ कवि कर रहा है। वदन चाँद के समान, नायक की आँखें चकोर की तरह, नायिका के अधर मधुर फूल के समान यहाँ तक तो उपमा दी गयी, रूप अमिय रस' मे रूपक, तात्पर्य यह कि विद्यापति के गीतो मे उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक एक-दूसरे के साथ घुले-मिले, एक-दूसरे का उत्कर्ष करते हुए रहते हैं। उनमे कौन प्रधान है और कौन गौण यह कहना भी कठिन हो जाता है। वस्तुत विद्यापति की ससृष्टि भी सकर की तरह 'क्षीरनीर' वत् अनेक स्थलो पर प्रतीत होगी।

विद्यापति ने सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाने के लिए कही अनन्वय, कही उन्मीलित, कही विशेषोक्ति और कही निदर्शना वा दृष्टान्त का प्रयोग किया है। भावोत्कर्ष दिखाने के लिए वे सबसे अधिक अर्थान्तरन्यास का सहारा लेते हैं। अन्य अलकारो मे भ्रान्तिमान्, सन्देह, काव्यलिग, विभावना, व्यतिरेक, समासोक्ति तथा पर्यायोक्ति का प्रयोग उन्होंने किया है। शब्दालकारो मे यमक का प्रयोग कई पदो मे किया गया है। अनुप्रास तो कवि-कला का अभिन्न उपादान ही होता है, पर विद्यापति ने कही भी उसे अति प्रयोग करके पद को खिलवाड नही बना दिया है। अनुप्रास के भी अनेक तरह के चामत्कारिक प्रयोग विद्यापति के पदो मे यत्र-तत्र मिलते हैं। विद्यापति ने केशवदास की तरह श्लेष का अति प्रयोग कही नही किया है। कुछ पदो मे परिकर तथा परिकराकुर के सफल प्रयोग किये गये हैं। नायक एव नायिका के नखशिख वर्णन के एकाधिक पदो मे रूपकातिशयोक्ति का बडा ही चामत्कारिक प्रयोग मिलता है।

विद्यापति की अलकार-योजना के कुछ अन्यतम उदाहरण—

रूपकातिशयोक्ति

अभिअक लहरी बम अरविन्द। विद्रुम पल्लव फुलल कुन्द॥
निरपि निरपि मयँ पुनु-पुनु हेरु। दमनलता पर देखल सुमेरु॥
साँचि कहओ मैं साखि अनङ्ग। चान्दक मण्डल जउन तरङ्ग॥
कोमल कनककेआ मुति पात। मसि लए मदन लिखल निज बात॥
पढ़हि न पारिअ आखर पाँति। हेरइत पुलकित हो तनु काति॥
भनइ विद्यापति बुझाए। अरथ असम्भव के पतिआए॥

—मि० म० वि०, २३६, पृ० ३७।

कवि नायिका का शिखनख वर्णन कर रहा है। सारा चित्र उपमानो के ही सहारे प्रस्तुत किया गया है। नायिका की आँखें कमल के समान हैं और वे हैं सुधास्रावी। उसके अधर विद्रुम की तरह रक्तवर्ण हैं, दन्त-पंक्तियाँ कुन्द पुष्प के समान धवल, मनोहर। विद्रुम के पत्तो के मध्य कुन्द फूले हो—यह और भी विस्मय की बात है। पर इससे भी विस्मय होता है जब नायक के समक्ष जान पडता है जैसे बिजली कौध रही है और उस विद्युल्लता पर दो सुमेरु दीख पड रहे है। बात यही

खत्म नही। नायिका ने कटि मे करधनी पहन रखी है जो चाँद की माला की तरह प्रतीत होती है, इस चाँद की माला के बीच नायिका की त्रिवली त्रिवेणी संगम और वही रोमराजि—मनोजन्मा देवता ने मानो स्वर्ण-पत्र पर कुछ टेढ़े-मेढ़े अक्षर लिख दिये हो, जिन्हे पढा नही जाता, क्योकि वहाँ तक दृष्टि जब तक पहुँचती है कि देखनेवाले का तन रोमाचित होने लगता है। यह अपूर्व-असम्भव-सा प्रतीत होनेवाला सौन्दर्य केवल कल्पना की सृष्टि नही है, इसके लिए उसने कामदेवता को ही साक्षी बनाया है। वस्तुतः कामदेवता का रग जब तक आँखों पर नही चढ़ा हो तब तक तरुणी ऐसी दीखेगी कैसे ?

रूपकातिशयोक्ति का एक उदाहरण—

साजनि अकथ कहि न जाए।
धवल अरुन ससिक मंडल भीतर रह नुकाए॥
कदलि उपर केसरि देखल केसरि मेरु चढ़ला।
ताहि उपर निसाकर देखल कीर ता उपर बइसला॥
कीर उपर कुरंगिनि देखल चकित भमए जनि।
कीर कुरंगिनि उपर देखल भमर उपर फणि॥
एक असम्भव आओर देखल जल बिना अरविन्दा।
देखि सरोरुह उपर देखल जइसन दुतिअ चन्दा॥

—मि० म० वि०, २६, पृ० २४।

नायिका के सौन्दर्य का नखशिख वर्णन इस पद मे कवि ने केवल उपमानो के द्वारा ही उपमेय की व्यंजना कराते हुए किया है। कवि के दो और पदो मे रूपकातिशयोक्ति द्वारा नखशिख वर्णन किया गया है। एक पद मे रूपकातिशयोक्ति को काव्यलिंग, उपमा आदि के द्वारा पुष्ट किया गया है। इस पद की भी अन्तिम पंक्ति मे उपमा अलंकार (जइसन दुतिअ चंदा) की ध्वनि मिलती है।

काव्यलिंग

मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बह सुरसरि तें नहि कमल सुखाई॥

सुमेरु पर कमल फूले हो, वह भी बिना नाल के—असम्भव-सी बात है। पर कवि ने दूसरी पंक्ति मे इस असम्भव कार्य का कारण बताकर उसे सम्भव सिद्ध कर दिया है। नायिका के वक्षोज दो कमल के समान है, उसके गले की मणिमय माला गंगाधार की तरह है, जहाँ सुरसरि की धारा हो वहाँ कमल क्यो सूखेंगे ? सचमुच कवि की अनोखी सूझ की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

अनन्वय

माधव कत तोर करब बड़ाई।
उपमा तोहर कहब ककरा हम कहितहुँ अधिक लजाई॥

जौं श्रीखडक सौरभ अति दुरलभ तौं पुनि काठ कठोर ।
जौं जगदीस निसाकर तौं पुनि एकहि पच्छ उजोर ।।
मनि समान औरो नहि दोसर तनिकर पाथर नामे ।
कनक कदलि छोट लज्जित भए रह की कहु ठामहि ठामे ।।
तोहर सरिस एक तोहें माधव मन होइछ अनुमान ।
सज्जन जन सौं नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भान ।।
—मि० म० वि०, ८६३, पृ० ५५१ ।

प्यारे कृष्ण की उपमा किससे दी जाय—कवि इस उलझन मे पडा है। जितने भी प्रसिद्ध उपमान है, कोई कवि को नही जँच रहा है—श्रीखण्ड चन्दन मे सौरभ और शीतलता है पर वह नीरस सूखा काष्ठखण्ड मात्र है, चन्द्रमा रात मे प्रकाश देकर सारे जगत् की प्रशसा का पात्र बनता है, पर उसका प्रकाश मास के एक ही पक्ष मे रहता है, मणि से कृष्ण के कान्तिमान् शरीर की उपमा दी जाती, पर कहाँ निर्जीव पत्थर और कहाँ रसिकराज कृष्ण, स्वर्णजटित कदलिस्तम्भ सुडौलता तथा सुघडता मे कृष्ण की जघाओं के समीप आ सकता है, पर वह स्वय ही उनकी समता नही कर सकने के कारण सकुचित बना रहता है। तात्पर्य यह कि कृष्ण की अंगछवि का, उनके सौन्दर्य का कोई उपमान नही, वह अपना स्वयं ही उपमान है, अपने समान अकेला, समग्र अग-जग मे अद्वितीय। अनन्वयोपमा का इतना सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। क्या इसके सामने केशवदास की

देखे भावै कमल, अनदेखेई कमलमुख
तातें मुख मुखै सखि कमलौ न चंद री ।[1]

भी फीकी नही पड जाती ?

व्यतिरेक

कबरी-भये चामर गिरि कन्दर मुख भये चान्द अकासे ।
हरिनी नयन भये स्वर भये कोकिल गति भये गज बनवासे ।।
सुन्दरि काहे मोहे सम्भासि न यासि ।
तुअ डरे इह सब दूरहि पलाएल तुहुँ पुनि काहि डरासि ।।
कुच भय कमल-कोरक जले मुँदि रहु घट परवेसे हुतासे ।
दाड़िम सिरिफल गगने वास करू सम्भु गरल करू ग्रासे ।।
भुज भये कनक-मृणाल पके रहु कर भये किसलय काँपे ।
विद्यापति कह कत कत ऐसन कहब मदन परतापे ।।[2]

---

१ रामचन्द्रिका—केशवदास ।
२ मि० म० वि०, ६२६, पृ० ४१४।

उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष वर्णित करने पर व्यतिरेक अलकार होता है। विद्यापति के प्रस्तुत पद में न केवल उपमेय के समक्ष सुप्रसिद्ध उपमान अत्यन्त हीन दिखाये गये हैं, वरन् अपनी हीनता का बोध करके लज्जा या भय से उनके कही छिपने या विषपान करने या अग्निप्रवेश करने की बात भी कही गयी है। नायिका की मेघोपम कुन्तलराशि के भय से चमरीमृग पर्वत की कन्दरा मे जा छिपा है, आँखो की शोभा से पराजित होकर मृग, स्वर की माधुरी से कोयल तथा गति से मत्त गयन्द ने वनवास ले लिये हैं। सबसे अधिक त्रास के कारण बन गये हैं नायिका के स्तनद्वय उनके डर से कमल कलिका जल मे ही मुँदी रहती है, घट भट्ठी मे प्रवेश करता है, अनार और बेल वृक्षो की डाल पर रहने लगे हैं, और शभु (विद्यापति के गीतिपदो मे तरुणी के स्तनो का बहुकथित उपमान) को हलाहल का पान करना पडा। नायिका की कोमल बाँहो की शोभा तथा सौकुमार्य से पराभूत स्वर्ण मृणाल पक मे छिपे रहते हैं तथा उसके हाथ की उँगलिया के डर से किसलय काँपते रहते है।

कवि का व्यतिरेक का यह उदाहरण अनूठा एव बडा ही रमणीय है। न केवल कवि ने इस पद मे सुप्रसिद्ध उपमानो का उपमेय के समक्ष अपकर्ष दिखाया है, वरन् उपमेय की शोभा से पराजित तथा लज्जित होकर उनके छिपे रहने का भी उल्लेख किया है। ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर' मे एक ऐसा ही प्रसग मिलता है। विद्यापति को चाहे इसकी प्रेरणा कही से मिली हो, पर उन्होने अपने मौलिक सस्पर्श से इस पद मे मानो चार चाँद लगा दिये है।

असंगति

कारण एव कार्य मे सगति नही रहने पर असगति अलकार होता है। इसके तीन भेद होते है। कारण की प्रकृति के विपरीत कार्य होने पर तृतीय असगति अलकार कहते है। विद्यापति की उपेक्षिता अपने जीवन को व्यर्थ बताती हुई कहती है—

सुरतरुतल जब छाया छोडल हिमकर बरिसय आगि।
दिनकर दिनफले सीत न बारल हम जीयब कथि लागि॥
सजनि अब नहि बुझिए विचार।
धनका आरति धनपति न पूरल रहल जनम दुख मोर॥
जनम जनम हर गौरि अरधल सिव भेल सकति बिभोर।
कामधेनु कत कौतुके पूजल न पुरल मनोरथ मोर॥
अमिय सरोवरे साधे सिनायलुँ संसय परल परान।
विहि विपरीत किय भेल ऐसन विद्यापति परमान॥[१]

उपेक्षिता की मनोव्यथा सजल रागिनी बनकर इस पद मे फूट पडी है। नायिका अपना कोई दोष नही देख पा रही है, कोई कारण उसे नही दीखता, उसके

---

[१] मि० म० वि०, ७२१, पृ० ४६६।

प्रिय के उसकी ओर से आँखें मोड लेने का—कल्पवृक्ष समझकर वह जिसके समीप गयी थी, वही आज उसे अपनी शीतल शांतिदायिनी छाया से भी वंचित कर रहा है, उसकी अभीप्सित की पूर्ति तो वह क्या करेगा। प्रिय की इस उपेक्षा के कारण उसका एकाकी जीवन दशन एव हाहाकार से भर गया है। चद्रमा—हिमकर—की किरणे उसे तप्त करती है, और सूर्य जो अपने ताप से शीत का हरण करता है, उसके लिए मानो ठडा पड गया है। नायिका सोचती है कि एसी अवस्था मे उसके जीने से ही क्या लाभ ? उसके लिए धनपति कुबेर का कोष भी रीता पडा है, वे उसकी आशा को पूर्ण कहाँ तक करेंगे, उन्होने उसको जनम जनम तक दुख-दारिद्र्य भोगने को छोड दिया है। कामधेनु जो इच्छानुसार फल देनेवाली कही जाती है, की भी उसने पूजा की, फिर भी उसके मनोरथ पूरे नहीं हुए। अमृत के सरोवर म वह अवगाहन करने गयी, पर अमरता का वरदान उसे कहाँ तक मिलता, उल्टे उसके प्राण सकट मे पड गये हैं।

इस प्रकार नायिका देखती है कि सभी वस्तुएँ अपनी पद्धति या प्रकृति के विरुद्ध उसके लिए काम कर रही है। कारण की प्रकृति के विरुद्ध कार्य होने से इस सम्पूर्ण पद मे तृतीय असगति अलकार की ध्वनि है।

द्वितीय पक्ति मे 'हिमकर' साभिप्राय विशेष्य है, अत इसमे परिकराकुर अलकार होगा।

अपह्नुति

प्रस्तुत का निषेध करके किसी अन्य वस्तु का स्थापन किये जाने मे अपह्नुति अलकार होता है। इसका एक भेद है भ्रान्तापह्नुति। इसमे सत्य बात को प्रकट करके किसी की शका दूर की जाती है। विद्यापति का एक पद भ्रान्तापह्नुति का सुन्दर उदाहरण है—

> कत न वेदन मोहि देसि मदना। हर नहि बाला मोजे जुवति जना॥
> नहि मोहि जटाजूट विकुरक वेनी। सिर सुरसरि नहि कुसुम कसेनी॥
> चाँद तिलक मोहि नहि इन्दु छोटा। ललाट पावक नहि सिन्दुरक फोटा॥
> कण्ठ गरल नहि मृगमद चारू। फनीपति मोरा नहि मुकुता हारू॥
> भनइ विद्यापति सुन देव कामा। एक दोस अछ ओहि नामक वामा॥[१]

प्रियविछोह म तरुणी प्रणयिनी को लगता है जैसे कामदेवता उस पर तान-तान कर प्रखर शर का प्रहार कर रहा है। शायद कामदेवता को उसका स्वरूप देख उसे जलाकर अनग कर देनेवाले शकर का भ्रम हो गया इसीलिए वह उस पर इस प्रकार अनवरत शर-प्रहार कर रहा है। कामदेवता का भ्रम दूर करने के लिए वियोगिनी इस पद मे अपनी सफाई दे रही है। उसके मस्तक पर यह केश की वेणी है,

१ रागतरगिणी, पृ० ७०-७१।

जटाजूट नहीं, केश मे गुम्फित फूल हैं, सुरसरि की धारा नहीं, उसके भाल पर चदन का तिलक एव सिन्दूर की बिंदिया है, कामदेवता को उनमे शशिशेखर के मस्तक की शशिलेखा तथा उनके जलते तृतीय नेत्र का भ्रम हो गया है। उसके गले मे मृगमद का अभिमडन है जिससे कामदेवता उसे नीलकठ-शकर मान रहे हैं। उसका मुक्ताहार कामदेवता को शकर के गले मे भूलते फणिधर प्रतीत होते हैं। इस प्रकार वास्तविकता प्रकट करके वियोगिनी कामदेवता का भ्रम दूर करने का प्रयत्न करती है। अतिम पक्ति मे नायिका कहती है कि उसे लोग वामा कहते हैं और शकर का भी एक नाम वामदेव है, इस नाम-सादृश्य के कारण यदि वामदेव को भ्रम हो गया हो तो बात दूसरी है अन्यथा कहाँ वह कोमलागी तरुणी और कहाँ अवधूत शकर।

परिकरांकुर

साभिप्राय विशेष्य का कथन किये जाने को परिकराकुर अलकार माना जाता है। विद्यापति की राधा कृष्ण की अपने प्रति निष्ठुरता एव उपेक्षाभाव की चर्चा करती हुई कहती है—

केओ बोल माधव केओ बोल कान्ह।
मञे अनुमापल निछछ पखान॥[1]

उपेक्षिता राधा कहती है कि कृष्ण को व्यर्थ ही माधव कहते हैं, 'माधव' नामधारी को तो मधु का आगार होना चाहिए, वह भला कठोर या निष्ठुर कैसे हो सकता है। पर वह कृष्ण को पूरी तरह से देख-परखकर यही जान पायी है कि वे एकदम पत्थर की तरह हैं—नीरस कठोर पत्थर की तरह। यहां 'माधव' यह साभिप्राय विशेष्य का कथन होने से परिकराकुर अलकार है।

समासोक्ति

कार्यसाम्य, लिंगसाम्य या विशेषणसाम्य से प्रस्तुत के वर्णन मे अप्रस्तुत का कथन होने पर समासोक्ति अलकार होता है। कार्य एव लिंगसाम्य पर आधारित समासोक्ति का एक उदाहरण—

सौरभ लोभे भमर भमि आएल पुरुब पेम बिसवासे।
बहुल कुसुम मधुपान पिआसल आएल तुअ उपासे॥
मालति करिअ हृदय परगासे।
कतदिन भमरे पराभव पाओव भल नहि अधिक उदासे॥[2]

उपवन मे फूल खिले हैं। भ्रमर अनेक फूलो पर से घूमता हुआ मालती के लाल-उजले गुच्छको पर बैठना चाहता है, इसी को लक्ष्य करके मानवती नायिका से सहेली कह रही है—

---

[1] मि० म० वि०, ४२५, पृ० २६४।
[2] वि० रा० भा० प०, २१८, पृ० ३०३।

अनेक फूलो का रसपान करके भौंरा फिर भी मालती के गुच्छको पर लौटेगा, तात्पर्य यह कि नायिका का प्रिय अभी अन्य रमणियो मे आसक्त है पर उनसे उसकी रसतृषा तो नही तृप्त हो पायेगी, वह फिर उसी के पास लौटेगा, वह उसे और निराश नही करेगी, कितना भटक चुका होगा वह, अत उसे और उदास करना ठीक नही ।

इस उदाहरण म कार्यसाम्य तथा लिंगसाम्य दोनो है । 'भ्रमर' बहुवल्लभ नायक का उपमान है, 'मालती' सुन्दरी नवयौवना नायिका का ।

अप्रस्तुतप्रशंसा

अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत के कथन को अप्रस्तुतप्रशसा अलकार कहते हैं । यह सारूप्य या साधर्म्य पर आधारित होता है । विद्यापति का एक मार्मिक पद इस उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

> माधव काहु जनु दिन अवगाहे ।
> सुरतरु तर सुखे जनम गमाओल धुथुरा तर निरबाहे ॥
> दखिन पवन सौरभे उपभोगल पीउल अमिअ रस सारे ।
> कोकिल कलरव उपवन पूरल तहु कत भएल विकारे ॥
> पातहि सञो फुल भमरे अगोरल तरुतर लेलन्हि बासे ।
> से फल काटि कोटे उपभोगल भमरा भेल उदासे ॥
> भनइ विद्यापति कलियुग परिनति चिन्ता जनु कर कोई ।
> अपने करम अपने पए भुञ्जिय जञो जनमान्तर होई ॥[1]

जीवन मे सुख-दु ख, विभव-पराभव के पटाक्षेप होते ही रहते हैं, कभी सुख के विहँसते दिन, कभी दु ख की काली रात । विद्यापति ने स्वय ही ऐसे पटाक्षेप देखे थे । कलामर्मज्ञ, उदारचेता एव पराक्रमी राजा शिवसिंह के सहृदय सभासद् रहने के बाद अपने देश से बाहर रजाबनौली मे पुरादित्य के आश्रय मे निर्वासित प्रवासी की तरह अभाव और दैन्य के लम्बे बारह वर्ष बिताये थे । फलत कवि की अपनी अनुभूति ही मानो इस पद मे रूपायित हो उठी है । नन्दन कानन मे कल्पवृक्ष की छाया में, मृदुल मलय पवन के झकोरो पर कोमल मजरियो का रसपान करता हुआ जो भौरा कोयल की मधु गीतिका सुन कर सुखविभोर बना रहता था, आज वही धतूरा के नीचे गुजर कर रहा है । अप्रस्तुत भौरा के माध्यम से कवि ने अपनी प्रस्तुत स्थिति का उल्लेख किया है अत सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुतप्रशसा अलकार की सगति यहाँ होती है । कुछ आलकारिक इसे अन्योक्ति अलकार भी कहते है । इस पद की अतिम दो पक्तियों मे सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होने मे अर्थान्तरन्यास अलकार भी ध्वनित है ।

× × × ×

विद्यापति की अलकार-योजना के केवल चुने हुए उदाहरणो का यदि उल्लेख किया जाय तो एक पूरी किताब तैयार हो सकती है । उपर्युक्त उदाहरणो मे कवि की अलंकार-योजना का एक क्षीण आभास मात्र दिया जा सका है ।

[1] मि० म० वि०, ५३०, पृ० ३५७ ।

विद्यापति ने दृष्टिकूट के पद अथवा प्रहेलिकाओ की रचना भी की है।[1] कहना नही होगा कि इस तरह की रचना शाब्दिक कलाबाजी के अतिरिक्त और कुछ नही, भाव-तरलता या रसानुभूति से वे कोसो दूर हैं। ये प्रहेलिकाएँ भी शृङ्गार सम्बन्धी हैं। प्रहेलिकाओ की रचना संस्कृत साहित्य मे प्रचलित थी। माघ के 'शिशुपालवध' तथा भारवि कृत 'किरातार्जुनीयम्' मे शाब्दिक कलाबाजी के कुछ भिन्न श्रेणी के प्रयोग किये गये हैं। नाथपन्थी योगियो तथा सिद्धो के साहित्य मे तथाकथित सध्या भाषा मे कुछ ऐसी प्रहेलिकाएँ बुझाने की तरह की रचनाएँ मिलेंगी। विद्यापति ने सभवत इन्ही परम्पराओ का अनुसरण करके ऐसे कुछ पद लिखे होंगे। सभवत बाद मे अन्य कलाबाजो ने कुछ और पद रच कर उनकी भणिता जोड उनके नाम पर चला दिये हो। लोककण्ठ से सचित गीतिकाव्य मे ऐसा नही होना ही असभाव्य कहा जा सकता है।

विद्यापति की प्रहेलिकाएँ कुछ तो अनेकार्थक शब्द, कुछ अक और कुछ प्रसिद्ध रूढियो एव कवि प्रसिद्धियो पर आधारित हैं। उनमे सर्वत्र विषय शृङ्गार है। श्लेष अलकार का प्रयोग विद्यापति ने इन्ही पदो मे किया है।

अलकारो की चमकदमक से अभिमण्डित विद्यापति की रचनाएँ सौन्दर्य-चित्रण, पूर्वराग, मान, अभिसार, मिलन सम्बन्धी अधिक मिलेंगी। इनमे भी सौन्दर्य-चित्रण के पद अलकृत भाषा के अन्यतम उदाहरण है। मार्मिक विरहगीतो मे अलकार जहाँ कही प्रयुक्त हैं वे काव्योत्कर्ष के पृथक् उपादान बनकर नही। जीवन की मार्मिक अनुभूतियो का जहाँ कवि चित्रण करता है वहाँ तो अभिव्यक्ति और भाव इस प्रकार क्षीरनीर की तरह घुलमिल जाते है कि दोनो मे जैसे कोई भेद ही नही रह गया हो। कवि ने जीवन के उत्कर्ष विकर्ष के दिन देखे थे, एक मार्मिक पद मे उसके ये अनुभव व्यक्त हुए हैं—

> सुरतरु तर हम जनम गमाओल धुधुरातर निरबाहे,
> सखि हे दिन जनु काहु अवगाहे।

इस पद मे चाहे ता अप्रस्तुतप्रशसा, चाहे अन्योक्ति अलंकार की सगति बैठाएँ पर इसके शब्द-शब्द मे जो व्यथा एव जीवन की कटु अनुभूति मुखरित हो रही है उसके आस्वाद के लिए अलकार की छानबीन करने की आवश्यकता नही रह जाती। विद्यापति के पदो से ऐसी अनेक पक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति अलकारवादी कवि नही थे। अभिव्यक्ति जो काव्य का बहिरंग है की अपेक्षा उन्होंने अनुभूति पर, जो काव्य का अन्तरग है, अधिक बल दिया है।

(२) विद्यापति के काव्य मे अलकारो का सम्यक् प्रयोग मिलता है। उन्होंने काव्य के इस उपादान की उपेक्षा नही की है। पर इस पर अनावश्यक बल भी नही

[1] मि० म० वि०—१९३—२०१, ५७७-८७

दिया है। अलंकारो का प्रयोग उन्होंने भावोत्कर्ष के लिए ही किया है। कुछ दशाधिक प्रहेलिकाएँ तथा अन्य पद अपवादस्वरूप माने जा सकते हैं।

(३) विद्यापति ने अप्रस्तुत-योजना मे अपनी कलात्मक रुचि, सृजनात्मक प्रतिभा, मौलिकता तथा सौन्दर्यग्राहिणी दृष्टि का परिचय दिया है। उनकी अप्रस्तुत-योजना का आधार प्रतीकात्मकता तथा साधर्म्य है। मात्र सादृश्यमूलक अप्रस्तुत विधान विद्यापति के काव्य मे अत्यल्प मिलेगा।

(४) सौन्दर्य-चित्रण के प्रसंग मे ही विद्यापति ने सबसे अधिक अलंकारों का विधान किया है। यहाँ भी केवल वस्तुविधान तक सीमित नही रहकर उन्होंने भाव-विधान पर अधिक ध्यान दिया है।

(५) विद्यापति ने प्राय. सभी मुख्य तथा प्रचलित अलंकारो का प्रयोग किया है। इनमे भी रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, परिकरांकुर, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशसा के उदाहरण अधिक मिलते हैं।

(६) सभोग-शृङ्गार तथा पूर्वराग के प्रसगो मे विद्यापति की शैली अलंकारों से अभिमण्डित होकर प्रस्तुत होती है। विप्रलम्भ के अन्य पक्षों का चित्रण करते समय उनकी वाणी का निराभरण शुभ्र सौन्दर्य देखते ही बनता है। इन प्रसंगो मे जहाँ कही अलंकार व्यंजित है, वह न तो अपना पृथक् अस्तित्व रखता है और न किंचित् भी आरोपित ही जान पडता है। उन पदो मे जिनमे उपेक्षिता या परित्यक्ता नारी की व्यथा वर्णित है, कवि की वाणी और भी सयमित तथा धीर-गभीर हो गयी है। विनय तथा निर्वेद के पदो मे भी कवि की शैली ऐसी ही है। शिवस्तुति तथा नचारियो मे इतनी करुणा नही पर भाषा एवं शैली यहाँ भी एकदम संयत मिलेगी।

(७) विद्यापति ने रूढ एवं परम्परा से प्राप्त अप्रस्तुतो का अपने काव्य मे भरपूर प्रयोग किया है। इसमे वे सस्कृत की साहित्यिक सम्पदा तथा ज्योतिरीश्वर के ऋणी अवश्य हैं। एकाधिक स्थलो पर विद्यापति ने किसी पूर्ववर्ती कवि की किसी रचना की छाया भी ग्रहण की है। ऐसे पदो मे भी कवि के मौलिक सस्पर्श देखते ही बनते हैं।

(८) रूढ एव परम्परागत अप्रस्तुतो का व्यवहार करने के साथ विद्यापति ने कुछ सर्वथा मौलिक एवं नये अप्रस्तुतो का विधान भी किया है। विद्यापति की अलकार योजना ऐसे अप्रस्तुतो के प्रयोग से अभिनव रूपरंग लेकर निखर उठी है।

(९) विद्यापति की अलकार-योजना ऊहात्मक या रस की विरोधिनी नही होने पायी है। केवल सादृश्य के बल पर खिलवाड खडा करने की प्रवृत्ति उनमे नही।

(१०) सभोग शृगार के कतिपय उन्मद मासल प्रसगो को विद्यापति ने अलंकारो के जगमग आवरण मे प्रच्छन्न कर चित्रित किया है। उनकी अलंकृत शैली ऐसे प्रसगो मे मासलता की विवृति नही होने देती।

(११) हृदय की निगूढतम भावना के चित्रकार कवि, विद्यापति बडे ही सुरुचि-पूर्ण कलापारखी तथा अद्वितीय शब्दशिल्पी थे। उपयुक्त अवसर तथा आवश्यकतानुसार अलंकारो का विधान उन्होने किया है, पर कही भी भाव से अधिक महत्त्व शब्द को उन्होंने दिया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता।

(घ)

प्रकृति का उद्दीपक रूप

मानव सभ्यता का विकास प्रकृति की गोद मे ही आरम्भ हुआ होगा। खिलते फूल, दूधिया चाँदनी, बरसाती रिमझिम, बिजली की चमक तथा उषा की सौम्य सुषमा देख उसके अंतस् मे करुण-मधुर भावोर्मियो की शतधा फूट पडी होगी। जब प्रकृति साधारण मानव को उल्लसित-पुलकित करती है, फिर कवि का क्या कहना![1] सभ्यता के विकास के साथ-साथ समाज जटिलतर होता गया। मानव उन्मुक्त प्रकृति की रम्य रंगस्थली से क्रमशः दूर आता गया, गाँव से नगरो की ओर—प्रायः सर्वत्र, सभी युग मे मानव सभ्यता के विकास के ये मीलस्तम्भ रहे हैं। यद्यपि हमारी प्राचीन वैदिक युगीन आर्य सभ्यता ने अपने मनीषा को—ऋषियो एवं ब्राह्मण को तथा ब्रह्मचर्याश्रम मे अपने समस्त जिज्ञासुओ को—नगर के कोलाहलपूर्ण, कृत्रिम वातावरण से किंचित् पृथक् रखने का प्रयत्न भी किया था।

---

[1] "आदिकवि वाल्मीकि से लेकर आज तक ऐसा कोई कवि नही हुआ जिसकी आँखो मे न्यूनाधिक रूप मे प्रकृति का सौन्दर्य न फूला हो, जिसके कंठ से फूटने वाले गीतो की कडियो को प्रकृति ने न सजाया हो, जिसके कान ने प्रकृति की वीणा पर निरन्तर गूँजने वाली स्वर-लहरी का आनन्द न लिया हो, जिसके रोम-रोम प्रकृति की दूती वायु और किरण ने पुलकित न किये हो, जिसके नासिका-रन्ध्र को फूलो की आत्मा का सुवास न भाया हो और जिसके मन-प्राण प्रकृति की दिव्य अनुभूति से रसमय न हो गये हों।"

—आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्पविधान—डॉ० श्यामनन्दन किशोर, पृ० ४०८।

पर सभ्यता के चाहे कितने ही चरण मानव ने क्यों नहीं तय किये हो, प्रकृति से वह अपना सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं कर सकता। मानव मन में प्रकृति की सुषमा, उसके बदलते पटाक्षेप, उसके प्रशान्त वातावरण के प्रति आकर्षण हमेशा रहता आया है। प्राकृतिक छवियाँ उसे आकृष्ट करती हैं, व्यथा और निराशा के क्षणो मे उसके दुखते हृदय को सहलाती-बहलाती हैं, उसके मनोगत भावों को उद्दीप्त करती हैं, कभी उसे प्रेरणा देती हैं, कभी सान्त्वना, कभी शान्ति और कभी सहानुभूति।

मानव इन्हीं कारणो से अपने घर के चारो ओर बाग-बगीचा लगाता है, अपने कमरो मे वनखंडी, नदी-तट या समुद्र की तस्वीरें टाँगता है, अपनी मेज पर फूल-पत्तों के गुलदस्ते सजाता है, खाने-पीने के अपने बरतनों पर भी वृक्ष-लताओ के चित्र अंकित करता है।

प्राकृतिक छवि-सुषमा कला को एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है। कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, गायक, प्रकृति को विसार कर कला मे प्राण नही भर सकते। वस्तुत कला का जन्म ही प्रकृति की गोद मे नहीं होता, वह फलती-फूलती भी वहीं है। काव्य और प्रकृति का इसीलिए हमेशा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया है।

मिथिला की शस्य-श्यामला भूमि प्रकृति की रम्य रंगस्थली है। शरद के ओसभरे खेतो मे रुपहली चाँदनी का रेशमी वितान, वसन्त मे मंजरियो से लदी आम की डालें, कोयल की कूक और गेंदा तथा मालती के फूल एवं सुरभि से सिक्त वातावरण, ग्रीष्म में पछिया की लू, दरारों से भरे धनखेत, फिर चौमासे की रिमझिम, "काजरे रागलि राति"—जलमयी धरित्री, कोयल और पपीहा, बेंग और झींगुर के रवों से भरा परिवेश—मिथिला के प्राकृतिक सौन्दर्य-वैभव के ये हैं कुछ नमूने। मिथिला और मैथिली के प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य मे इनके सजीव एवं विस्तृत चित्र मिलते हैं।

कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णरत्नाकर' मैथिली ही नहीं, समस्त उत्तर-पूर्वीय भारत की प्राचीनतम उपलब्ध रचना है।[१] 'वर्णरत्नाकर' को ठेठ साहित्यिक रचना नही कहा जा सकता। पर इसके लेखक को सरस कवि हृदय मिला था, 'वर्णरत्नाकर' के अनेक स्थल उसके संस्पर्श से भावात्मक काव्य-से बन गये हैं। इसके तृतीय कल्लोल में प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या, वर्षा की रात, अंधकार तथा चन्द्रमा के वर्णन, चतुर्थ कल्लोल मे वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर के वर्णन तथा पंचम कल्लोल में वन-उपवन, पर्वत तथा समुद्र के वर्णन उन्होंने किये हैं। इन प्रसंगो मे प्रभात, मध्याह्न तथा सन्ध्या, रात तथा रात्रि का अन्धकार, चन्द्रमा तथा छहो ऋतु के वर्णन सरस काव्य के समान रसाप्लावित है। इनमे कविशेखर की मर्मग्राहिणी दृष्टि, भाव एवं वस्तु विधायिनी कल्पना, उनकी यथातथ्य निरीक्षण एवं वर्णन की पद्धति—सभी ने एक साथ मिलकर एक मनोहर तथा सुपाठ्य सामग्री प्रस्तुत कर दी है। इस प्रसंग के कुछ चित्र उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है

[१] वर्णरत्नाकर, भूमिका—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी।

"......वायसन्हि कोलाहल करु—नक्षत्र तिरोहित भेल—चान्द म्लान भेलाह—पूर्वदीश अरुणित भेल....कुलस्त्री सलज्ज भेलि—घटवाहि जलाशये आरहल....पथिकजने मार्गानुसन्धान कएल......

अथ मध्यान्ह्वर्णना—ग्रीष्मस्य विशेषात् दशाओ दिश मृगतृष्णाओं कवलित भए गेलिछ—किटाएल नियोगी अइसन आदित्य भए गेल छथि—भुसक (भुसक ?) अग्नि अइसनी उष्ण धुलि धरनी भए गेलि अछ—दरिद्रीक हृदय अइसनि संतप्ति पृथ्वी भेलि अछ—उन्मूलल विपक्ष अइसन जलाशये भए गेल अछ—पथिकन्हि पथसचार त्यजिहलु—श्वापदन्हि छाया अश्रये करू......दिनक दीर्घता—रात्रिक सकोच—पृथ्वीक कर्कशता—रौद्रक तीक्ष्णता......पवनक वाछा—शीतक उत्कण्ठा—एवम्विध ग्रीष्म समयक मध्यान्ह देपु।[१]

सवेरा होते ही गाँव के तालाबो तथा पनघटो पर पनिहारियो की भीड लग जाती है, पथिक आगे चलने के लिए मार्ग की पूछताछ करता है—इन वर्णनो मे कितनी स्वाभाविकता एव लेखक की अन्तर्वीक्षणी दृष्टि का परिचय मिलता है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है "ग्रीष्ममध्याह्न वर्णन"। भूसे की आग तथा दरिद्र के हृदय से तप्त होती हुई धरित्री की उपमा कितनी सटीक एवं मर्मस्पर्शिनी है। कुत्ते भी छाँह की खोज मे व्याकुल हैं—विहारी की "छाँहो चाहति छाँह" से अधिक सजीव एवं स्वाभाविक है। गर्मी के दिनो मे मिथिला की केवाल मिट्टी पत्थर की तरह कडी हो जाती है—"पृथ्वीक कर्कशता" मे इसका संकेत है।

ज्योतिरीश्वर द्वारा प्रस्तुत अन्य प्रकृतिचित्र भी इसी प्रकार सजीव, स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी है। तात्पर्य यह कि विद्यापति के दो पीढी पूर्व ही से मैथिली मे सजीव-स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण की परम्परा बन चुकी थी।

पर प्रकृति का चित्रण प्राचीन एव मध्ययुगीन काव्य मे उद्दीपन-विभाव के रूप मे ही अधिक प्रचलित रहा है। ज्योतिरीश्वर के प्रकृति-वर्णनो मे भी इस पक्ष की उपेक्षा नही की गयी है। वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए लेखक की पंक्तियाँ हैं—

"मेघक गर्ज्ज...... विद्युल्लताक तरग......कदम्बक सौरभ......कर्द्दमक सभार.. विरहीक उत्कठा......कन्दर्प्पक प्रेमाधिक्य....युवतीक सौहृद.... ...."[२]

विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' एव गीतिपदो मे प्रकृति के मनोहर तथा सजीव-स्वाभाविक चित्र मिलते हैं। 'पुरुषपरीक्षा' मे भी एकाधिक स्थलो पर प्रकृति-परिवेश की सकेतरेखा प्रस्तुत की गयी है। विद्यापति के सम्मुख ज्योतिरीश्वर के अतिरिक्त जयदेव की परम्परा भी थी, फिर सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रश की काव्य-सपदा तो थी ही। विद्यापति को 'वर्णरत्नाकर' के लेखक की तरह स्वतन्त्र प्रकृतिचित्र अकन करने का अवसर या अवकाश नही था। प्रकृति उनका मुख्य वर्ण्य भी नही थी।

---

१ वर्णरत्नाकर—ज्योतिरीश्वर, पृ० १४-१५।

२ वही, चतुर्थ कल्लोल, पृ० १६।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति सामान्यत मानव के क्रिया-व्यापारो की पृष्ठभूमि तथा उसके मनोगत भावो के उद्दीपक के रूप म चित्रित की गयी है। यदा-कदा इन प्रसगो मे भी कवि ने प्रकृति के किसी दृश्य या छवि का सहज-स्वाभाविक चित्रण करके उसमे हृदय ग्राहकता, मनोहारिता एव मर्मस्पर्शिता भर दी है। विद्यापति के प्रकृतिचित्र प्रसगानुकूल, सयत एव भावपूर्ण है। वसन्त की सुषमा तथा वर्षा की काली अधियाली रातो मे जलमयी धरित्री के उनके चित्र विशेष रूप से आकर्षक एव हृदयग्राही हैं। चौमासे म मिथिला-निवासी को प्रकृति जितना अधिक प्रभावित करती है उतना अन्य ऋतुओ म शायद ही कर पाये। इन महीनो म गाँव के चारो ओर पानी-ही-पानी दीख पडता है, गमनागमन लगभग बन्द-सा हो जाता है। दादुर और झींगुर, पपीहा और कोयल के रव से वातावरण भरा रहता है। हफ्तो तक सूर्य के दर्शन नही होते, पुरवैय्या का झकोर, बिजली की चमक, मेघ की गरज और मूसलधार वृष्टि की रिमझिम, चारो ओर जहाँ तक दृष्टि जाती है, जल ही जल या सघन हरियाली, ऐसे परिवेश मे घर बैठे-बैठे प्रकृति के ही विभिन्न रूप-रग निरखते हुए दिन बीतते हैं। विद्यापति ने तथा उनके पूर्व ज्योतिरीश्वर ने बरसात की रात एव वर्षा ऋतु के बडे ही सजीव वर्णन किये हैं। इनके कुछ समीप यदि पहुँचते है तो वसत की सुषमा के चित्र। शारदी ज्योत्सना और शिशिर या हेमन्त आदि तो एकदम गौण हो गये है। ग्रीष्म की उत्तप्त दोपहरी का चित्र विद्यापति ने एक पद मे अवश्य प्रस्तुत किया है, अकेला होता हुआ भी वह सर्वथा अनूठा एव कवि की अनुवीक्षण-शक्ति का एक सुन्दर उदाहरण है।

विद्यापति के प्रकृति चित्रण के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

कीर्त्तिलता

(१) रअनि विरमिअ हुअऊँ पच्चूस
तरणि तिमिर सहरिअ हँसिअ अरविन्द कानन[१]

(रात बीती। प्रभात हुआ। सूर्य ने अधकार का नाश किया। वन प्रान्तर म कमल फूल उठे।)

(२) पल्लविअ कुसुमिअ फलिअ उपवन चूअ चम्पक सोहिअ।
मअरन्द पाण विमुद्ध महुअर सद्द मानस मोहिअ॥
बकवार साकम बाँध पोखरि नीक-नीक निकेतना।
अति बहुत भाँति विवट्ट बट्टहिं भुलेओ बड्ठेओ चेतना॥[२]

(आम और चम्पक के उपवन सुशोभित हैं। वे पल्लवित हो रहे हैं, फूल और फल से भरे हैं। भौंरे मकरन्द पान कर गुनगुना रह हैं। उनकी गु जन मन को मुग्ध कर रही है। जगह जगह तालाब हैं, उनम सुन्दर किनारे हैं, बगुलो की पक्तियाँ उनमें

---

[१] कीर्त्तिलता—स० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ४६।
[२] वही—स० बाबूराम सक्सेना, पृ० २६।

विहार कर रही हैं। अनेक भव्य भवन हैं, अनेक गलियाँ और सडकें भी मतिभ्रम हो जाता है।

'कीर्त्तिलता' विद्यापति का वीरगाथात्मक काव्य है। मध्यकालीन साहित्य में शृंगार रस के उद्दीपन-विभाव के रूप में प्रकृति-चित्रण की परंपरा सर्वमान्य थी। अत. इस वीरगाथात्मक रचना में प्रकृति-चित्रण के लिए अधिक स्थान नही हो सकता था। उपर्युक्त उदाहरण इस बात के प्रमाण है कि विद्यापति को जहां अवसर मिलता है, प्रकृति-परिवेश के रेखाचित्र अंकित करने में वे नही चूकते। मानव के क्रिया-व्यापार प्रकृति के ही रगस्थल पर होते है इसे ध्यान में रखते हुए कवि प्रकृति का पृष्ठफलक यथावसर प्रस्तुत करता चलता है।

उपर्युक्त दोनो ही चित्रो मे विद्यापति के प्रकृति-चित्रण की विशेषताएँ दीख पडती हैं। प्रभात का चित्रण करते हुए कवि लिखता है—"सूर्य ने अन्धकार का संहार कर दिया, कानन मे कमल विहँस उठे।" इसमे सूर्योदय होने पर अधकार का दूर होना जितना ही स्वाभाविक है, कानन में कमल के विहँसने का उल्लेख उतना ही औपचारिक।

पदावली

ग्रीष्म

सूखल सर सरसिज भेल भाल। तरुन तरनि तरु न रहल हाल॥
देखि दरनि दरसाव पताल। अबहुँ धराधर धरसि न धार॥
जलधर जलधन गेलि असेखि। करए कृपा बड़ परदुख देखि॥
पथिक पियासल आव अनेक। देखि दुख मानए तोहर विवेक॥[1]

[तालाब सूख गये है। कमल मुर्झा गये है। सूर्य की प्रखर तीखी धूप मे वृक्षों की बुरी गत हो रही है। उनमे आर्द्रता नही रह गयी है। खेत मे दरारें पड़ गयी हैं, गहरी दरारें, जिनसे पाताल तक दिखाई पड जाये। जलवाहक मेघ उमडते आते है, पर बरसते नही। अनेक प्यासे पथिक पानी की खोज मे व्याकुल प्यासे ही लौट जाते हैं। उनका दु ख देखकर मेघ के अविवेक की बात मन मे आती है।]

वर्षा

विद्यापत्ति ने अपने दर्जाधिक पदो मे बरसात की रात्त का सजीव चित्रण किया है। ये पद या तो अभिसार के हैं या विरह के। दोनों ही अवस्था मे प्रकृति उद्दीपन विभाव के रूप मे चित्रित की गयी है, विरह के पदो मे विशेषकर। अभिसार के कुछ पदो मे उमड़ती हुई यमुना का भी उल्लेख है, जिसे अपने हाथो के सहारे तैरकर नायिका अपने प्रिय से मिलने को आयी है। उसके सग मे दूती है, कभी वह अकेली ही आती है। ऐसे पदो मे नायिका की व्यथा तथा अनुताप की कल्पना की जा सकती है। जब नायक उसकी उपेक्षा करता है, वह या उसकी ओर से दूती, नायक को पूर्व

---

[1] मि० म० वि०, १४, पृ० १४।

प्रेम की याद दिलाती है, अपने दिये वचन को नही भूलने का आग्रह करती है। "सुपहुँ"—"सुपुरुष" की मर्यादा भग नही करने की प्रार्थना करती है तथा कुलकामिनी होकर भी नायिका उसके पास आयी है, उसकी लाज वह रखे यह कहकर उसे मनाती है।[१] इस प्रसग का एक प्रतिनिधि पद प्रस्तुत है—

जलद वरिस जलधार सर जञो मलए प्रहार
काजरे रागलि राति।
सखि हे अइसना हु निसि अभिसार। तोहि तेजि करए के पार॥
भमए भुअगम भीम। पके पुरल चौसीम॥
दिगमग देखिअ घोर। पएर दिअ विजुरी उजोर॥
सुकवि विद्यापति गाव। महघ मदन परथाव॥

[मेघ जलधारा वरसा रहा है। बुन्दियाँ प्रखर तीर की तरह प्रहार करती प्रतीत होती है। रात घटाटोप अधकार के कारण काजल के रग मे रँगी जान पडती है। ऐसी रात मे भी हे सखि! तुम अभिसार को निकली हो। तुम्ह छोडकर और दूसरी कौन रास्ता तय करके सकेतस्थल तक पहुँच सकती है? भयकर सर्प घूम रहे हैं। चारो ओर राहे पकिल हो रही है। घोर अधकार के कारण न तो दिशा और न रास्ता का ही पता चल रहा है। बिजली चमकने पर उसके उजाले म ही चरण आगे वढाना सभव है। सुकवि विद्यापति कहते है कि कामदेव की प्रस्तावना बडी ही महँगी हो रही है।]

अभिसार के इस पद मे सावन-भादो की रात का सजीव-स्वाभाविक चित्रण किया गया है। प्रखर मूसलधार वृष्टि, सघन काली अँधियाली रात, पग-पग पर साँप बिच्छुओ का डर, कीच-कर्दम से भरी पृथ्वी, रह रहकर बिजली की चमक—वही कुछ भी अपनी ओर से कवि ने नही जोडा है। कमी है तो केवल दादुर के शोर और झीगुर की तीखी झकार की। बरसात की भीषण काली अँधियाली रात मे अभिसार करने वाली नायिका का साहस तथा प्रेमावेग भी अद्भुत ही होगा। पर भरे भादर की इस भीगी रात म नायिका अकेली रहे भी कैसे, "मदन महघ परथाव" वर्षा ऋतु मदन के वेग को कितना बढा देती है—यह सभी जानते है।

निष्कर्ष यह है कि अभिसार के पदो मे प्रत्यक्ष नही कहकर भी कवि इसका सकेत कर देता है कि वर्षा ऋतु नायक नायिका की प्रेम-तृषा को इतना उद्दीप्त कर देती है कि वे सुकर-अकर कुछ भी करने को उद्यत हो जाते हैं।

पर वर्षा के विराट् चित्र एव उसका उद्दाम उद्दीपक रूप तो विद्यापति के विरह के पदो म निखर उठे हैं। इस प्रसग के कुछ पद विशेष मार्मिक एव भावपूर्ण हैं।[२] यहाँ केवल एक पद उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है—

---

१ मि० म० मि०, ३३०, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७।
२ वही, १७४, ५१५, ७२४-२७ आदि।

हम धनि तापिनी मन्दिरे एकाकिनी दोसर जन नहिं संग।
बरसा परिवेश पिया गेल दूर देस—रिपु मेल मत्त अनंग॥
सजनि आज शमन दिन होय।
नवनव जलधर चौदिसे झांपल हेरि जिव निकसए मोय॥
घन घन गरजित सुनि जीउ चमकित कम्पित अन्तर मोर।
पपिहा दारुन पिउ-पिउ तोमर भमि भमि देइ तसु कोर॥
धरिखए धुनुधुनु आगि दहल जनु, आनलु जीवन अन्त।
विद्यापति कह सुन रमनीवर मीलव पहुँ गुनवन्त॥[1]

---

[1] वही, ७२४, पृ० ४७१।

विद्यापति के विरहगीतों मे "इ भर बादर, माह भादर, सून मन्दिर मोर" शीर्षक पद सर्वाधिक मर्मस्पर्शी माना जाता है, विद्यापति की प्राय सभी पदावलियो मे उसे गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है। काव्यगुण एव भाववैभव की दृष्टि से वह पद है भी अनूठा। भादो की भीगी अधरतिया, जल से आपूरित धरित्री, दादुर, मोर, पपीहा का अनवरत शोर, समग्र प्रकृति मे सर्वत्र मिलन-सम्मार, इन सबके बीच विरहिणी नायिका अपने घर मे अकेली, उसके दुख का सचमुच अन्त कहाँ, ओरछोर कहाँ ? शब्दचयन, परिवेश चित्रण, ध्वनि-सगीत, विरहदशा का मार्मिक चित्र, प्रकृति का उन्मादक-उद्दीपक रूप—इस पद मे कवि ने क्या नही भर दिया है ? हमारे विरह-काव्य मे यह पद सचमुच गौरवपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है। पर इस पद को प्रस्तुत लेखक ने जानबूझ कर यहाँ उद्धृत नही किया है, कारण, इसकी प्रामाणिकता मे सन्देह करने का पर्याप्त आधार। सक्षेप मे ये आधार निम्नलिखित हैं—

(क) इस पद का मिथिला या नेपाल मे प्राप्त किसी भी आकर पोथी मे नही होना।
(ख) प्रथम पक्ति मे "हामारि दुखेर नाहि ओर"—विशुद्ध बँगला प्रयोग।
(ग) पचम एव षष्ठ पक्तियो मे "वरखन्तिया", "हन्तिया" का प्रयोग, विद्यापति के अन्य किसी भी पद मे ऐसे प्रयोग नही मिलते हैं।
(घ) दशम पक्ति मे "डाक डाहुकि" का प्रयोग, विद्यापति ने अन्यत्र कही "डाकना" क्रिया का बुलाने के अर्थ मे प्रयोग नही किया है, यह विशुद्ध बँगला प्रयोग है, "डाहुकी" पक्षी भी मिथिला या उसके पडोस के क्षेत्रो का नही, यह पूर्वोत्तर बग मे ही पाया जाता है।
(ङ) पंद्रहवी पक्ति मे "कैछे" का प्रयोग जो बँगला या व्रजबुलि मे ही सम्भव है।
(च) "पदकल्पतरु" मे विद्यापति के स्थान पर शेखर की भणिता। पता नही न० गु० ने इसमे विद्यापति की भणिता कहाँ से जोड़ दी।

[विरहिणी अपनी सखी से कह रही है—मैं अपने घर में ही एकाकिनी तपस्विनी बनी हूँ दूसरा कोई भी मेरे साथ नहीं। बरसात का यह मौसम, प्रीतम दूर देश में प्रवासी, प्रमत्त कामदेव के समान प्रबल शत्रु। हे सखी, कैसे आज का दिन कटेगा, यह ज्वाला कैसे शान्त होगी? आकाश में उमड़ते हुए नये-नये मेघ के ढोंके चारों दिशाओं को आवृत्त कर रहे हैं। उन्हें देखकर मेरी तो जान ही निकलती-सी जान पड़ती है। मेघों का गरजना सुन-सुनकर जी चौंक-चौंक उठता है। पपीहा अलग "पी कहाँ", "पी कहाँ" की रट लगाये जा रहा है। उसे सुनकर पीतम के आने का भ्रम होता है। रिमझिम वर्षा हो रही है, वह मुझे आग की तरह जलाती जान पड़ती है, मुझे तो जान पड़ता है कि आज जीवन का अन्त होकर ही रहेगा। विद्यापति धीरज दिलाते हुए कहते हैं कि रमणी-श्रेष्ठ सुनो, तुम्हारे पहु प्राणपति गुणवन्त हैं, अवश्य मिलेंगे।]

कवि के उपर्युक्त पद में बरसात की रात विरहिणी की आँखों में कैसी होती है, इसका मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत है। अपने घर में एकाकिनी विरहिणी तपस्विनी-सी बनी रहती है। फिर बिजली की चमक, बादल की गरज, पपीहा की रट—सभी उसके विरह की ज्वाला को बढ़ा रही हैं। प्रकृति का यह उद्दीपक रूप विद्यापति के प्रेमकाव्य का अभिन्न सहचर है, स्थायी उपादान है। आकाश से बरसती शीतल जलधारा विरहिणी को आग की तरह जलाती-सी प्रतीत होती है (तुलनाय "बारिद तपत तेल जनु बरखा"—तुलसी)।

विद्यापति के एक अन्य पद की एक पंक्ति में वर्षा की उद्दीपन-शक्ति का अन्यतम संकेत मिलेगा—

> सेदव मोञे कोकिल, अलिकुल बारव, करकंकन झमकाई।
> जखन जलद धवलागिरि बरिसव तखनुक कओन उपाई॥[1]

इस पद में विरहिणी कहती है कि वह शरद की चाँदनी, वसन्त की सुरभित सुषमा, भ्रमर का गुंजार, कोयल की कूक—सभी को किसी तरह सह लेगी, पर जब वर्षा के दिनों में पर्वत-शृङ्गों से मेघ टकरायेंगे, उनके गर्जन-तर्जन से दिशाएँ भरी रहेंगी—तब तो उसे प्राण त्यागने के अतिरिक्त अन्य कोई भी रास्ता नहीं रहेगा।

शरद्-शिशिर-हेमन्त

विद्यापति ने इन ऋतुओं के चित्र अधिक नहीं प्रस्तुत किये हैं। एक पद में बारहमासा-पद्धति पर वर्ष के बारहों महीनों में विरहिणी के अनुभव एवं मनोभाव वर्णित किये गये हैं।[2] इसमें आसिन का चित्र हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी बन पड़ा है—

> आसिन मास आस धर चीत। नाह निकरुण वे भेलाह हीत॥
> सरवर खेलए चकवा हास। विरहिनि वैरि भेल आसिन मास॥

---

[1] मि० म० वि०, १७१।
[2] वही, १७४।

एक अन्य पद मे वर्षा के अवसान तथा शरद् के आगमन का मनोहर वर्णन किया गया है—

> गगन बलाहेक छाड़ल रे, वारिस काल अतीत।
> करिअ विनति सौं एँ आएव जन्हि विनु तिहुअन तीत॥
> आवहु सुमति सधातिनि रे, बाट निहारब जांउ।
> कुदिना सब दिन नहि रह रे, सुदिवस मन हरसाउ॥
> सामर चन्दा उगलाद रे, चान्दे पुनि गेलाह अकास।
> एतवहि पिया के अएवा रे, पलटत विरहिनि साँस॥[1]

[विरहिणी कह रही है—आकाश अब मेघयुक्त हो रहा है। वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी। मैं मन ही मन विनती करती हूँ, अब भी स्वामी आयें, जिनके बिना समस्त त्रिभुवन तीता जान पडता है। हे मेरी सुमति सहेलियो, मैं अब द्वार पर खडी-खडी प्रिय का बाट देखती रहूँगी। हमेशा दुर्दिन ही नही रहता, अच्छे दिन भी आते हैं, जिनम चित्त हर्षित होगा। नीचे आकाश म चाँद उदित हुआ यद्यपि प्रियवियुक्त विरहिणी को सताप देने के कारण वह काला ही जान पडता है, अथवा उसक प्रिय लौटेंगे, श्याम रूपी चन्द्रमा के उदित होने से आकाश मे चन्द्रमा पुन उसे शीतल, रुपहला और आह्लादकारी जान पडगा। प्रिय के आने की सभावना से भी म्रियमाण विरहिणी जी उठेगी, उसकी उखड़ती हुई साँस लौट आयगी।]

यहाँ भी प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप का सकेत मिलता है यद्यपि चौमासे के अन्त और आकाश के मेघमुक्त होने पर मिथिला के कवि का स्वाभाविक आह्लाद इस पद की पक्तियो मे सहज ही फूट पडा है।

शरद् के एकाधिक चित्र विद्यापति न अन्य प्रसगा मे भी प्रस्तुत किये हैं। ये हैं कृष्ण-राधा के विहार सम्बन्धी।

विद्यापति के 'गोरक्ष विजय' मे शरद् ऋतु का एक मनोहर चित्र मिलता है—

> पिबति तम शशिलेखा। विकशति पद्म हसन्ति कुमुदानि॥
> लघुरपि राजति तारा। गुरुरपि सीदति पयोवाह.॥

निर्मल चाँदनी ने अन्धकार को दूर कर दिया है। दिन मे कमल खिलते हैं, रात मे कुमुद हँसते हैं। छोटे होने पर भी तारे जगमगा रहे हैं, बडे होने पर भी मेघ काँपते छीजते जाते हैं। शरद् ऋतु का यह चित्र सजीव एव रम्य होते हुए भी परम्परागत ही है। कवि का कोई मौलिक सस्पर्श इसमे नही दीख पडता—कमल और कुमुद के अतिरिक्त अन्य किसी फूल की चर्चा नही करना इसका प्रमाण है। द्वितीय पक्ति का अलकार प्रयोग भी कवि द्वारा शास्त्रीय परम्परा के अनुसरण का सकेत करता है।

---

१ मि० म० वि०, २१३।

शिशिर एवं हेमन्त मे कठोर शीत पडता है। बारहमासा वाले पद मे अगहन, पूस और माघ के कतिपय चित्र-संकेत कवि ने प्रस्तुत किये हैं। पूस मे दिन छोटे हैं रातें बडी—

"पूस खीन दिन दीघरि राति"

माघ मास मे खूब ओस गिरती है, सवेरे सघन कुहासा छाया रहता है, उत्तर मिथिला मे, हिमालय की तराई मे कभी-कभी घना पाला भी तुषार की तरह भोर होते-होते छप्परो पर छाया दीख पडता है। कवि के शब्दो मे—

माघ मास घन पडए तुषार। झिलमिल कँचुआ उनत घन हार॥

इन महीनो मे भी विरहिणी का विरहताप प्रकृति बढाती रहती है। दूसरी ओर मयोग-सुख की भी अभिवृद्धि मे प्रकृति योग देती ही है। पूस-माघ की भीषण ठंड का प्रभाव विभिन्न श्रेणी के लोगों पर कैसा पडता है इसका उल्लेख विद्यापति ने अपने एक पद मे किया है—

जाइल बाह्मन तेजए सनान।
जाइल कामिनि तेजए मान।
जाइल राड़ घोपड़ी मार।
× × ×
बड पराभव पवन चाहो।[1]

पूस-माघ के भयंकर जाडे के मौसम मे किसका व्रत नही टूटता? ब्राह्मण जाडे से आतंकित होकर स्नान-पूजा छोड देता है। मानिनी मान भंग करने को विवश हो जाती है, और "राड"—गरीब मेहनतकश मजदूर—के पास न तो शाल-दुशाला रहता है, न चादर या रजाई, वह "घोपडी मार" कर—घुटनो के बीच अपना माथा टेककर—बैठा-बैठा किसी तरह जाडे की रात काट लेता है। फिर तीखी शरीर छेदनेवाली पछुया हवा—कौन उससे पराभूत नही होता? जाडे के कठोर शीत के दिनो का एक सजीव-स्वाभाविक चित्र इन पंक्तियो मे प्रस्तुत है।

वसन्त

ऋतुराज वसन्त मनोजन्मा देवता का अभिन्न सखा, सहचर तथा सहायक माना जाता है। हर युग के कवियो ने वसन्त के वर्णन-चित्रण मे अपनी कला का एक भी उपादान अछूता नही छोडा है। नव पल्लव की हरियाली, मंजरियो की सुगन्ध, रंग-बिरंगे फूलो की छवि-छटा, कोयल की कूक, होली की मस्ती एवं चैती... उनींदी स्वप्निलता किसको क्षण भर के लिए उन्मन नही करती? आम के ... जब नव मंजरियो से लदी हो, सारा वन-प्रान्तर उसकी ... के उजले-लाल फूल आठो प्रहर हवा के झकोरो प...

---

[1] मि० म० वि०, २१४, पं० शशिनाथ झा द्वारा ...

वातावरण मे तरुण-तरुणी के मन यदि प्रणय-वारुणी की एक घूँट पी मचल-मचल उठें तो इसमे आश्चर्य ही क्या ? वसन्त भारत के शृंगार-काव्य मे सबसे बडा उद्दीपनकारी यो ही नही माना जाता रहा है। मैथिली साहित्य मे सर्वप्रथम ज्योतिरीश्वर ने ऋतुराज का यौवनोन्मादना भरा चित्र खीचा, फिर विद्यापति ने अपने अनेक गीतिपदो मे उसे साकार कर दिया है।[1]

वसन्त से बढकर शृंगार का उद्दीपक और क्या हो सकता है ? विद्यापति ने ऋतुराज की छवि-सुषमा का चित्रण सभोग-शृंगार और विप्रलभ दोनो पक्षो मे किया है। वसत पूर्वराग की अवस्था मे नायिका को उत्कण्ठित करता है, उसकी मिलनकामना को तीव्र करता है, अभिसार-पथ पर उसे प्रेरित करता है, उसके मान भजन मे सहायक होता है। विरहीजनो के लिए तो वह काल के ही समान होता है। सहकार का सौरभ, कोकिल की कूक, मलयानिल के झकोर, "केतकी, कुन्द, सहार" के सुरभिस्निग्ध मुकुल वियोगिनी को पल-पल प्रिय की सुधि दिला कर बेचैन करते रहते हैं।

वसन्त का वर्णन-चित्रण करते समय विद्यापति ने परम्परागत वसन्त-वर्णन की पद्धति ही अधिक अपनायी है। कवि ने इस प्रसङ्ग मे अपनी सूक्ष्म अन्तर्वीक्षणी दृष्टि की सहायता कम ही ली है। अन्यथा मिथिला मे इस ऋतु मे गदराये गेंदा, आधी रात मे फूल उठनेवाली बेला,[2] समस्त ग्रामीण अचल को पीत परिधान से अभिमण्डित करनेवाले सरसो के फूल का किंचित् भी वर्णन अवश्य मिलता। वस्तुत. विद्यापति ने वसन्त-सुषमा से गदराये प्रकृति के यौवन रूप का चित्रण उतना नही किया है जितना कि इस ऋतु मे नायक-नायिका के हृदय मे उद्दीप्त शृङ्गार का। सामान्यत. विद्यापति का वसन्त वर्णन मजरित आम्र-कानन, कोयल की कूक, मलयानिल के झकोर तथा भौंरो के मकरन्द-पान तक ही सीमित रह गया है। कवि ने "दछिन पवन" पर भी बडा बल दिया है, यद्यपि मिथिला मे अगहन-पूस से लेकर वैशाख के अन्त या ज्येष्ठ के मध्य तक पछिया हवा ही चला करती है। धूल या फूलो की सुरभि उडाती हुई पछिया हवा मिथिला मे वसन्त की अभिन सहचरी है। वस्तुत वासन्ती परिवेश के वर्णन-चित्रण को देखने हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति का प्रकृति-चित्रण प्रकृति-चित्रण के लिए नहीं, शृङ्गार रस के पूर्ण परिपाक के हेतु उद्दीपन-विभाव प्रस्तुत करने के लिए ही हुआ है।

उदाहरणस्वरूप कतिपय पदो की कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

(क) आएल वसंत सकल रस मण्डल कुसुम मेल सानन्द।
फूलली मल्ली, भूखल भमरा, पीबि गेल मकरन्द॥

---

[1] मि० म० वि०, १३८-४३, १७२-७४, १७६, ४७८, ४८०, १६-२० आदि।

[2] मि० म० वि०, पद सख्या २२१ मे वसन्त-विवाह का चित्रण करते हुए कवि ने "वेलिक फूल" का उल्लेख किया है।

भाविनि आवे की करह समधाने ।[१]

(ख) सुरभि समय भल चल मलयानिल साहर सउरभ सार लो ।
काहुक बोपद काहुक सपद नाना गति ससार लो ।
कोइलि पचम रागे रमन गुन सुमरओ कुसले आओत मोर नाह लो ।[२]

(ग) साहर सउरभ गगन भरे । भमरि भमर दुहुँ याद करे ।
× × ×
कोमल मांजरि कोकिल खाए मानिनि मान पिविओ न अघाए ।[३]

(घ) कतहु साहर कतहु सुरभि कतहु नवि मजरी ।
कतहु कोकिल पचम गावए समए गुने गुजरी ॥
कतहु भमर भमि भमि कर मधु मकरन्द पान ।
कतहु सारस सासर जोडए गुपुत कुसुम वाण ॥
सुन्दरि नहि मनोरथ ओल ।
अपन वेदन जाहि निवेदओ तइसन मेदिनि थोल ॥[४]

(ङ) नव वृन्दावन नव नव तरुगन नव नव विकसित फूल ।
नवल वसन्त नवल मलयानिल मातल नव अलिफूल ॥
विहरइ नवलकिसोर ।
कालिन्दी-पुलिन कुजवन सोभिन नव नव प्रेम विभोर ॥
नवल रसाल-मुकुल-मधु-मातल नव कोकिलकुल गाय ।
नवजुवतीगन चित उमताअइ नवरस कानन धाय ॥
नव जुवराज नवल नव नागरि मिलए नव नव भाँति ।
निति ऐसन नव-नव खेलन विद्यापति मति माति ॥[५]

उपर्युक्त पद की छठी पक्ति "नवजुवतीगन चित उमताअइ नव रस कानन धाय" विद्यापति के वसन्त-वर्णन का स्थायी स्वर है। कवि के सम्मुख वसन्त का अन्य कोई महत्त्व नही, विशेषता नही।

वसन्त के प्रसङ्ग मे विद्यापति के दो पद अनूठे एव विशिष्ट है।[६] इनमे एक मे माघ शुक्ल पचमी को वसन्त रूपी शिशु का जन्म लेना तथा उसका जन्मोत्सव वर्णित है। इस पद म कवि ने जन्मोत्सव-समारोह का पूरे सभार एव धूमधाम के साथ

---

१ मि० म० वि०, १३९।
२ वही, १४२।
३ वही, १७३।
४ वि० रा० भा० प०, ३, पृ० ४।
५ मि० म० वि०, ७१८।
६ वही, १३८, १४०।

वर्णन किया है। इस शुभ अवसर पर घर की सजावट, ग्रामवधुओं के विविध पूजा-उपचार, गीत-नृत्य आदि के आयोजन का रूपक कवि ने प्रस्तुत किया है। वसन्त रूपी शिशु धीरे-धीरे वयस्क होता है, शिशु से बालक और बालक से तरुण, फिर तरुणित वसन्त सारे संसार को अभिनव सौन्दर्य-सुषमा से अभिमण्डित कर उन्मत्त कर देता है। अन्तिम पंक्ति है—

नव वसन्त रितु अनुसर जौवति विद्यापति कवि गाया।
राजा सिवसिंह रूपनरायण सकल कला मन भाया॥

इस पद मे कवि ने सबसे अधिक फूलो तथा पक्षियो के नाम प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति के मानवीकरण का यह अनूठा उदाहरण है, वसन्त के जन्मोत्सव के इस रूपक मे सम्पन्न गृहस्थ के घर पुत्रजन्म के अवसर पर का समस्त हर्षोल्लास, आनन्द-बधाई, उत्सव-अनुष्ठान कवि ने विस्तार के साथ वर्णित किया है। राजा शिवसिंह के तीन वर्षो के राज्यकाल मे आनन्द-वैभव की जो मधु-ज्योत्सना मिथिला की राजधानी, राजन्य वर्ग एव कवि विद्यापति के जीवन मे झिलमिला उठी थी, उसका कुछ आभास इस पद मे भी मिलता है।

दूसरे पद मे ऋतुराज के राज्याभिषेक के अवसर पर "चुमाओन" करने का चित्र प्रस्तुत है।[1] प्राकृतिक छवियो के साथ मानवी क्रिया-व्यापारो का इतना मनोहर सामजस्य कवि की सहृदयता एव उसकी अनोखी सूझ का परिचायक है।

विद्यापति के काव्य में वर्णित फूल-फल और पक्षी

विद्यापति प्रेम के सहृदय गीतकार थे। उनके काव्य का वर्ण्य यद्यपि मानवीय जगत् का लौकिक प्रेम ही है, पर उसका वर्णन-चित्रण व्रजविहारी कृष्ण, राधा और गोपियो के प्रेम के रूप मे ही अधिकतर किया गया है। स्वभावत इस प्रेम-वर्णन मे "जमुन तीर", "नव वृन्दावन", "नव-नव कुज कुटीर" बार-बार आते है, यद्यपि इन पर भी मिथिला का प्राकृतिक परिधान दूर से ही झलमलाता जान पडेगा। अत उनके प्रेमकाव्य मे वर्णित फूल, फल, पक्षी, पौधे मिथिला के ही है, सुदूर व्रज के नही।

भावुक बगीय जनता के कण्ठस्वर मे तीन-चार सदियो तक मुखरित होते रहने से स्थन स्थान पर कहीं-कहीं बगीय प्रकृति-परिवेश की छाया भी पड गयी है।

---

[1] **अभिनव पल्लव बइसक देल। धवल कमल फुल पुरहर भेल॥**
करू मकरन्द मन्दाकिनिपान। अरुन असोग दीप बहु आनि॥
माइ हे आज दिवस पुनमन्त। करिअ चुमाओन राअ वसन्त॥
सगुन सुधानिधि दधि भल भेल। भमि भमि भमिरि हंकारइ देल॥
केसु कुसुम सिंदुर सम भास। केतकि धूल बियर लहु वास॥
भनइ विद्यापति कविकण्ठहार। रस बुझ सिवसिंघ सिंह अवतार॥

—मि० म० वि०, १४०, पृ० १०६।

अशोक, सहकार और कदम्ब भारतीय शृंगार-काव्य के सुपरिचित उपादान हैं। इनमे अशोक न जाने क्यो सातवी-आठवी शताब्दी के बाद लगभग भुला-सा दिया गया, सहकार की मंजरी ही शृंगार के कवियो को याद रही पर कृष्णसलिला कालिन्दी के किनारे कदम्ब की डाल पर कृष्ण की वशी अगले एक हजार वर्षों तक निनादित होती हुई हमारे प्रेमकाव्य को सरस करती रही। विद्यापति के प्रेमगीतों में सहकार-मंजरी की चर्चा बार-बार आयी है। वस्तुत. वसन्त की श्री-सुषमा का जहाँ भी कवि वर्णन करता है, सहकार का उल्लेख करना नही भूलता। रसाल की मंजरी पच-शायक के पाँच वाणो मे एक मानी भी गयी है। सहकार की सुरभि से भीगे वासन्ती समीर के झकोर प्रेमी हृदय मे मिलनतृषा को परम उद्दीप्त कर देते हैं। मंजरित सहकार की डालो पर से कोयल कूक-कूक कर वातावरण मे रस घोलती रहती है—

कोकिल बोलए साहर डार।
मदन पाओल जग नव अधिकार॥[1]

सहकार-मंजरियों की सुरभि और कोयल की कूक—मदनराज का सन्देश—सारे जग मे फैलाने के लिए इनसे बडे सहायक और कौन होंगे? रास के प्रसंग मे विद्यापति प्रकृति-परिवेश का चित्रण करते हुए रसाल को नही भूलते हैं—

नवल रसाल मुकुल मधुमातल नव कोकिल कुल गाय।
नवजुवतीगन चित उमताअइ नव रस कानन धाय॥[2]

वसन्त की रसभरी मधुभरी सौरभभरी ऋतु मे विरहिणी के प्राण कंठगत होते रहते है। सहकार के सौरभ से भरा पवन उसके मदनताप को शतगुना करता रहता है। विरहिणी व्यथा भरी वाणी मे कहती है कि ऐसे समय मे भी उसका प्रिय उसकी सुधि लेने नहीं आता—

साहर सौरभे दिसा, चाँद उजोरि निसा तरुतर मधुकर पसरला।
इ रस हृदय धरि तइअओ न आव हरि से जवि पुरव पेम विसरला॥[3]

कभी वह कहती है—

साहर सउरभ गगन भरे भमरि भमर वुहु वाद करे।
× × ×
कोमल माजरि कोकिल खाए। मानिनि मान पिविओ न अघाए॥
× × ×
धन कुल धरम मनोभव चोर। केओ न बुझाव मुगुध पिआ मोर॥[4]

ऐसी ऋतु मे जब सहकार की सुगंध से पृथ्वी से आकाश तक भरा हो, मदमाते भौंरो के युग्म भी रसविभोर हो, कोयल कोमल मंजरियो को खा-खा कर अपनी मत्त कूक से दिशाओं को मुखरित कर रही हो, मानिनी के मान जिस ऋतु मे सहज ही

---

१ मि० म० वि०, ४८०, पृ० ३२७।
२ वही, ७१८, पृ० ४६८।
३ वही, १७२, पृ० १२६।
४ वही, पृ० १३०।

भग हो जाते हो, उस सुहाने रसभीने मौसम मे तरुणी वियोगिनी कैसे अपने कुल-धर्म को बचा सकेगी ? वह यही सोच रही है कि उसके भोले-भाले प्रिय को यह भी नही मालूम है कि कामदेवता धन, धर्म और कुल-मर्यादा—तीनो के चोर हैं।

एक अन्य पद मे भी सहकार का उल्लेख नायिका कर रही है—

साहर मंजर भमर गुंजर कोकिल पचम गाव।
दखिन पवन विरह बेदन निठुर कन्त न आव ॥[1]

[आम की डालें मजरियो से लदी हैं। भ्रमर रसपान कर गुजार कर रहे हैं, कोयल पचम स्वर मे कूक रही है, ऐसे मधुवातास भरी ऋतु मे भी मेरे प्रिय नही आते।]

कदम्ब रसिकराज कृष्ण का प्रिय वृक्ष है। कालिन्दी के तट पर के कदम्ब की डालें उनकी वशी की माधुरी से अब भी मधुपूरित होगी। विद्यापति ने भी एकाधिक पदो मे कदम्ब का उल्लेख किया है—

साँझक बेरां जमुनक तीरां कदम्बेरि वनतर तरां
अकमि कानरा कि कहब काला सोभहि झुमल
सखि कुसुम मरां ॥[2]

ऐसा ही भाव कवि की एक अन्य पक्ति मे भी मुखरित हुआ है—

"नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरुतरे धिरे धिरे मुरलि बजाव।[3]
× × ×
सुन्दरि तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि ॥

कृष्ण की विरहिणी भी उनकी प्रतीक्षा उसी चिर-परिचित कदम्ब के नीचे खडी-खडी किया करती है—

एकसरि ठाढ़ि कदमतर रे पथ हेरथि मुरारी[4]

सहकार और कदम्ब दोनो ही मिथिला मे बहुतायत से होते हैं। सहकार की शोभा-सौरभ की ऋतु है वसन्त और कदम्ब की डालें बरसात मे फल-फूल से भरी रहती हैं—फल पर ही भरे हुए फूलो की शोभा देखते ही बनती है।

दो-एक पद मे भूला-बिसरा अशोक भी प्रस्तुत है—

कुन्द बल्ली तरु धएल निसान। पाटल तूण असोक दलवान॥[5]
अरुन असोग दीप दहु आनि।[6]

---

[1] मि० म० वि०, पृ० १४४।
[2] रागतरगिणी—लोचन कवि, पृ० ४१।
[3] वही, पृ० ४७।
[4] मि० म० वि०, ५४६, पृ० ३६५।
[5] वही, पृ० ४६६।
[6] वही, पृ० १०६।

जैसा कि कहा जा चुका है, विद्यापति मानवेतर प्रकृति के चित्रकार नही, उनके काव्य मे प्रकृति मानव हृदय के भावो के उद्दीपक के रूप मे ही चित्रित की गयी है अथवा उसके क्रिया-व्यापारो के पृष्ठफलक के रूप मे। फलत कवि के पदो मे फूल-फल के उल्लेख तो अनेक स्थलो पर मिलते हैं पर स्वतन्त्र रूप से उनके चित्रण का प्रायः अभाव ही मिलता है। विद्यापति ने तरुणी के सौन्दर्य अथवा उसकी अग-छवि की उपमा देने के लिए ही इनकी चर्चा की है। यहाँ भी सामान्यत परम्परागत रूढियो से बाहर उनकी दृष्टि नही गयी है। मालती, केतकी, कमल, कुन्द, केसु बकुल, कुमुद—इन फूलो का ही उल्लेख उनके पदो मे बार-बार मिलता है। इनमे मालती—इसके लाल-उजले फूलो के गुच्छक बडे ही मनोहर होते हैं—नवीना तरुणी के सम्बोधन के लिए प्रयुक्त होती है, इसी तरह जातकी केतकी—छोटा नया खिला हुआ क्योडा का फूल (यह भी सौरभ और सौकुमार्य मे अद्वितीय है) भी सुकुमारी किशोरी के सौकुमार्य, सौन्दर्य एव तारुण्य का उपमान बनकर कई पदो मे प्रस्तुत है। कमल और कुमुद भारतीय शृङ्गार काव्य के प्रिय फूल रहे हैं। कमल से नायक-नायिका के चरण से लेकर आँखें तक—किस अग की उपमा नही दी जाती है।[१] नायिका स्वय भी "नव पद्मिनी" के समान श्री-सौन्दर्यमयी होती है। विद्यापति ने एक पद मे उसे "जातकि केतकि नव पदुमिनि" कहकर सबोधित किया है। फिर कमल और कुमुद से भरे सरोवर भारतीय काव्य मे शरद् के शुभ्रहास के भी तो परिचायक है। भौंरो द्वारा कमल का मधुपान एव उनका कमलकोष मे बन्दी होना—हमारे प्रेमकाव्य म यह बहुचर्चित चित्र है। मध्यकालीन नायक, वह भी कृष्ण, सच्चे प्रेमी की अपेक्षा रसिक अधिक होता था। अत रसलोभी भ्रमर से उसकी उपमा खूब बैठती है। विद्यापति का भ्रमर कभी कमलिनी को छोडकर केतकी के पास जाता है कभी कमलिनी के कोप मे सारी रात बन्दी रहकर अपनी प्रिया को दुख देता है।[२] कमल से नायिका के वक्षोजा की उपमा भी कवि ने दी है।[३]

कुन्द के फूल उजले होते हैं—मोती के सदृश, दत-पक्तियो के वे प्रचलित

---

[१] तुलनीय—नव कज लोचन कज पद मुख कज कर कजारुणम्—तुलसी

[२] (क) कमलिनि केतकि गेला हे सौरभें रहु धूरि।
कण्टकें कबलु कलेवर मुख माखल धूरि॥
—वि० रा० भा० प० १८४, पृ० २५० (पाद टिप्पणी)।

(ख) साझहि निज्र मकरन्द पिआए। कमलिनि भमरा धएल लुकाए।
भमि भमि भमरी बालभु खोज। मधुपिबि भमरा मुतल सरोज॥
—वि० रा० भा० प०, २५२, पृ० ३३५ (पाद टिप्पणी)।

[३] मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
—मि० म० वि०, २५, पृ० २३।

उपमान है। विद्यापति ने नायिका की उपमा भी कुन्द कुसुम से दी है।[१] बंधु के लाल फूलों से नखक्षतों की उपमा दी गयी है। कुमुद और चाँद का प्रेम अनन्य प्रेम का प्रतीक है।[२]

चंपक, माधवी, शिरीष, वेली, पाडरि और नागकेशर का उल्लेख कतिपय पदों में कवि ने किया है। माधवी नायिका के उपमान तथा सम्बोधन के रूप में, शिरीष प्रणय-सेज प्रसंग में वर्णित है। नायिका की कोमलता की उपमा भी शिरीष से दी गयी है। पाडरि संभवतः पाटलि का मैथिली रूपांतर है। ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर' में इसका उल्लेख पार्वत्यप्रदेश के वृक्षों की सूची में किया गया है।[३] पर उसी सूची में 'केतकी', 'चूत' आदि भी हैं जिससे जान पड़ता है कि उनकी तरह पाडरि भी केवल जंगली फूल ही नहीं रहा होगा। विद्यापति ने पीले पाडरि का उल्लेख किया है।[४] नागकेशर 'वर्णरत्नाकर' में उपवन के पौधों की सूची में है। वसन्त-वर्णन के अन्य पद में 'पाटल-तूण'[५] का उल्लेख किया गया है। इसी पद में लवंगलता का भी उल्लेख मिलता है। विद्यापति के अन्य किसी पद में लवंगलता का उल्लेख नहीं किया गया है। दो पदों में धतूरा का उल्लेख है, एक पद में केतकी और चम्पक के फूलों से केश का शृंगार करने का उल्लेख मिलता है।[६]

विद्यापति ने नारिकेल, 'सिरिफल', बदरिफल, नारंगी, 'कोरिकी', 'वेली' तथा 'छोलंगि' से नायिका के उरोजों की उपमा दी है।[७] अन्य किसी फल पर कवि की दृष्टि नहीं पड़ी है।

पक्षियों में कोयल, चक्रवाक, मोर, पपीहा और चातक की चर्चा विद्यापति के प्रेमगीतों में अनेक स्थलों पर मिलती है। वायस का उल्लेख भी एकाधिक बार कवि ने किया है। कोयल के बिना वसन्त का चित्र पूरा ही नहीं होता और मोर के बिना वर्षा का। कोयल और मोर दोनों ही विरहीं हृदय में मदनताप को उद्दीप्त करते हैं।

---

१ जातकि केतकि कुन्द सहार। गरअ तोहरि पुन जाहि निहार॥
सब फुल परिमल सब मकरन्द। अनुभवे विनु न बुझिअ भल मन्द॥
—मि० म० वि०, ४६१, पृ० ३१५।

२ "सुपहुँ सुनारि सिनेह—चाँद कुमुद कर रेह।"

३ वर्णरत्नाकर—ज्योतिरीश्वर ठाकुर, तृतीय कल्लोल, पृ० ४२।

४ "पीअरि पांडरि महुअरि गावए काहरकार धुथुरा।"
—रागतरंगिणी (लोचन कवि), पृ० ६३।

५ मि० म० वि०, ७१६, पृ० ४६६।

६ वही, ८८, पृ० ७०।

७ वही, २६६, पृ० २१३; ४१८, पृ० २८६।

इतनी बार और इतने मिलते-जुलते भाव के साथ इनका उल्लेख कवि न किया है कि कभी-कभी सन्देह होने लगता है जैसे कि इनका औपचारिक वर्णन ही किया जा रहा है। कितने औपचारिक ये वर्णन है इसका एक प्रमाण तो यह है कि कवि ने जहां वर्षा ऋतु मे वियोगिनी के विरहताप का चित्रण किया है वहां तो मोर के शोर का उल्लेख अनिवार्यत हुआ है, पर अभिसार-प्रसग मे मोर का नाम भी कही नहीं लिया गया है, वहां भीम भुअगम के अतिरिक्त कवि के ध्यान में और कुछ आता ही नही, अपने अनवरत हरहर से वातावरण को आपूर्यमान रखने वाला दादुर भी नही, जिससे इस स्थापना की पुष्टि होती है कि विद्यापति के प्रेमकाव्य मे प्रकृति का नायक-नायिका के हृदय मे रतिभाव का उद्दीपक होने के अतिरिक्त अन्य कोई महत्त्व या उपयोगिता नही।

चक्रवाकयुग्म विद्यापति के काव्य में नायिका के स्तनो के बहुप्रयुक्त उपमान हैं। दो पदो मे बायस का उल्लेख कवि ने किया है, वह भी प्रिय के आने के सन्देश-वाहक होने के रूप मे। नायिका की गति के उपमान के रूप मे राजहस का उल्लेख परम्परागत है। उसकी नाक के उपमान हैं—गरुड चचु शुक, उसकी आँखो के चकोर, खजन, (मछली और मृग तो हैं ही)।[1] पता नही दो पदो मे पूर्वी बगाल मे पाया जाने वाला 'डाहुकि' नामक पक्षी कैसे आ गया है।[2] इन पदो की प्रामाणिकता पर सन्देह करने का एक आधार यह भी है।

विभिन्न प्रसगो मे विद्यापति ने सध्या एव प्रभात के मनोहर चित्र अकित किये हैं। प्रात काल होने के चित्र मिलन प्रसग मे ही आये हैं। रात बीत चुकी, नायिका को अपने घर जाना चाहिए—कृष्ण उसे अभी भी नही जाने दे रहे हैं, सहेली या दूती या कभी नायिका स्वय ही उनसे अनुनय विनय करती है—

> **चारि पहर राति सगहि गमाओल अबे भेल पहु भिनुसारा।**
> **चान्द मलिन भेल नखत मण्डल गेल हमे वेहु मुकुति गोपाला॥**
> **माधव धनि समदय उठि जागी।**[3]

पहली पक्ति म 'भिनुसारा' शब्द के प्रयोग से इस पद मे ग्रामीण एव पारिवारिक सस्पर्श-सा आ गया है। अस्तगत चाँद के कान्तिहीन होने तथा नक्षत्रो के अस्त होने का उल्लेख करके कवि ने रात्रि के अवसान का एक सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। इसी प्रसग के अन्य चित्र निम्नाकित हैं—

---

[1] मि० म० वि०, ८६, पृ० ७१।

[2] "मत्त दादुर डाकें डाहुकि फाटि जायत छातिया"

—मि० म० वि०, ७२६, पृ० ४७३।

"फिरि फिरि उतरोल डाक डाहुकिनि विरहिनि कैसे जीवई"

—मि० म० वि० ७२५, पृ० ७७३।

[3] मि० म० वि०, ६४, पृ० ५३।

(क) गगन मगन होअ तारा।
तइअओ न कान्ह तेजए अभिसारा॥[1]

(ख) नखत मलिन वेकतायत विहान।
पथ संचरत लखत के आन॥[2]

(ग) अरुन किरन किछु अम्बर देल।
दीपक सिखा मलिन भए गेल॥[3]

संध्या के चित्र अधिकतर अभिसार-प्रसंग मे ही वर्णित हैं। एक पद मे एक सामान्या किसी पथिक को प्रणय-आमंत्रण देती हुई कहती है—

कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गेल निज ठामे।
अरेरे पथिक जन थिर रे करिअ मन बड़ पांतर दुर गामे॥[4]

कमल के संपुट बंद हुए, भौंरे उन पर से उड चले, पक्षी अपने घोसलो मे गए—सध्या का यह संकेतचित्र कितना स्वाभाविक, कितना सजीव तथा कितना मनोहर है!

अभिसार-प्रसङ्ग में प्रस्तुत सन्ध्या का एक चित्र—

प्रथम प्रहर निसि जाउ।
निअनिअ मन्दिर सुअन समाउ॥
तम मदिरा पिवि मन्द।
अवहि माति उगि जाएत चन्द॥[5]

गाँव मे साँझ होते ही लोग अपने-अपने घरो मे चले जाते हैं अतः अभिसारिका को अभिसार-पथ पर चलने मे अब कोई डर नहीं। कुछ ही देर मे अन्धकार रूपी मदिरा पीकर चाँद प्रमत्त हो सर्वत्र प्रकाश फैला देगा, अत अभिसारिका को शीघ्रता भी करनी चाहिए, साथ ही विलम्ब होने से यदि अभिसार सफल नही हो सका तो सारी रात प्रमत्त चन्द्रमा उसे मदनताप मे जलाता रहेगा, यह संकेत भी है। विद्यापति प्रकृति-चित्रण करते हुए उसके उद्दीपक रूप का उल्लेख करना कभी नही भूलते।

अन्त मे शरद की रजनी के एक चित्र के साथ इस प्रसङ्ग को समाप्त किया जाता है—

साँझ हि चाँद उगिये गेल दिन सम निरमलि राति।
कत परबोधह अगे सखि कओने अंगिरव मोर भाँति॥[6]

---

[1] मि० म० वि०, ३४१, पृ० २४२।
[2] वही, ३४२, पृ० २४२।
[3] वही, ३४३, पृ० २४३।
[4] वही, १६, पृ० १५।
[5] वही, १००, पृ० ७९।
[6] ” २०६ पृ० १५५।

शरद् के चन्द्र की निर्मल चाँदनी में रात भी दिन के समान उद्भासित हो उठती है, पर वियोगिनी—बहुवल्लभ नायक की उपेक्षिता विरहिणी का दुख ऐसे ही क्षणों मे अछोर हो उठता है। कितना कोई उसे समझाये, सान्त्वना दे, पर उसके अन्तस् की अधियाली क्या कम होती है, कौन उसकी अन्तर्व्यथा समझेगा, यह सोचकर वह और भी व्यथित होती रहती है। दूधिया चाँदनी म नहायी हुई यह "निरमलि" रात उसके मन में बीते दिनो की कितनी भूली-बिसरी याद जगा देती है। उपेक्षिता के तन-मन में चाँद और चाँदनी अब मदनताप नहीं प्रज्वलित करती, पर स्मृति जगाकर उस पर विषाद की धुँधलका डाल देती है।

विद्यापति प्रकृति रगस्थली के पारखी चित्रकार है, उनके द्वारा चित्रित प्रकृति प्रेम और विरह की अनुभूति को प्रगाढतर बनाती रहती है।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति ने प्रकृति-चित्रण करने मे परम्परा का ही अनुसरण किया है। इस प्रसङ्ग मे कवि की मौलिक उद्भावना या संस्पर्श अधिक नहीं मिलते।

(२) प्रकृति विद्यापति के काव्य में उद्दीपन-विभाव के रूप मे ही चित्रित हुई है। नायक-नायिका के हृदयस्थित भावो का उद्दीपन करने के अतिरिक्त उसका कोई स्वतन्त्र या पृथक् अस्तित्व कवि ने नहीं माना है।

(३) प्रकृति-परिवेश के वे ही दृश्य या उपादान अधिकतर लिये गये हैं जिनका नायिका की अङ्गछवि, रगरूप, सौन्दर्य तथा तारुण्य की उपमा देने मे अथवा उसके मनोराग को उद्दीप्त करने मे उपयोग किया जा सके।

(४) ग्रीष्म की दोपहरी तथा वर्षा की रात के चित्र बडे ही सजीव एव हृदयग्राही उतरे है, विशेषकर वर्षा की रात के। इन चित्रो मे मिथिला का स्थानीय प्रकृति-परिवेश साकार हो उठा है।

(५) वसन्त के चित्र अनेक पदो मे प्रस्तुत किये गये है। पर वसन्त के चित्र वर्षा ऋतु के चित्रो की तरह सजीव नहीं हो पाये हैं। इनमे परम्परा-पोषण ही अधिक है। स्थानीय संस्पर्श के रूप मे सहकार तथा पाडरि (पाटल) का उल्लेख किया जा सकता है।

(६) फूलो मे कमल, केतकी तथा मालती का उल्लेख कवि ने अधिक किया है।

(७) कोयल, पपीहा, मोर और चक्रवाकयुग्म की चर्चा विभिन्न ऋतुओ के प्रसग मे अनेक स्थलो पर की गयी है। दो पदो मे बगाल मे पायी जाने वाली "डाहुकी" का भी उल्लेख है।

(८) एकाधिक पदो मे शरद, शिशिर और हेमन्त के चित्र मिलते है। एक पद मे शीत और वसन्त के विवाद का बडा ही मनोरजक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। इस में न्यायालय का एक पूरा दृश्य ही उपस्थित कर दिया गया है।

४

विद्यापति के प्रेमकाव्य में विप्रलंभ और संभोग शृङ्गार

विद्यापति के प्रेमकाव्य में विप्रलंभ और संयोग

विद्यापति प्रेम के गीतकार है। उनकी रसमयी वाणी मे प्रेमकाव्य की एक नैसर्गिक निर्झरिणी फूट पडी है। विद्यापति के प्रेमकाव्य पर जयदेव, गोवर्धनाचार्य, धोयी, भानुदत्त तथा अनेक प्राचीन, मध्ययुगीन एव उनके समकालीन कवियो का प्रभाव न्यूनाधिक रूप मे परिलक्षित होता है। विद्यापति राधा-कृष्ण का लीलागान करनेवाले वैष्णव कवि नही, पर उनकी ऐहिक गीतिमाला की शैली भी ऐसी है जिससे उसके वैष्णव पदकाव्य मान लिये जाने मे कोई बाधा कई सदियो तक भक्तजनो को नही हुई। इसका एक कारण विद्यापति द्वारा प्रेम का सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन भी है।

विद्यापति के गीतिपदो मे प्रेम का कोई भी अग अछूता नही रहा है। शृङ्गार के दोनो पक्ष—विप्रलभ और सभोग—उनके काव्य मे विस्तार के साथ वर्णित है। सामान्य जीवन मे सयोग ही काम्य एव आनन्ददायक माना जाता है, पर रसिक सहृदय के लिए विप्रलभ का महत्त्व कम नही। 'साहित्य दर्पण' के लेखक विश्वनाथ के अनुसार विप्रलभ के बिना सभोग शृङ्गार की पुष्टि ही नही होती है।[1] इसका कारण मानव प्रकृति मे निहित है। सहज प्राप्त वस्तु अधिक उपयोगी होने पर भी अधिक मूल्यवान् नही होती। अनेक बाधाओ को पार कर कठिनाई से प्राप्त होनेवाली वस्तु हमारी दृष्टि मे अधिक प्रिय, मधुर, आस्वाद्य तथा अनमोल बन जाती है। इसी हेतु विछोह के बाद होनेवाला मिलन बहुत ही मधुर होता है।

काव्य मे विप्रलभ का अधिक महत्त्व होने के अन्य कारण भी है। मिलन का पर्व मादक होता है, मिलन की आनन्दानुभूति मे अपने को ही नही सारे जग और युग को भी हम अवसर भुला देते हैं। विछोह के अश्रुगीले क्षण इसके विपरीत हमे अपने रेशमी याकून से निकलकर विस्तृत जगत् की ओर अभिमुख करते है। अपनी भीगी

---

[1] न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
काषायिते हि वस्त्रादौ भूयान्रागो विवर्धते॥ —साहित्यदर्पण, पृ० १५०।

पलकों से हम दूसरों की आँखों का पानी पहचान पाते हैं। हमारी व्यथाकुलित दृष्टि जग की व्यथा का मर्म देख पाती है। इस प्रकार संभोग शृ गार की अपेक्षा विप्रलंभ का मानव वृत्तियों के उन्नयन एवं परिष्करण में वहीं अधिक हाथ होता है। कदाचित् इसीलिए कवि ने गाया है—

"विरह प्रेम की जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है।"[1]

फिर बिछोह की दारुण घड़ियों में मानव को जिन विभिन्न जीवन-स्थितियों का अनुभव होता है वे उसके हृदय को स्निग्ध और सुमृदु बनाकर अधिक व्यापक व उदार बनाती है।"[2] "परक वेदन केओ बाँटि न लेय" अथवा "धनिक्क आदर सबका होय, निर्धन बापुर पूछ न कोय" जैसी मार्मिक अनुभूतियाँ विरही हृदय के ही अवदान हो सकती है।

चण्डीदास और विद्यापति को वैष्णव पदकर्ताओं की अग्रिम कड़ी के रूप में बंगाल में माना जाता है। इनमें चण्डीदास के पदों में विरह का प्राधान्य, प्रेम का गाम्भीर्य तथा भागवत रंजना का दिव्य आलोक अधिक है, ऐसा प्राय: सभी बंगीय विद्वान् मानते हैं। "विद्यापति सयोग के कवि हैं और चण्डीदास वियोग के" यह धारणा सामान्यत प्रचलित है। पर चण्डीदास के 'कृष्णकीर्तन' म सयोग पक्ष का भी विस्तृत चित्रण किया गया है। अनेक स्थलों पर 'कृष्णकीर्तन' के वर्ण्य तथा मूलस्वर से विद्यापति के कितने ही पदों में आश्चर्यजनक भावसाम्य मिलेगा। 'कृष्णकीर्तन' को चण्डीदास की प्रारम्भिक रचना मानते हुए भी उसका महत्त्व सुधी समीक्षकों की दृष्टि में कम नहीं।[3] विद्यापति के जो पद तरौणी तालपत्र तथा रामभद्रपुर पोथी से सगृहीत हैं उनमें अधिकांश के वर्ण्य एवं भावधारा में अपेक्षाकृत अधिक गाम्भीर्य मिलेगा। नेपाल पोथी से प्राप्त पदों में भी अपेक्षातर गभीर स्वर जिन पदों में मुखरित हुआ है उनकी संख्या कम नहीं। दूसरी ओर वय सन्धि विषयक बहुप्रचलित लिपदों में अधिकतर इन पोथियों में नहीं मिलते। विद्यापति के समस्त पद-साहित्य का अवलोकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनिवार्य हो जाता है कि उनके पदों में प्रेमकाव्य के दोनों पक्ष, विप्रलंभ और संभोग, का विस्तृत, सजीव तथा हृदयग्राही चित्रण किया गया है। इनमें एक भी गौण नहीं। मर्मस्पर्शिता में विप्रलंभ के गीत सर्वोपरि हैं।

विद्यापति और चण्डीदास एक ही युग की सन्तान थे। दोनों के गीतिपदों के वर्ण्य एवं स्वर, शैली एवं भंगिमा एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं। फिर भी मूलभूत भेद इसलिए प्रतीत होता है कि चण्डीदास निश्चय ही बंगाल के वैष्णव पदकर्ताओं की परम्परा के आदि में आते है, जबकि विद्यापति के पार्थिव प्रेमकाव्य पर भागवत रंजना आरोपित की गयी है। इस भागवत रंजना के नीचे, दोनों के काव्य में युग-युग

---

[1] पथिक—प० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ३।

[2] आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य—डॉ० रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल, पृ० १२३।

[3] बंगभाषा ओ साहित्य—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १३२।

की शाश्वत भारतीय नारी का सर्व-समर्पणकारी व्यथासजल रूप अश्रुकणो के फूल की तरल मालिका की तरह झलमला रहा है।

विद्यापति के विप्रलभ शृंगार के पद सभोग शृंगार के पदो से संख्या मे कम नही। प्रोषितपतिका एवं उपेक्षिता नायिकाओ की मनोव्यथा के चित्रण मे विद्यापति अद्वितीय है। यहाँ भी उनकी विशेषता यह है कि उनकी विरहिणी व्यथा के सागर मे डूबती हुई भी प्रिय की मंगलकामना करती रहती है, तथा जीवन और जगत् के विराट् पृष्ठफलक को आँखो से ओझल नही होने देती। उनके संभोग शृङ्गार के पदो मे भी कही ग्राम्यता नही आने पायी है। संभोग शृंगार के मांसल, उन्मादक किंवा नग्न चित्रण करने मे विद्यापति कुछ भी उठा नहीं रखते, पर जयदेव की परम्परा उनके पीछे थी, 'कृष्णकीर्त्तन' की उनके सामने। लीलाशुक विल्वमंगल कृत 'कृष्णकर्णामृत', श्रीधरदास द्वारा सकलित 'सदुक्तिकर्णामृत', 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' आदि मे संकलित मुक्तको से भी कवि परिचित होगा। उनके संभोग शृङ्गार के पदो का इस पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखकर ही सही मूल्यांकन हो सकता है।

विप्रलंभ शृंगार के चार भेद प्राचीनों ने बताये है। ये हैं क्रमशः—पूर्वराग, मान, प्रवास, और करुण-विरह। पूर्वराग के तीन भेद बताये गये हैं। नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा।[1] विद्यापति ने पूर्वानुराग का बडा ही सजीव, कलात्मक तथा रसमय चित्रण किया है। उनके पूर्वानुराग के अधिकतर पद वैष्णव पदावलियो मे संकलित मिलते है। इन पदो मे मुग्धा नायिका के सौन्दर्य चित्रण का अवसर भी कवि को मिल जाता है, साथ ही कवि-शिल्प का कमाल दिखाने की भी छूट रहती है, अतः रसिकजनो मे पूर्वराग के पद विशेष लोकप्रिय होते हैं।

(क) पूर्वराग

पूर्वराग के अतर्गत नवो (दशम मरण को छोडकर) काम दशाएँ चित्रित करने का प्रचलन स्वीकृत था, विद्यापति के पदो मे इनका चित्रण कलात्मकता के साथ किया गया है, यथासंभव कवि ने इनमे मार्मिकता भरने का प्रयत्न भी किया है। अनिवार्य कारणो से पूर्वराग के पद रसिक सवेद्य होंगे, पर सामान्य पाठक का मर्मस्पर्श भी हमेशा कर सकें यह आवश्यक नही। नायक-नायिका के मिलन के उपरान्त जो विछोह होता है उसमे जो मर्मस्पर्शिता होती है, व्यथा का जो गाभीर्य एव गहराई होती है वह पूर्वराग मे कहाँ संभव ? पूर्वराग तो अन्तत. एक भूमिका है प्रेम के महा-नाटक की। पर हमारे प्राचीन एवं मध्ययुगीन प्रेमकाव्य मे पूर्वराग का चित्रण बड़ी ही सहृदयता के साथ किया गया है। वैष्णव रस के साहित्य मे पूर्वराग का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है।

---

[1] "नीली कुसुम्भं मञ्जिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा"—साहित्यदर्पण, ३/१९५, पृ० १४३।

पूर्वराग की व्याख्या करते हुए साहित्यदर्पणकार ने कहा है कि नायक-नायिका एक-दूसरे को देखकर या एक-दूसरे के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर परस्परानुरक्त हो जायें तो उसे पूर्वराग कहते है ।[1] यह जरूरी नही कि एक-दूसरे के साक्षात्कार होने पर ही अनुराग अंकुरित हो, चित्र देखकर, या स्वप्न मे किसी की एक झलक पाकर भी उसके प्रति आकृष्ट या अनुरक्त हो सकते हैं । इसी तरह रूप-गुण के विषय मे दूती या सखी या अन्य किसी से सुन सकते है । इस प्रकार पूर्वराग के कई कारण हो सकते है । विद्यापति ने प्रत्यक्ष दर्शन तथा सखी या दूती से रूप-गुण (मुख्यत. रूप-सौन्दर्य) की प्रशंसा सुनकर ही नायक-नायिका के हृदय मे अनुराग के अंकुरित होने का चित्रण किया है । वैष्णव पदकर्ता कृष्ण की वंशी-ध्वनि सुनकर राधा या अन्य गोपियो के प्रेम-विभोर होकर सुधबुध भूलने का चित्रण विशेष रूप से करते है । विद्यापति ने वंशी का उल्लेख मात्र तीन पदों मे ही किया है, अत. पूर्वानुराग के प्रसंग मे वह गौण ही है ।

पूर्वराग की स्थिति नायक एवं नायिका दोनों के हृदय में होना स्वाभाविक है, पर कवियो ने नायिका के पूर्वानुराग का ही अधिक चित्रण किया है । विद्यापति ने एकाधिक पदो मे पूर्वानुराग की स्थिति मे नायक की विकलता का सजीव चित्रण किया है। ऐसे पदो मे दूती या सहेली नायिका के समक्ष उसके प्रेम मे विभोर, उससे मिलने को उत्कंठित नायक की बेचैनी का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण करती है । एकाधिक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

आसाजे मन्दिर निसि गमावए, सुखे न सूत सयान ।
जखन जतए जाहि निहारए, ताहि ताहि तुअ भान ।।
मालति सफल जीवन तोर ।
तोर विरहे भुवन भमए भेल मधुकर भोर ।।
जातकि केतकि कत न अछए सबहि रस समान ।
सपनहु नहि ताहि निहारए मधु कि करत पान ।।
वन उपवन कुंज कुटीरहि सबहि तोहि निरूप ।
तोहि विनु पुनु पुनु मुरुछए अइसन पेम सरूप ।।
साहर निबहु सउरभ न सह, गुंजरि गीत न गाव ।
चेतन आपु चिन्ताए बेआकुल, हरख सबे सोहाव ।।

---

[1] "श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढ रागयोः ।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ।।"—साहित्यदर्पण, ३/१८८, पृ० १४० ।
किन्तु 'शृंगारतिलकम्' के लेखक रुद्रभट्ट ने पूर्वराग केवल दर्शनजन्य माना है—
"दंपत्योर्दर्शनादेव समुत्पन्नानुरागयोः ।
ज्ञेयः पूर्वानुरागोऽयमप्राप्तो च दशा यया ।।"
—शृंगारतिलकम्, २/२, काव्यमाला, तृतीय खंड, पृ० १२१ ।

जकर हृदय जतहिरतल, से धसि ततहि जाए।
जइअओ जतने बाँधि निरोधिअ निमन नीर थिराए ॥[१]

(भनई विद्यापति आदि)

[नायिका से उसकी सहेली नायक की बेचैनी का वर्णन कर रही है। उसकी आँखो मे नीद नही, सारी रात आशा मे जागकर बिता देता है। जिधर भी देखता है, उसे नायिका की ही छवि दीख पडती है। यो भ्रमर तो तीनो भुवन का घ्रमनेवाला है, पर वह तो उसी पर रीझ कर विभोर हो रहा है। केतकी के सुकोमल नये फूलो की कमी नही, सबो मे एक समान रस भी भरा होता है, पर वह तो उनकी ओर आँखें उठाकर भी नही देखता, उनका रसपान क्या करेगा। वन-उपवन, कुंज-कुटीर सर्वत्र वह उसी की खोज करता है, उसी को निरुपम कहकर उस पर रत रहता है। उसका प्रेम इतना प्रखर है कि नायिका के लिए वह बारबार मूच्छित होता रहता है। वसन्त ऋतु मे आम्र मजरियाँ तथा नीम के फूल वातावरण को सुरभिसिक्त कर रहे हैं, उधर गूजरियाँ गीत गा रही हैं, पर प्रेमी नायक को न तो सौरभ अच्छा लगता है और न वह यही चाहता है कि वे गीत गायें। वह चिन्ता मे व्याकुल रहा करता है, सौरभ और गीत तो खुशियाली के दिनो मे ही अच्छे लगते हैं। अन्त मे सहेली नायिका से प्रेम की विशेषता बताती हुई यह कहती है कि जिसका हृदय जहाँ रमता है वह वही जाता है, कितना भी रोकें पर पानी नीचे की ओर ही जायगा।]

पूर्वानुराग का एक बडा ही सजीव तथा उज्ज्वल रूप इस पद मे कवि ने चित्रित किया है। अभिलाषा, चिन्ता से लेकर मूर्च्छा तक कामदशाएँ वर्णित हैं। प्रीति की अनन्यता ऐसी है कि सर्वत्र नायिका की ही रूप-छवि उसे दिखाई पडती है। फिर प्रेम की महत्ता, विशिष्टता तथा गम्भीरता का निरूपण करते हुए कवि कहता है कि सच्चा प्रेमी अपनी प्रिया के अतिरिक्त और कही नही देखता। वह तो जहाँ रम गया है, वही रमा रहेगा। उसी की चिन्ता करेगा, उसी से मिलने को व्याकुल रहेगा।

नायिका के मनोहारी सौन्दर्य को देखते ही मन अपने हाथो मे नही रहता। प्रथम दर्शन मे प्रेम बडा ही रोमानी होता है। हर युग और देश के कवि इसका वर्णन करते आये है। दुष्यन्त का प्रेम शकुन्तला के लिए ऐसे ही जाग्रत हुआ था। यहाँ तक कि मर्यादावादी कवि तुलसी ने भी जनक-वाटिका प्रसङ्ग की उदभावना शृङ्गार के इस सहज-स्वाभाविक किंवा प्रसन्न रूप का सकेतचित्र प्रस्तुत करने के लिए की। विद्यापति ने प्रथम दर्शन मे प्रेम का मधुर चित्रण किया है। उनका एक पद निम्नाकित है—

ततहि धाओल दुहु लोचन रे जेहि पथ गेलि बर नारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे कृपणक पाछु भिखारि ॥

---

[१] बि० रा० भा० प०, १८, पृ० २५ ; मि० म० बि०, ४३, पृ० ३६।

पूर्वानुराग की यह स्थिति बड़ी ही विचित्र होती है। नायक से पूरा परिचय भी नहीं हुआ पर आँखों में उसकी छवि बसी रहती है, मन पर वही छाया रहता है। नायिका किसी से कुछ कह भी नहीं सकती, पर अपने मन की व्यथा को छिपाये रखना उसके लिए असम्भव होता है। आँखें बरसती रहती हैं, तन पाण्डुर होता जाता है, गतिविधि विक्षिप्त की-सी हो जाती है।

पूर्वानुराग में नायिका का यह चित्र प्रोषितभर्तृका के चित्र से मिलता-जुलता प्रतीत होगा, पर दोनों की मनस्थिति में मूलभूत भेद है। किन्हीं बातों में पूर्वानुराग की नायिका की स्थिति अधिक दयनीय जान पड़ेगी। प्रोषितभर्तृका को कुछ छिपाना नहीं रहता, विरह के दिन-रात काटने को उसके पास मिलन की मधुमय घड़ियों की स्मृतियाँ सम्बल रूप में रहती है, पर पूर्वानुराग की नायिका को यह भी नसीब नहीं। उसका प्यार तो सर्वथा चोरी-चोरी का ही होता है। कुल-परिवार की आँखें बचाकर ही वह रो भी सकती है। मिलन-सुख की कल्पना ही वह कर सकती है, अन्यथा मदनताप एवं प्रिय-छवि-दर्शन की आकुल-उत्कण्ठा उसे विकल किये रहती है। विद्यापति ने बड़े ही मार्मिक चित्र पूर्वराग-विप्रलंभ के प्रस्तुत किये हैं।

पूर्वानुरागिणी नायिका का एक अन्य चित्र—

> सामर सुन्दर ए बाटे आयल—तें मोरि लागलि आँखि।
> आरति आँचर साजि न भेले—सबे सखी जन साखि॥
> कहहि मो सखि कहहि मो कथा ताहेरि बाला।
> दुरहु दुगुन एडि मे आवओं पुनु दरसन आसा॥
> कि मोरा जौवने कि मोरा जोवने कि मोरा चतुरपने।
> मदनवान मुरुछलि अछओ सहओ जीव अपने॥
> आध पयोधर ते मोर वेकल नागर जन समाजे।
> कठिन हिरदय भेदि न भेले जाओ रसातल लाजे॥
> सुरपति पाय लोचन मांगओं गरुड मांगओ पाँखी।
> नन्देरिनन्दन मञे देखि आवओं मन मनोरथ राखी॥[१]

पूर्वोद्धृत पद की नायिका अबोध मुग्धा थी, प्रस्तुत पद की सुबोध नागरी। उसमें सरल हृदय की मर्मव्यथा, इसमें सुचतुरा नागरी की ग्लानिमिश्रित उत्कण्ठा चित्रित है। नायिका कहती है, कृष्ण इस रास्ते से आये, वह अपलक उन्हें निहारती रह गयी, तन-मन की सुधि ऐसी भूली कि आँचल सँभालने का भी ख्याल नहीं रहा, संग की सहेलियाँ उसकी यह अवस्था देखती रहीं, उसके अंग उघरे-उघरे से रहे, अपने नागर साथियों के समाज में कृष्ण ने भी उसे देख ही लिया होगा, अब उस क्षण की

---

[१] मि० म० वि०, २४३, पृ० १८२, बि०रा० भा० प०, १६६, पृ० २६८।

बात सोच करके भी वह लाज मे गडी जा रही है । पर उसका मन तो श्यामसुन्दर अपने साथ ही लेते चले गये । यदि वह जान पाती कि उनका आवास कहाँ है तो उनके पास जाने मे विलम्ब नही करती, ऐसी परवश वह हो रही है उनकी "पिरीति" मे । मदनमोहन की एक ही झलक पाकर उसके तन-मन उसके वश मे नही । प्रिय से मिलने के लिए उसके अग-अग विकल हो रहे है । उसके मन मे होता है कि इन्द्र की तरह वह सहस्राक्ष हो जाती, जिससे प्रिय की छवि अपने रोम-रोम से देखती रहती, या गरुड के पख ही उसे मिल जाते जिससे क्षण भर मे वह उनके पास पहुँच पाती । नायिका को अपना "जौवन, जौवन" सभी कुछ अर्थहीन जान पडता है, प्रिय के बिना उसका जीवन व्यर्थ है, और प्रिय के मन को यदि मोह न सका तो वह "जौवन" भी किस काम का, फिर यदि नायक निश्चिन्त हो और नायिका मदनताप से दग्ध होती रहे तो वह नागरी कैसी । इस प्रकार उत्कण्ठा, ग्लानि, सकोच, व्रीडा, अनुताप आदि अनेक भाव नायिका के मन मे आ-जा रहे हैं । पूर्वराग की नायिका का यह चित्र बडा ही हृदयग्राही है । यहाँ नायक आलबन है, नायक का सौन्दर्य उद्दीपन , नायिका आश्रय, उद्वेग, उत्कण्ठा, सकोच, ग्लानि, व्रीडा आदि सचारी, जडता अनुभाव—शृगार की रस-सामग्रियाँ पूरी मात्रा मे प्रस्तुत हैं । इन्द्र से आँखें तथा गरुड से पख माँगने की कामना म जो नारीसुलभ स्वाभाविकता ध्वनित हो रही है वह पद मे मानो चार चाँद लगा देती है । विद्यापति की नायिका नागरी होती हुई भी ग्रामीण सरलता नही भूल आयी है ।

पूर्वराग के उपर्युक्त चित्रो मे नायक-नायिका के मनोभाव, कामदशा तथा अन्तर्व्यथा विशेषत वर्णित हैं । मदनताप से विदग्ध नायक-नायिका के जो परम्परागत उपचार हैं तथा चाँदनी, कोयल की कूक आदि के प्रति उनकी जो प्रतिक्रिया होती है उसका चित्रण प्राचीन एव मध्ययुगीन प्रेमकाव्य मे अत्यधिक प्रचलित रहा है । वस्तुत पूर्वराग के अन्तर्गत इन्ही चित्रो की प्रचुरता मिलती है । विद्यापति ने भी एकाधिक पदो मे ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं । निम्नाकित पक्तियाँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं—

विके गेलहुँ मायुर मधुरिपु भेटल साधे ।
तहि खने पंचसर लागल विधि वसे के करु बाधे ॥
हार भार भेल तहि खने चीर चदन भेल आगी ।
दखिनेओ पवन दुसह भेल मोहि पापिनि बध लागी ॥[1]

(ख) मान

मान विप्रलभ का दूसरा भेद है । नायक की किसी अन्य स्त्री मे आसक्ति की शंका या ज्ञानजन्य ईर्ष्या से परिपूर्ण होने की स्थिति को मान कहते हैं ।[2] इस स्थिति

---

[1] मि० म० वि०, २४६ ।

[2] "स मानो नायिका यस्मिन्नीर्ष्यया नायक प्रति ।
धत्ते विकारमन्यस्त्रीसगदोषवशाद्यथा ॥ —शृगारतिलकम्, २/३२

मे नायिका के हृदय मे ईर्ष्या तथा कोप भरा होता है। अवस्था-नायिकाओ मे खडिता को मानवती भी कह सकते है, यद्यपि कई आलंकारिको ने मानवती को एक अलग ही श्रेणी मे रखा है। इस प्रसग मे प्रणय-मान या प्रणय-कलह को स्थिति को मान-विप्रलंभ से सर्वथा पृथक् मानना चाहिए। प्रणय-मान या प्रणय-कलह की स्थिति वस्तुतः सभोग श्रृगार का ही एक भेद है। विद्यापति के एकाधिक पदो मे प्रणय-मान के चित्र भी मिलते है।

रुद्रभट्ट ने मान के तीन उपभेद बताये है—गुरु, मध्यम तथा लघु। नायक के शरीर पर अन्य रमणी के साथ किये गये रमण के चिह्न देखकर गुरु, उसके किसी अन्य मे आसक्त होने की शका होने पर मध्यम तथा अति सामान्य कारण से कुपिता, पर लगभग अनुकूल बनी हुई नायिका मे लघु मान का उल्लेख किया जाता है। विद्यापति ने मानवती नायिका के चित्र कई पदो मे प्रस्तुत किये है। अधिकतर मान विप्रलभ के पदो मे नायिका की कोई सहेली या दूती उसे नायक के अनुकूल होने, उसके पास चलने या उससे मिलने को कहती चित्रित की गयी है। इन पदो मे दूती का चातुर्य देखने ही लायक होता है। वह नायिका को नायक के अनुकूल करने के लिए कभी उसके रूप की प्रशसा करती है, कभी नायक के प्रेम की दुहाई देती है, कभी पुरुष प्रकृति की रसिकता तथा चंचलता की बात कहती है। मान सम्बन्धी अन्य पदो मे नायिका प्रिय के अन्य रमणियो मे आसक्त होने का निश्चित प्रमाण पाकर कुपिता या क्षुब्ध होती हुई चित्रित की गयी है। पर विद्यापति की मानवती को हम कोपवश नायक की भर्त्सना करते हुए बहुत कम पाते हैं। प्रिय को अन्यासक्त जानकर अपने भाग्य को ही कोसना उसके लिए अधिक स्वाभाविक है। बहुवल्लभ नायक की प्रिया को अपने प्रिय पर कोप करने का भी सौभाग्य कितने दिनो तक रहता है?

प्रेम के व्यथासजल गायक चण्डीदास ने मान-विप्रलभ का चित्रण नही ही किया है। चण्डीदास की राधा मानो दीपशिखा की लौ है जो तिल-तिल कर जलती हुई प्रेम का पावन प्रकाश बिखेरती रहती है। विद्यापति की नायिका भी अपने प्राणो का दीप जला कर दीवाली करनेवाली प्रेम की पुजारिन है जो प्रिय की उपेक्षा पाकर कुपित होने के बदले व्यथित अधिक होती है, ईर्ष्याविदग्ध होने के बदले निराशामग्न होती है, कुचली गयी सर्पिणी की तरह फूत्कार करने के स्थान पर नीरव आँसू अधिक बहाती है। फलत विद्यापति के पदो में न तो शठ या धृष्ट नायक के चित्र अधिक मिलते हैं और न ईर्ष्याविदग्ध कुपिता मानवती के ही।

मान-विप्रलभ के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है—

सरदक ससधर सम मुखमण्डल काज्रे झँपावह वासे।
अलपओ हास सुधारस बरिसओ छाड़ओ अनिअ पियासे॥
कि आरे मानिनि अपन हुँ मने अनुमान।
दसेते आनहुँ बोलब अगेयान॥

हाटक घटन सिरीफल सुन्दर कुचयुग काटिकए आधे।
पानिपरस रस अनुभव सुन्दरि न कर मनोरथ वाधे॥
नागरि अंग त्रिभंगक आगरि विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमा देवि रमाने॥[१]

किसी कारणवश नायिका रूठी हुई है। उसे नायक के प्रति अनुकूल करने के लिए दूती अनेक तरह से उसे समझा-बुझा रही है। वह उसके रूप की प्रशसा करती है, नारी अपने सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर सहज ही द्रवित हो जाती है, फिर कहती है कि रूठना, वह भी अपने प्रियतम से—जो भी सुने वह उसे अज्ञानी कहेगा। इतने पर भी मानिनी का मान नही भग होता है तो उसके रूप-यौवन की फिर प्रशसा करती हुई उसे मिलन-सुख के आस्वाद का स्मरण भी दिलाती है। अत मे कहती है कि वह तो अग-भगिमा की आगरी है, वह नागरी होकर भी मिलन का रस नही लूट कर रूठी बैठी है, यह कहाँ का चतुरपन है? इस तरह विविध युक्तियो से मानिनी-मान को खडित कर नायक के अनुकूल होने का यत्न करती है दूती।

इसे नायक का वचन मानवती नायिका के प्रति भी मान सकते है। किसी भी स्थिति मे यह मध्यम मान का ही चित्र होगा। विद्यापति ने मध्यम मान का ही अधिकतर चित्रण किया है। विद्यापति की नायिका प्रिय के प्रति परुष वचन का व्यवहार जल्दी नही करती। वक्रोक्तियो या व्यग्यबाण का व्यवहार करना भी उसकी मृदु प्रकृति के अनुकूल नही पडता। विद्यापति ने मान-विप्रलभ के अतर्गत मानिनी द्वारा प्रिय की भर्त्सना करने के चित्र उतने नही प्रस्तुत किये है, जितने नायक या सहेली द्वारा रूठी नायिका को मनाने के प्रयत्नो के।"[२]

मानवती नायिका का नायक की भर्त्सना करने का एक चित्र—

सहस रमनि सौं भरल तोहर हिय कए तनि परसि न त्यागे।
सकल गोकुल जनि से पुनमति धनि कि कहब तन्कि भागे॥
पद जावक हृदय भिन्न अछ, अरु करज खत तोहे।
जाहि जुवति सग रयनि गमौलह सतहि पलटि वरु जाहे॥
नयनक काजर अधरँ चोराओल नयन अधर कहु रागे।
बदलल वसन नुकाओब कतखनि तिलो एक कैतव लागै॥
बड अपराध उतर नहि संभव विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन सकल कलारस जाने॥[३]

---

[१] रागतरगिणी, पृ० ६३।
[२] ऐसे कुछ पद—मि० म० वि०, १२०, १२१, २२, २३, २५ आदि।
[३] मि० म० वि०, ११६, पृ० ६०।

खण्डिता नायिका का यह एक प्रतिनिधि चित्र है। नायिका के हृदय मे सपत्नी-जन्य ईर्ष्या तथा प्रिय की अन्य नायिकासक्ति-जन्य कोप दोनो ही भरे है। नायक आया है सारी रात दूसरी रमणी के साथ बिताकर, उसके शरीर पर अनेक चिह्न है जिससे उसकी चोरी प्रकट हो रही है। नायिका अपने इस लम्पट नायक की भर्त्सना करती हुई कहती है कि उसका हृदय सहस्रो रमणियो के प्रति आसक्त है—'सोरह सहस गोपीपति कान्ह'—यह उसका विरुद है जिस बडभागिनी के साथ वह रमण करके आया है उसके सौभाग्य की कहाँ तक वह सराहना करे। नायिका उसके शरीर पर लगे रमण-चिह्नो का उल्लेख करती हुई नायक को उसी के पास लौट जाने को कहती है जिसके साथ उसने रात बितायी है। वह नायक को निरुत्तर कर देती है, इतने-इतने साक्षी हैं उसके पररमणी के साथ रमण करने के कि उसे कुछ कहते नही बनता। नायिका इस अवस्था मे नायक की भर्त्सना मात्र ही करके नही रह जायगी, दीर्घकाल तक वह उससे विमुख भी रहेगी। कोप एव ईर्ष्या मिश्रित मान का यह चित्र काव्य-रसिको के लिए विशेष आकर्षक रहा है।

दीर्घ मान का एक चित्र—

पुनु चलि आवसि पुनु चलि जासि। बोलओ चाहसि किछु बोलइते लजासि॥
आस वढ़ए हरि कहु किए लेसि। आधओ वचने उतरो नहि देसि॥
सुन दूती तोञे सरूप वह मोहि। सग सञे कपट हमर भेल तोहि॥
तन्हि करि कथा कहसि की लागि। झुझि हृदय पजारसि आगि॥
तन्हिकर कउसल मोरा पअ दोस। कहलेओ कहिनी बाढए रोस॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान। राए सिवसिंह लखिमादेइ रमान॥[1]

नायक के दुर्व्यवहार मे क्षुब्ध नायिका दूती को उस छलिया का नाम फिर से लेने को मना करती है। उसकी बातें सुनकर जैसे उसकी देह मे आग लग जाती हो। दूती स्वय भी कम सकोच मे नही है। वह नायिका से कुछ कहना चाह कर भी नही कह पाती हैं। नायक के अनुकूल होने की बात कहने म उसे सकोच होता है। पर दूती का काम ही होता है दो जना के बीच मेल मिलाप कराना—

'दुहु मन मेल करावए जे। कह विद्यापति दूती से॥'

प्रस्तुत पद मे मानवती नायिका का एक अभिनव रूप दृष्टिगत होता है। ईर्ष्या और कोप दुःख व्यथा तथा किंचित् निराशा मे परिणत हो रहे हैं। उस नायक की वार्ता सुनकर उसको ऐसा लगता है जैसे शीतकाल मे भी आग लग गयी हो, पर उसम कोप की अपेक्षा व्यथा का ही आधिक्य है। विद्यापति के मान विप्रलभ मे कोप की अपेक्षा व्यथा का अश ही अधिक प्रमुख रहता है।

एक अन्य पद म कवि ने मानिनी नायिका के कोपवश चुपचाप बैठो रहन

---

[1] मि० म० वि०, ११८।

का चित्र प्रस्तुत किया है।[1] नायक अनेक तरह से उसे समझाता है, अनुनय विनय करता है, पर वह कुछ उत्तर नही देती। नायक उसके रूप-गुण की प्रशंसा करता है, उसके चद्रवदन के लिए उसकी आँखे चकोर की तरह है, यह कहकर अपने प्रेम का भी इजहार करता है, कहता है कि वह न तो स्वय कुछ कहती है, न दूसरे की कोई बात सुनती है, कहाँ तक वह अपनी बात कहे, याचक का आदरमान कौन करता है। मान-भंजन कराने की अनेक तरह की युक्तियाँ कवि प्रस्तुत करता है, पर 'दुर्जय मानिनी मान'—नायिका जो रूठी बैठी है तो उस पर किसी भी बात का कुछ असर ही नही होता।

पर हमेशा हठीली नायिका का भी मान नही रह सकता। ऋतुराज के आते ही मानिनी का मन भी डोलने लगता है। वसन्त की सुषमा यौवन और प्रेम का सौरभ समस्त प्रकृति मे बिखेर देती है, मलयानिल के मृदु झकोरे तन-मन को कण्टकित करने लगते है, नागर-नागरी नवल निकुंजो मे विहार करने लगते है, उस गुलाबी परिवेश मे अनग मानो सशरीर हो उठता है, फिर मानिनी का मान कब तक बचा रहेगा। वसन्त मे तो मुनियो का मन भी डोल जाता है, तरुणी तो फिर तरुणी ही है, मिलन की उद्दाम कामना स्वय ही उसका मान भंजन करने लगेगी।[2]

कभी कोई चतुर सहेली मानवती को अपने प्रिय से कोप छोड उसकी शिकायत दूसरो से नही करने का उपदेश देती है। 'सयानी नारी' अपने प्रिय का दोष छिपा लेती है, प्रकट नही होने देती। ऐसी 'कलामती' का प्रेम कुमुदिनी और चाँद के प्रेम की तरह हमेशा वर्द्धमान रहता है। उसमे कभी मालिन्य या मन्दता नही आने पाती। सहेली नायिका को समझाती है कि पुरुष तो बहुवल्लभ होता ही है, वह भ्रमर की तरह अनेक फूलों का रसपान करना चाहता है। कहाँ तक प्रेयसी उस पर पहरा देती रहेगी। प्रणयिनी को अपने प्रेम को सच्चा एव अनन्य रखना चाहिए। अपनी ओर से उसमे मलिनता या शिथिलता नही आने देनी चाहिए।[3]

मान-विप्रलभ का यह चित्र विद्यापति से प्रेम-दर्शन के सर्वथा अनुकूल है। यो 'सुपुरुष-सुनारि सिनेह, जैसे चाँद कुमुद कर देह' उनका प्रेमादर्श है, पर अपने युग की वास्तविकता को भी वे नही भुलाना चाहते। पुरुष मे कुछ तो भ्रमरी वृत्ति स्वाभाविक है, विद्यापति के युग मे यह सर्वजनीन तथा लोकसम्मत भी थी—"सोलह सहस गोपी-पति कान्ह।"[4] ऐसे युग की नारी का प्रेम करते ही ईर्ष्या एव कोप की भट्ठी मे जलने को विवश होना स्वाभाविक ही होगा। कवि युग-यथार्थ को स्वीकृत कर नायिका से भी उसे मान लेने को कहता है। क्या लाभ है मान कर के बैठी रहने का, या कोपवश अपने

---

[1] राग तरंगिणी, पृ० ६४।

[2] मि० म० वि०, १२३, पृ० ६४।

[3] वही, १२५, पृ० ६५।

[4] वही, १२४, पृ० ६५।

प्रिय की शिकायत करने का। इससे प्रेम तो लौटता नहीं, अतः 'सयानी' वह जो प्रिय का अपराध अपने मन में ही रखती है, क्रोध में भरकर शिकायत करते रहना, प्रिय से रूठी रहना, यह अशोभन है। विद्यापति ने मानिनी को दूती के द्वारा यह शिक्षा दिलायी है।

दाम्पत्य जीवन को रसमय तथा ताजा बनाये रखने में मान-विप्रलंभ को सहायक माना जाता है।[१] इससे प्रेम में एकरसता या शिथिलता नहीं आने पाती। रूठी प्रिया की चाटूक्ति, अनुनय विनय या उसके चरणों पर भी गिरकर मनाने का रसमय चित्रण प्राचीन एवं मध्ययुगीन काव्य में खूब प्रचलित रहा है। राधाकृष्ण प्रेम-काव्य में ऐसे चित्र अनिवार्य माने जाते रहे। विद्यापति ने मान-विप्रलंभ के चित्र अनेक पदों में प्रस्तुत किये हैं। पर इनमें अधिकांश में दूती या सखी द्वारा मानवती को नायक के अनुकूल करने के चित्र है। एकाधिक पदों में ही नायक स्वयं नायिका में अपने दोष-परिहार के लिए विनय करता हुआ चित्रित किया गया है। मान-विप्रलंभ के कुछ पदों में कोप तथा ईर्ष्या की अपेक्षा व्यथा एवं निराशा के भाव अधिक प्रमुख हो उठे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति के मान के पदों की कतिपय अपनी विशेषताएँ हैं।

(ग) प्रवास

विप्रलंभ के उपर्युक्त दो भेदों के विवेचन के उपरान्त प्रवास-विप्रलंभ का विवेचन अपेक्षित है। विप्रलंभ काव्य का सबसे मार्मिक रूप वस्तुतः प्रवासजन्य विरह का चित्रण ही होता है। पूर्वराग के अंतर्गत प्रेमी-प्रेमिका के दर्शन, रूप-गुण-श्रवण-जन्य एक-दूसरे का प्राथमिक परिचय मात्र रहता है, मान में प्रिय का सान्निध्य रहता है, पर प्रवासी की प्रिया नितान्त एकाकिनी, व्यथा के सागर में डूबती-उतराती रहती है। प्रकृति के बदलते पटाक्षेप जो मिलन के दिनों में सुखकारक एवं उन्मादक जान पड़ते थे, विछोह की घड़ियों में वे ही संतापक एवं दुखदायी बन जाते हैं। प्रवास का कारण चाहे जो भी हो, पर इससे प्रेम पुनः नवीन होकर आस्वाद्य हो जाता है तथा विमुख नायक-नायिका भी एक-दूसरे के लिए प्रिय बन जाते हैं।[२]

विद्यापति ने प्रवास-विरह के बड़े ही मर्मस्पर्शी चित्र अपने पदों में प्रस्तुत किये हैं। उनके काव्य के सबसे अधिक मार्मिक स्थल प्रवास-प्रसंग में ही मिलते हैं। विद्यापति की विरहिणी सुचतुरा नागरिका उतनी नहीं जितनी कि निश्छल प्रणयिनी है। वह अकृत्रिम रूप में अपनी मनोव्यथा व्यक्त करती है। विद्यापति की विरहिणी कभी

---

[१] स्नेहं विना भयं न स्यात् मन्मथो नेर्ष्यया विना।
तस्मात् मात्र प्रकारोऽयं द्वयोः प्रीतिप्रवर्धनः॥
—रुद्रभट्ट, 'शृङ्गारतिलकम्', २/५३, काव्यमाला, खंड ३, पृ० १४०।

[२] गार्वाद्विपक्षत्यागाद्विप्रियकरणाच्च निष्ठुरालापात्।
लोभादतिप्रवासात् स्त्रीणां द्वेष्यः प्रियो भवति॥
—वही, २/५६।

राधा के रूप मे 'मथुरापुर' गये हुए कृष्ण को याद मे आँसू बहाती है, कभी दिग्विजय-यात्रा मे प्रस्थान करते हुए अपने वल्लभ को रोकना चाहती है, कभी अवधि बीत जाने पर भी नही लौटे हुए प्रियतम की बात स्मरण कर व्यथित होती है। उसे कभी यह शका होती है कि उसका प्रिय अन्य रमणियो मे आसक्त होकर शायद उसे भूल गया है, तब वह उसकी मगलकामना करती हुई अपनी भाग्य-लेखा को दोष देती है। यो तो प्रत्येक ऋतु ही विरहिणी के लिए सतापकारिणी होती है, पर वर्षा और वसन्त मे विरह-दु ख की कोई सीमा नही होती। विद्यापति ने वर्षा-परिवेश मे विरहिणी की मर्मव्यथा का बडा ही कारुणिक वर्णन किया है। बरसते आसमान के साथ विरहिणी की आँखें भी बरसती रहती है, प्रकृति का हर कोना जब भरा-भरा रहता है, एकाकिनी विरहिणी अपने सूने घर मे विसूरती होती है, पचशायक के पाँचो प्रखर वाण उसे आहत कर क्षत-विक्षत करते रहते है—विरहिणी की व्यथा, उसके दु ख का कोई ओर-छोर उस समय नही रहता। विद्यापति के कितने ही गीत इस विरहिणी के आँसुओ से भीगे हैं। विशेषता यह है उनकी प्रवासी प्रिया के गीतो की कि उनमे केवल कृशता, वैवर्ण्य, मूर्च्छा और जडता का कृत्रिम वर्णन नही, उनके एक-एक शब्द, उनकी एक-एक पक्ति व्यथा-सजल है, भावना-तरल है। इसका एक प्रमाण यह है कि विद्यापति के कितने ही विरह के पद जनमानस मे समाकर लोकगीत बन गये हैं।

प्रवास-विरह का आश्रय होती है प्रोषित-पतिका। इसके भी तीन भेद किये गये हैं—प्रवत्स्यत-पतिका, प्रवास-पतिका तथा अवसत्प्रवास-पतिका। प्रवत्स्यत-पतिका को कोई-कोई आसन्नप्रवास-पतिका भी कहते हैं। विद्यापति के गीतिपदो मे तीनो का चित्रण किया गया है। विद्यापति ने इन तीनो अवस्थाओ का सजीव तथा मार्मिक चित्रण किया है। उन्होने प्रोषित-पतिका की दैहिक अवस्था—कृशता, वैवर्ण्य, व्याधि आदि—का वर्णन करने मे उतनी रुचि नही दिखायी है, इनके चित्र भी उनके दो-चार पदो मे मिलेंगे, पर विद्यापति की प्रकृत भूमि तो उन पदो मे दीख पडेगी जिनमे विरहिणी स्वय विरह-व्यथा से सतप्त होती हुई अपने प्रवासी प्रियतम की मगलकामना में दिन-रात व्यतीत करती है। विद्यापति के विरहगीतो म दाम्पत्य प्रेम के गाम्भीर्य की धुन मुखरित होती है, नारी-हृदय की अनन्त सहनशीलता, अतल भावुकता के दर्शन होते हैं, पुरुष की भ्रमरी वृत्ति तथा सहज चचलता के सकेत भी मिलते हैं तथा उपेक्षिता पत्नी की एकाकी व्यथा का स्वर भी सुन पडता है। उदाहरणस्वरूप, कतिपय पद प्रस्तुत किये जा रहे है—

पहिलो पिरीति परान आँतर तलने अइसन रीति।
से आवे कवहु हेरि न हेरथि मेलि नीम सम तीति ॥
साजनि जीवयु सए पचास।
सहनि रमनि रयनि खेपयु मोराहु तन्हिक आस ॥
कतने जतने गउरि अराधिअ माँगिअ स्वामि सोहाग।
तथहु अपन करम भुंजिअ अइसन जवर भाग ॥

समय गेले मेघे बरिसव कोवहुँ तयँ जलधार।
शीत समाइले वसन पाइअ तयँ वहु की उपकार॥
रयनि गेले दीप निरोधिअ भोजन दिवस अन्त।
जउवन गेले जुवति पिरीति की फल पाओव कन्त॥
धन अछइत जे नहि भोगए ता मने हो पचताय।
जउवन जीवन बड निरापन गेले पलटि न आव॥
भन विद्यापति सुनह जौवति समय बूझ सयान।
राजा सिवसिंह रूपनरायण लखिमा देइ रमान॥[१]

दाम्पत्य प्रेम के गाभीर्य की दृष्टि से प्रस्तुत पद अद्वितीय है। "साजनि जीवयु सए पचास" इस गीत का स्थायी स्वर है। प्रत्येक दो पंक्तियों के बाद गायक इसे दुहराता चलेगा। विरहिणी अपने उन दिनों की याद करती है जब पहला-पहला प्रेम हुआ था, जब दो तन एक प्राण का सम्बन्ध था उसका नायक के साथ। और आज तो उन दिनों की स्मृतियाँ भी उसे सालती हैं। किसी अंग्रेजी कवि के अनुसार सुन्दरतम वस्तुओं का शीघ्रतम अवसान होता है, उनकी सुरभि ही उनके अवसान के बाद भी रहती है, पर गुलाब को जो प्यार करता है उसके लिए उसकी सुरभि भी तल्ख हो जाती है।[२] विरहिणी को शंका होती है कि परदेश में उसका प्रियतम अन्य रमणियों में आसक्त होगा। संभव है कि एक ही घर में रहकर भी उसका प्रिय उसके लिए प्रवासी के समान हो रहा हो। पर इससे न तो वह ईर्ष्या से विदग्ध होती है, और न कोप से जर्जर। पति चाहे जो करे, पर विरहिणी नायिका उसी की आशा में अपनी आँखें बिछाये जीवन के शेष दिन काटती रहेगी। नारी कितनी पूजा आराधना करती है जिससे उसका सोहाग बना रहे। अत वह अपने प्रियतम की अमंगलकामना नहीं कर सकती, उसके प्रति चाहे जैसा भी व्यवहार वह क्यों न करे। पति यदि उसे अपना पूरा प्यार नहीं दे रहा है तो इसमें उसका भाग्य-दोष ही होगा, पूर्वजन्म का जैसा जिसका कृत्य रहता है, जैसी अर्जना रहती है, वैसा ही कर्मफल उसे इस जन्म में मिलता है।

प्रस्तुत पद की नायिका विरहिणी है, प्रोषितपतिका की ही श्रेणी में उसे रखेंगे, वह उपेक्षिता या परित्यक्ता की श्रेणी में अभी नहीं आयी है क्योंकि अपने पति की ओर से अभी वह पूर्ण निराश नहीं हुई है। अभी उसके रूप-यौवन का आकर्षण भी मन्द नहीं पड़ा है। वह युवती है, प्रियदर्शिनी एवं सुन्दरी है, उसे यह भी आशा है कि प्रियतम उसकी सुधि लेगा। सच्चा अनन्य प्रेम निष्फल नहीं होगा। पर यौवन के फूल जब झड़ गये होंगे तब वह आकर भी क्या पायगा? खेत सूख जाने पर वर्षा होगी भी तो उससे क्या, जाड़ा बीत जाने पर वस्त्र यदि मिला भी तो उसका क्या उपयोग? चण्डीदास की विरहिणी भी ऐसा ही कुछ कहती है—नारी का यौवन ज्वार के पानी

---

१ मि० म० वि०, १६१, पृ० १२०।

२ "Fairest things have fleetest ends
Their scent survives their close,
But rose's scent is bitterness
To him who loves the rose.'
—*Anon*

की तरह होता है, जाने पर फिर लौटता नही। जीवन यदि रहा तो प्रिय से मिलन तो होगा, पर यौवन नही रहने से वह मिलन भी भारस्वरूप ही होगा।"[1]

प्रवासी प्रिय के लिए निरन्तर मगलकामना करनेवाली, अपने दु ख-सताप के लिए अपने कर्म-फल को कोसनेवाली, जगदम्बा गौरी से अपना सोहाग बनाये रखने की याचना करनेवाली, प्रिय की प्रतीक्षा मे अपने तन-मन की आरती सजाये व्यथा-सजल रहनेवाली—यह शाश्वत भारतीय नारी की प्रतिमा है जो विद्यापति के विरह काव्य मे बार-बार रूपायित हुई है।

प्रोषितपतिका का एक अन्य चित्र—

सरसिज विनु सर सर विनु सरसिज की सरसिज विनु सूरे।
जौवन विनु तन, तन विनु जौवन की जौवन पिय दूरे॥
सखि हे मोर बड दैव विरोधी।
मदन वेदन बड पिया मोर गेल कत, अबहु देह परबोधी।
चहुँदिसि भमर भम कुसुमे कुसुमे रम, नीरसि माजरि पिवई।
सिनेह अछल जत हेम मेल रहत सवेई थीरे।
अइसन कए बोलह, सीम तेजि कहुँ उछल पयोनिधि नीरे॥
भनइ विद्यापति अरेरे कमलमुखी गुनगाहक पिया तोरा।
राजा सिवसिंह रूपनरायन सहज एको नहि भोरा॥

प्रवासी प्रियतम की तरुण विरहिणी अपने गदराये यौवन को देखती है, उधर प्रकृति मे भी वसन्त की सुषमा निराली मादकता भर रही है। वह अपने भाग्य को कोसती है, विधाता ही जिसके विपरीत हो जाय, उसके दुख का ओरछोर कहाँ? वसन्त के सुहाने मौसम मे वह प्रिय से दूर एकाकिनी, अपना जीवन-यौवन व्यर्थ ही गँवा रही है। "की जौवन पिय दूरे"—अभी जब यौवन की लुनाई से भरा है उसका तन-मन तब तो प्रियतम दूर-परदेश मे बैठा है, यौवन बीतन पर वह आयेगा भी तो 'तनविनु जौवन' कमल के बिना सरोवर, वह क्या लेकर उसका स्वागत करेगी!

वसन्त की हवा मे भी मादकता होती है, गुलाबी नशे मे बेसुध कर देने की क्षमता होती है। मन्द-शीतल पवन, कोयल की कूक, मजरियो के भार से झुकी आम की डालें, जिन पर भौरें रसमत्त कर झूम रहे हों, ऐसी मादक ऋतु मे अपने को सयमित रखना भी कितना कठिन है, पर विरहिणी का स्नेह तो तपाये सोने की तरह दीप्त है, खरा है। समुद्र का जल जिस तरह अपनी सीमा का अतिक्रमण नही करता, कुलजा भी अपनी मर्यादा नही छोड सकती। प्रियतम यदि नही आता है तो धन रहते उसे नही भोगनेवाला—स्वय ही पछतायेगा, विरहिणी तो अपने वाम विधाता को ही याद कर किसी तरह दिन काट रही है।

---

[1] जोयारेर पानी नारीर यौवन गेले ना फिरिबे आर।
जीवन थाकिले बधु रे पाइब यौवन मिलन भार॥

इस पद मे विरहिणी का एक दूसरा रूप कवि ने प्रस्तुत किया है। नायिका के हृदय मे यौवनसुलभ मस्ती है। यौवन का ज्वार चिरस्थायी नही रहेगा, यह जानती है वह, पर कुल-शील की मर्यादा का अतिक्रमण करने की बात उसे नही जँचती। कुलवती नारी का शील समुद्र के जल की तरह होता है दोनो मे एक भी सीमातिक्रमण नही करता। प्रकृति उद्दीपन विभाव के रूप मे चित्रित की गयी है। नायिका स्वय भी मदनताप से दग्ध होती है। नायक आलवन, नायिका आश्रय, यौवन, वसन्त, 'दक्षिन-पवन' आदि उद्दीपन, उद्वेग, उत्कठा आदि सचारीभाव—ये रससामग्रियाँ इस पद मे प्रस्तुत हैं। नायिका की अपनी कुलमर्यादा के प्रति निष्ठा इस पद की विशेषता है—

फूलो का सौरभ, मधुकर का गुजन, चदा की चाँदनी, मिलन के दिनो मे उद्दीपक एव सुखदायक होते हैं, पर विरहिणी के लिए वे सतापकारिणी बन जाते हैं। कोयल की कूक विरहिणी के हृदय मे हूक भर देती है। एक पद मे विरहिणी अपने अनुभव व्यक्त कर रही है—

ओतएक तन्त उदन्त न जानिअ एतए अनल बम चन्दा।
सौरभ सार भार अरुझाएल बुझ पंकज मिलु मन्दा॥
कोकिल काजि सतावह काहू।
ताओ धरि जनि पचम गावह जावे दिगन्तर नाहू॥
मदनक तन्त अन्त धरि पलटए बुझितहु होसि अजानी।
आजुक कालि कालि नहीं बूझसि जीवन बन्ध छुट पानी॥
पिआ अनुरागी तजे अनुरागिणी दुहु दिस वाढु दुरन्ता।
मजे वड दसिमि दसा गए अगिरल कुसले आवथु मोर कन्ता॥
पाँडरि परिमल आसा पूरयु मधुकर गावहु गीते।
चान्द रयनि दुहु अधिक सोहाउनि मोहि पति सब विपरीते॥[1]

---

[1] वि० रा० भा० प०, २५८, पृ० ३६४, मि० म० वि०, ४१५, पृ० २८८।

तुलनीय—मि० म० वि० २३१, (पृ० १५६) से। उपर्युक्त पद की निम्नाकित चार पक्तियाँ इस पद मे बहुत थोडे पाठ भद के साथ मिलती हैं। यह पद राय अर्जुन को समर्पित है। इस पद मे विरहोत्कण्ठिता के कातर मनोभाव व्यक्त किये गये हैं। प्रिय से किसी भी तरह उसे कोई मिला दे—यह कातरोक्ति इस पद का मूल स्वर है। काव्य-गुण तथा मर्मस्पर्शिता मे यह पद पूर्वोक्त पद से बढकर है, यद्यपि प्रवासी पति की मगलकामना यहाँ नही, विरहोत्कठिता के प्रसग मे वह अप्रासगिक भी होता।

पाँडरि परिमल आसा पूजए मधुकर गावए गीते।
चाँदनी रजनी रभस बढ़ावए मो पति सबे विपरीते॥

विरहिणी का चद्रोपालम्भ सस्कृत साहित्य की मान्य परिपाटी है। एक अन्य पद मे विद्यापति ने विरहिणी द्वारा चद्रमा को खूब खरी-खोटी सुनवायी है।[1] चद्रमा जैसे आग बरसा रहा हो, कमल का सौरभ भी उसे भारवत् प्रतीत होता है। कोयल से वह प्रार्थना करती है कि वह किसी को सताये नही। जब तक प्रियतम परदेश मे रहे, वह पचम स्वर मे अपना गीत नही सुनाये। कोयल कूक-कूककर कामदेव के नाग-फाँस को और भी कठोर कर देती है। कोयल से विरहिणी कहती है कि यह जानकर भी कि कामदेव का फाँस जान लेकर ही लौटता है, वह अज्ञान बन रही है। प्रिय के विछोह के ये दिन कैसे बीत रहे है, वह नही समझती, यौवन का ज्वार निर्बन्ध होकर बहता जा रहा है, नायिका को विश्वास है कि उसके प्रियतम अब भी उससे प्रेम पूर्ववत् ही करते होगे, कोयल भी किसी की अनुरागिणी होगी (तभी वह इतना मधुर गीत सुनाकर प्रकृति मे रस घोल देती है) पर आज तो उसका प्रियतम भी निर्मम बनकर परदेश मे बैठा हुआ उसे विरहानल मे विदग्ध कर रहा है और चिर अनुरागिणी कोयल अपना मधुगीत सुनाकर उसके कानो मे विष घोल रही है। पाडरि (पाटल) के फूल अपने परिमल से मधुकर की आशा पूरी करें, मधुकर भी प्रमत्त होकर गु जन-गीत सुनाये, चाँद और चाँदनी रात अपनी सुषमा से दिशाओ को और भी सुहावनी बनायें, पर उसके लिए सभी कुछ विपरीत हो रहा है। प्रिय की अनुपस्थिति मे सभी उसके लिए सतापकारी है। यह दारुण विरह-व्यथा जैसे उसकी जान लेकर ही छोड़ेगी, पर वह भले ही दशमी दशा (मरण) को प्राप्त हो जाय, उसके रोम-रोम से प्रिय की मगल-कामना मुखरित हो रही है, उसके कान्त कुशलपूर्वक लौट आवें।

दाम्पत्य जीवन मे प्रेम की गभीरता, विरह-व्यथा की प्रखरता, प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप, प्रवासी प्रिय के सकुशल लौट आने की मगलकामना—प्रवास-विरह के एक गीतिपद मे इससे अधिक मर्मस्पर्शी तथा उदात्त भाव नही भरे जा सकते थे।

मधुमास मे जब समीर रसालमजरियो की सुगध से भीगा-भीगा रहता है, कोयल पचम स्वर मे कूकती रहती है, विरहिणी बाला कामज्वर से सतप्त होकर विकल हो उठती है। पचशायक की इस हरकत पर खीझकर वह उसे ही कोसती है, कटु शब्द सुनाती है। इसी अविचारित कर्म के कारण तो उसे भगवान रुद्र ने भस्मीभूत कर दिया था, फिर जन्म भी कहाँ लेना पड़ा उसे—अहीर के कुल म (कृष्ण का सौन्दर्य कामदेव के समान है अत नायिका कहती है कि कामदेव ने ही नन्दसुत के रूप मे अवतार लिया है)। नायिका उस विधाता को भी कोसती है जिसने पचशायक की सृष्टि की तथा उस जैसी सुन्दरी को अविचक्षण प्रियतम दिया, जो वसन्त के फूलभरे

[1] मि० म० वि०, ३२३, पृ० २३०। यद्यपि यह पद अभिसार-प्रसग का है, पर अभिसारिका ने, विरहिणी को सताने के अपराध मे चन्द्रमा की क्या-क्या दुर्गति होती है, इसका मनोरजक उल्लेख किया है।

मौसम में भी उसे एकाकिनी छोड़ दूर कहीं परदेश में बैठा है। यह रूप, यह यौवन— औरों के लिए वरदान होगा, पर उसके लिए तो ये कालस्वरूप ही है। कवि ने अन्यत्र भी कहा है— 'तन-बिनु यौवन, यौवन बिनु तन, की यौवन पिय दूरे।' ज्यों-ज्यों दिन बीतते है, वसन्त की शोभा मदन-ताप को बढ़ाता है। विरहिणी की व्यथा और खीझ बढ़ती जाती है। उसका 'कन्त' कितना निष्ठुर है कि तब भी वह नहीं आता, उसे इस विरह-जलधि से उबारने के लिए। वह अपनी सखी-सहेली से आर्त्त प्रार्थना करती है कि वे ही कोई उपाय करें जिसमें वह निर्मम वापस लौटे और इस विरह-ताप से उसकी रक्षा करे।[1]

इस पद में विरहिणी कामदेव को कोसती है, उसके साथ उसके रचयिता विधाता को भी खरी-खोटी सुनाती है। साथ ही, भगवान रूप द तो नागर पति भी दे, अन्यथा रूप भारवत् ही हो जाता है, यह कहकर नारी जीवन के एक कटु यथार्थ को भी व्यक्त किया है। विद्यापति के अन्य विरह-पदों से इसकी भावधारा किंचित् भिन्न है।

प्रवत्स्यत्-पतिका का एक चित्र—

सखि हे बालभ जितब बिदेसे।
हम कुलकामिनी कहइत अनुचित तोह ञ् देहु हुन्हि उपदेसे ॥
इ न बिबेसक बेली ।
दुरजन हमर दुख न अनुमापब तें तोहि पिआ गेल ऐली ॥
किछु दिन करथु निवासे ।
हमे पूजल जे सेहे पए भुजब राखथु पर उपहासे ॥
होएताहे किये बध भागी ।
जहि खन्हे हुनि मने माधब चिन्तब हमहु मरब धसि आगी ॥
विद्यापति कवि भाने ।
राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमा देइ रमाने ॥[2]

विद्यापति न इस पद में आसन्नप्रवास-पतिका के मनोभाव का चित्रण किया है। प्रथम पंक्ति म 'जितब' शब्द रानी लखिमा तथा राजा सिवसिंह से सम्बन्धित होने का संकेत करता है। या 'जितब' का अर्थ साधारणतः जाने के अर्थ में टीकाकार करते हैं, अथवा कुलवती नायिका अपने पति के जाने की चर्चा नहीं करके आदरसूचक 'जितब' का व्यवहार करती है, ऐसा भी कह सकते हैं। राजा शिवसिंह के मुसलमानों से दो युद्ध हुए थे, जिनमें कम से कम एक उन्हीं का प्रारम्भ किया हुआ था। उन दिनों मुसलमानी सप्रभु सत्ता से लोहा लनेवाले हिन्दू राजाओं की जो गति होती थी, राजा की अभिन्न सहचरी लखिमा या विद्यापति से अविदित नहीं रही होगी। अतः प्रस्तुत

---

[1] मि० म० वि०, १८८, पृ० १४४।

[2] रागतरंगिणी, पृ० ११८, मि० म० वि०, १५६, पृ० ११६।

पद मे ऐसे किसी युद्ध-प्रयाण के अवसर पर रानी के हृदय के भाव कवि ने यदि व्यक्त किये हों तो इसमे आश्चर्य नही। अतिम पक्ति मे "हमहु मरब धसि आगी" आगे आनेवाली घटना की पूर्व-सूचिका-सी प्रतीत होगी। द्वितीय युद्ध से राजा वापस नही लौटे। बारह वर्षो तक रानी लखिमा उनके लौटने की राह देखती रही। बारह वर्ष बीत जाने पर पति की प्रतिमा बनवा उसी के साथ उसने चितारोहण किया।

इस विरहगीत मे आसन्न विरहिणी की मर्मव्यथा साकार हो उठी है। कवि औपचारिक रूप से विरहिणी का रुदन या लम्बी साँस भरने का उल्लेख नही करता। कुलवधू स्वय अपने अभियानोन्मुख पति की आवर्जना नही करती, वह स्वय उससे कुछ नही कहकर अपनी सहेली से ही उसे सन्देश भेजना चाहती है। राजा शिवसिंह ने अपने राज्यारोहण के दूसरे ही वर्ष मे युद्ध-प्रयाण किया था। प्रस्तुत पद मे नायिका चाहती है कि कुछ दिन तो वे शान्ति के साथ राज्य और प्रेम का आनन्द लें। युद्ध करने को तो सारा जीवन पडा है। यह विदेश जाने का अवसर नही। प्रवास के कारणो मे परिवार से विरक्ति भी बतायी जाती है, दूसरे यही समझकर नायिका पर उगली उठायेंगे। दुर्दिन मे कौन किसका दुख समझता है ? और दुर्जन तो सहज ही कठोर होते है, वे कहाँ किसका दुख अनुमापित करते है। नायिका पति-विछोह की आशका से ही कातर हो रही है।

विद्यापति की विरहिणी प्रकृत्या भाग्यवादिनी होती है। अपने कर्मफल के अनुसार सुखदुख तो वह भोग ही लेगी पर उसके पति पर यदि लोग किसी बात के लिए उगली उठायेंगे तो उसको वह कैसे सहन करेगी। अत वह सखी द्वारा सन्देश भेजना चाहती है कि पर उपहास का तो खयाल कर के अपनी यात्रा रोक दें।

प्रेम-विछोह मे वह जीवित नही बचेगी, विरह की ज्वाला और पर उपहास—दोनो. मिलकर उसे जीवित नही रहने देंगे। इस तिरिया वध का भागी उसके पति को ही लोग कहेंगे। नायिका अपनी सहेली से कहती है कि वह जाकर उसके पति से कहे, क्यो वे उसकी मृत्यु का कारण बनेंगे, प्रवास-गमन का विचार छोड दें, कुछ दिन और निवास कर लें, फिर अन्य कोई बात सोचेंगे। अत मे वह अपना सकल्प भी बता देती है, प्रिय का विछोह उससे सहा नही जायगा। दारुण विरह-व्यथा मे तिल-तिल कर मरने के बदले वह स्वय अपने प्राण दे देगी। विप्रलभ शृगार मे दसमी कामदशा मरण है। विद्यापति की यह विरहिणी प्रिय-विछोह होते ही उसी की सभावना देखती है। प्रवत्स्यत्-पतिका की मनोव्यथा का यह सहज, अकृत्रिम चित्रण मर्मस्पर्शिता मे अद्वितीय है।

प्रवत्स्यत्-पतिका का एक अन्य चित्र मिथिला के लोककण्ठ से सगृहीत एक पद मे मिलता है। पद निम्नलिखित है —

उठु उठु सुन्दरि हम जाइछी विदेश।
सपनहु रुप नहि मिलत उदेश॥

से सुनि सुन्दरि उठलि चेहाय ।
पहुक वचन सुनि बैसलि झमाय ॥
उठइत उठलि बैसलि मन मारि ।
विरहक मातल खसलि हिय हारि ॥
एक हाथ उबटन एक हाथ तेल ।
पिय के नमनाओ सुन्दरि चलि-मेलि ॥
भनहि विद्यापति सुनु ब्रजनारि ।
धैरज धय रहु मिलत मुरारि ॥[1]

भोल झा द्वारा सकलित एव सम्पादित "मिथिला गीत सग्रह" मे यह विरहगीत मिलता है। इसका अन्य किसी भी आकर ग्रन्थ मे नही मिलना इसकी प्रामाणिकता को सशयास्पद बना देता है। पद की भाषा भी परिनिष्ठित आधुनिक मैथिली है। चेहाय, उबटन, तेल आदि शब्दो का प्रयोग भी इसकी भाषा के विद्यापति युग की भाषा से अधिक घिसी-पिटी, अत आधुनिक होने, का सकेत करता है। पर लोकमानस मे जो काव्य स्थान बना लेता है तथा लोकगीत के रूप मे अनेक सदियो को पार करता हुआ हमे उपलब्ध होता है उसकी भाषा पर प्राचीनता की छाप कहाँ मिलेगी ? लोकगीत एव माला बासी व्यवहार नही किये जाते। हर पीढी उनमे कुछ जोडती-घटाती हुई विरासत के रूप मे अगली पीढी को सौंपती चलती है। फलत युग के अनुकूल उनके भाव और भाषा दोनो म परिवर्तन होना अवश्यभावी है। प्रस्तुत पद के साथ भी यदि ऐसा ही हुआ हो तो आश्चर्य नही। मिथिला के ग्रामीण अचलो मे, विशेषकर नवीना तरुणियो के बीच, यह पद अत्यधिक प्रचलित है। मर्मस्पर्शिता एव काव्य गुण मे इसके जोड का गीत मिलना कठिन ही होगा।

विदेश के लिए प्रस्थान करते समय नायक अपनी प्रिया को जगाता है, मिलन-सपनो मे विभोर नायिका कानो मे इस अप्रिय समाचार के पडते ही "चेहा" कर उठ जाती है, (यह "चेहाना" शब्द ठेठ मैथिली है, जिसके अन्तर्गत आशका, विस्मय, भय, उद्वेग आदि कितने ही भाव सयुक्त होते है)। विदेश जाने को उद्यत पति पुन अपने शब्द दुहराता है। केवल न वह अपने विदेश जाने की सूचना देता है, वह भी कहता है, "सपनहु रूप नहि मिलत उदेश", इतनी लम्बी यात्रा मे वह प्रयाण कर रहा है कि कौन जाने लौटना फिर हो या नही, सपने म भी उसके रूप की झलक मिले या नही, ऐसी खबर सुनकर नायिका का "झमाना", मुरझा जाना, घबराहट, भय, आशका एव व्यथा से भर कर किंकर्तव्यविमूढ हो जाना, स्वाभाविक ही है।

नायिका उठती है, फिर मन मार कर बैठ जाती है, जैसे अपना सब कुछ हार गया हो, अवसन्न हो जाता है। पर प्रिय के जाते समय का लोकाचार तो करना ही होगा, उसे प्रणाम कर विदा भी तो करनी होगी। प्रिय को प्रणत भाव से विदा

[1] मिथिला गीत सग्रह प्रथम भाग, पृ० २६।

करने के लिए उनके समक्ष नमन करने के हेतु वह उद्यत होती है। उसे आरती की सामग्रियाँ लेकर, मंगल-तिलक करने को जाना था, पर अपनी अवसन्नता की मनस्थिति में वह एक हाथ में उबटन और एक हाथ में तेल उठा लेती है। इसे जडता कहे, प्रमाद कहे, घबराहट एवं प्रिय-प्रयाण की आकस्मिक खबर सुनकर स्तब्ध हो जाने की स्थिति का यह स्वाभाविक परिचायक है। यों यात्रा के समय तेल का नाम लेना भी अशुभ माना जाता है, अतः नायिका के इस प्रमाद से भी अच्छा परिणाम निकल सकता है, शायद उसके प्रिय की यात्रा टल जाय, अशुभ दर्शन से। पर यह जान-बूझकर वह नहीं कर सकती है।

प्रस्तुत विरहगीत मे अकस्मात् पति के विदेश जाने की बात सुनकर प्रिया की चेष्टाओ का बडा ही सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है। जो भी है वह सहज, अनायास, मानो सब कुछ स्वयं ही हो रहा हो, शब्दो मे चित्रित घटनाक्रम आँखो के सामने सजीव बनकर कौंध जाता है। "चेहाना", "झमाना", "हार कर बैठ रहना", उठना, फिर बैठ जाना—ये सब स्वाभाविक चेष्टाएँ हैं, संचारी भाव तथा अनुभाव दोनों की मिली-जुली प्रदर्शिनी। भाव-शबलता के लिए यह पद अन्यतम है। कुछेक पंक्तियों मे एक सम्पूर्ण घटना को साकार कर दिया है कवि की कला ने।

प्रवत्स्यत्-पतिका का चित्रण करते हुए विद्यापति ने नायक के अपनी यात्रा को स्थगित करने का संकेत नहीं किया है। प्रवास-विरह का गाम्भीर्य उसमे नहीं रह सकता था। तब यह विप्रलंभ नहीं होकर विप्रलभ का आभास मात्र हो जाता। प्रवत्स्यत्-पतिका को यदि एक स्वतन्त्र अवस्था-नायिका माना जाय तो विद्यापति के उपर्युक्त दो पद उसके अन्यतम उदाहरण होंगे।

अवसित प्रवास-पतिका को किन्ही रसशास्त्रियों ने प्रोषितभर्तृका का एक भेद माना है। पर नायक के आगमन की सूचना पाकर नायिका का विरह दुःख भावी सुख-सपनों के पारावार मे विलीन हो जायगा। उसकी आँखो से आँसू भी टपकेंगे तो वे सन्तोष एवं सुख के होंगे, दुःख या व्यथा के नहीं।[1] विद्यापति के एक पद मे ऐसी नायिका के मनोभाव चित्रित है।[2]

विद्यापति के इस पद मे चित्रित नायिका सुदीर्घ विरह-अवधि के सीमान्त पर खडी है। जिस 'कान्ह' की प्रतीक्षा मे व्यथित-आकुलित वह इतने दिनो से प्राणहीन-सी हो रही थी, प्रकृति की सभी वस्तुएँ जिसके अभाव मे उसके लिए विपरीत हो रही थी, आज वह आनेवाला है। नायिका को विश्वास नहीं होता कि सचमुच उसके दुःख के दिन बीत गये, वह नायक को सामने पाकर भी उसे नहीं देख रही है। विछोह के लम्बे दिन और सूनी रातों की स्मृतियाँ—रो-रोकर आँखों मे रातें काटना, खुले केश

---

[1] श्रृङ्गार मंजरी, भूमिका—वी० राघवन्, पृ० ७८; श्रृङ्गार मंजरी, पृ० १७।
[2] मि० म० वि, ५७३, पृ० ३८१।

और वस्त्रो की सुधि नही करना—ये सब स्मृतियाँ आज उसकी आँखो के सामने आ-आकर उसे सालती है। मिलन के इस क्षण मे विरह की यादे उसके हृदय में भर रही है, नायिका का हृदय भरा-भरा-सा है। नायिका के हृदय की यह भाव-शवलता आगत्-पतिका को विप्रलभ श्रृंगार का एक आकर्षक पात्र बना देती है। विद्यापति के इस पद मे उसका जो चित्र प्रस्तुत है वह सचमुच अनूठा एव अप्रतिम है।

विरहिणी की आँखो की नीद भी कहाँ चली जाती है। पर जब कभी आँखें लगती है तो प्रवासी प्रियतम की एक झलक सपने मे भी उसे मिल जाय इसको भी विरहिणी अपना परम सौभाग्य मानती है। विद्यापति ने प्रवासी की प्रिया की ऐसी कुछ स्वप्नानुभूति के चित्र एकाधिक पदो म प्रस्तुत किय हैं।[१]

स्वप्न का यह मिलन होता है बडा ही विदग्ध। युग-युग के तृषित तन-मन प्रियतम मे समा जाने को व्याकुल हो जाते हैं। प्रिय का शीतल स्पर्श अग-अग का ताप मिटाने लगता है, तभी आँखे खुल जाती हैं और वियोगिनी पुन अपने विरह पारावार मे डूबने-उतराने लगती है। अपनी सूनी सेज, सूना घर और सूना जीवन देखकर विलख उठती है—

का लागि नीन्द भागलि विहि मोर। न भेले सुरत सुख लागल भोर॥
मालति पाओल रसिक भमरा। भेल वियोग करम दोस मोरा॥
निधन पाओल धन अनेक जतने। आँचर सयँ खसि पलल रतने॥

रात बीती। सवेरा हुआ। मालती ने अपना प्रिय मधुकर पाया। पर नायिका का फूटा भाग्य—उसके लिए सवेरा विरह-दश से भरा हुआ एक लम्बे सतापकारी दिन का सन्देश लेकर आया। निर्धन वह, कितने यत्न करके अपना खोया हुआ धन पा सकी थी (बडी मुश्किल से आँखें लगी थी नायिका की, आँखें लगते ही प्रिय की एक झलक उसने पायी सपने मे, पर क्षण भर मे ही आँखें खुल गयी, सपना टूट गया और मानो आँचल मे बँधा हुआ रतन कही गिरकर खो गया। विरहिणी की यह व्यथा-सकुल वाणी बरबस आँखो को सजल कर देती है।

विद्यापति ने विप्रलभ श्रृङ्गार के अनेक सजल गीत लिखे हैं। प्रवास विरह के मर्मग्राही गीत उनके काव्य के श्रृङ्गार हैं। प्रवास-विरह का कोई भी पक्ष नही जिसे उन्होंने अछूता छोडा हो। विस्तार भय से उपर्युक्त कतिपय उदाहरणो के साथ ही इस प्रसग को समाप्त किया जाता है।

मि० म० पदावली के ७१९–५७ सख्यक पद उनके विरहकाव्य मे एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके ये पद केवल बगाल म प्राप्त आकर पोथियो से सकलित हैं, ये वहाँ की वैष्णव पदावलियो से सगृहीत किये गये है। फलत इन पर वैष्णवरस की रजना तथा बँगला भाषा एव शैली के प्रभाव यत्र-तत्र परिलक्षित होगे। सभव है

---

[१] मि० म० वि०, ५७०, ५७१, ५७२, पृ० ३८०–८१।

इनमे से एकाधिक पदो की प्रामाणिकता असदिग्ध नही हो। पर विरह-काव्य की दृष्टि से ये अनमोल है, इसमे सन्देह नही।

विप्रलभ शृङ्गार का चौथा और अन्तिम उपभेद करुण विरह है। रसशास्त्रियों के अनुसार नायक या नायिका की मृत्यु का आभास होने पर करुण-विरह होता है।[1] यहाँ मृत्यु का आभास मात्र होना चाहिए। सचमुच मे मृत्यु होने पर शोक उमड पडेगा अत वह करुण रस का क्षेत्र होगा, न कि शृङ्गार का। करुण-विरह के औचित्य पर रसशास्त्र के आचार्यों मे एकमत नही। 'शृङ्गार-तिलकम्' के प्रणेता रुद्रभट्ट ने भी इस पर विवेचन किया है।[2] साहित्य-दर्पणकार के अनुसार जहाँ किसी दैवी कारण से मृतक नायक या नायिका का पुन जीवित हो उठना सभावित हो वहाँ करुण-विरह कहा जा सकता है। किन्ही के मतानुसार 'उत्तररामचरितम्' मे निर्वासनोपरान्त वाल्मीकि आश्रम मे सीता का विरह करुण विरह ही है, पर अन्य आचार्य उसे करुण ही मानते है। लौकिक शृङ्गार काव्य मे करुण विरह के उपयुक्त स्थिति मुश्किल से ही आ सकती है। विद्यापति ने रसशास्त्र के आचार्यो द्वारा प्रतिपादित करुण-विरह का चित्रण नही किया है।

पर विद्यापति के काव्य मे करुणामिश्रित विरह के अनक मर्मस्पर्शी उदाहरण मिलेंगे। "विद्यापति के काव्य म नायिकाभेद" शीर्षक प्रकरण म हमन उपेक्षिता या परित्यक्ता नायिका की चर्चा की है। उस क्रम मे हमने देखा है कि इस नायिका की अवस्था कितनी करुणोत्पादक होती है। साथ ही नायक के प्रति अनन्य प्रेम रहने से शृङ्गार रस के क्षेत्र से उसे निष्कासित भी नही किया जा सकता। नायक अभी भी उसके लिए प्रेम का आलम्बन हाता है। वसन्त, वर्षा आदि उसके हृदय को रागोद्दीप्त करते हैं। मदन-शर से वह आहत होती है। पर नायक द्वारा पूर्णतया उपेक्षिता, विस्मृता किंवा परित्यक्ता होने के कारण उसके हृदय मे निराशा अथवा आर्त्तता भरी होती है। इस प्रकार एक ओर वह शृङ्गार का आश्रय है, दूसरी ओर करुणा की सजीव प्रतिमा। उसके विरह-गीत मे नारी हृदय के सर्वसमर्पणकारी प्रेम का उज्ज्वल रूप व्यक्त होता है, साथ ही प्रिय द्वारा परित्यक्ता नारी के हृदय की करुण रागिनी भी सुन पडती है। उसका विरह प्रिय-प्रवासजन्य नही। नायक एक ही नगर, बहुधा एक ही भवन मे रहता हुआ भी उसके लिए जैसे नही हो। किसी भी तरह उसे वह पुन प्राप्त कर सकेगी, इसकी आशा भी टूट चुकी होती है। यौवन ज्वार के उतरने पर वह स्वय भी अनुभव करने लगती है—"वारि बिहुन सर केओ नहि पूछ"। नारी के लिए

---

[1] यत्रैकस्मिन् विपन्ने अन्यो मृतकल्प· अपि तद्गतम्।
नायकः प्रलपेत् प्रेम्ण करुणा असो स्मृतो यथा॥
—शृङ्गारतिलकम्, २/६०, काव्यमाला, गुच्छक तीन, पृ० १४१।

[2] वही, पृ० १४२।

यह अत्यन्त कारुणिक स्थिति होती है। विद्यापति के कई पदो मे इसके मर्मस्पर्शी चित्र मिलेंगे।[1]

सभोग शृङ्गार

विद्यापति के काव्य मे सभोग शृगार के बडे ही मनोहर चित्र मिलते हैं। नायिका का सौन्दर्य-वर्णन करने मे वे अद्वितीय है। यौवन की देहली पर खडी नायिका के मनोभावो का चित्रण भी उन्होने बडी ही सहृदयता किंवा रसिकता के साथ किया है। फिर नायक-नायिका के हृदय मे नवाकुरित प्रेम, प्रथम मिलन की तैयारी, मिलन, नायिका विभ्रम अभिसार, प्रणय-मान, पुनर्मिलन आदि के एक-से-एक सजीव चित्रो से विद्यापति ने अपने कला-मन्दिर को सजाया है। विद्यापति के सभोग शृगार के कुछ पद बगाल के वैष्णवो के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुए। उनके जिन पदो को सुनकर या गाते हुए महाप्रभु चैतन्य तन्मय हो जाते थे उनमे दो ऐसे ही पद हैं। मिथिला मे भी विद्यापति की भणिता के साथ कई लोकगीत ग्रामीण महिलाओ मे अत्यधिक प्रचलित है। इससे उनके सभोग शृगार के गीतिपदो की व्यापक लोकप्रियता का सकेत मिलता है, साथ ही उनकी सजीवता एव भाव प्रवणता भी ध्वनित होती है।

दिव्य या दिव्यादिव्य नायक-नायिका के सौन्दर्य वर्णन मे नख शिख तथा लौकिक नायक-नायिका मे शिख-नख पद्धति का अनुसरण किया जाता है। विद्यापति ने दोनो पद्धतियाँ अपनायी हैं। राधा एव कृष्ण औपचारिक रूप से यहाँ नायिका तथा नायक के रूप मे चित्रित किये गये है। राधा के सौन्दर्य वर्णन मे कवि ने लौकिक नायिका की अगछवि तथा सौन्दर्य प्रस्तुत किया है, पर नायक के रूप मे कृष्ण की अग-कान्ति, परिधान तथा रूप-सौन्दर्य वर्णित है—

> 'नील कलेवर, पीत वसन धर चन्दन तिलक धवला।
> सामर मेघ सौदामिनी मण्डित तथिहि उदित ससिकला॥"[2]

नील वर्ण, पीत वसन और चन्दन-तिलक—श्याम का सलोना रूप मध्यकालीन शृगार एव भक्ति-काव्य का चिरपरिचित नायक रूप है। अप्रस्तुतयोजना भी चिर-परिचित ही है। चन्दन तिलक की उपमा शशिकला से देकर विद्युतरेखा और शशि-कला का एकत्रीकरण—यह विशेष चमत्कारपूर्ण है।

दो और पदो मे कृष्ण का सौन्दर्य वर्णित है—

> कि कहब हे सखि कानुक रूप। के पतियायब सपन सरूप।
> अभिनव जलधर सुन्दर देह। पीत वसन, सौदामिनी रेह॥
> सामर झामर कुटिलहि केस। काजरे साजल मदन सुवेस॥

---

[1] मि० म० वि०, ४०२, ४०८, ४१३-१४, ४३६-४०, ४५६-६० आदि।

[2] वही, ३५, पृ० ३२।

जातकि केतकि कुसुम सुवास । फुल सर मनमय तेजल तरास ।
विद्यापति कह कि कहव आर । सुनल विहल विहि मदन भंडार ॥
—मि० म० वि०, ६३५

कृष्ण का स्वरूप अवर्णनीय है, स्वप्न-प्रतिमा के समान—इसे अपने एक अन्य पद मे भी कवि ने दुहराया है—

"ए सखि पेखल एक अपरूप । सुनइत मानवि सपन सरूप ।।"
—मि० म० वि, ६३६

उमडती मेघमालाओ की तरह श्याम वर्ण, उस पर विद्यु त-शिखा की तरह पीत परिधान, मस्तक पर काले कु चित केशकलाप—यह है कृष्ण के स्वरूप का रेखाचित्र ।

पर कवि ने केवल अगछवि का ही वर्णन करके प्रसग को समाप्त नही कर दिया है । सौन्दर्य के साथ सौरभ—सोना मे सुगन्ध 'जातकि केतकी'—सद्य फूले हुए क्योडा की-सी सुरभि—जिधर से भी कृष्ण निकलते हैं, वातावरण उस नैसर्गिक सौरभ से सिक्त हो जाता है । अन्त म कवि ने इस अलौकिक रूप-प्रतिमा का प्रभाव देखनेवाला के हृदय पर कैसा पडता है इसका भी सकेत बडी खूबी के साथ वर्णित किया है । कृष्ण का यह रूप सद्य मनमोहन है, नायिका उसकी एक झलक पाकर ही तन-प्राण से उस पर न्योछावर हो जाती है, पचशायक को अपना तूणीर खाली नही करना पडता ।

विद्यापति नायक या नायिका का सौन्दर्य-वर्णन करते समय उसकी प्रभविष्णुता पर अधिक ध्यान देते हैं । अग-प्रत्यग का सौन्दर्य-चित्रण कदाचित् इसी हेतु वे अधिक नही करते । जिन एकाधिक पदो मे नखशिख पद्धति पूरी तरह अपनायी गयी है वे अलकृत वर्णन परम्परा के उदाहरण के रूप मे अधिक प्रतीत होते हैं ।[1]

अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से इन पदो मे कवि की मौलिक सूझ हो ऐसा नही दीखता पर हाथ-पैर के नखो के लिए चाँद की माला ('कमल जुगल पर चाँदक माला' तथा 'साखासिखर निसाकर पाँति') किचित् अभिनव कल्पना अवश्य जान पडेगी । इनका महत्व है शिल्प की दृष्टि से । रूपकातिशयोक्ति अलकार के इतने उपयुक्त तथा सागोपाग उदाहरण बहुत कम ही मिलेंगे । कृष्ण के नील वर्ण, पीले वस्त्र के साथ मस्तक पर मोरपख का भी सकेत कवि ने इस पद मे किया है जो विद्यापति द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण के स्वरूप के लिए विशेष महत्वपूर्ण है । वैष्णव साहित्य मे कृष्ण सर्वत्र 'मोर पखधारी' है, पर विद्यापति कृष्ण के मोरपख का उल्लेख करना प्राय सर्वत्र ही भूल जाते हैं । इतना ही नही, कृष्ण की अभिन्न सहचरी वशी की चर्चा भी उनके एकाधिक पदो मे ही

[1] मि० म० वि०, ६३६, पृ० ४२१ ।

मिलती है। इस पद मे भी वशी का उल्लेख नही है। अत मोरपख से आभूषित केश—प्रस्तुत पद मे इसका उल्लेख इसके महत्त्व को बढा देता है।

विद्यापति की कला सबसे अधिक निखरी है नायिका के सौन्दर्य-वर्णन मे। किशोरी तथा तरुणी के अगविन्यास एव सौष्ठव का चित्रण करने मे लोकभाषा का शायद ही कोई कवि विद्यापति की समता कर सके। एक एक अग के लिए वे एक से-एक अभिनव उपमान की योजना करते चलते हैं। विद्यापति की नायिका जैसे अनेक चित्रपदा की समष्टि[1] हो।

यद्यपि विद्यापति द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुत उनके पूर्ववर्ती प्राय १५-१६ सौ वर्षो की काव्य परम्परा की ही देन है कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर' मे ये उन्हे एकत्र ही मिल गये होगे फिर भी काव्य म 'गढिया' से कम महत्त्व 'जडिया' का नहीं हुआ करता।

सौन्दर्य-वर्णन के लिए वे हमेशा उपमानो का ही सहारा नहीं लेते, कभी सीधे उसकी अपूर्वता[2] का उल्लेख करके उसकी अप्रतिम विशिष्टता बता देते है कभी उसके सहज सौन्दर्य पर रीझ कर कहते हैं—

सहजहि आनन सुन्दर रे भौंह सुरेखल आँखि।

विद्यापति सौन्दर्य का सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं। नायक या नायिका के एक ही अग पर अनेकानेक उपमान प्रस्तुत करते उन्हें हम नही देखते (जैसा कि सूर आदि कवियो ने किया है)। सम्पूर्ण पद मे एक ही अग की छवि का वर्णन उन्होने नही किया है। उनके पदो मे नायिका अपने समस्त सौन्दर्य लावण्य को लेकर चित्रित मिलती है। जिस कवि ने 'ससाररत्न मृगशावकाक्षी' कभी लिखा था, वह तरुणी की आँखो पर दस पाँच पद भी नही लिखे, यह किंचित् विस्मय की बात अवश्य जान पडती है। पर विद्यापति के व्यक्तित्व तथा उनके काव्य की प्रकृति ही इसके प्रतिकूल पडती थी। कवि ने समग्र जीवन को ही सश्लिष्ट रूप म देखा था। अन्यथा 'धम्मसहित सिगार रस खेमा सतुएओ सग' का मन्त्रोच्चार वह नही करता।

फिर भी अपने जीवन के किन्ही सोहाग-अनुराग पूर्ण वर्षों मे कवि ने मनोजन्मा देवता पर ही अपने भाव सुमनो की माला सबसे अधिक चढायी हो, ऐसी कल्पना भी उसके गीति-साहित्य के कुछ अश को देखकर होती है। इस अवधि मे उसे तरुणी ही त्रिभुवनसार जान पडती होगी और 'वदरिफल' से 'दीजक पोर' तक का लेखाजोखा, निरीक्षण-परीक्षण करने मे उसकी सारी कल्पना क्रियाशील रही होगी ऐसा कुछ क्षणो

---

[1] बग भाषा ओ साहित्य—दिनेशचन्द्र सेन, पृ० १४५।

[2] (क) ए सखि देखल एक अपरूप।
(ख) माधव अपुरुब देखल रामा।
(ग) सजनि अकथ कही नहि जाय।
(घ) अपुरुब मनोभव मगल तिभुवन विजयी माला।

के लिए मान लेने का जी करता है। विद्यापति के प्रेम-काव्य मे नारी के रूप-यौवन को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि किन्ही समीक्षको ने उनके काव्य मे वर्णित प्रेम को रूपज प्रेम की सज्ञा प्रदान की है।[1]

तरुणी का सौन्दर्य वर्णन करते समय विद्यापति की भाषा भी अनेक काव्यालकारों से अभिमण्डित होकर जडाऊ गहने की तरह जगमगा उठती है। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति अनन्वय, अपह्नुति विशेषोक्ति, व्यतिरेक आदि कितने ही अलकार एक एक पद मे गुम्फित होकर उसे अलकृत काव्य का अनूठा नमूना बना देते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद—

साजनि अपुरुप पेखल रामा।
कनकलता अवलम्बन ऊअल हरिनहीन हिमधामा॥
नयन नलिन दओ अञ्जने रजइ भौंह विभग विलासा॥
चकित चकोर जोर विधि बान्धल केवल काजर पासा॥
गिरिवर-गरुअ पयोधर-परसित गिम गज-मोतिम-हारा॥
कामकम्बु भरि कनक-सम्भु परि ढारत सुरधुनि धारा॥
पयसि पयागे जाग सत जागइ सोइ पावए बहुभागी॥
विद्यापति कह गोकुल-नायक गोपीजन अनुरागी॥[2]

प्रथम पक्ति मे नायिका की स्वर्ण वर्णी अगकान्ति तथा निष्कलक चाँद के समान मुखमण्डल का उल्लेख करके कवि ने उसके अजन-रजित नयन-कमल एव भौंहो की शोभा का सकेत किया है। तरुणी के दो नयन मानो चकोरयुग्म के समान है जिन्हें काजल-रेखा के बन्धन मे बाँध कर रखा गया है। गले मे गजमुक्ता की माला है जो उत्तुग कुच-युग्म का स्पर्श कर रही है—पर बात यही नही खत्म हो जाती है, नायिका के गले मे गजमुक्ताहार स्तनो पर भूलता हुआ ऐसा जान पडता है मानो कामदेव शख मे भर-भर कर गगाजल की धारा कनक-शम्भु पर डाल रहा हो।

विद्यापति की नायिका मानो सौन्दर्य और शोभा की खान है जहाँ जहाँ वह चरण रखती है, वहाँ कमल खिल उठते हैं, उसके अग की चमक विद्युल्लता-तरग बनकर कौंध जाती है, जिधर वह देखती है उधर कमल की शोभा झलमला उठती है, वह हँसती है तो मानो अमृत बरस पडता है उसके कुटिल कटाक्ष कामदेव के लाख-लाख शरप्रहार की तरह घायल कर देते हैं।[3]

---

[1] "चण्डीदासेर प्रेम आध्यात्मिक, विद्यापतिर रूपज।"
—वैष्णव रस साहित्य, खगेन्द्रनाथ मित्र।

[2] मि० म० वि०, ६२६, पृ० ४१७।

[3] वही ६२५, पृ० ४१३।

विद्यापति को नायिका का नखशिख वर्णन करने में अधिक अभिरुचि नहीं। नायिका के नखशिख वर्णन के चार पद ही मिलते है।[१] इनमे प्रथम तीन मे नख से शिख तक का तथा अतिम मे शिख से नख तक का सौन्दर्य वणन किया गया है। प्रथम तीन मे रूपकातिशयोक्ति प्रधान है, यद्यपि एकाधिक अन्य अलकार भी उसकी शोभा बढा रहे है। चौथे पद में कवि ने उत्प्रेक्षा का ही सहारा लिया है। इस पद मे नायिका के स्वरमाधुर्य का भी कवि ने उल्लेख किया है—

मत्त कोकिल वेणु वीणावाद तिभुवन भास।
जनि मधुर हाक पसाहि आनन करए वचन विलास॥

इन पदो मे विशेषत, एव अन्यत्र सामान्यत कवि ने परम्परा प्राप्त कवि-प्रसिद्धियो तथा काव्यरूढियो का ही सहारा लिया है, इस प्रकार वस्तु विधान की दृष्टि से कोई विशेष मौलिकता इन प्रसगो में नही दीख पडेगी। मस्कृत साहित्य की चित्रप्रधान प्रणाली का बहुत-कुछ अनुसरण इन पदो मे किया गया है।[२] फिर भी शब्दचयन, छन्दविन्यास, भावयोजना तथा नूतन सौन्दर्यग्राहिणी दृष्टि के योग से विद्यापति के ये पद कई शतियो तक असख्य पाठको को रसमग्न करते रहे है। एक नई भाषा मे रूपान्तरित होने से जो नवीनता आ गयी है वह भी कम आकर्षक नही। कवि ने पूर्ववर्ती काव्य से बिम्ब ग्रहण करते समय भी अपनी सौन्दर्यग्राहिणी दृष्टि, कल्पना तथा प्रतिभा के जादुई स्पर्श से एक अभिनव सौन्दर्यलोक की सृष्टि कर दी है।

विद्यापति की नायिका सगमरमर की बनी वीनस की मूर्तियों की तरह मौन एव मूक नही। कवि ने अपने गीतो मे केवल सौन्दर्य की प्रदर्शिनी नही सजायी है बल्कि उसे सजीव बनाकर रूपायित कर दिया है। विद्यापति के पदो मे चित्रित नायिका अपनी अगभगो से, कोई एक सलज्ज या मुखर चेष्टा से, अपनी सहज गजगति या दृष्टिनिक्षेप से हमेशा सजीव बनी रहती है। कवि की सश्लिष्ट सौन्दर्य-चित्रण की पद्धति की यह सबसे बडी सफलता है। विद्यापति नायिका की अग-छवि, उसके लावण्य या सुकुमार चेष्टाओ का विच्छिन्न या खण्डित करके नही चित्रित करते। इसीलिए उन्हे नायिका के अग प्रत्यग का पृथक् वर्णन करने का आग्रह नही। वस्तुत उनकी तूलिका अग प्रत्यग पर ठहरती भी नही, यद्यपि कुछ अगो के लिए कवि को विशेष मोह है, जिनका चित्रण करने मे उसने कही मितव्ययता नही बरती है।

सौन्दर्य चित्रण सम्बन्धी पद प्रारम्भ करने का विद्यापति का अपना एक विशेष तरीका है। उनके इन पदो की पहली पक्ति मे विस्मय, उल्लास और प्रशसासूचक कुछ ऐसे शब्द एव भाव की योजना रहती है जो अकस्मात् पाठक को किसी अपूर्व

---

१ मि० म० वि०, २५, २६, २७, ३०।
२ बागला साहित्येर कथा—श्रीकुमार बद्योपाध्याय, पृ० ५२।

अनुभूति के लिए तैयार कर देते है । पाठक को लगता है जैसे उसके सामने कोई 'अपरूप' कोई 'अपूरब' दृश्य-पटी प्रस्तुत हो रही है ।[1]

नायिका का रूपविधान करते समय विद्यापति कही तो प्रसिद्ध अप्रस्तुतो के सहारे एक सौन्दर्य-प्रतिमा गढते है, जैसे—

हरिण इन्दु अरविन्द करिणी हेम पिक बूझल अनुमानी ।[2]

कही नायिका की चेष्टाओ का सकेत करते हुए उसके सौन्दर्य की व्यजना करते है । कवि ने नायिका के नेत्र, बाहु, कटि, चरण आदि के कार्य-व्यापार बडी ही सहृदयता के साथ वर्णित किये है[3], ऐसे स्थलो पर उनकी दृष्टि से नायिका की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चेष्टाएँ भी नही छूटी हैं—

पथगति पेखनु राधा ।
तखनुक भाव परान परिपीडलि रहल कुमुदनिधि साधा ।।
ननुआ नयन नलिनि जनु अनुपम बंक निहारई थोरा ।
जनि सृंखल मे खगवर बांधल दीठि नुकाएल मोरा ।।
आध बदन-ससि विहँसि देखाओलि आध पीहलि निअ बाहू ।
किछु एक भाग बलाहक झाँपल, किछुक गरासल राहू ।।[4]

नायिका की शृंगार चेष्टाएँ, उसके अनिद्य सुन्दर अगो की चारुता, नायक के हृदय पर उनका प्रभाव—एक साथ ही इन पक्तियो मे वर्णित हैं । इनके साथ ही कवि की अद्भुत अलकार योजना भी दर्शनीय है ।

शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण करने पर इन प्रसगो का महत्त्व और चमत्कार और भी अधिक बढ जाता है । उपर्युक्त उद्धरण मे भाव, हाव, हेला तीनो का विधान कवि ने बडी ही कलात्मकता के साथ किया है । हाव—नायिका की शृगार-चेष्टाओ का विधान करने मे विद्यापति अद्वितीय हैं—

(१) सजनी भल कए पेखन न भेल ।
मेघमाला सयँ तडितलता जनु हृदय सेल दय गेल ।।

---

[1] (क) सुधामुखि को विहि निरमल बाला ।
(ख) माधव कि कहब सुन्दरि रूपे ।
(ग) कि आरे नवजौवन अभिरामा ।
(घ) सहजहि आनन सुन्दर रे ।
(ङ) ए सखि पेखल एक अपरूप ।
(च) सजनि अपुरब देखल रामा ।

[2] मि० म० वि०, २१६ ।

[3] विद्यापति—सूर्यबलीसिंह, पृ० ३६ ।

[4] मि० म० वि, ६२७, पृ० ४१५ ।

आध आँचर खसि, आध बदन हसि आधहि नयन तरग ।
आध उरज हेरि, आध आँचर भरि तब धरि दगधे अनग ॥[1]

(ii) गेलि कामिनी गजहु गामिनि, विहसि पलटि निहारि ।
इन्द्रजालक कुसुम-सायक कुहुकि मेलि वर नारि ॥
जोरि भुजयुग मोरि वेढल ततहि बदन सुछन्द ।
दाम चम्पक काम पूजल जइसे सारद चन्द ॥
उरहि अंचल झापि चचल आध पयोधर हेरु ।
पवन - पराभव सरद-घन जनु बेकत कएल सुमेरु ॥
पुनहि दरसन जीव जुडायब टुटव विरहक ओर ।
चरन जावक हृदय पावक दहइ सब अग मोर ॥[2]

इन उद्धरणो मे हम देखते है कि किस प्रकार कवि नायिका का रूप-चित्रण करते हुए उसकी शृगार चेष्टाओ का भी वर्णन करता चलता है। नायिका के केवल अगज अलकारा का ही वर्णन विद्यापति ने नही किया है, उसके शृगार-प्रसाधन, परिधान आदि का क्या प्रभाव नायक पर पडता है इसकी भी सुकुमार व्यजना की है।

इस प्रसग मे विद्यापति द्वारा वर्णित किशोरवयस्का बाला की स्वाभाविक चेष्टाओ, यौवनागम-जन्य विकार तथा कायिक एव मानसिक परिवर्तनो ने अनेक रसिक समीक्षको को विशेष रूप से आकृष्ट किया। वय सधि की नायिका का चित्रण शृगार काव्य मे लोकप्रिय रहा है। गौडीय वैष्णव पदकर्त्ताओ का भी यह प्रिय विषय रहा है। विद्यापति के दशाधिक[3] पदो मे यौवनागम जन्य नायिका के शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनो के सजीव चित्र मिलेंगे। इनमें कुछ पक्तियाँ, जैसे—

किछु किछु उतपति अकुर बेल ।
चरण चपल गति लोचन लेल ॥

आदि लोकमानस मे बस गयी है। इन पदो में कवि ने किशोरी की बालसुलभ चेष्टाओ तथा यौवनागम-जन्य विकारो के सगम का मनोहर चित्रण किया है। किशोरी का तन-मन मानो शैशव और यौवन का सग्राम-स्थल बन गया है—

सैसव जौवन उपजल वाद ।
केओ न मानए जय-अवसाद ॥

इस सग्राम मे नायिका के तन-मन म सर्वत्र परिवर्तन हो रहे है, कही भी स्थिरता नहीं रह गयी है, चरणो की चचलता नयनो ने ले ली, कटि क्षीण हो गयी, वक्ष और नितम्ब को गौरव मिला, कभी धूल मे खेलनेवाली अब रसकथाओ मे रुचि लेने लगी, केश

---

1 मि० म० वि०, ६३०, पृ० ४१८।
2 वही, ६२८, पृ० ४१६।
3 वही, ६१६-२३, पृ० ४०७-१२।

कभी बँधे रहते हैं, कभी खुलकर बिखर जाते है। चचलता—कवियो की कामिनी की सहज विशेषता—किशोरी के तन-मन मे समा रही है—

चंचल चरन चित चंचल भान।
जागल मनसिज मुदित मयान॥

किशोरावस्था की स्वाभाविक चेष्टाओ तथा शारीरिक परिवर्तनो को कवि ने इन पदो मे रूपायित किया है। इसकी सुदीर्घ परम्परा भी कवि के सम्मुख थी।[1] परवर्ती रीतियुग के कवियो ने भी वय सधि के चित्रण मे अत्यधिक अभिरुचि दिखायी। जिन दिनो कवि 'वर जुवति तिहुअन सार' तथा मृगशावकाक्षी को 'ससार रत्न' मानता होगा, उसके उन्ही दिनो की रचनाएँ ये पद होगी।

शैली की दृष्टि से इन पदो की विशेषता यह है कि इनमे कवि ने अलकृत भाषा का आश्रय नही लिया है। यहाँ विशुद्ध रसिकता है, न तो शब्दशिल्पी का चामत्कारिक स्पर्श और न मर्मानुभूतियों की सूक्ष्म व्यजना। पर विद्यापति के सौन्दर्य-चित्रण का एक महत्त्वपूर्ण अग तो इसे माना ही जाता है।

विद्यापति ने नायक या नायिका का सौन्दर्य-चित्रण करते हुए एकाधिक पदो मे उसे 'अपरूप' कहा है। 'अपरूप' शब्द से किसी रहस्यात्मक सकेत की व्यजना होती है,[2] ऐसा अनुमान ठीक नही जान पडता। 'अपरूप' अपूर्व का ही मैथिली रूपान्तर (अपूर्व-अपूरव-अपुरुव-अपरूप) है, विद्यापति ने एकाधिक पदो मे 'अपूरव' शब्द का भी उसी अर्थ तथा प्रसंग मे व्यवहार किया है जिस अर्थ तथा प्रसग मे उन्होने 'अपरूप' का प्रयोग किया है। विद्यापति रहस्यात्मक शृंगार के कवि नही। उनके पदो मे वर्णित नायिका पार्थिव है, वह वैष्णव साहित्य की राधा भी नही। वह कहती है—

सगर संसारक सारे। अछए सुरत रस हमर पसारे॥[3]

उसके 'मुरारि' तभी तक उसका आदर मान करते है जब तक उसके पास यौवन रूपी रत्न रहता है, और यह 'जौवन-रत्न तीन-चार दिनो का ही अतिथि है, स्थायी नही—

जौवन-रतन अछल दिन चारि। ताबे से आदर कएल मुरारि॥

अत विद्यापति की नायिका (उसका औपचारिक नाम राधा ही क्यो न हो) का जायसी की पदमावती से कोई साम्य नही।

विद्यापति की नायिका अद्वितीय सुन्दरी है, उसे देखकर किसी को भी ऐसा अनुभव होता है कि 'अपूर्व' है यह रूप, ऐसा रूप जैसा कि उसने पहले कभी नही देखा

---

[1] तुलनीय— मध्यस्य प्रथिमानमेति जघन वक्षोजयोर्मन्दता।
दूरं यात्युदरच्च रोमलतिका नेत्रार्जवं धावति॥
कन्दर्पः परिवीक्ष्य नूतन मनोराज्यभिषिक्तं क्षण।
रगणीव परस्परं विदधते निलुण्ठनं सुभ्रुवः॥
—'साहित्यदर्पण'—विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद।

[2] विद्यापति—शिवप्रसादसिंह, पृ० १५१-५२।

[3] वि० रा० भा० प०, ६४, पृ० ८८।

था। नायक कृष्ण के प्रति नायिका को अनुरक्त करने के लिए दूती उसके सौन्दर्य को भी 'अपरुप' या अपूर्व ही बताती है। एक बात और, विद्यापति ने 'अपुरुब' या 'अपरूप' विशेषण का प्रयोग उन्ही पदो मे किया है जिनमे अत्यधिक अलकृत शैली मे (विशेषकर रूपकातिशयोक्ति) नायक या नायिका का नखशिख चित्रण किया गया है।

निष्कर्ष यह है कि विद्यापति ने नायक या नायिका का सौन्दर्य-वर्णन करते समय किसी तरह का रहस्यात्मक सकेत अथवा आध्यात्मिकता का आभास प्रस्तुत नही किया है।

विद्यापति ने एकाधिक पदो मे सद्य स्नाता का वर्णन किया है। नायिका के आभूषणो मे उसके गले की 'मोतिम माला', 'मणि माला' या 'गजमुक्ताहार' का उल्लेख करना वे शायद ही कभी भूलते। नखशिख के अन्तर्गत नायिका की भौंहो के सम्बन्ध मे एक उक्ति बडी ही मनोहर है—

सहजहि आनन सुन्दर रे, भौंह सुरेखलि आँखि।
मधुक मातल उडए न पावए तइअओ पसारए पाँखि ॥

आँखें मधुपान करके प्रमत्त बने भ्रमरयुग्म, भौंहे उनके खुले पख—बडी ही मनोहर कल्पना है कवि की। नायिका की नाभि, रोमराजि और त्रिवली को लेकर भी कई अभिनव कल्पनाएँ कवि ने प्रस्तुत की हैं। नायिका की गजगति का उल्लेख भी कवि को अत्यधिक रुचता है। 'कीर्त्तिपताका' की गोपियाँ भी गजगामिनी है—

चलन्त गोपकामिनी गजेन्द्रमत्तगामिनी।

नायिका के विभिन्न अवयवो मे सबसे अधिक उक्तियाँ उसकी आँखो तथा वक्ष के सम्बन्ध मे हैं। यद्यपि यहाँ भी कवि को अपने पूर्ववर्ती कवियो का ऋण स्वीकार करना पडेगा, पर उपादान अन्यत्र से लेकर भी उनको सजाने का ढग उसका अपना है।

जैसा कि वैष्णव-रस-साहित्य के मर्मी विद्वान् खगेन्द्रनाथ मित्र ने लिखा है, विद्यापति का प्रेम रूपज है। नायक-नायिका (कृष्ण और राधा के छद्म रूप मे ही क्यो न हो) एक-दूसरे के रूप-लावण्य पर आसक्त हैं। प्रथम दर्शन मे प्रेम के वे अन्यतम उदाहरण हैं। विद्यापति ने चण्डीदास या परवर्ती कवि तुलसीदास की तरह अपने राधा-कृष्ण मे जन्मजन्मान्तर के प्रेम का सकेत कही नही किया है। वस्तुत कवि ने ऐसा कोई सकेत नही किया है कि उसके कृष्ण और राधा के मध्य एक-दूसरे के रूप-यौवन के आकर्षण के अतिरिक्त और भी कोई सम्बन्ध-सूत्र है। गोपियो को पागल कर देने-वाली कृष्ण की वशी का उल्लेख विद्यापति के केवल तीन पदो मे ही मिलता है। उनमे भी केवल एक पद मे नायिका वशी की धुन सुनकर विकल होती चित्रित की गयी है। विद्यापति के प्रेमकाव्य मे दो धाराएँ स्पष्टत प्रवाहित है—एक धारा है विवाहित जीवन के दाम्पत्य प्रेम की (जो अपेक्षाकर क्षीण होती हुई भी गौण नही है), दूसरी धारा है परकीया प्रेम की (यहाँ अधिकतर पदो मे नायक तथा नायिका कृष्ण और राधा के औपचारिक रूप मे प्रस्तुत हैं)।

विवाहित दम्पति के बीच प्रेम किन परिस्थितियो मे तथा कैसे अंकुरित हुआ इसकी तलाश अनिवार्य नही, विद्यापति का सुप्रसिद्ध पद—

सुन्दरि चललिहुँ पहुँ घर ना।
जाइतहुँ लागु परम डर ना॥[1]

इस प्रेम का प्रारम्भ है, उसकी चरम परिणति नही। आज भी मिथिला मे विवाहिता कन्या को चतुर्थी की रात मे "कोहवर घर" मे ले जाती हुई उसकी सहेलियाँ यह गीत गाती है। विद्यापति का यह पद राधा-कृष्ण प्रसंग का पद नही, परकीया प्रेम के साथ इसकी सार्थकता ही नही है।

प्रेम-चित्रण करने के विभिन्न कवियो के अलग-अलग तरीके होते हैं। चण्डीदास ने बड़े ही विस्तार के साथ कृष्ण तथा राधा का एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट एवं अनुरक्त होने की कहानी वर्णित की है।[2] अन्यत्र कृष्ण की राधा के साथ पहली भेंट तथा विभिन्न स्थितियो एवं परिवेश मे एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त होने का रसमय आख्यान मिलता है। पर विद्यापति ने एक-दूसरे के रूप-यौवन के आकर्षण के अतिरिक्त उनके प्रेम की अन्य कोई भूमिका नही प्रस्तुत की है।

नायिका की मनमोहिनी छवि, उसकी शृंगार चेष्टाएँ नायक को मुग्ध कर लेती हैं। राह मे जाते हुए कभी वह उसे एक नजर देखता है, और उस पर तनमन से न्योछावर हो जाता है। नायिका भी इसी प्रकार राह मे आती-जाती कभी कृष्ण की एक झलक पाकर अपना हृदय खो बैठती है। फिर दोनो ओर से लगन जब कुछ गाढी हो जाती है तो विरह-ताप मे दग्ध दोनों की दशा मर्मान्तक होने लगती है, दूतियाँ दोनो के सन्देश एक दूसरे को पहुँचाती है। नायिका को अभिसार के लिए तैयार करती है। नायक-नायिका दोनों को प्रथम मिलन के लिए तैयार करने मे दूतियो का विशेष महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। कभी वे नायक को कहती हैं कि वह साहस से काम ले— 'भौंर भरे माजरि न भागई', कभी अधिक हठ नही करने की चेतावनी देती है, कभी नायिका विश्रंभन की सीख देती है—

गनइत मोतिम हारा। छले परसब कुचभारा॥

इसी तरह नायिका को भी अनेक युक्तियो, तर्क तथा मनुहारपूर्ण वचन मे नायक के पास चलने को तैयार करना उन्ही का काम है। अभिसार-पथ कठिन होता है, पर नायिका को उस पर चलना ही होता है। अभिसार वर्षा की काली अधियाली रातो मे, पूनो की उजियाली मे और कभी दिन मे भी होता है।

दूती नायिका को भी नायक का प्रेम मन्द नही हो, इसके लिए कभी प्रणय-यान करने के, कभी उसके भाव को उद्दीप्त करने के कुछ तरीके बताती हैं। कहती है·

गेल भाव जे पुनु पलटायए सेहो कलामति नारि।

---

[1] मि० म० वि०, ८६६, पृ० ५६७।

[2] बंगला साहित्येर कथा—श्रीकुमार वद्योपाध्याय, पृ० ८६—८६।

यह चोरी चोरी का प्रेम नैतिकता तथा कुल मर्यादा के मानदण्ड से चाहे गर्हित हो, पर विद्यापति की नायिका को दूती यही सीख देती है—

चोरिक प्रेम ससारेरि सार ।

नायक नायिका के इस मिलन-सन्दर्भ म प्रकृति भी कुछ योगदान करती है । ऋतुराज के उन्मादक वातावरण मे जब कोयल निरन्तर कूक रही हो रसाल की डालें मजरिया से लदी हो दक्खिन पवन' सुरभिसिक्त होकर वातावरण का रसार्द्र कर रहा हो, उस समय 'दुर्जय मानिनि मान' भी नही टिक पाता फिर प्रेमविह्वला नवीना यदि दूती के सकत पर प्रिय म मिलने चल देती हो ता इसमे आश्चर्य क्या ? इसी प्रकार पावस भी पचशायक के तीरो को प्रखरतर बना देता है ।

विद्यापति न नायक-नायिका के दाम्पत्य मिलन के चित्र दशाधिक पदो मे दिये है । यद्यपि कवि ने इन चित्रो की विवृति प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करके कुछ कम करने का प्रयत्न किया है, पर प्रेम-काव्य के भावप्रधान कवि, जैसे कि विद्यापति है यदि इन चित्रो का अकन नही भी करते तो उनके काव्य की गरिमा म कमी नही होती । वैसे सभोग शृगार के अन्तर्गत नायक-नायिका के कायिक मिलन के चित्रण की सुदीर्घ परम्परा भारतीय भाषाओ के काव्य मे चली आ रही है । केवल लौकिक प्रेम काव्य ही नही, राधाकृष्ण विषयक भागवत काव्य भी ऐसे चित्रो के बिना पूर्ण नहीं माना जाता रहा है ।

सभोग शृगार के अन्तर्गत विद्यापति ने वासकसज्जिका, उत्का, खडिता, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, आदि नायिकाओ के चित्रण किय हैं । पर ऐसे युग मे जहाँ "चोरी प्रेम ससारेरि सार" माना जाता हो, विप्रलब्धाओ एव उपेक्षिताओ की सख्या मे हमेशा वृद्धि होती होगी । साहसिका अभिसारिकाओ की कमी तो नही ही होगी । अत उनके गीतिपदो मे इनक चित्र बराबर मिलते है । सभोग शृङ्गार के अन्तर्गत अभिसारिका का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है ।

सभोग शृगार के अन्तर्गत विद्यापति ने एक और प्रसग प्रस्तुत किया है—वह है विरह की सुदीर्घ अवधि के उपरान्त मिलन का । शास्त्रीय दृष्टि से इसे हम आगत-पतिका या वासिकसज्जिका नायिका के चित्रण के अन्तर्गत भी रख सकते है, पर जिस आतुरता, भावोल्लास, विदग्धता एव उन्मादना के साथ नायिका इस प्रसग मे प्रिय मिलन की तैयारी करती चित्रित की गयी है वह सचमुच अपूर्व है । चैतन्य तथा उनके अनुयायियो ने इन पदो पर भागवत रजना चढाकर इनका महत्त्व और भी अधिक बढा दिया ।

विद्यापति द्वारा वर्णित सभोग शृगार की यह सक्षिप्त रूपरेखा है । कवि के पदो को विषय के अनुसार सजा देने पर कुछ ऐसा ही रेखाचित्र मिलेगा, पर विद्यापति, अन्य भाषाओ म चाहे उन्होने प्रबध ग्रन्थो की रचना को, मैथिली म आद्योपान्त गीतकार ही रहे । विद्यापति मुक्तक के कवि है । पता नहीं उन्होने किसी पूर्वापर सम्बन्ध

सूत्र मे ग्रथित अपने गीतिपद लिखे या उनके पदो की रचना मे कोई योजना भी कभी रही होगी या नही। यह तो अनुमानित है कि विद्यापति ने विभिन्न अवसरो पर विभिन्न रुचि, प्रकृति तथा वय के राजाओ को निवेदित करने के लिए भी अनेक पद लिखे होगे। ऐसी रचनाओ मे कोई क्रमबद्धता नही हो, यही अधिक सभव है।

विद्यापति के पदो को विषय के अनुसार क्रमबद्ध करके सजाने का आग्रह वैष्णव पद-सग्रहकर्ताओ को रहा है। उन्होने वैष्णव-रस-साहित्य की रूपरेखा के अनुसार कवि के पदो को सजाया है।

विद्यापति वर्णित संभोग शृंगार मे अभिसार

अभिसार का सभोग शृगार के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। पार्थिव प्रेम मे अभिसार प्रेम की उद्दामता का व्यजक है, भागवत या वैष्णव प्रेम मे प्रेम की अनन्यता तथा भक्त की कठिन साधना का। सस्कृत साहित्य की अभिसारिका को, क्योकि अधिकतर वह राजन्य वर्ग की होती थी, सामान्यत राजप्रासाद के विशाल प्रागण या उपवनो का ही सचरण करना पडता था। पर कालिदास ने मेघदूत मे उज्जयिनी की सडको पर अभिसारिका के टूटे हुए हार के मोतियो का निकीर्ण होना चित्रित किया है, जिससे कवि सुलभ अतिशयोक्ति का अश हटा देने पर भी सम्पन्न घरो की स्त्रियो का अभिसार-पथ भी महलो या उपवनो तक ही सीमित नही रहता था यह सकेत मिलता है।

विद्यापति के अभिसार-चित्र, सभी उनकी अपनी मौलिक उद्भावना नही, कतिपय पदो पर पूर्ववर्ती काव्य की छाया स्पष्ट दीख पडेगी। किन्तु अन्यत्र की तरह यहाँ भी कवि ने अन्यत्र से भाव ग्रहण करके उसे अभिनव रूप मे अपने गीतो मे मुखरित किया है। भाव चाहे जहाँ से लिये गये हो पर कवि की रचना पर उसकी कारयित्री प्रतिभा की अपनी छाप है, उसकी मर्मस्पर्शिता तथा प्रभविष्णुता कवि की अपनी देन है।

विद्यापति को बरसात की रात मे घोर अधियाली, वर्षा, बिजली की कडक, साँप-बिच्छुओ के डर की परवाह नही करके अभिसार-पथ मे जानेवाली नायिका का चित्रण अधिक रुचता है। उन्होने शुक्लाभिसारिका तथा दिवस-अभिसार का भी चित्रण किया है। अभिसार के कई पदो में अनूठा चमत्कार मिलेगा, जैसे निम्नाकित पद मे—

> कामिनि बवत बेकत जनु करिहह चौदिस होएत उजोरे।
> चान्दक भरमे अमिञ लालच बैठ कए जाएत चकोरे॥
> सुन्दरि तुरित चलहु अभिसारे।
> अवहि उगत ससि तिमिरे तेजब निसि उसरत मदन पसारे॥
> मधुरे बचन भरमहु जनु बाजह सौरभे जानत आने।
> पंकज लोभे भमरे भमि आओब करब अधर मधुपाने॥

तोहें रसकामिनि मधु के जामिनि गेल चहिय पिय सेवे।
राजा शिवसिंह रूपनरायन कवि अभिनव जयदेवे ॥[१]

दूती नायिका को प्रिय म मिलन सकेतस्थल पर जान की प्रेरणा देती हुई उसके सौन्दर्य की बडाई करती है उस मधुयामिनी म प्रिय का सवा म जाना चाहिए यह कह कर उसक प्रेम तथा कर्तव्य भावना को जागृत करती है। चन्द्रमा उदित होने हो वाला है फिर तो चांदनी क प्रकाश म उसका जाना कठिन होगा अत वह अविलम्ब चल पडे। कुछ 'हा ना' कहने का भी अवसर वह नायिका को नही देना चाहती है क्योकि यदि वह कुछ बोलन क लिए मुँह खोलती है तो भौरे उसके मुख के सुवास से उसकी ओर टूट पडेंगे तथा उसके अधरो का मधुपान करने लगेंगे। अपने मुँह से उसे अवगुण्ठन भी नही उठाना है क्योकि उसके चन्द्रमुख को देखकर चकोर को चाद का ही भ्रम होगा और वह सुधापान की आशा से उसके मुँह पर बैठने लगेगा। इस प्रकार बडे ही कौशल के साथ दूती नायिका को संकेतस्थल पर चलने के लिए तैयार करने में लगी है।

ऐसे ही भाव एक अन्य मे भी है

प्रथम प्रहर निसि जाउ। निअ निअ मन्दिर सुजन समाउ ॥
तम मदिरा पिबि मन्दा। अबहि माति उगि आएत चन्दा ॥
सुन्दरि चलु अभिसारे। रस सिंगार ससारक सारे ॥
ओतए अछए पिया आसे। एतए बेढ़ल गिम मनमथ पासे ॥
साहसे साहिअ असाधे। तिला एक कठिन पहिल अपराधे ॥[२]

इन पक्तियो मे भी दूती की वाक्चातुरी अपूर्व है। द्वितीय पक्ति मे चन्द्रमा का तम रूपी मदिरा पीकर प्रमत्त हो उदित होना—एक अनूठा प्रकृति चित्र है। तृतीय पक्ति मे "रस सिंगार ससारक सारे" कवि के काव्य दर्शन, उसके प्रमकाव्य की भावधारा आदि की दृष्टि स विशेष महत्वपूर्ण है। नवीना अभिसारिका क सहज सकोच, डर तथा लज्जा को दूर करने क लिए उससे कहा जा रहा है कि साहस से असाध्य काम भी साध्य होता है तथा पहली बार मर्यादा का बन्धन तोडना क्षण भर के लिए कठिन जान पडता है। कवि को मानव प्रकृति की कितनी सूक्ष्म परख है यह इन पक्तियो से व्यक्त होता है। नियम या मर्यादा के विरुद्ध काम करने मे झिझक एक ही बार होती है, एक बार जहाँ मर्यादा का बाध टूटा फिर कोई रोक नही रह जाती। प्रस्तुत पद मे नायिका को अभिसार के लिए दूती शिक्षा वर्णित ह साथ ही परपुरुष के साथ प्रेम करना समाज और नैतिकता क विरुद्ध अपराध है, यह सकेत भी कवि देना नही भूलता। प्रेम भावना का ज्वार ह, इस ज्वार म बुद्धि–सद् असद् विवक का बाँध टूट जाता ही है, अत अभिसारिका को पर-पुरुष प्रम जन्य अपराध का सकेत भी नही रोक सकेगा यह भी ध्रुव

[१] मि० म० वि०, ९८, पृ० ७८।
[२] वही, १००, पृ० ७९।

है और जब हृदय उसके प्रेम मे पगा हुआ है, तो मिलन-पथ में चलने से सकोच—"हसब ठठाय फुलाउब गातू" क्या सभव है ?

अभिसार सम्बन्धी यह पद विद्यापति के प्रेमकाव्य का एक प्रतिनिधि उदाहरण है। अनूठी उक्तियाँ, मार्मिक अनुभूति, अद्भुत सूक्तियाँ, मानव प्रकृति की गहरी परख, कवि की भावधारा के परिचायक सूत्र—ये है इसकी कुछ विशेषताएँ।

सावन-भादो की झडी मे, काली अधियाली रात मे, उमडती यमुना की धारा को तैर कर आना—यह कोई "प्रेमदिवानी" ही कर सकती है। प्रिय के गुणो पर लुब्ध, उससे मिलने की मादक उत्कण्ठा मे प्रमत्त नायिका क्या नही करती है—

पथ पीछर एक रयनि अंधार। कुचजुगे कलसि जमुन भेलि पार॥
बरिस बरिस सगर महि पूल। सहसहि विसधर चउदिसि बूल॥
न गुनल एहन भयाउनि रात। जीवहु चाहि अधिक को साति॥[1]

एकाधिक पदो मे दिवसाभिसार के चित्र कवि ने प्रस्तुत किये है।[2] घटाटोप अधकार छाये रहने के कारण नायिका को दिन मे ही रात का भ्रम हो जाता है और वह प्रियमिलन हेतु निकल पडती है। रहस्य खुलने पर वह अत्यन्त लज्जित होती है। पर एक अन्य पद मे "अधकूप सम रयनि विलास" कहकर दिवाभिसार का समर्थन किया गया है। इस पद की अन्तिम पक्ति मे "हरषित हो लका के राय"—लकाधिपति रावण का स्मरण कवि ने किस प्रेरणा या अभिप्राय से किया है, यह रहस्यात्मक जान पडता है। क्या कवि का यह मतव्य तो नही कि दिवाभिसार कौतूहलवर्द्धक होते हुए भी राक्षसोचित आचार के ही अनुकूल होगा।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति के पद-साहित्य मे शृंगार के दोनो पक्षों, विप्रलभ और सभोग, के चित्र पूर्ण वैभव एव विस्तार के साथ मिलते है। 'कीर्तिपताका' के प्रथम पृष्ठो मे वर्णित शृगार चित्र सभोग शृगार के ही है। 'गोरक्षविजय' मे शृंगार प्रसगो मे सभोग शृगार का ही प्राधान्य है।

(२) विप्रलभ के भेद—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण के अन्तर्गत विद्यापति ने पूर्वराग, मान और प्रवास के विशद चित्रण किये हैं। करुण-विरह का चित्रण उन्होंने नही किया है। पर प्रिय द्वारा उपेक्षिता या परित्यक्ता नारी की मनोव्यथा जिन पदो मे वर्णित है, उनमे करुणा मिश्रित विरह की व्यजना होती है।

---

[1] मि० म० वि०, ४४६, पृ० ३०८।
कृष्णाभिसारिका तथा अभिसार प्रसग पर किचित विस्तार के साथ 'विद्यापति के काव्य मे नायिकाभेद' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत 'अभिसारिका' प्रसग मे विवेचन किया गया है। 'मि० म० वि०' ३३१–४० संख्यक पदो मे अभिसार के कुछ उत्कृष्ट चित्र मिलेंगे।

[2] वही, ३३८, ३३६, पृ० २४०।

(३) विप्रलभ शृ गार के अन्तर्गत विद्यापति ने नायक तथा नायिका दोन। पूर्वानुराग का सजीव चित्रण किया है।

(४) पूर्वराग मे विरह सतप्त नायिका का चित्रण बडा ही सजीव एव मर्मस्पर्शी है। नवो काम दशाओं के चित्र इसके अन्तर्गत मिलेंगे।

(५) मान के अन्तर्गत विद्यापति ने मध्यम तथा लघु मान के ही चित्र अधिक्तर प्रस्तुत किये है। विद्यापति की मानिनी एक बार भी नायक को शठ, धृष्ठ या निर्लज्ज आदि नही कहती। विद्यापति द्वारा वर्णित मान के अन्तर्गत कोप की प्रमुखता एकाधिक स्थलो पर ही मिलती है। इसी प्रकार ईर्ष्या का भी अन्तर्भाव ही रहता है। प्रमुखता रहती है व्यथा, निराशा तथा ग्लानि की। इस विशेषता के कारण विद्यापति के पद-साहित्य मे चित्रित मानवती ईर्ष्या से जर्जर परम्परागत मानवती से किंचित् भिन्न प्रतीत होगी। वह नायक की भर्त्सना करती है पर कठोर शब्दो मे नही, उसके शब्दो मे ईर्ष्या तथा कोप के स्थान पर व्यथा एव दु ख का प्राबल्य रहता है। पर दो चार पदो मे ईर्ष्या तथा कोप से जलती हुई सुपरिचित मानवती का चित्रण भी कवि ने किया है।

(६) प्रवास विरह के चित्रण मे विद्यापति के काव्य का चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। प्रोषित-पतिका के चित्र बडे ही सजीव उतरे हैं। विद्यापति ने प्रोषित-पतिका की वेकली, विरह-ताप से दग्ध होते हुए उसके शरीर का चित्रण भी किया है, पर विरहिणी की मनोव्यथा के चित्रण मे उनकी रुचि अधिक जान पडती है।

(७) विद्यापति के विरह-काव्य मे विरहिणी कही मथुरा गये हुए कृष्ण की वियोगिनी राधा के रूप मे चित्रित हुई है, कही प्रवासी प्रिय की व्यथासजल कान्ता के रूप मे।

(८) विद्यापति की विरहिणी की विरह-व्यथा जितनी मानसिक एव भावात्मक है, उतनी ही मदन-तापजन्य भी।

(९) यो तो बारहो महीने विरहिणी के लिए सतापकारक हैं, पर वसन्त और बरसात मे उसको प्रिय की अनुपस्थिति सबसे अधिक दुखदायिनी प्रतीत होती है। बरसात की रात मे जब प्रकृति का पोर-पोर भरा रहता है, विरहिणी अपने सूने घर मे वैठी विसूरती होती है।

(१०) विद्यापति ने बारहमासा पद्धति पर एक ही विरहगीत की रचना की है।

(११) विद्यापति की प्रोषित-पतिका स्वय मार्मिक व्यथा मे पडी हुई भी प्रवासी प्रिय की मगलकामना करती रहती है। विद्यापति की विरहिणी प्रिय के चरणो मे पूर्ण आत्मनिवेदिता है। प्रिय के अन्य नारियो मे अनुरक्त होने की शका उसे होती है, फिर भी वह उसका मगल मनाती रहती है।

(१२) विद्यापति की विरहिणी को अपने प्रवासी प्रिय के प्रति जितनी शिकायत है उससे अधिक वह अपने "अभाग" को दोषी मानती है।

(१३) प्रकृति का चित्रण उद्दीपन विभाव के रूप मे किया गया है, विशेषकर वसन्त और वर्षा का। सहकार की सुगध, भौरो की गूँज, दक्षिण पवन, कोयल की कूक, मोर, पपीहा का शोर, चाँद और चाँदनी रात—ये है कुछ प्रकृति के उपादान जो विरहिणी की व्यथा को बढाते रहते है।

(१४) विद्यापति के विरह-काव्य मे उपेक्षिता या परित्यक्ता नारी के मनोभावो का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। ये प्रसग कही कही करुणार्द्र हो गये है। विद्यापति की उपेक्षिताओ मे अक्सर हमे बहुवल्लभ कन्त की उपेक्षिता पत्नियो या परित्यक्ता प्रेमिकाओ की सजल प्रतिमा दिखाई पडती है। ये उपेक्षिताएँ किसी भागवत आभा से मण्डित या भागवत् रग मे रगी कामगधहीन प्रेमिकाएँ नही जान पडती। इनके प्रेम मे अनन्यता, गाभीर्य तथा वेदनापूत पावनता भरी होती है। विद्यापति के काव्य मे प्रेम का अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा गभीर रूप इन प्रसगो मे निखरा है।

(१५) सभोग शृगार का सागोपाग वर्णन विद्यापति के गीतिपदो मे किया गया है। पर कवि न स्वय किसी तरह के प्रबधत्व के सूत्र गुम्फित कर अपने पदो की रचना की होगी, इसका कोई प्रमाण नही मिलता। वैष्णव पदकर्त्ताओ की तरह, उनके पदो को विषयानुकूल सजाने का कार्य कई सग्रहकर्त्ताओ ने किया है। इससे विद्यापति वर्णित सभोग शृगार का एक आख्यानक रूप उनके गीति-मुक्तको के बीच झलक उठता है।

(१६) विद्यापति के सभोग शृगार का बडा ही सजीव, कलात्मक, लोकप्रिय तथा बहुचर्चित अश है नायिका का सौन्दर्य-वर्णन। विद्यापति ने किशोरी तथा तरुणी दोनो के सौन्दर्य तथा अगछवि का चित्रण किया है। दोनो ही रसिकतापूर्ण तथा आकर्षक है।

(१७) विद्यापति ने नखशिख तथा शिखनख—दोनों ही पद्धति अपनायी है नायक और नायिका दोनो का ही सौन्दर्य-वर्णन इस पद्धति पर किया गया है। नायक हमेशा कृष्ण के वेश म चित्रित किये गये हैं, पर नायिका राधिका भी हो सकती है, सामान्य एव पार्थिव नारी भी।

(१८) सौन्दर्य-वर्णन करते हुए वे अपूर्व कौशल के साथ, एक ही साथ भाव, *हाव और हेला—तीनो को समाविष्ट कर देते है।*

(१९) विद्यापति के नायक-नायिका शृगार के आलबन के रूप मे चित्रित किये गये है, उन्हे किसी तरह की आध्यात्मिक रजना व रहस्यात्मकता से अभिमडित करना उनका अभीष्ट नही जान पडता।

(२०) किशोरी के शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनो का चित्रण विद्यापति को विशेष रुचता है।

(२१) विद्यापति का प्रेम रूपज है, प्रथम दर्शन म एक-दूसरे के रूप-यौवन के आकर्षण मे इसका जन्म होता है। कृष्ण की चिर सहचरी वशी को भी उन्होने प्रमुखता नही दी है।

(२२) विद्यापति ने नायक-नायिका की प्रणय-केलि का उद्दाम चित्रण अपने दशाधिक पदो मे किया है। इन पदो की कोई आध्यात्मिक व्याख्या अप्रासगिक है। कवि ने शब्दो की शिल्पकारी से इन प्रसंगो की नग्नता को ढँकने का भीना प्रयत्न किया है।

(२३) अभिसार का चित्रण विद्यापति के सभोग शृ गार का एक महत्वपूर्ण अंश है। इस प्रसंग मे यद्यपि उन्होने पूर्ववर्ती काव्य की परम्परा का परित्याग कर कोई नई चीज नही दी है, पर उनके प्रकृति परिवेश के चित्र (इस प्रसंग मे) सजीव तथा स्वाभाविक हैं।

(२४) अभिसार के अन्तर्गत पावस तथा वसत का महत्त्व उन्होंने विशेष रूप स माना है।

५

विद्यापति के प्रेमकाव्य का सामाजिक पक्ष

विद्यापति के प्रेमकाव्य का सामाजिक पक्ष

प्रेम, युद्ध, भक्ति और वैराग्य अनन्त काल से कवियो के वर्ण्य रहते आये हैं। कवि जब सामन्ती अभिजात वर्ग के जीवन का चित्रकार होता था तो उसके लिए अन्य कुछ का महत्त्व हो भी नही सकता था। विद्यापति ऐसे ही युग के कवि थे। पर उनकी मर्मग्राहिणी दृष्टि सामान्य जनजीवन की विवशताओ को भी देख पाती थी, फलत. 'पुरुषपरीक्षा' की कथाओ मे, 'लिखनावली' के पत्रो मे, 'कीर्त्तिलता' के नगर-वर्णन मे तथा अनेक गीतिपदो मे यथाप्रसग उन्होंने सामान्य जनजीवन के सुख-दुःख

से घिरे रहने पर भी कुशल रहे, करुणा के साथ विवेक का सगम हो, धर्म के साथ शृगार का योग रहे और काव्य-कला मे अनेक रग—अनेकरूपता हो।

विद्यापति-साहित्य का मुकुटमणि है उनकी पदावली। उनके पद चाहे प्रेम के हो या भक्ति के, जीवन के सामान्य धरातल मे उनके मूल गडे हैं। विद्यापति के पद-साहित्य की यह मौलिक विशेषता है कि उनके पद जीवन और जगत् के नाना क्रिया-व्यापारो एव परिस्थितियो से सम्बन्धित मार्मिक उक्तियों से अभिमण्डित है। समस्त मुक्तक शृगार-काव्य—'गाथा सप्तशती' से 'आर्यासप्तशती' तक—स्तोत्र साहित्य तथा परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य एव रीतिकालीन शृगार-काव्य मे जीवन की इतनी मार्मिक अनुभूतियो एव विभिन्न स्थितियों के चित्र शायद ही मिलें। इस दृष्टि से विद्यापति की शिवस्तुति विषयक 'नचारी' तथा 'महेशवाणी' का भी विशेष महत्त्व है। विद्यापति के इन पदो मे उस काल के सामाजिक जीवन के कई पक्षो की एक झलक मिलती है।

भारत का सबसे बडा व्यवसाय खेती करना युग-युग से रहता आया है। 'लिखनावली' के दशाधिक पत्रो मे खेती तथा उसकी समस्याएँ वर्णित हैं। किसी मे कौन-से धान बोये जायँ, इसका आदेश, किसी मे गाय-बैल के 'बथान' को साफ-सुथरा रखने की चेतावनी।[1] प्रभुवर्ग की खेती रखवारों तथा उनके कारिन्दा पर निर्भर होती है। विनय के एक पद मे इसका सकेत मिलता है—

> 'खेत कएल रखवारे लूटल ठाकुर सेवा भोर।
> बणिजा कएल लाभ नहि पाओल अलप निबट भेल थोर॥'[2]

तिरहुत के खेतो मे अधिकतर केवाल मिट्टी है। गर्मी के दिना मे भूमि सूखी रहती है, खेतो मे दरारें पड जाती हैं। वैशाख-जेठ मे सूर्य का ताप अपने चरम बिन्दु पर रहता है। प्रचण्ड प्रखर धूप से ताल-तलैया, कुएँ सभी सूखने लगते हैं। विद्यापति ने एक पद मे इसका सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

> सुखल सर सरसिज भेल भाल। तरुन तरनि, तरु न रहल हाल॥
> देखि दरनि दरसाब पताल। अबहु धराधर धरसि न धार॥
> जलधर जलधन गेल असेलि। करए कृपा बड पर दुख देखि॥[3]

अभिसार सम्बन्धी दशाधिक पदो मे मिथिला के पावस मे गाँव किस प्रकार जलमय हो जाते हैं, रास्ते पिच्छल, पग-पग पर साँप बिच्छुओ की आशका, मूसलधार

[1] लिखनावली, पत्र सख्या ३४, ४२ आदि।
[2] मि० म० वि०, ६१४; वि० रा० भा० प०, १३१।
[3] वही, १४।

वृष्टि तथा क्षण-क्षण पर क्षणदा की कोध, इसके सजीव स्वाभाविक चित्र मिलते हैं।[1]

खेत मे पानी पटाने के लिए अक्सर आट या वर्षा के पानी को रोकने को मेड या बाँध बना दिया जाता है, यदि समय पर यह नही बनाया गया तो पानी निकल जायगा। एक पद मे इसका सकेत किया गया है—

गेला नीर निरोधक की फल—अवसर बीतल दान।

(वि० रा० भा० प०, पृ० २५)

इसी प्रकार 'का वरषा जब कृषि सुखाने' की एक ध्वनि निम्नलिखित पक्ति मे है—

समय गेले मेघे वरिसय की दहु तें जलधार।

(मि० म० वि०, १६१, पृ० १२०)

तिरहुत के गरीब किसान अपने खेतो मे या आँगन में मचान बनाकर उस पर शाक-सब्जी की लताएँ चढा देते हैं। मचान नही रहे तो लताएँ फैलें नही और फूल-फल नही हो। 'कीर्त्तिलता' के प्रारम्भ म कवि ने इसका एक बडा ही सुन्दर सकेत किया है—

तिहुअन खेतहि मांझ किमि कित्तिबल्ली पसरेई।
अक्खर खम्भारम्भओ जो मसु मच न देई॥

एक महेशवाणी म भी 'खेती-पथारी' की चर्चा की गयी है। उमापति भगवान् शंकर अवढर हैं, न तो खेती करते हैं न पथारी, फिर भी हैं त्रिभुवन प्रसिद्ध दानी—

खेती न पथारी करथि भाग अपना। जगतक दानी थिका तीन भुवना॥[2]

पर जन्म मे ब्राह्मण, कर्म से कवि, राजाओ तथा राजकुमारो के सुहृद, सखा या कृपापात्र—ऐसे थ विद्यापति, अत आश्चर्य नही कि उनके पदो मे कृषि और कृषक की घटना विहीन दुनिया की ज्यादा चर्चा नही हुई हो। यह भी असभव नही कि उनके ऐसे कुछ पद विस्मृति के गर्भ म सोये पडे हो। विद्यापति के पद मिथिला मे प्रेम-गीत या शिव-स्तुति (महेशवाणी या नचारी) के रूप मे लोककण्ठ द्वारा कई सदियो तक सुरक्षित रहे, बगाल मे वैष्णव भक्ति-रस के गीतिपदा के रूप मे वे गाय जाते रहे, अत आश्चर्य नही कि उनके सामान्य जनजीवन की विभिन्न परिस्थितियो तथा समस्याओं का चित्रण करनेवाले पद विगत चार सदियो के अन्तराल म कही सोये पडे हो। लोकगीतो मे हम रोपनी, कटनी, ओमावन, झूला तथा जाँता पर के गीत सुनते है, उनम भी प्रेम के पुलक रोमाच एव हास-रुदन की ही धुन अधिक भरी रहती है, विद्यापति तो प्रेम और भक्ति के ही गीतकार थे।

---

[1] मि० म० वि०, १०४-६, १०८।

[2] मिथिला गीत संग्रह, भाग २, पृ० ३६।

विद्यापति का युग राजनीतिक हलचलों का युग था। आक्रमण-प्रत्याक्रमण, युद्ध-विप्लव, आदि रोज ही होते रहते थे। राजन्य वर्ग के जीवन या सिंहासन किसी की भी निश्चितता नहीं रहती थी। राजाओं के साथ उनके सामन्तों, सभासदों, कवियों, पंडित-पुरोहितों के भाग्य-परिवर्तन भी होते रहते थे। स्वयं विद्यापति के जीवन में अनेक पटाक्षेप आये, पर एक वर्ग के जीवन में कोई उथल-पुथल नहीं था, ऐसा जान पड़ता है। यह था दूकानदारों तथा व्यापारियों का वर्ग। सामान्य जनता मेहनत-मशक्कत करती थी, फिर भी अभाव और दरिद्रता उसका साथ नहीं छोड़ती थी। राजा, सामंत, भूमिपति युद्ध तथा आखेट और रास-रंग में जीवन बिताते, पंडित, ब्राह्मण पठन-पाठन करते, ग्रन्थ लिखते। वणिज अपना मोती, मजीठ, कपूर, ताम्बूल, तेल, सोना-चाँदी का व्यापार करते। कोई राजा हो, कोई राजवंश हो, किसी का आधिपत्य हो यह वर्ग सबकी छत्रछाया में, सबका कृपापात्र बना हुआ अपने लेन-देन का काम करता रहता था। प्रभुवर्ग के अनेक व्यक्ति समय-समय पर इस वर्ग में ऋण आदि लेने को भी बाध्य होते थे। उनके विलास की सामग्रियाँ तो यही देश-देशान्तर से लाकर दे सकता था। अतः इसकी राज्य में मान-प्रतिष्ठा बनी रहती थी। 'लिखनावली' के कई पत्रों में मोती, मजीठ, ताम्बूल, पुंगीफल, स्वर्ण आदि के वणिज-व्यापार सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। एक में राजा के किसी सम्बन्धी के व्यवहार की वस्तुओं के लिए एक व्यापारी किसी व्यापारी मित्र को पत्र लिख रहा है।[1] विद्यापति के पदों से भी दूकानदारी, वणिज-कर्म से सम्बन्धित अनेक पंक्तियाँ जगह-जगह मिलती हैं। विनय के एक पद में—

> जोखि-परेखि मनहि हमे निरसल, धन्य लागल मन मोर।
> इ संसार हाट कए मानह सबो नेक बनिजे आर॥
> जो जस बनिजए लाभ तस पावए मुरुख मरहि गमार।
> विद्यापति कह सुनह महाजन राम भगति बधि लाभ॥[2]

जोखना-परखना, संसार को हाट की उपमा देना, जैसी दूकानदारी होगी, जैसा व्यापार होगा वैसा ही लाभ-हानि, मूर्ख व्यापारी अपनी पूँजी भी गँवा कर हाट से लौटता है—कवि की अपने युग के वणिज-व्यापार की दुनिया की गहरी परख के परिचायक हैं। विनय का यह पद कोरा वैराग्य या रामभक्ति का ही उपदेश नहीं देता, जीवन के क्रिया-व्यापारों में भी दक्ष होने की प्रेरणा देता है। प्रेम के पद हों या भक्ति ., विद्यापति जीवन के व्यावहारिक पक्ष के प्रति हमेशा जागरूक रहते हैं।

'पुरुषपरीक्षा' की एक कहानी में अपव्ययी वणिक पुत्र की दुर्दशा वर्णित है। पिता जो कुशल व्यापारी था, अपार धनराशि छोड़ स्वर्ग सिधारा। पुत्र व्यापार पर तो ध्यान देना दूर रहा, दोनों हाथ से रुपये उलीचकर रासरंग में डूब जाता है। फलत

---

[1] लिखनावली—विद्यापति, पत्र संख्या ३९-४०।

[2] वि० रा० भा० प०, १२१, पृ० १७२।

थोड़े ही दिनों में सारी सम्पदा समाप्त हुई, व्यापार चौपट हो गया और नितात अकिंचन बनकर भटकने लगा।[1] उस कहानी में व्यापार धन का मूल है तथा व्यापार से धन कैसे बढ़ता है इसका रहस्य बताते हुए कवि ने कहा है—

देश देशान्तर नीतं कालाद् कालान्तरं तथा।
वस्तु मूल्य विभेदेन वणिजो लाभ मादिशेद्॥[2]

'कीर्त्तिलता' के 'जओनापुर' वर्णन-प्रसग मे विद्यापति ने वहाँ के हाट-बाजार, बनियो-बनीनियो के हाव-भाव आदि का सजीव वर्णन किया है। कसेरे की दूकानो से ठन्-ठन् की झंकार का भी उल्लेख करना कवि नही भूला है। इससे विद्यापति की वणिज-व्यापार मे दिलचस्पी का एक सकेत तो मिलता ही है।

अनेक प्रेमगीतो मे वणिज-व्यापार की दुनिया से उपमा दी गयी है। एक पद मे सहेली नायिका को अपना प्रेम का पसार—दूकान—फैलाने की सीख देती है। यह भी चेतावनी देती है कि जितना रूप होगा उतना ही उसे मूल्य की अपेक्षा करनी चाहिए। नायक गँवार नही होता, वह भी नागर होता है, रस की परख मे सुचतुर—"रस वनिजार" जो है वह—

से अति नागरि तञे सब सार। पसरओ मल्लो प्रेम पसार॥
जौवन नगरि बेसाहव रूप। तते मूल दहह जते सरूप॥
साजनिरे हरि रस बनिजार॥ध्रु०॥[3]

चाहे कितनी युक्ति तथा कौशल से वेची जाय, पर बिना काम की या अनुपयोगी वस्तु कौन खरीदता है, कवि की निम्नलिखित पंक्ति मे देखिए—

जतने कत न के न बेसाहए—गुंजा के वहु कीन।[4]

एक रूपगर्विता नायिका अपनी सुन्दर अंगछवि का ही पसार लगाकर नायक से पूछती है कि उसके हाट में तो सभी कुछ है—सोना-चाँदी, मणि-माणिक्य—वह क्या-क्या लेगा, और पलटे मे क्या मूल्य देगा।[5] पहलेपहल दूकान लगानेवाला अच्छी बोहनी की आशा रखता है, ग्राहक से वह अच्छी बोहनी करने को कहता है। यदि पहली ही बोहनी अच्छी नही हुई तो दूकानदारी क्या होगी, यदि ग्राहक वस्तुओ को यों ही छू-छू कर चला जाता रहे तो इससे भी दुकानदार को घाटा ही होगा। छूने से तो रत्न का भी मूल्य कम हो जाता है।[6] अधिक लाभ की आशा मे कभी-कभी

---

[1] पुरुषपरीक्षा—विद्यापति, कथा संख्या ३२, पृ० १७८।
[2] वही, पृ० १७९।
[3] वि० रा० भा० प०, ११, पृ० १४६।
[4] मि० म० वि०, ११३, पृ० ८८।
[5] वही, २२६, पृ० १६७।
[6] वही, ३४८, पृ० २४७।

व्यापारी को नुकसान भी उठाना पड़ता है, इतना कि उसकी पूँजी भी नष्ट हो जाती है।[1] इस तरह अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

विद्यापति का अपने युग के राजन्य वर्ग से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वादी प्रतिवादी, जयपत्र आदि शब्द उनके कई पदों मे मिलते है। एक पद मे तो न्यायालय मे किसी मुकदमे के दोनो फरीकों तथा न्यायाधीश आदि का पूरा दृश्य ही उपस्थित कर दिया गया है। पद इस प्रकार है—

माइ हे शीत वसन्त विवाद। कवने विचारब जय अवसाद॥
दुहु दिश मधय दिवाकर भेल। दुजबर कोकिल साखिता देल॥
नव पल्लव जयपत्र सओ भाँति। मधुकर माला आखर पाँति।
वादी तह प्रतिवादी भीत। शिशिर विन्दु हो अन्तर शीत॥[2]

शीत और वसन्त के मुकदमे मे दिवाकर मध्यस्थ हैं। पक्षिया मे श्रेष्ठ कोयल गवाह है नव पल्लव जयपत्र के समान सुशोभित है, भौंरो की पक्तियाँ मानो उन पर अक्षरो की पक्तियाँ हैं। जीत वादी की हो रही है, प्रतिवादी सहमा हुआ है, भयभीत है। न्यायालय मे मुकदमे की सुनवाई का पूरा दृश्य ही यहाँ प्रस्तुत कर दिया है कवि ने। 'लिखनावली' मे न्यायालय सम्बन्धी दशाधिक पत्र दिये गये हैं। उनके अवलोकन से विद्यापति की अपने युग की न्याय-व्यवस्था की पूरी जानकारी, उसकी दुर्बलताओं तथा विशेषताओं की उनकी परख प्रकट होती है। गीतिपद मे ऐसा चित्र प्रस्तुत करना, वह भी इस ढग से जिसमे रसानुभूति मे किंचित भी बाधा न हो, कवि की प्रतिभा सूचित करता है। चाहे तो इसे कवि के कवि कौशल, उसकी प्रखर दृष्टि तथा युग-जीवन के व्यापक ज्ञान की अद्भुत विजय भी कह सकते हैं। विद्यापति के काव्य मे सामाजिक पक्ष के प्रति कितनी अधिक जागरूकता भरी है, इसका यह पद एक प्रमाण है।

राजन्य वर्ग के जीवन मे सम्बन्धित कुछ अन्य प्रसगो के चित्र भी कतिपय पदो म मिलते हैं। राज्याभिषेक राजाओं के यहाँ एक महत्वपूर्ण घटना है। ऋतुराज के आगमन का चित्रण करते हुए विद्यापति ने राज्याभिषेक के समय के कुछ अनुष्ठानों के चित्र भी उपस्थित किये हैं।

वसन्त का आगमन हो चुका है। प्रकृति नव पल्लव

---

[1] मि० म० वि०, ३८८, पृ० २७१।

[2] मि० म० वि०, १४१, पृ० १०६।

सौरभ, मधुकर के नव गुंजन से आपूयमान हो रही है। कवि वसन्त के 'घुमाओन'[1] का चित्रण कर रहा है। पद निम्नलिखित है—

अभिनव पल्लव बइसक देल। धवल कमल फुल पुरहर देल॥
कर मकरन्द मन्दाकिनि पानि। अरुन असोग दीप बहु आनि॥
माइ हे आइ दिवस पुनमन्त। करिए घुमाओन राम वसन्त॥
सपुन सुधानिधि दधि भल भेल। भमि भमि भमरि हकारइ देल॥
केसुकुसुम सिंदुर सम भास। केतकि धूल बिथुरलह परवास॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार। रस बुझ सिवसिंह सिय अवतार॥[2]

व्यापारी को नुकसान भी उठाना पड़ता है, इतना कि उसकी पूँजी भी नष्ट हो जाती है।[१] इस तरह अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

विद्यापति का अपने युग के राजन्य वर्ग से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वादी-प्रतिवादी, जयपत्र आदि शब्द उनके कई पदों में मिलते हैं। एक पद में तो न्यायालय में किसी मुकदमे के दोनों फरीकों तथा न्यायाधीश आदि का पूरा दृश्य ही उपस्थित कर दिया गया है। पद इस प्रकार है—

> माइ हे शीत वसन्त विवाद। कवने विचारव जय अवसाद।।
> दुहु दिश मधय दिवाकर भेल। दुजवर कोकिल साखिता देल।।
> नव पल्लव जयपत्र सजो भाँति। मधुकर माला आखर पाँति।
> वादी तह प्रतिवादी भीत। शिशिर बिन्दु हो अन्तर शीत।।[२]

शीत और वसन्त के मुकदमे में दिवाकर मध्यस्थ हैं। पक्षियों में श्रेष्ठ कोयल गवाह है, नव पल्लव जयपत्र के समान सुशोभित हैं, भौंरों की पक्तियाँ मानो उन पर अक्षरों की पंक्तियाँ है। जीत वादी की हो रही है, प्रतिवादी सहमा हुआ है, भयभीत है। न्यायालय में मुकदमे की सुनवाई का पूरा दृश्य ही यहाँ प्रस्तुत कर दिया है कवि ने। 'लिखनावली' में न्यायालय सम्बन्धी दशाधिक पत्र दिये गये हैं। उनके अवलोकन से विद्यापति की अपने युग की न्याय-व्यवस्था की पूरी जानकारी, उसकी दुर्बलताओं तथा विशेषताओं की उनकी परख प्रकट होती है। गीतिपद में ऐसा चित्र प्रस्तुत करना, वह भी इस ढग से जिसमें रसानुभूति में किंचित् भी बाधा न हो, कवि की प्रतिभा सूचित करता है। चाहे तो इसे कवि के कवि कौशल, उसकी प्रखर दृष्टि तथा युग-जीवन के व्यापक ज्ञान की अद्भुत विजय भी कह सकते हैं। विद्यापति के काव्य में सामाजिक पक्ष के प्रति कितनी अधिक जागरूकता भरी है, इसका यह पद एक प्रमाण है।

राजन्य वर्ग के जीवन से सम्बन्धित कुछ अन्य प्रसंगों के चित्र भी कतिपय पदों में मिलते हैं। राज्याभिषेक राजाओं के यहाँ एक महत्वपूर्ण घटना है। ऋतुराज के आगमन का चित्रण करते हुए विद्यापति ने राज्याभिषेक के समय के कुछ अनुष्ठानों के चित्र भी उपस्थित किये हैं।

वसन्त का आगमन हो चुका है। प्रकृति नव पल्लव, नव मजरी तथा नव

---

१ मि० म० वि०, ३८८, पृ० २७१।
२ मि० म० वि०, १४१, पृ० १०६।

सौरभ, मधुकर के नव गुंजन से आपूर्यमान हो रही है। कवि वसन्त के 'चुमाओन'[1] का चित्रण कर रहा है। पद निम्नलिखित हैं—

अभिनव पल्लव बइसक देल। धवल कमल फुल पुरहर देल॥
करु मकरन्द मन्दाकिनि पानि। अरुन असोग दीप बहु आनि॥
माइ हे आइ दिवस पुनमन्त। करिए चुमाओन राम वसन्त॥
सपुन सुधानिधि दधि भल भेल। भमि भमि भमरि हुंकारइ देल॥
केसुकुसुम सिंदुर सम भास। केतकि धूल वियुरलह् परवास॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।,रस बुझ सिवसिंह सिव अवतार॥[2]

चुमाओन के समय की एक भी विधि या सामग्री इसमे नही छूट पायी है। एक अन्य पद मे ऋतुराज के जन्म लेने तथा उस उपलक्ष्य मे होनेवाले उत्सव का पूरे विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। जन्म से तरुणी होने तक के बीच के कई सस्कार भी इस क्रम मे कवि ने वर्णित किये है।[3] इसी प्रकार विवाह का चित्रण भी एक पद मे किया गया है।[4]

व्यक्ति के सही आचरण से सामाजिक जीवन सुन्दर तथा स्वस्थ रहता है। प्रत्येक युग की अपनी नैतिक स्थापनाएँ होती है। इनमे कुछ तो आदर्श के रूप मे होती हैं और कुछ यथार्थ जीवन से सम्बन्धित। विद्यापति प्रेम और सौन्दर्य के कवि के रूप मे प्रख्यात हैं। मिथिला से बाहर कृष्ण-गोपी प्रेम-प्रसंगो के गीतकार के रूप मे लोकमन ने उन्हे प्रतिष्ठा दी। 'पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती' के श्रृंगार-मूर्च्छना भरे वायुमंडल की हिलोर पर विद्यापति के गीतो ने अपना लोक मंगलकारी रूप यदि खो दिया हो तो यह अस्वाभाविक नही, नितान्त स्वाभाविक ही कहा जायगा। यह एक मार्के की बात है कि वगदेश मे कवि के जो पद अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय रहे हैं उनमे उच्छल-उन्मद श्रृंगार का पारावार छलक रहा है। इसके प्रतिकूल नेपाल पोथी, तरौनी तालपत्र तथा रामभद्रपुर पोथी से प्राप्त पदो मे कम ही ऐसे मिलेंगे जिनमे जीवन की कोई मार्मिक अनुभूति, कोई नैतिक स्थापना, कोई आदर्श-प्रतिष्ठा या जीवन को सही राह पर रखनेवाला कोई दिशासकेत नही हो। प्रेम के भावाकुल गीतो मे

---

[1] मिथिला मे यज्ञोपवीत, विवाह आदि सस्कारो तथा किसी पवित्र अनुष्ठान से सम्बन्धित अवसर पर 'चुमाओन' की प्रथा प्रचलित है। इस अवसर पर जब सभी पूजा आदि की विधि समाप्त हो जाती है तब उपस्थित अतिथि, सगे-सम्बन्धी पुरोहित द्वारा अक्षत और फूल अपने हाथो मे लेकर बालक वर-कन्या या यजमान पर फेंकते है, पुरोहित मन्त्र भी पढ़ता जाता है। इस अवसर पर कुछ द्रव्य देने की प्रथा है। इसी के साथ समारोह की समाप्ति होती है।

[2] मि० म० वि०, १४०, पृ० १०६।

[3] वही, १३८, पृ० १०३-४।

[4] वही, २२१, पृ० १६५।

ज्ञान के मोती गुफित करना आसान नही। रसानुभूति मे इससे व्यवधान पडने का खतरा रहता है। पर विद्यापति ने बडे ही प्रौढ शिल्पकार की तरह कही भी रसभग नही होने दिया है।

विद्यापति ऐसे युग मे हुए थे जिसमे पुरुष का वहुवल्लभ नही होना ही अपवाद तथा किंचित् अस्वाभाविक माना जाता था। नारी को नरक का द्वार—"अवगुण आठ सदा चित रहई" एव "सहज अपावनि नारि"—कहनेवाले तुलसी विद्यापति से डेढ-सौ वर्ष बाद ही तो हुए थे। परकीया प्रेम उस काल के सामन्ती सामाजिक जीवन का सामान्य प्रचलन था। शृगार काव्य की तो रचना ही मुख्यत इन्ही के वर्णन के लिए होती थी। विद्यापति के काव्य मे इनका प्रचुर वर्णन किया गया है। पर वीरेश्वर-धीरेश्वर के वशज केवल शृगार के चित्रकार, प्रेम के गायक तथा पोषक राजाओ के चारण मात्र ही नही हो सकते थे। विद्यापति के गीतिपदो मे आचरण की पवित्रता, कर्तव्यनिष्ठा, वचननिर्वाह, व्यवहार कुशलता एव काल के आघातो को दृढता के साथ सहन करने के सन्देश जगह जगह भरे हुए है। इनके आधार पर हम सिद्ध कर सकते हैं कि विद्यापति के प्रेमकाव्य मे 'गाथासप्तशती' से 'गीत गोविन्द' एव 'आर्यासप्तशती' तक तथा परवर्ती कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियो मे सूर से लेकर गौडीय वैष्णव पदकर्त्ताओ तक के काव्य से एक भिन्न स्वर मिलता है। उन कवियो को सौंदर्य, यौवन तथा प्रेम की रगीनियो, चुहल, क्रीडाओ का वर्णन करने के अतिरिक्त और कुछ दूसरा काम ही नही था। उन्होने इस पर ध्यान ही नही दिया कि उनके गीतो का सामान्य सामाजिक मानस पर क्या प्रभाव पडेगा। वस्तुत उनके काव्य का कोई सामाजिक पक्ष है भी या नही, इसमे सन्देह ही है। पर विद्यापति सामाजिक पक्ष को कभी भूलते नही, 'पुरुषपरीक्षा' की कथाएँ हो या स्मार्त्त निबन्ध या उच्छल-उन्मद-मासल प्रेमगीत—सामाजिक जीवन का स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य उनके दृष्टि-पथ से कभी ओझल नही होते। यहाँ तक कि 'कीर्त्तिपताका' के पूर्वार्द्ध म राय अर्जुन की विलास-क्रीडाओ का वर्णन करन के पूर्व भी कवि ने 'धम्मसहित सिंगार रस" का आदर्श प्रतिष्ठित किया है। फिर 'पुरानुभूतम् मधुसूदनेन' के रूप मे उसका एक बहाना भी बता दिया, और राय अर्जुन का नाम न लेकर "चलन्त गोप कामिनी" के द्वारा उस पर कृष्ण-गोपी-प्रसग का आवरण डाल दिया है।

सामाजिक नैतिकता के प्रति कवि की यह जागरूकता 'पुरुषपरीक्षा' के पृष्ठ-पृष्ठ पर दीख पडेगी। काम-प्रकरण म कवि न केवल तीन ही कथाएँ लिखी हैं, वहाँ भी अनुकूल तथा दक्षिण नायक की कथाएँ एव धसमर नायक की दुर्दशा ही वर्णित की गयी हैं।

'पुरुषपरीक्षा' मे विद्यापति ने आदर्श पुरुष का सदेत किया है। पुरुष-आदर्श की प्रतिष्ठा 'पुरुषपरीक्षा' का वर्ण्य है, नारी-जीवन की वास्तविकता, रसमाधुरी, सुख-दुख तथा आदर्श 'पदावली' की भावभूमि है। कवि ने उसी का पुरुष कहा है जो

वीर, बुद्धिमान, विद्वान् तया पुरुषार्थी हो, अन्य तो पुरुष की आकृति मात्र धारण करते हैं—

बीरः सुधी सुविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान् ।
तदन्ये पुरुषाकारा पशवः पुच्छवर्जिता ॥[1]

ये थे पुरुष के आदर्श, सामन्ती युग की नारी के ये आदर्श नहीं हो सकते थ । उसके लिए तो सौन्दर्य और यौवन सबसे बडे आभूषण थे, इसके अतिरिक्त उसको 'कलामति' होना चाहिए । 'कलामति' नारी की विशेषता

'गेल भाव जे पुनु पलटावए सेहे कलामति नारि'[2]

थी । उस युग मे 'न तु स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' का सिद्धान्त माना जाता था । सुन्दरी राजकुमारियो तक का अपहरण राजा या उनके सामन्त किया करते थे और बडे ही गर्व के साथ, विद्यापत्ति ने भी अपने युग तथा सामाजिक जलवायु के अनुकूल ही नारी के लिए निर्देश किया है—

मा जीवन्तु स्त्रियोऽनाथा वृक्षेण च बिना लता ।
साध्वोना जगति प्राणाः पतिप्राणानुगामिनः ॥[3]

तथा,

सिंहाः सत्पुरुषाश्चैव निज दर्पोपजीविनः ।
पराश्रयेण जीवन्ति कातराः शिशवः स्त्रियः ॥[4]

अथवा,

पतिरेव गतिः स्त्रीणां बालाना जननी गति
नालसाना गतिः काचिल्लो के कारुणिक बिना ॥[5]

कई गीतिपदो मे भी कवि ने इन आदर्शों को दुहराया है ।

कैरव सुरुज कमल चन्द । परपुरुषक सिनेह मन्द ॥[6]

× × ×

ते हमे एहे हलल अवधारि । पुरुष विहुन जोवए जनु नारि ॥[7]
कत न जीवन सकठ परए, कत न मीलए नीधि ।
उत्तिम तैअओ सत न छाडए, भल मन्द कर बीधि ॥

× × ×

मान बेचि जदि प्राण जे राखीअ ताते मरण भला । [?]

---

1. पुरुषपरीक्षा, पृ० ३ ।
2. मि० म० वि०, पद सख्या ८२, पृ० ६६ ।
3. पुरुषपरीक्षा, पृ० १६ ।
4. वही, पृ० २१ ।
5. वही, पृ० ४१ ।
6. मि० म० वि०, १५, पृ० १४ ।
7. वही, १२२, पृ० १५६ ।

होकर भी अपने को स्थिर रखना—विद्यापति ने अपने पदो मे हमारे सामने ये आदर्श रखे हैं।[१]

जीवन के बदलते पटाक्षेप, कभी उसके आँधी-तूफान, कभी उसकी गुलाबी के अनुभव जितने विद्यापति को थे उतने कम ही दूसरे लोगो को होगे। जब जैसा समय आये, वैसे ही अपने को बना लेना—सफल सामाजिक जीवन की यह कुंजी है, स्मार्त्त जीवनादर्श की आधारशिला है। विद्यापति के एक पद मे इसका सुन्दर निरूपण किया गया है—

गगनमंडल उग कलानिधि कते निवारवि दीठि।
जखने जे रह तर्ञहि गमाइअ जे बहए दीअ पीठि॥
× × ×
न थिर जीवन न थिर जउवन न थिर एहे संसार।
गेल अवसर पुनु न पाइअ किरिति अमर सार॥
कतए राघवराए धरिनि कतए लंकापुर वास।
कत हनूमते साअर बाँधल—किछु न गुनु तरास॥
जखने जकर बाँक विधाता सब कला अनुमान।
अधिक आपद धैरज करब कवि विद्यापति भान॥

—*मि० म० वि०, ३६५, पृ० २७५*

विद्यापति के उपर्युक्त पद की एक-एक पक्ति कितनी मर्मस्पर्शिनी है। पुरादित्य गिरिनारायण के यहाँ रहती हुई राजा शिवसिह की रानियो को सान्त्वना देने के लिए सभवत रचित इस पद मे मानव जीवन की कितनी मार्मिक अनुभूति कवि ने भर दी है। कहाँ त्रिलोकाधिपति राम की प्रिया भार्या जानकी और कहाँ राक्षसो की नगरी लका मे उनका निवास, फिर कहाँ बानर हनुमान और कहाँ अतल अकूल महासागर लाँघ कर उसका अशोकवाटिका मे राम का सदेश सुना जाना—विधाता जो न करावे, वही थोडा। तब दो ही बातें शेष रहती हैं—अच्छी कृति हो तो उससे अर्जित कीर्त्ति ही अमर होती है, वही सार है, और दूसरी सार वस्तु है धीरज, खास कर विपत्ति मे।

---

१ (क) दिवस मन्द भल न रहए सबखन, विहि न दाहिन रह वाम लो।
से हे पुरुष वर जे हे धैरज धर सम्पद विपदक ठाम लो॥
—मि० म० वि०, ५०, पृ० ४५

(ख) वही, ५३०, पृ० ३५७।

(ग) हृदयक वेदन राखीअ गोए। जे किछु करीअ भुंजिअ सोए॥
—वही, ५२४, पृ० ३५४

(घ) ऐसन नहि एहि महिमण्डल जे परवेदन जान— वही, ५२०, पृ० ३५२

(ङ) अपन वेदन जाँहि निवेदओ तइसन मेदिनि थोल।
—वही, ५१०, पृ० ३४६

आशा एव विश्वास मानव जीवन के दो सबसे बडे चालक है। पर आशा हमेशा पूरी नही होती और बहुत विश्वास जिस पर किया जाता है वह भी कभी धोखा देकर जीवन मे विष घोल देता है। कवि ने एक पद मे इसे बडी ही मार्मिकता के साथ बताया है—

> दहो दिस सुनसन अधिक पियासल, भरमइते बुल सभ ठामे।
> भाग विहिन जन आवर नहि लह अनुभव धनि जन ठामे॥
> हे साजनि जनुलेहे भनिकरि नामे।
> विधिहिक दोख सन्तोख उचित थिक जगत विदित परिनामे॥
> आतपे तापित सीतल जानिकहु सेओल मलयगिरि छाँहे।
> ऐसन करम मोर सेहओ दूर गेल कएल दवानल दाहे॥
> कते दुख आज समुद तिर पाओल सगरेओ जल भेल छारे।
> एहना अवसर धैरज पए हित सुकवि भनथि कण्ठहारे॥[1]

कडी धूप एव ताप से संतप्त होकर कवि मलयगिरि के आश्रय मे गया, पर उसका जला कपाल—वहाँ दावानल धू-धू कर रहा था, उसे शीतल छाया क्या मिलती, प्रचंड ज्वाला की लपटें उसका पीछा करने लगी। प्यास का मारा वह समुद्र के किनारे पहुँचा, पर उसके वहाँ जाते न जाते सागर भी सूख कर क्षारखार हो गया। फिर भी कवि ऐसे अवसर पर भी ऐसी अवस्था मे 'धैरज पए हित' का ही सन्देश देता है। 'धैरज'—धैर्य—ही प्रतिकूल परिस्थिति मे फँसे मानव का सबल है। अन्य कई पदो मे भी कवि ने ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं।

कितनी ही छोटी-छोटी बातें होती हैं जिनको ध्यान मे रखकर हम विघ्न-बाधाओ से भरी जिन्दगी की राह पर आगे बढ सकते हैं। बहुत-सी बातें हम अनुभव से सीखते हैं। अनेक दूसरी बातें हम कही पढकर जानते हैं। जानी-सुनी बातें भी यदि हमारे मन मे नही बैठ जाती तो उनसे हम लाभ नही उठा सकते। काव्य एव सगीत रसानुभूति के क्षण मे ऐसी कुछ बातो को हमारे मन मे 'पषानक रेह' की भाँति बैठा देते हैं। कला हमे नया नही सिखाती, भाषण या उपदेश देकर नहीं, 'कान्ता सम्मित' की तरह। विद्यापति के पदो की यह विशेषता है कि बडी ही अनमोल बातें, जीवन की सकट वेलाओ मे ज्योतिदीप बनकर राह दिखानेवाली नीति, अनुभूति, सूक्ति आदि उनमे जडी होती हैं। कवि चाहे शृंगार के अत्यत मासल चित्र भी उपस्थित कर रहा हो, पर अवसर मिलते ही वह ऐसी किसी सूक्ति से अपने पद को अभिमंडित करने मे नही चूकता। वस्तुतः यह विद्यापति के काव्य का स्थायी सुर है। डॉ० उमेश मिश्र ने 'विद्यापति ठाकुर' नामक अपनी पुस्तक मे कुछ थोडे से पदो से सकलित ऐसी शताधिक मार्मिक उक्तियो की एक सूची प्रस्तुत की है। उस सूची को तिगुनी-चौगुनी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसी सूक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

---

[1] मि० म० वि०, ४०२, पृ० २८०।

काम पेम दुहु एक भए रहु कबहुँ की न करावे ।[१]
नागर से जे हितातहित जान ।[२]
भमर कुसुम न रहए अगोरि । केओ नहि बेकत करए निज चोरि ॥
× × ×
भनइ विद्यापति सखि कह सार । से जीवन जे पर उपकार ॥[३]
भलओ मन्द हो मन्दा समाज ।[४]
सामर नहि सरलासय होय ॥[५]
जे जत जैसन हृदय धर गोए । तकर तैसन तत गौरव होए ॥[६]
की जीवन जञें खंडित मान ।
दिवसक भोजने वर्ष न आट ॥[७]
अबुभ न बुभए भलहु बोल मन्द । भेक न पिवए कुमुद मकरन्द ॥
× × ×
दूध पटाइअ सींचिअ नीत । सहज न तेज करइला तीत ॥
× × ×
मन्दा रतन भेद न जान । बानर मुँह न सोभए पान ॥[८]
भनइ विद्यापति पुनु पहुँ आस । जावत रहत बेह तिल सास ॥[९]
हृदयक वेदन वान समान । आनक दुख आन नहि जान ॥[१०]
करम दोसे कनकेओ भेल काचे ।[११]
अपन करम अपने पए भुंजिअ जञो जनमान्तर होई ।[१२]
जइह पेम सुरतरु सुखदायक सइह भेल दुखदाता ।[१३]

---

१ मि० म० वि०, ३३७, पृ० २३६
२ वही, ३४२, पृ० २४२ ।
३ वही, ३४३, पृ० २४३; ३५०, पृ० २४७ ।
४ वही, ४०३, पृ० २८१ ।
५ वही, ४०१, पृ० २८० ।
६ वही, ४०७, पृ० २८३ ।
७ वही, ४१०, पृ० २८५ ।
८ वही, ४२३, पृ० २९३ ।
९ वही, ५१४, पृ० ३४९ ।
१० वही, ५१९, पृ० ३५१ ।
११ वही, ५२६ ।
१२ वही, ५३०, पृ० ३५७ ।
१३ वही, ५४२, पृ० ३६३ ।

पर सओ पेम बढ़ाए धनिहुँकुलधम्म छड़ाए ।[1]
जाडल बाह्मन तेजए सनान ।
जाडल मानिनि तेजए मान ।
जाडल राड घोपढी तान ।[2]
पितरक टाँड काज दहु फओन लह उपर चकमक सार ।[3]

ऐसी पक्तियाँ विद्यापति के प्राय हर दूसरे, तीसरे पद मे मिलेंगी, विशेषकर मान, अभिसार, विरह एव निर्वेद सम्बन्धी पदो मे। ऐसी पक्तियो का यदि कही अभाव है तो उन पदो मे जो केवल बगाल मे प्रचलित पदो की आकर पुस्तका मे सकलित हैं। इसका कारण यह है कि बगाल मे विद्यापति के पद वैष्णव रस के कृष्ण-राधा विषयक पदो के रूप मे लोकप्रिय हुए। स्वभावत उनमे जीवन के घात-प्रतिघात के लिए स्थान नही हो सकता था। कुछ विद्यापति के पद, कुछ उनके पदो के आवश्यकता एव समयानुसार परिवर्तित रूप, कुछ मात्र उनकी भणिता से युक्त भट्टभणन्त —चैतन्योत्तर बग मे सकलित—वैष्णव पदावलियो मे स्थान पाते रहे। उन पदो के आधार पर ही अभी तक अधिकतर विद्यापति सम्बन्धी समीक्षा-साहित्य तथा मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। स्वाभाविक था कि ऐसे समीक्षको का ध्यान वय-सन्धि, अगछवि, अभिसार और मिलन के चित्र प्रस्तुत करनेवाले पदो पर ही अधिक जाता। इस प्रकार विद्यापति के काव्य का सामाजिक पक्ष पूर्णतया भुला ही दिया गया। मित्र-मजूमदार महोदयो द्वारा सकलित केवल बगाल मे प्रचलित पदो मे विद्यापति के काव्य के सामाजिक पक्ष का कही आभास ही नही मिलता। उनमे 'राधा' के अगो का उतार-चढाव, तीव्र मिलन-कामना, नायिका विश्रमन तथा प्रथम मिलन के कामशास्त्रीय चित्रो की एक प्रदर्शिनी सजी है। यह प्रदर्शिनी भी आकर्षक एव मुग्धकर है, पर यही मात्र विद्यापति का सम्पूर्ण काव्य नही।

इससे किंचित् भिन्न 'नेपाल-पोथी', तरौणी तालपत्र तथा रामभद्रपुर पोथी से प्राप्त पदो की स्थिति है। इन आकर पोथिया से प्राप्त पदा मे चित्रित प्रेम जीवन के सामान्य धरातल से विच्छिन्न नही। सामाजिक पक्ष की इनमे उपेक्षा की गयी हो ऐसा नही जान पडता।

विद्यापति ने प्रेम एव यौवन के गीत गाये हैं, मुक्त कठ मे तथा उनमे तल्लीन होकर। रसराज का कोई भी पक्ष उनमे छूटा नही है। पर केवल बगाल मे प्रचलित

---

१ मि० म० वि०, २१२, पृ० १५६।
२ वही, २१५, पृ० १६०।
३ वही, ११७, पृ० ६१, और भी देखिए परिशिष्ट—'ख'।

पदो म जहाँ राधाकृष्ण के प्रेम-विहार की दुनिया बसी है, अन्य सूत्रो म प्राप्त पद करुणा की एक अतर्धारा से आर्द्र जान पडते है। यहाँ कृष्ण की मानिनी राधा का मनुहार है यहाँ सामन्ती युग की 'कुलकामिनी' की व्यथासजल मूक पुकार है। विद्यापति के प्रेमगीत की भावभूमि जीवन के यथार्थ की उपेक्षा नही करती है। नारी-पुरुष के जीवन मे दाम्पत्य पक्ष के अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ है, कवि इसे भूलता नही, न अपने नायक-नायिका को ही भूलने देना चाहता है। विशेषता उसकी यह है कि जीवन के अन्य कठोर-कोमल पक्षो की ओर सकेत करते हुए वह रसाभास नही होने देता। शृगार की रसानुभूति के क्रम मे ही मोतीचूर के लड्डू म मिले मिर्च के दाने की तरह, उसके ये सकेत उसके माधुर्य को घटाते नही किंच तल्ख और मधुर को एक साथ प्रस्तुत करके दोनों को ही और भी अधिक आस्वाद्य बना देते हैं।

प्रेमकाव्य म नायक-नायिका के पारस्परिक सम्बन्धो तथा उनकी अनुभूतियो के चित्रण होते हैं। किन्तु नायक-नायिका—कोई भी दम्पति—समाज से पृथक् अपनी एकाकी दुनिया नही बसा सकते। रोमानी काव्य मे

हमे जाना इस जग के पार,
जहाँ नयनो से नयन मिलें,
प्रीति के रूप सहस्र खिलें,
नयन दिखलाते निश्छल प्यार।[1]

जैसी भावनाएँ बहुत व्यक्त की जाती है। चण्डीदास के पदो मे भी ऐसे उद्गार मिलते हैं। पर रोमास की सतरगिणी कल्पना के क्षितिज पर ही कौंधती है, जिन्दगी की वास्तविकता से उसका सम्बन्ध नही जुट पाता। विद्यापति रोमास के कवि नही। प्रेमकाव्य के महान् प्रणेता है वे, पर उनके काव्य का प्रेम जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा करके नही विकसित होता। सामाजिक सम्बन्ध तथा लोकपक्ष की मर्यादा की अवहेलना करती हुई विद्यापति की नायिका बहुत कम स्थलो पर चित्रित की गयी है। कृष्ण की वशी की ध्वनि सुनते ही घर-द्वार, पति-पुत्र सब कुछ की चिन्ता छोड अस्तव्यस्त वस्त्रो मे ही सूर की गोपियाँ रात हो या दिन, दौड पडती है। विद्यापति ने ऐसे चित्र प्रस्तुत नही किये है। विद्यापति की परकीया को अवसर हम इस अनुताप मे दग्ध होते देखते हैं—'कुलकामिनि भए कुलटा भेलहुँ'। विद्यापति ने मुरली की चर्चा केवल तीन पदो मे की है, यमुना तट पर होने वाले रास का चित्रण केवल एक पद मे तथा उसका सकेत या उल्लेख तीन पदो मे। विद्यापति द्वारा वर्णित रास नृत्य-सगीत तक ही सीमित रहता है।

विद्यापति के प्रेम वर्णन मे सबसे अधिक लोक-मर्यादा की उपेक्षा उनके अभिसार सम्बन्धी पदो मे मिलती है। शायद इसके बिना उस युग का शृङ्गार-काव्य पूरा ही नही हो सकता था।

---

[1] अप्सरा—प० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।

अभिसार के पदो मे नवप्रणय की उद्दामता का चित्रण करना कवि का अभीष्ट प्रतीत होता है। कवि ने एक पद मे कहा भी है—

काम पेम दुहु एक मत भए रहु
कखने की न करावे।[1]

पाश्चात्य देशों मे मनोजन्मा देवता को अन्धा चित्रित किया गया है, हमारे यहाँ उसे मदन या मन्मथ कहते हैं। अत. मदनमोहन का प्रेम यदि सारी चेतना को अभिभूत कर ले तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?

अभिसार के पदों (विशेषकर पावस परिवेश वाले पदों) मे नायिका के यमुना की उमड़ती धारा को हाथों के सहारे तैर कर माधव मे मिलने आने का उल्लेख कवि ने किया है। एक पद मे यह अपूर्व साहस 'परकीयाभाव' की कसौटी है, यह संकेत मिलता है—

किछु न काहुक डर सुनल जुवति वर
एहि परकीआ भावे।[2]

परकीया प्रेम शृंगार-काव्य का वर्ण्य है, पर 'परकीयाभाव' तो गौड़ीय वैष्णव रस साहित्य की उद्भावना है। सम्भव है विद्यापति के पद मे यह अन्तिम पंक्ति परवर्तीकाल मे जुड़ गयी हो।

अभिसार-प्रसग के पदों को मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाले प्रेम-चित्रण का उदाहरण मानकर उन्हे आवश्यकता से अधिक महत्व देना ठीक नही। शृगार की शास्त्रीय पद्धति मे अभिसार महत्वपूर्ण ही नहीं आवश्यक भी माना जाता है। शृ गार का सागोपाग चित्रण करनेवाला कवि इसकी उपेक्षा नही कर सकता था। विद्यापति से पूर्व ऐसे चित्रण की प्रेम-साहित्य मे तथा लोकगीतो मे सुदीर्घ परम्परा बन चुकी थी।

महाप्रभु चैतन्यदेव ने कृष्णार्पित प्रेम को ही प्रेम का गौरव दिया है। विद्यापति मानवीय प्रेम के गायक हैं, उसके समस्त लीला-विलास के चित्रकार हैं। उसके भाव पक्ष के साथ उसके मासल पक्ष का चित्रण भी उन्होंने किया है। पर "सबे विपरीत कराव अनग" लिखकर बरसाती नदी के उपकूलो को जलमग्न कर बन्धनहीन, सीमाहीन होने के दोष का मानो प्रक्षालन कर दिया है।

विद्यापति का नायक चाहे वह "सोलह सहस गोपीपति" कृष्ण हो, चाहे "एकादस अवतार" बहुवल्लभ राजा शिवसिंह हो या कोई सामान्य ग्रामीण तरुण, वह रसलोभी पहले है, प्रेमी बाद मे, बल्कि प्रेम तो उसके रसलोभ का आनुषंगिक परिणाम है। पर विद्यापति की नायिका के लिए प्रेम एक खिलौना मात्र नही। उसके लिए तो उसका प्रेम उसका सम्पूर्ण जीवन है। प्रेम की गम्भीरता तथा उसकी पवित्रता,

---

[1] मि० म० वि, ३३७, पृ० २३६।
[2] वही, ३३६, पृ० २३८।

जिसका अभिन्न सम्बन्ध लोकमंगल से है, विद्यापति की नायिका के मनोभावों में अधिक प्रकट हुई है। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

(क) माधव जनु होअ प्रेम पुराने।
नव अनुराग ओल धरि राधव—जे न विघट मोर माने ॥[1]

(ख) सखि हे मन्द प्रेम परिनामा
× × ×
प्रेमक कारन जीव उपेखिए जग जन के नहि जाने।[2]

(ग) सुपुरुष कबहुँ न तेजए नेह।[3]

(घ) सेहो पिरीति अनुराग बखानइते जे तिल-तिल नूतन होए।[4]

(ङ) सुपुरुष बाचा सुपहुँक सिनेह—कबहु न विचल पखानक रेह ॥[5]

(च) कन्त दिगन्तर जाहि न सुमर, की तसु रुप की गूने ॥[6]

(छ) जुग जुग जीवथु बसथु लाख कोस हमर अभाग हुनक नहि दोस।[7]

(ज) पहु संग कामिनि बहुत सोहागिनी चंद निकट जइसे तारा।[8]

(झ) पहुक बचन छल पाथर रेख। हृदय धयल नहि होयत विसेख ॥
नागर भमर दुहुक एक रीत। रस लए निरसि करए फिरि तीत ॥

(ट) जातकि केतकि कुन्द सहार। गरुअ ताहेरि पुनः जाहि निहार ॥
× × ×
वैभव गेले मलाहु भति भास। अपन पराभव पर उपहास ॥[9]

निम्नांकित पद में विद्यापति की प्रेम-भावना का उदात्त उज्ज्वल रूप प्रस्तुत हुआ है—

फूल एक फुलवारि लाओल मुरारि। जतने पटओलन्ह सुवचन वारि ॥
चहुँदिसि बाँधल्नि सीलक आरि। जीव अवलम्बन करु अवधारि ॥
तथहु फुलल फुल अभिनव प्रेम। जसु मूल लहए न लाखहु हेम ॥
अति अपरुब फुल परिनत भेल। दुइ जीव अछल एक भए गेल ॥
पिसुन कीट नहि लागल आहि। राहस फल देल विहि देल निरवाहि ॥
विद्यापति कह सुन्दर सेह। करिअ जतन फलमत हो जेह ॥[10]

---

[1] वि० रा० भा० प०, २३१, पृ० ३२६।
[2] मि० म० वि०, ६४८, पृ० ४२८।
[3] वही, ६४६, पृ० ४२६।
[4] वही, ७६८, पृ० ४६८।
[5] वही, ५५७, पृ० ३७३।
[6] वही, ५५६, पृ० ३७२।
[7] वही, ५१६, पृ० ३५१।
[8] वही, ५०३, पृ० ३४२।
[9] वि० रा० भ० प०, १६२, पृ० २६२।
[10] मि० म० वि०, ४४६, पृ० ३०६।

प्रेम के इस ऊँचे धरातल पर पहुँचने पर लोकमगल की ओर से विमुखता नही रह सकती। अन्तिम पक्ति मे कवि ने सौन्दर्य की भी जो कसौटी निर्धारित की है वह उसकी सामाजिक चेतना का परिचायक है। सुन्दर वही है जो सुफलदायक हो— कवि की यह स्थापना लोकमगल का मत्रोच्चार है।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति के प्रेमकाव्य मे जीवन के सामाजिक पक्ष की उपेक्षा नही की गयी है।

(२) विद्यापति के प्रेमकाव्य का आदर्श है "धम्म सहित सिंगार रस"।

(३) 'पुरुषपरीक्षा', 'कीर्त्तिलता', 'कीर्तिपताका' मे विद्यापति ने पुरुष जीवन के आदर्श प्रतिष्ठित किये हैं। गीतिपदो मे नारी जीवन की माधुरी, व्यथा एव विवशता का चित्रण किया गया है।

(४) विद्यापति प्रेम और सौन्दर्य के कवि है, पर उनके गीतो की रत्नमाला मे जीवन की विभिन्न स्थितियो, उसके घात-प्रतिघात की मार्मिक अनुभूतियो के मोती भी गुंफित है।

(५) विद्यापति सामन्ती युग के कवि है। उनके पीछे हजारो वर्ष की शृङ्गार काव्य की परम्परा थी। "बहुवल्लभ कन्त" उस युग का आदर्श तथा प्रचलन था। उनके प्रेमगीतो मे सामाजिक पक्ष का मूल्याकन करते समय इस परिप्रेक्ष्य को नही भूलना होगा।

(६) विद्यापति ने दाम्पत्य प्रेम की गम्भीरता, पवित्रता तथा उसकी महत्ता के गीत भी गाये है।

(७) विद्यापति के प्रेमगीतो मे वासना की उत्कट गन्ध भी है, पर मूक-मुखर व्यथा की सजलता भी कम नही।

(८) विद्यापति के काव्य मे पुरुष के बहुवल्लभत्व को पूर्ण स्वीकृति मिली है, पर नारी को अपने प्रिय के प्रति सच्ची रहने की प्रेरणा भी दी गयी है।

(९) केवल बगाल मे प्रचलित विद्यापति के पदो मे नारी जीवन की व्यथा या *विवशता की अभिव्यक्ति उतनी नही मिलती है जितनी मिथिला तथा नेपाल मे प्राप्त* आकर पोथियो के पदो मे। बगाल मे लोकप्रिय पदो मे विद्यापति के काव्य का सामाजिक पक्ष गौण ही हैं।

(१०) विद्यापति के सम्पूर्ण साहित्य, उनके व्यक्तित्व तथा उनके युग का अध्ययन करने के उपरान्त प्रश्न यह नही रह जाता कि विद्यापति शृङ्गार के कवि हैं या भक्ति के, निष्कर्ष यह प्रस्तुत होता है कि वे अपने युग के सर्वाङ्गीण जीवन के उन्मुक्त गायक है। यो तो विद्यापति ने प्रेम और सौन्दर्य के गीत ही गाये हैं, पर इन्ही के अन्तर्गत जीवन के नाना क्रिया-व्यापार, उसके नानाविध पटाक्षेप, उसके असीमित प्रसार का आकलन भी करते चले हैं।

विद्यापति के प्रेमकाव्य का प्रभाव

कवि एव काव्य की महत्ता की एक कसौटी यह भी मानी जाती है कि उनका प्रभाव कितना व्यापक एव गहरा रहा है। वाल्मीकि से लेकर बिहारी तक जितने भी हमारे देश के महान् कवि हुए हैं उनकी वाणी लोकमानस मे बडी ही गहराई तक उतरी है। हमारे कई महाकवियो की रचनाएँ लोकजीवन के साथ अभिन्न बन गयी हैं। उनकी कितनी ही पक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन गयी हैं। उनके काव्य मे स्थापित जीवनादर्श हमारे जीवनादर्श बन गये हैं। उनके काव्य मे सचित युग-युग के अनुभव हमारे मार्ग मे रत्नदीप की तरह सतत् ज्योति विकीर्ण करते रहते है। उपदेशक की शिक्षा हमारे मन मे जल्दी नही उतरती पर कवि सौन्दर्यानुभूति के क्षण मे कुछ कड़वी बात भी हमे कह देता है, तो हम उसे अनजाने ही अगीकृत कर लेते हैं। कदाचित् इसी हेतु कवि को ससार का "अनजान विधायक"[१] कहा गया है। यह अस्वाभाविक एव अहेतुक भी नही।

कवि हमारे भाव-जगत् की तन्त्रियो को झनझना देता है। उसकी वाणी सहृदय-सवेद्य होती है। वह हमारे हृदय की धडकन को किंचित् अधिक तेज कर देता है। काव्य के रस का आस्वाद हम मधुमती भूमिका मे करते हैं—जहाँ मानव मन की एक ऐसी अवस्था रहती है जिसमे वह अपने वर्तमान परिवेश को भुलाकर किसी निराले लोक मे क्षण भर के लिए पर्यवसित हो जाता है। जिस प्रकार तपाकर लाल किये हुए लोहे पर जैसी चाहे आकृति छाप दी जा सकती है, उसी प्रकार मन की इस स्थिति मे ग्रहण की हुई बात उस पर हमेशा के लिए बैठ जाती है। सच्ची और प्रखर अनुभूति को जहाँ समर्थ अभिव्यक्ति मिलती है तो ऐसे काव्य का सृजन होता है। समर्थ कवि की वाणी मे वह शक्ति होती है कि हमारे मन मे चिरकाल तक गूँजती रहे।

काव्य यदि जीवन का दर्पण है तो सामाजिक जीवन भी काव्य का वैसा ही दर्पण होता है। एक ही कवि की वाणी विभिन्न सामाजिक परिवेश मे विभिन्न प्रति-

---

१ "Poets are unacknowledged legislators of the world."—*Shelley*

(क) हिन्दी गीति-काव्य

"विद्यापति के काव्य के प्रेरणास्रोत" शीर्षक प्रकरण मे हमने देखा है कि गीति-पद का शिल्प अपभ्रंश एवं सिद्धो की रचनाओ से मैथिली मे आया। विद्यापति के लगभग एक शती पूर्व ज्योतिरीश्वर एवं उमापति[१] के नाटको ('धूर्त्तसमागम' तथा 'पारिजातहरण' क्रमशः) मे गीतिपद मिलते है। इस प्रकार मैथिली मे विद्यापति से पूर्व ही गीतिपद की परम्परा विकसित हो चुकी थी ऐसा जान पड़ता है। फिर भी विद्यापति को ही "हिन्दी गीति-काव्य का आदि गुरु"[२] मानने के कारण हैं। ज्योतिरीश्वर एवं उमापति की रचनाएँ मिथिला से बाहर पहुँच पायी हो इसका कोई प्रमाण नही। फिर उनके गीतिपद सख्या मे इतने कम हैं कि उनको किसी नई गीति-परम्परा का मूल स्रोत मानना ठीक नही। मिथिला के बाहर किसी मध्यकालीन लेखक आदि ने उनका कोई उल्लेख भी नही किया है। दूसरी ओर विद्यापति का उल्लेख अबुल-फजल की 'आईने अकबरी' मे, जो सोलहवी सदी का सुप्रसिद्ध अकबरकालीन इतिहास ग्रन्थ है, किया गया[3] है। विद्यापति के प्रेमगीत तथा नचारी पूर्वीय भारत मे लोकप्रिय स्थानीय संगीत की एक प्रख्यात विद्या बन चुके थे, यह 'आईने-अकबरी' मे उनके उक्त उल्लेख से सिद्ध होता है।

अबुलफजल द्वारा किये गये उल्लेख से कई बातें स्पष्ट होती हैं। इनमे मुख्य यह है कि विद्यापति के प्रेमगीत तथा उनकी 'नचारी' का प्रचार दूर-दूर तक हो चुका था। इसी समय के लगभग चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तो के साथ विद्यापति के पद ब्रजमडल के करील-कुञ्जो मे पहुँच कृष्णसलिला यमुना के कलनिनाद मे गूँज उठे होंगे। पुष्टिमार्गी कृष्णभक्त कवियों को अपने लीलाधर कृष्ण की सरस लीलाओं का गान एव कीर्तन की आयोजना करते समय "राधामाधव" की प्रेमक्रीड़ा के गीतो का अशेष भाडार, इस प्रकार, सहज ही मिल गया, जिनसे प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण कर इन भक्त कवियो ने गोपी-कृष्णलीला के रसमय गीतिपदो की सहस्रधारा बहा दी। भक्त सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कवियो के पदो मे भाव एवं वस्तुविधान, अलकार-योजना तथा अभिव्यंजना प्रणाली मे विद्यापति के पदो से जो अद्भुत साम्य मिलता है उसका यही कारण है।

साथ ही कृष्णभक्ति शाखा के पद-साहित्य पर विद्यापति का प्रभाव उन्हे कृष्णभक्त कवियो की परम्परा मे स्थान नही दिला देता। विद्यापति मानव जीवन के गायक हैं। युद्ध, प्रेम, सौन्दर्य और भक्ति के गीतकार हैं। देश, काल, रुचि एवं प्रकृति

---

१ भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० २३१।

२ विद्यापति : एक तुलनात्मक समीक्षा—प्रो० जयनाथ नलिन, पृ० ४६।

3 "Those in the Tirhut Language called *Lachari* were composed by Bidyapati and are on the violence of the passion of love."
—Gladwin's Translation of "*Ain-I-Akbari*" by Abul Fazal

क्रिया उत्पन्न करती है। लकडी पर आघात करने से भकार नही उत्पन्न हो सकती। लयबद्ध सगीतात्मक भकार के लिए वीणा के सुलभे तारो की अपेक्षा होती है। कवि की वाणी को समाज अपने अनुरूप ही ग्रहण करता है। सामाजिक परिवेश अनुकूल नही होने पर बडे ही समर्थ कवियो की वाणी भी उस पर असर नही कर पाती। काव्य को सहृदय-सवेद्य जिसने कहा होगा, श्रोता के आनुकूल्य की बात भी उसके मन मे अवश्य ही रही होगी।

शृ गार और भक्ति मे, रसिकता और प्रेम मे मूलभूत भेद है, यह विवाद की बात नही। पर भक्ति के कतिपय सम्प्रदायो के साहित्य की भाषा शृ गार की भाषा से अभिन्न है तथा अनेक देश एव कालो मे रसिकता को ही प्रेम मान लिया गया। फिर युग-रुचि के अनुसार शृ गार-गीत भक्ति-भजनावली बन कर भक्तो के मन मे आध्यात्मिक अनुभूति का आस्वाद कराते रहे हो अथवा भक्ति-भावना मे विभोर भक्त जनो के गान शृ गारात्मक प्रेमगीत जैसे लगते हो—दोनो ही स्तम्भित होने या विस्मित होने का कोई कारण नही। कवि की वाणी दोनो ही अवस्थाओ मे समर्थ है, बल्कि यो कहिए कि वह तो स्वयं निरपेक्ष है, नीलोत्पल या रक्तकमल के समान, जी चाहे उसे देवस्थल पर चढाइए या पचशायक का प्रखर तीर बना डालिए। दोनो ही स्थान पर उसकी शोभा एव सौरभ एक समान रहेगे। हमारे कुछ मध्यकालीन कवियो की वाणी ऐसी ही थी। जयदेव और विद्यापति इन कवियो मे अग्रगण्य हैं।

जयदेव के "गीतो के गीत" 'गीतगोविन्द' की चर्चा के बिना मध्यकालीन धर्म-साधना, प्रेमसाधना या काव्यसाधना की कहानी शुरू ही नही होती। अभिनव जयदेव का विरद लेनेवाले विद्यापति भी चण्डीदास के साथ एक विस्तृत क्षेत्र मे एक नवीन काव्यधारा के प्रवर्तक हैं। विद्यापति का प्रभाव एक या दो पीढियो पर नही, एक या दो प्रदेशो पर नही, एक या दो भाषाओ पर नही, चार-पाँच सदियो से, चार-पाँच प्रदेशो पर एव चार-पाँच भाषाओ पर न्यूनाधिक रूप से पडता रहा है। मिथिला, बगभूमि, असम और उत्कल मे विद्यापति के गीत लोकप्रिय रहे हैं। बाद मे सुदूर ब्रजमडल के करीलकुञ्जो एवं यमुना के कूल-कछारो पर भी उनकी गु जन सुनाई पडी जहां भक्त शिरोमणि सूर उन्हें सुनकर अनुप्राणित हो उठे होंगे। विद्यापति की गीति-माधुरी ने ब्रजबुलि को जन्म दिया, बगला के पद-साहित्य को प्रभावित किया, मैथिली का समस्त परवर्ती साहित्य विद्यापति के ही साँचे मे ढला हुआ है, हिन्दी के गीति-काव्य की सरणी उन्ही से प्रारम्भ होती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दो मे—

"....आगे का हिन्दी साहित्य जिस सरणी को लेकर चला और जिसमे उसका प्रभूत वाङ्मय निर्मित हुआ, वह विद्यापति की ही सरणी थी। विद्यापति ने जिन गीतो का निर्माण किया उन गीतो की परम्परा उसी रूप मे भक्तिरजित होकर कृष्ण-भक्त कवियो मे दिखाई देती है।"[1]

---

[1] विद्यापति, भूमिका—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (ले० सूर्यबलीसिंह तथा लाल देवेन्द्रसिंह), पृ० ७–८।

(क) हिन्दी गीति-काव्य

"विद्यापति के काव्य के प्रेरणास्रोत" शीर्षक प्रकरण मे हमने देखा है कि गीति-पद का शिल्प अपभ्रंश एव सिद्धो की रचनाओ से मैथिली मे आया। विद्यापति के लगभग एक शती पूर्व ज्योतिरीश्वर एव उमापति[1] के नाटको ('धूर्त्तसमागम' तथा 'पारिजातहरण' क्रमश) मे गीतिपद मिलते हैं। इस प्रकार मैथिली मे विद्यापति से पूर्व ही गीतिपद की परम्परा विकसित हो चुकी थी ऐसा जान पडता है। फिर भी विद्यापति को ही "हिन्दी गीति-काव्य का आदि गुरु"[2] मानने के कारण हैं। ज्योतिरीश्वर एव उमापति की रचनाएँ मिथिला से बाहर पहुँच पायी हो इसका कोई प्रमाण नही। फिर उनके गीतिपद सख्या मे इतने कम हैं कि उनको किसी नई गीति-परम्परा का मूल स्रोत मानना ठीक नही। मिथिला के बाहर किसी मध्यकालीन लेखक आदि ने उनका कोई उल्लेख भी नही किया है। दूसरी ओर विद्यापति का उल्लेख अबुल-फजल की 'आईने अकबरी' मे, जो सोलहवी सदी का सुप्रसिद्ध अकबरकालीन इतिहास ग्रन्थ है, किया गया[3] है। विद्यापति के प्रेमगीत तथा नचारी पूर्वीय भारत म लोकप्रिय स्थानीय सगीत की एक प्रख्यात विधा वन चुके थे, यह 'आईने-अकबरी' मे उनके उक्त उल्लेख से सिद्ध होता है।

अबुलफजल द्वारा किये गये उल्लेख से कई बातें स्पष्ट होती हैं। इनमे मुख्य यह है कि विद्यापति के प्रेमगीत तथा उनकी 'नचारी' का प्रचार दूर-दूर तक हो चुका था। इसी समय के लगभग चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तो के साथ विद्यापति के पद ब्रजमडल के करील-कुञ्जो मे पहुँच कृष्णसलिला यमुना के कलनिनाद मे गूँज उठे होंगे। पुष्टिमार्गी कृष्णभक्त कवियो को अपने लीलाधर कृष्ण की सरस लीलाओ का गान एव कीर्तन की आयोजना करते समय "राधामाधव" की प्रेमक्रीडा के गीतों का अशेष भाडार, इस प्रकार, सहज ही मिल गया, जिनसे प्रेरणा एव प्रभाव ग्रहण कर इन भक्त कवियो ने गोपी-कृष्णलीला के रसमय गीतिपदो की सहस्रधारा बहा दी। भक्त सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कविया के पदो मे भाव एव वस्तुविधान, अलकार-योजना तथा अभिव्यजना प्रणाली मे विद्यापति के पदा से जो अद्भुत साम्य मिलता है उसका यही कारण है।

साथ ही कृष्णभक्ति शाखा के पद-साहित्य पर विद्यापति का प्रभाव उन्हे कृष्णभक्त कवियो की परम्परा मे स्थान नही दिला देता। विद्यापति मानव जीवन के गायक हैं। युद्ध, प्रेम, सौन्दर्य और भक्ति के गीतकार हैं। देश, काल, रुचि एव प्रकृति

---

[1] भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा—प० बलदेव उपाध्याय, पृ० २३१।

[2] विद्यापति : एक तुलनात्मक समीक्षा—प्रो० जयनाथ नलिन, पृ० ४६।

[3] "Those in the Tirhut Language called *Lachari* were composed by Bidyapati and are on the violence of the passion of love.'
—Gladwin's Translation of "*Ain-I-Akbari*" by Abul Fazal

की प्रेरणा से उनके पद गौड और नदिया मे, उत्कल और कामरूप मे वैष्णव भक्ति रस के प्रेमगीत के रूप मे जनमानस द्वारा अपनाये गये। वगभूमि होते हुए, भक्ति एव "कामगधहीन" प्रेम की स्वर्गीय रजना से दिव्य बने हुए वे सुदूर ब्रजभूमि पहुँचे, वहाँ भी जलवायु अनुकूल मिली। अत समीर की हर हिलोर पर उनकी गूँज बस गयी, बाद मे पुष्टिमार्गी पदकर्ता आये, उन्होने भी विद्यापति के पदो को कुछ मैथिली, कुछ बगला, कुछ 'ब्रजबुलि' के 'अपरूप' वेश मे देखा-सुना, उनके कुछ भाव, कुछ ध्वनि, कुछ सुरताल ने उनका भी मर्मस्पर्श किया, फिर उनके भक्ति-विभोर हृदय से जो पद-साहित्य की स्रोतस्विनी फूटी उसमे मैथिलकोकिल की काकली कितनी थी और श्रीमद्‌भागवत मे वर्णित लीलाओ का चित्रण कितना, यह पृथक् करना कठिन है।

सूर के पदो मे विद्यापति के पदो के साथ कितनी समता है इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(1) विरह की पराकाष्ठा पर विक्षिप्ति उसकी एक विरहदशा है, विरहिणी को इस अवस्था मे अपनी सुधबुध या सूझ-बूझ नही रह जाती है, पागल की-सी दशा उसकी हो जाती है। विद्यापति ने विरहिणी की इस दशा का चित्रण करते हुए एक पद मे लिखा है कि नायिका नायक का अनुक्षण ध्यान करती हुई नायकमय हो जाती है, अपने को ही नायक समझने लगती है, पर इस स्थिति मे भी उसे चैन नही, नायक रूप मे वह नायिका के विरह मे सन्तप्त होती है। अनन्य प्रेम का, विरहिणी की चरम व्याकुलता का अति सजीव तथा मर्मस्पर्शी चित्रण इस पद मे मिलता है। पद निम्नलिखित है—

> अनुखन माधव माधव रटइत सुन्दरि भेलि मधाई।
> ओ निज भाव सोभावहि विसरल आपन गुन लुबुधाई॥
> माधव अपरूप तोहर सनेह।
> अपने विरह अपन तनु जरजर जिवइते भेल सन्देह॥
> भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छलछल लोचन पानि।
> अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा वानि॥
> राधा सयँ जब पुन तहि माधव, माधव सयँ जब राधा।
> दारुन प्रेम कवहि नहि टूटत बाढत विरहक बाधा॥
> दुहुँ दिस दारु दहन जैसे दगधइ आकुल कीट परान।
> ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कवि विद्यापति भान॥[1]

इससे मिलता-जुलता हुआ सूर का पद निम्नलिखित है—

> सुनौ स्याम यह बात और कोउ क्यो समुझाय कहै।
> दुहुँ दिसि की रति विरह विरहिनि कैसे कै जु रहै॥

---

[1] मि० म० वि०, ७५७, पृ० ४६१।

जब राधा तबहि मुख माधो माधो रटति रहै।
जब माधो होई जात सकल तनु राधा विरह बहै ॥
उभय उग्र दौ दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै।
सूरदास अति विकल विरहिणी कैसेहु सुख न लहै ॥

उपर्युक्त दोनो पदो मे व्यक्त भाव बिलकुल एक-से हैं, दोनो छोर पर जलती हुई लकडी के भीतर के कीट की व्याकुलता से विरहिणी के प्राणों की आकुली की उपमा दोनो पदो में एक-सी ही है। विद्यापति के पद की पाँचवी और छठी पंक्ति तथा सूर के पद की तीसरी-चौथी पंक्ति के भाव ही नही शब्द भी लगभग एक ही हैं। यो पूर्ववर्ती कवि की किसी रचना से भावसाम्य होने मात्र से परवर्ती कवि की कोई रचना उसके अनुकरण पर ही लिखी गयी हो यह आवश्यक नही, पर इन दोनों पदो में जैसा साम्य है तथा व्रजभूमि निवासी सूर के लिए विद्यापति के पदो से, विशेषकर उन पदो से जो बगभूमि मे अधिक प्रचलित थे, काफी परिचित होने की जो स्थापना ऊपर सिद्ध की गयी है, उन्हे देखते हुए यह कहना अयुक्तिसगत नही कि सूर के उपर्युक्त पद पर विद्यापति के पद की स्पष्ट छाप है। साथ ही विद्यापति के "छलछल लोचन पानि", "आधा-आधा बानि", "आकुल कीट परान", "कातर दिठि" आदि पदो मे जो मार्मिकता भरी हुई है वह सूर की "सीतलताई चहै" या "विरहिणी कैसेहु सुख न लहै" मे नही आ पायी है। एक में विरहिणी की प्राणाकुली तथा कातरता साकार हो उठी है, दूसरे मे उसका आभास भर होता है।

(ii) वासन्ती समीर के मादक स्पर्श से वृन्दावन का कण-कण सुख-विभोर हो उठता है। कृष्ण ऐसे समय मे गोपियो के सग विहार करते फिरते हैं। कालिन्दी का पुलिन, कोयल की उन्मादना भरी कूक, फूलती रसाल की डालें, प्रणय-आमत्रण देते हुए लता-वितान—इस मनोहर परिवेश मे किसका मन नही झूम उठेगा ? विद्यापति ने कृष्ण के गोपियो के सग सामूहिक रूप से विहार करने के चित्र तीन-चार पदो मे ही प्रस्तुत किये हैं, पर हैं वे बडे ही सजीव तथा रसमाधुरी मे ओतप्रोत। एक पद उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है—

नव वृन्दावन नव नव तरुगन नवनवविकसित फूल।
नवल वसन्त नवल मलयानिल मातल नव अलिकूल ॥
विहरइ नवल किसोर।
कालिन्दि पुलिन कुंज वन सोभन नवनव प्रेम विभोर ॥
नवल रसाल मुकुल मधुमातल नव कोकिलकुल गाव।
नवजुवती जन चित उमताअइ नवरस कानन धाव ॥
नव जुवराज नवल नव नागरि मिलए नवनव भांति।
निति ऐसन नवनव खेलत विद्यापति मति भांति ॥[1]

[1] मि० म० वि०, ७१८, पृ० ४६८।

रास-रग का चित्रण सम्बन्धी सूर का एक पद—

विहरत रास रंग गोपाल।
नवल स्यामा संग सोहति, नवल सब ब्रज बाल॥
सरद निसि अति नवल उज्ज्वल, नवलता बनधाम।
परम निर्मलपुलिन जमुना, कल्पतरु विसराम॥
कोस द्वादस रास परिमित, रच्यौ नन्दकुमार।
सूर प्रभु सुख दियौ निसि रमि काम कौतुक सार॥[1]

दोनो पदो का अवलोकन-परीक्षण करने पर दोनो की समानता एव विभिन्नता प्रकट हो जाती हैं। दोनो पदो मे पृष्ठभूमि, भाव तथा शब्द बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। 'नवल', 'नव' आदि शब्दो की दोनो पदो मे बारबार आवृत्ति की गयी है। 'नवलकिसोर' तथा 'नवजुवतिगन' का आनद-विहार दोनो पदो का वर्ण्य है। सूर ने यद्यपि रास का वर्णन किया है पर अन्तिम पक्ति मे "सूर प्रभु सुख दियो निसि रमि काम कौतुक सार" लिखकर कृष्ण का गोपियो के साथ उन्मुक्त विहार करने का सकेत भी कर दिया है जो विद्यापति के पद की अतिम दो पक्तियो मे व्यक्त भाव की पुष्टि कर देता है। इतनी समानता के बाद दोनो पदो मे मूलभूत विभिन्नता भी कम नही, सूर का पद यमुना पुलिन पर कृष्ण की रासलीला सम्बन्धी है, जिसका स्रोत श्रीमद्भागवत है। अत सूर ने शरद् पूनो की रात का उल्लेख किया है, बारह कोस विस्तृत क्षेत्र मे रसिकराज ब्रजराज का यह रास होता है, इसका उल्लेख कर उस पर अलौकिकता की रंजना चढा दी है, जबकि विद्यापति ने 'नवलकिसोर' का 'नवजुवतिजन' के साथ वसन्त के मादक परिवेश मे आनन्द-विहार का चित्र प्रस्तुत किया है। यो इन दोनो पदो पर 'गीतगोविन्द' की निम्न पक्तियो की छाया स्पष्ट है—

विहरति हरिरिह् नवल वसन्ते।
नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते॥
उन्मद मदनमनोरथ पथिकवधूजन जनित विलापे।
अलिकुल संकुल कुसुम समूह निराकुल वकुल कलापे॥
× × ×
स्फुरदति मुक्तलता परिरम्भण मुकुलित पुलकित चूते।
वृंदावनविपिने परिसर परिगत यमुना जल पूते॥[2]

(iii) नायिका का सौन्दर्य-वर्णन कवियो का प्रिय विषय रहा है। अप्रस्तुत योजना द्वारा नायिका की अगछवि, उसके नखशिख, उसके सौन्दर्य-लावण्य की पूरी आकृति खडी कर देने मे हमारे कवियो की वृत्ति खूब रमती रही है। ऐसे प्रसंगो मे

[1] सूरसागर, पृ० ६५०।
[2] गीतगोविन्द—जयदेव (सपादक प० विनयमोहन शर्मा), प्रबन्ध ३, पृ० ८८।

भाव-गांभीर्य की अपेक्षा कविशिल्प ही अधिक मुखर हो उठता है। विद्यापति की कविता भावप्रधान है अतः कविशिल्प का कौशल मात्र प्रदर्शित करनेवाली ऐसी रचनाएँ उन्होंने बहुत कम ही लिखी है। पर उनके सौन्दर्य-चित्रण प्रसंग मे उनके कतिपय पद अपने क्षेत्र मे अन्यतम हैं। काव्यरसिक सूर उनसे कितना अधिक प्रभावित हुए थे, दोनों महाकवियों के निम्नांकित पदो से स्पष्ट हो जायगा—

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आनि संभारल देखलि नयन सरूपे॥
पल्लवराज चरन-जुग सोभित गति गजराजक भाने।
कनक कदलि पर सिंह संभारल तापर मेरु समाने॥
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हारधार बह सुरसरि तेँ नहि कमल सुखाई॥[१]

इसी परम्परा का एक अन्य पद—

साजनि अकथ कहो नहिं जाय।
धवल अरुन ससिक मंडल भीतर रह नुकाए॥
कदलि उपर केहरि देखल—केहरि मेरु चढ़ला।
ताहि उपर निसाकर देखल—कीर ता ऊपर बइसला॥
कीर उपर कुरंगिनि देखल चकित भमय जनी।
कीर कुरंगिनि उपर देखल भमर, ता उपर फनी॥
एक असंभव आओर देखल जलबिना अरविन्दा।
बेवि सरोरुह उपर देखल जइसन दुतिअ चन्दा॥
भन विद्यापति अकथ कथा, इ रस केओ नहिं जान।
राजा सिवसिंह रुपनरायन लखिमा देइ रमान॥[२]

दोनो पदो मे उपमानो को ही सजा कर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि नायिका का नखशिख वर्णन हो जाता है। प्रथम पद मे विद्यापति ने प्रथम छः पंक्तियों मे रूपकातिशयोक्ति मे अंगछवि का वर्णन करके तदुपरान्त उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का सहारा लिया है। 'सारंग' शब्द को लेकर कुछ शाब्दिक कलाबाजी भी दिखायी है। दूसरे पद मे विशुद्ध रूपकातिशयोक्ति है। प्रथम पद की चौथी-पाँचवी पंक्तियो मे कारण-कार्य समर्थन करके काव्यलिंग अलंकार से भी पद को मंडित कर दिया गया है। इस प्रकार यह पद काव्यालंकारो की रत्नमाला है, अलंकारो की जगमगाहट एवं झंकार मे बेचारी नायिका का तो कुछ पता ही नही चलता, यदि कवि ने "सारंगबयनी नयन पुनि सारंग" आदि कहकर उसकी याद नहीं दिलायी होती।

---

[१] मि० म० वि, २५।
[२] वही, २६।

सूर का इनसे मिलता-जुलता पद भी प्रस्तुत है—

अदभुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर, गिरि पर फूलत कंज पराग।
रुचिर कपोत वसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अंग अंग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियो सुधा रस, मानो अधरनि के बड़ भाग॥[1]

उपर्युक्त पद यदि किसी अन्य कवि का होता तो विद्यापति के पदो के साथ उन्हें पढने पर कोई भी यही कह सकता था कि परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि के भाव, भाषा, शिल्प—सब का अविकल अनुकरण किया है, इनमे अपना उसका कुछ भी नही। दोनो की रचनाओ मे इतनी अधिक समीपता है, इतना अधिक साम्य है कि इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नही रहा जा सकता कि दूसरे पर पहले की छाया पूर्णरूप से पडी है। निम्नाकित पद भी देखिए—

सग सोभित वृषभानु किसोरी।
सारंग नैन, वैन वर सारंग, सारंग वदन, कहै छवि कोरी॥
सारंग अधर, सुधर कर सारंग, सारंग गति, सारंग मति मोरी।
सारंग वरन, पीठि वर सारंग, सारंग गति, सारंग कहि थोरी॥
सारंग पुलिन, रजनि रुचि सारंग, सारंग अंग सुभग भुजजोरी।
विहरत सघन कुंज सखि निरखति, सूर स्याम घन, दामिनि गोरी॥[2]

दोनो मे भेद इतना ही है कि विद्यापति ने सारंग का व्यवहार केवल पाँच अर्थों मे पाँच विभिन्न अगो के उपमान के रूप मे किया है और सूर ने उसका व्यवहार दशाधिक अर्थ मे करके सम्पूर्ण नखशिख ही 'सारंग' के ही सहारे प्रस्तुत कर दिया है। यह विशेष ध्यातव्य है कि सूर के पद का आरम्भ "सारंग नैन वैन वर सारग" से हुआ है, विद्यापति की पक्ति है "सारग नयन वयन पुनि सारंग सारग तसु समधाने"। इस प्रकार ऐसा जान पडता है कि विद्यापति के पद के अनुकरण पर ही सूर का उपर्युक्त पद आरम्भ किया गया होगा, पर आगे चलकर सूर ने सारग के अन्य अर्थों का भी व्यवहार करके नायिका के नखशिख का ही चित्रण कर दिया। साथ ही साथ यमुना-पुलिन एव रात की समता भी 'सारग' के साथ बैठा दी।

दृष्टिकूट के पद विद्यापति तथा सूर दोनो ने लिखे हैं। काव्यालोचन सम्बन्धी आधुनिक मान्यताओं के अनुसार इस प्रकार की रचनाओ को शाब्दिक कलाबाजी भले

---

१ सूरसागर, पृ० ६६६।
२ वही, पृ० ६६०।

ही कहे, उन्हे उच्च कविकर्म का गौरव नही दिया जा सकता। पर सामन्ती सभ्यता के ह्रासकाल मे जब सजावट और नक्काशी कला का मानदड बनने लगी थी, शब्दो की कलाबाजी भी प्रचलित हुई होगी। संस्कृत के कई महाकवियो ने भी शब्दो की बडी ही सधी हुई कलाबाजी दिखायी है। विद्यापति की भणिता से युक्त दृष्टिकूट के दशाधिक पद मिलते है।[1] इनका अर्थ काफी मगजपच्ची के बाद ही लगता है, कई का अर्थ तो लगता ही नही।

'सूरसागर' मे भी दृष्टिकूट के कई पद मिलते है।[2] विद्यापति तथा सूर के दृष्टिकूट के पदो का शिल्प एक ही है। कही पिता-पुत्र, कही पति-पत्नी, कही गुरु-शिष्य, कही भक्ष्य-भक्षक आदि सम्बन्धो पर शब्दो की ये प्रहेलिकाएँ खडी की गयी है। सूर यहाँ भी विद्यापति के ऋणी हो तो इसमे आश्चर्य नही।

उपर्युक्त विवेचन तथा उदाहरणो से यह सिद्ध होता है कि सूरदास पर विद्यापति का कितना प्रभाव है। प० रामचन्द्र शुक्ल भी मानते हैं कि 'सूर के शृगारी पदो की रचना बहुत कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई है। कुछ पदो के तो भाव भी बिल्कुल मिलते हैं।"[3]

यह साम्य सूरदास तक ही सीमित नही। जीवन की विभिन्न स्थितियो की मार्मिक अनुभूतियो से विद्यापति के अनेक पद प्राणान्वित हैं। 'व्रजबुलि' तथा बगला के पदकर्ताओं ने अपनी रचना म इनकी आवश्यकता नही समझकर इनकी ओर ध्यान नही दिया। कृष्णभक्ति शाखा के भक्त कवियो ने भी अपने पदो मे लीलाधर की लीलाओं का ही वर्णन किया है। पर हिन्दी के अन्य अधिकारी कवि, जैसे—जायसी, रहीम, तुलसी, आदि, जीवन की उपेक्षा नही कर सकते थे। उनके काव्य म जगह-जगह अनुभूति-मुक्ता अपनी ज्योति विकीर्ण करते मिलेंगे। अनेक ऐसे स्थलो पर विद्यापति के गीतिपदो की कोई पक्ति पाठक के सामने कौंध उठेगी। प्रो० जयनाथ नलिन ने ऐसी मिलती-जुलती पक्तियो की एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की है।[4]

पर मात्र ऐसे भावसाम्य के आधार पर यह निश्चित रूप मे नही कहा जा सकता कि हिन्दी के महान् कवियो की परम्परा मे अग्रगण्य जायसी, तुलसी, रहीम आदि विद्यापति के पद-साहित्य से प्रभावित ही थे। व्रजवासी एव कृष्णभक्त कवियो की बात दूसरी है। उनके लिए विद्यापति के पद-साहित्य का वैभव सहजलब्ध था, पर इन महाकवियो के लिए भी वह उतना ही सहजोपलब्ध हो अथवा उसका अनुशीलन इन्होंने किया ही हो, इसकी सभावना अधिक नही। इन मिलती-जुलती पक्तियो मे यदि

---

[1] मि० म० वि०, २३८-४०, ५७६-८७, १६३-२०२।

[2] सूरसागर (ना० प्र० स०, काशी), पृ० ६८२, ६८४, ६८५, ८५७।

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६६।

[4] विद्यापति एक तुलनात्मक समीक्षा—प्रो० जयनाथ नलिन, पृ० २४५-४६।

कोई निश्चित निष्कर्ष निकाला जा सकता है तो वह यही कि विद्यापति का पद-साहित्य हिन्दी के महान् गीति काव्य एवं काव्य परम्परा की एक महत्वपूर्ण अग्रिम कड़ी है।

हिन्दी के रीतिकालीन काव्य पर भी विद्यापति का प्रभाव कम नहीं। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार विद्यापति भारतीय लोकभाषाओं के पहले कवि हैं जिनकी रचनाओं में रीति-संकेत मिलते हैं। संस्कृत साहित्य शास्त्रियों एवं आलंकारिकों द्वारा प्रवर्तित नायिका-भेद के आधार पर ब्योरेवार रूप से सभी नायिकाओं का चित्रण विद्यापति के काव्य में नहीं किया गया है, पर सभी अवस्था-नायिकाओं तथा अनेक अन्य नायिकाओं के संकेत चित्र उनके गीतिपदों में ही नहीं 'कीर्त्तिपताका' में भी मिलते हैं। रीतिकालीन कवियों को यदि इनसे भी कुछ प्रेरणा मिली हो तो आश्चर्य नहीं।

रीतिकालीन शृंगार-काव्य में राधा-कृष्ण को आश्रय, आलंबन या आलंबन-आश्रय मानकर रचना करने की एक परम्परा-सी चल पड़ी थी। इस परम्परा के आदि में भी विद्यापति ही आते हैं। विद्यापति और चण्डीदास के पूर्व किसी आधुनिक भारतीय भाषा के कवि को प्रेमकाव्य की रचना करते नहीं देखते जिसमें राधा-कृष्ण आलंबन हों। इनमें चण्डीदास का सम्बन्ध सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय से था—ऐसा मानने पर विद्यापति ही लोकभाषाओं के शृंगार-काव्य की उस सरणी के प्रवर्तक सिद्ध होते हैं जिसके आलंबन राधा-कृष्ण हैं।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य पर—उसके प्रेमकाव्य पर—विद्यापति के व्यापक प्रभाव के अनेक उदाहरण तथा प्रमाण मिलते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के विचार ध्यातव्य हैं—

"विद्यापति से सूरदास आदि ने कृष्णभक्ति नहीं पायी पर गीत की शैली अवश्य पायी। विद्यापति के दृष्टिकूटों का अनुगमन सूरदास ने बहुत किया है। शृंगारकाल के कवियों ने विद्यापति से चाहे गीत की शैली न पायी हो, पर शृंगार के आलंबन राधा-कृष्ण अवश्य पाये। अर्थात् एक ने अलंकार पाया, शैली पायी, वर्णन-विधि ली, दूसरे ने अलंकार्य पाया, गाथा पायी, वर्ण्य लिया। इस प्रकार विद्यापति ने आगे आने-वाले हिन्दी साहित्य को यहाँ से वहाँ तक प्रभावित कर दिया।"[१]

(ख) मैथिली साहित्य तथा मिथिला का सामाजिक जीवन

मिथिला में चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदियाँ (ई० सन्) घोर राजनीतिक उथल-पुथल का युग थीं। पर इन्हीं सदियों में वहाँ एक-से-एक विद्वान्, चिन्तक, कवि तथा कलाकार पैदा होते रहे। युद्धक्षेत्रों में सिंहासन तथा राजवंशों के भाग्य का पासा खेला जाता, इधर पण्डितों के घर घर न्याय और तर्क की गुत्थियाँ सुलझायी जातीं। इस काल में काव्य, संगीतकला, नृत्यकला का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। विद्यापति का उदय इस

---

[१] विद्यापति, भूमिका—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, (ले० सूर्यबलीसिंह, लाल देवेन्द्रसिंह), पृ० ६।

परिवेश मे एक ऐतिहासिक घटना कहा जा सकता है। काव्य, संगीतकला तथा नृत्य-कला—तीनो क्षेत्रो मे विद्यापति नवीन परम्पराओ के प्रवर्तक बन गये।

ज्योतिरीश्वर एव उमापति के पदो के आधार पर विद्यापति के पूर्व ही मैथिली मे गीतिपद की परम्परा विकसित होने का उल्लेख किया जा चुका है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ब्रजभाषा मे भी सूरपूर्व किसी ऐसी ही गीति-परम्परा की कल्पना की है।[1] अत. विद्यापति को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने अपनी प्रभूत तथा प्रौढ रचनाओ के द्वारा उस परम्परा को अत्यन्त सम्पन्न बनाकर उसे मैथिली एवं हिन्दी गीतिपद-साहित्य का प्रेरणा-स्रोत बना दिया।

विद्यापति के समकालीन[2] कवियो मे कुछ के नाम हैं—अमिअकर (ये ओइन-वार राजवंश मे सम्मानित मंत्री थे। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' मे इनका उल्लेख किया है तथा एकाधिक पदो मे भी इनका नाम दिया है), चन्द्रकला, भानुकवि, गजसिंह, कविराज, दशावधान ठाकुर, भीष्म कवि, गोविन्द, प्रभृति।[3]

इनकी जो भी रचनाएँ उपलब्ध हैं उन पर विद्यापति का प्रभाव स्पष्टत. परिलक्षित होगा। विद्यापति के परवर्ती कवियो मे हरिदास, भगीरथ कवि, लोचन कवि, गोविन्ददास, भूपतीन्द्र उल्लेखनीय हैं। इनमे लोचन तथा गोविन्ददास तो निस्सन्देह प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। लोचन की 'रागतरंगिणी' एक अद्‌भुत तथा ऐतिहासिक महत्व की पुस्तक है।

लोचन खडवला वंशीय राजा महीनाथ ठाकुर के राजकवि तथा कृपापात्र थे। ये स्वयं एक रससिद्ध कवि एव संगीतकला के मर्मज्ञ थे। 'रागतरंगिणी' मे विभिन्न राग-रागिनियो के लक्षण एव उदाहरण इन्होंने प्रस्तुत किये हैं। विद्यापति की चर्चा करते हुए लोचन ने लिखा है—

सुमति सुतोदय जन्मा जयतः शिवसिंह देवेन।
पण्डितवर कविशेखर विद्यापतये तु संन्यस्त.॥

× × ×

तद्‌गानार्यन्तु विद्यापति कवि कृतिना कल्पितास्तुन्ध्‌वायाः।
तासामेकोप्रगाताऽभवदिह जयतः संसदि श्री नृपस्य॥[4]

इससे प्रतीत होता है कि विद्यापति ने न केवल गीतिपदो की रचना करके एक काव्य-परम्परा का प्रवर्तन किया बल्कि उसके साथ ही सगीत-कला मे भी नूतन परम्परा

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६५।
[2] अमिअकर और भानु के पद—मि० म० वि०, पृ० ६०७–८, गोविन्द तथा चन्द्रकला के पद—रागतरंगिणी, पृ० १०१–२ तथा पृ० ५३–५४ क्रमश।
[3] हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर-१—डॉ० जयकान्त मिश्र, पृ० १९३–२२४।
[4] रागतरंगिणी, पृ० ३७।

चलायी। उनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से गवैयो की भी एक परम्परा कायम हुई, जिसमे जयत नामक कथक को उन्होने सगीत एव नृत्यकला मे पूर्ण निष्णात किया।

'रागतरगिणी' मे विभिन्न राग-रागिनिया के उदाहरणस्वरूप विद्यापति के ४६ पद प्रस्तुत किये गये हैं। इससे भी मिथिला की कवि-परम्परा तथा गीति-कला-मर्मज्ञो पर उनका कितना अधिक प्रभाव था, इसका सकेत मिलता है। जहाँ अन्य कवियो के दो-चार पद ही दिये गये है, स्वय लोचन के दशाधिक से ज्यादा नही, वहाँ विद्यापति के ४६। इससे विद्यापति के पद-साहित्य के व्यापक प्रचार का आभास मिलता है। 'रागतरगिणी' मे सकलित अन्य कवियो के मैथिली के पद विद्यापति की पद-परम्परा म आते हैं। भाव, भाषा, शिल्प—सब पर विद्यापति का प्रभाव प्रत्यक्ष है।

मिथिला मे विद्यापति के बाद सबसे अधिक प्रख्यात तथा प्रतिभाशाली कवि गोविन्ददास हैं। इनका रचनाकाल सत्रहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।[1] गोविन्ददास की तुलना अष्टछाप के कवि नन्ददास से की जा सकती है। ये विद्यापति के समकालीन नही थे, पर प्रतिभा एव शिल्प की दृष्टि से जो सम्बन्ध सूर और नन्ददास मे हो सकता है वही विद्यापति और गोविन्ददास मे भी प्रतीत होगा।

गोविन्ददास भाषा की प्राजलता, कविशिल्प तथा भावविदग्धता मे कही-कही विद्यापति से भी बढे-चढे प्रतीत होंगे। गोविन्ददास के गीतिपदो की माधुरी, सगीतात्मकता तथा मर्मस्पर्शिता की डॉ० सुकुमार सेन ने भूरि-भूरि प्रशसा की है। पर गोविन्ददास ने विद्यापति के पदो के ढाँचे पर ही अपने गीत लिखे। विद्यापति का प्रभाव गोविन्ददास के पदो पर बहुत ही व्यापक है। इसके विषय मे उन्होने स्वय ही लिखा है—

कविपति विद्यापति मतिमाने।
जाक गीत जगचीत चोराओल, गोविन्द गौरि सरसकवि गाने॥[2]

गोविन्ददास ने विरह-प्रसग मे 'बारहमासा' की रचना की है, जो स्पष्टत. विद्यापति की बारहमासा-परम्परा की दूसरी कडी है। उनके अनेक पदो मे विद्यापति की किसी पक्ति की ध्वनि अवश्य ही सुन पडेगी।[3]

मिथिला मे पद-साहित्य के अतिरिक्त दूसरी साहित्यिक विधा जो आधुनिक युग के पूर्व की सदियो मे प्रचलित रही वह है कीर्त्तनिया नाटक। इसकी परम्परा के भी

---

1 **हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर**—डॉ० जयकान्त मिश्र, पृ० २६४–६५।
2 **विद्यापति पदावली**, वसुमति सस्करण, नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा सम्पादित, पृ० १।
3 उदाहरणस्वरूप, कुछ पक्तियाँ निम्नलिखित हैं—
(क) **जोयत पथ नयन भरु नीर**—शृंगार-भजन, पद सख्या १४५।
(ख) **तुअ पथ जोइ रोइ दिन जामिनि अति दूबरि भेलि बाला**—वही, १५३।
(ग) माधव मास साध विहि बाँधल पिक कुलपचम गान—वही, ११३।
(घ) **सुनु बहुवल्लभ कान**—वही, ६०।

आदि मे विद्यापति ही आते हैं। उनका 'गोरक्षविजय' कीर्त्तनिया नाटक की परम्परा मे प्रथम रचना है जिसे लोकप्रियता मिल सकी। कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'धूर्त्तसमागम' एवं विद्यापति का 'गोरक्षविजय' लोकप्रिय कीर्त्तनिया नाटको के प्रेरणा-स्रोत हैं।

उपर्युक्त विवेचन से मिथिला के साहित्य तथा उसकी भाषा पर विद्यापति का प्रभाव कितना गहरा तथा व्यापक है, इसका कुछ परिचय हो जाता है। पर किसी कवि की कृतियो के प्रभाव की वास्तविक कसौटी तो होती है लोकजीवन एवं लोकमानस द्वारा उसका ग्रहण किया जाना। विद्यापति का इस दृष्टि से मिथिला मे वही स्थान है जो कबीर और तुलसी का समस्त हिन्दी भाषी क्षेत्र मे। विद्यापति के गीत वहाँ के लोकजीवन मे इस प्रकार घुलमिल गये है कि उनके अनेक पद लोकगीत के रूप मे पर्व-त्योहार, व्याह, झूला, जनेऊ आदि के अवसर पर गाये जाते है। किसी भी अनुष्ठान के आरम्भ मे "गोसाउनिक गीत" गाया जाता है। गाँव के बड़े-बूढ़े उनकी नचारी गाते हैं—"कखन हरब दुख हमर हे भोलानाथ"। व्याह-शादी के अवसर पर गाये जाने वाले उचिती, महेशवाणी आदि से भी विद्यापति की भणिता जुड़ी रहती है। राह चलते हुए मुसाफिर बटगमनी गाता है, इनमे कितने ही विद्यापति के पद रहते हैं। सावन-भादो की झड़ी के साथ "उठु-उठु सुन्दरि हम जाइछी विदेश" शीर्षक पद ग्राम-कन्याओ की मधुर स्वरलहरी मे मुखरित होता रहता है। वस्तुतः मिथिला के लोकजीवन के साथ विद्यापति के पद एकाकार हो गये हैं। वहाँ के जनमानस के वे अभिन्न उपादान है।

विद्यापति के पद 'रागतरंगिणी'कार ने तिरहुत मे प्रचलित तथा विकसित राग-रागिनियों के उदाहरणस्वरूप उद्धृत कर के इसका भी सकेत दिया है कि ये पद वहाँ के सास्कृतिक जीवन की सम्पदा हैं। "ललित लवग लता परिशीलन" या "निशिदिन बरसत नैन हमारे" या "हरि जू मोरे अवगुन चित न धरो" आदि की तरह विद्यापति के पद भी श्रोतामडली को रसमग्न करते रहे है। ग्रियर्सन तथा नगेन्द्र गुप्त ने लोककठ से सगृहीत शताधिक पदो का सकलन किया है। विद्यापति की नचारी सोलहवी शताब्दी मे ही लोकप्रसिद्ध हो गयी थी, इसका प्रमाण दिया जा चुका है। उस समय तक उनके प्रेमगीतो का भी विस्तृत क्षेत्र मे प्रचार हो चुका होगा, अन्यथा अबुल फजल को 'नचारी' नाम से प्रचलित पदो मे "उन्मद मासल प्रेमगीत" का भ्रम नही होता।

मिथिला के लोकजीवन पर विद्यापति के व्यापक एव गहरे प्रभाव का एक प्रमाण यह भी है कि उनकी अनेक उक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन गयी हैं। इस दृष्टि से विद्यापति को मिथिला मे वही गौरव प्राप्त है जो अन्यत्र कबीर, रहीम या तुलसी को। गीतिपदो की ही पक्तियाँ नहीं, 'कीर्तिलता' तथा 'कीर्तिपताका' की भी कितनी ही पक्तियाँ लोकोक्तियो के रूप मे परिणत होकर मिथिला के जनमानस मे बस गयी है। कतिपय उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

(१) अवसओ उद्यम सच्छि बस–अवसओ साहस सिद्धि।

—'कीर्त्तिलता'

(२) करुणा बसई विवेक सौं सेमा सतुएओ सग।
धम्म सहित सिंगार रस कव्वकला बहु रंग॥

—'कीर्त्तिपताका', पृ० ७।

(३) अवसर बहला रह पचताव।
(४) असमय आस न पूरए काम।
(५) आगिक बहने आगि पतिकार।
(६) आरति गाहक महग बेसाह।
(७) सुपुरुष वचन पखानक रेह।
(८) कुदिना हितजन अनहित रे थिक जगत सोभाव।[१]

वस्तुत मिथिला का सामाजिक जीवन विद्यापति एव उनके सुविद्वान् पूर्वजो की रचनाओं, उक्तियो तथा दिशा-सकेतो के द्वारा पिछली चार-पाँच सदियों स आमूलत प्रभावित निर्मित होता रहा है।[२]

(ग) बंगला

मिथिला के बाहर सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति का बगलाभाषी समाज पर है। बगला साहित्य के सभी इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि विद्यापति और चण्डीदास वैष्णव साहित्य के आदिगुरु हैं।[३] बगाल मे लगभग १५० पदकर्त्ता हुए हैं और ३००० के लगभग पद लिखे गये।[४] पद चाहे बगला मे लिखे हो या 'ब्रजबुलि मे, सर्वत्र विद्यापति और चण्डीदास का प्रभाव एक समान दीख पडेगा। मिथिला मे विद्यापति के पद लौकिक प्रेमगीत के रूप मे ही लोकप्रिय हुए पर बगीय जनमानस ने उन्हे शृ गार-भजन के रूप मे ग्रहण किया। महाप्रभु चैतन्यदेव चण्डीदास, विद्यापति और राय रामानन्द क पद सुनते हुए अघाते नही थे, उनके पदो को सुनते-गाते हुए व आनन्दविभोर हो जाते थे तथा नृत्य करने लगते थ। विद्यापति के कुछ पद तो उन्हे बहुत ही प्रिय थे।[५]

---

१ विद्यापति ठाकुर—म० म० डा० उमेश मिश्र, पृ० १५८-८४।

२ "Our life has been shaped by Vidyapati and his ancestors during all these centuries."

—प्रो० रमानाथ झा, 'पुरुषपरीक्षा' की भूमिका, पृ० १६।

"In Mathili he decame a tradition" —वही, पृ० ३५।

३ "विद्यापति ओ चण्डीदास वैष्णव पदावली साहित्येर आदिम उत्स"

—बगला साहित्येर कथा, श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय, पृ० ६।

४ बगाली लिटरेचर—डॉ० जे० सी० घोष, पृ० ५६।

५ कि कहब हे सखि आनन्द ओर। चिरदिन माधव मन्दिर मोर॥

—ब० भा० ओ सा०, पृ० १४७।

(घ) ब्रजबुलि

ब्रजबुलि का जन्म ही बगाल मे विद्यापति के अत्यन्त गहरे तथा व्यापक प्रभाव का द्योतक है। यह भाषा मैथिली और बगला की सयुक्त सतति कही जा सकती है। विद्यापति, गोविन्ददास आदि के पदो के अनुकरण पर सैकडो नही हजारो पद लिखे गये। उनमे भाव-भगिमा, छद, अलकार सभी इनके पदो से मिलते-जुलते है। गोविन्ददास को विद्यापति की तरह बगला साहित्य के इतिहासकार बगाली ही मानते थे। बगाल के अन्य पदकर्ता जिन पर विद्यापति का प्रभाव है, वे हैं यदुनन्दन, जगदानन्द, राधावल्लभ, हरिवल्लभ, रामगोपाल, सय्यद मुर्त्तजा, आलावल आदि। इनके पदो मे अपनी विशेषताएँ भी हैं। कही-कही इनकी कुछ पक्तियाँ अनुभूति या शिल्प के संस्पर्श पाकर चमक उठी हैं, पर सामान्यत इनके पदो मे पूर्ववर्ती पदकर्ताओ के भाव और सगीत की ही बारबार पुनरावृत्ति मिलती है। बगाल मे अठारहवी तथा उन्नीसवी सदियो तक पदरचना की परम्परा चलती रही, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने स्वय 'भानुसिंहेर पदावली' से ही अपना कविजीवन प्रारम्भ किया था।

महाप्रभु चैतन्यदेव एव उनकी वैष्णव भक्तमडली ने विद्यापति की गीति-माधुरी से उत्कल, कामरूप और वृन्दावन को भी आप्लावित कर दिया।

(च) नेपाल

नेपाल तराई का वह भाग जो मिथिला का सीमावर्ती है, अनेक सदियो तक और आज भी मिथिला की सम्यता-सस्कृति के अन्तर्गत आता है। इन क्षेत्रो की भाषा भी मिथिला की भाषा मे भिन्न नही। मोरग, सप्तरी, महातरी आदि नेपाल के प्रादेशिक क्षेत्र की सम्यता-सस्कृति मिथिला की सम्यता-सस्कृति मे अभिन्न है। नेपाल की राजधानी काठमाडू अनेक सदियो तक मिथिला की सम्यता-सस्कृति से प्रभावित रही। कीर्त्तनिया नाटको का वहाँ खूब प्रचलन था। तरौनी तालपत्र, जो दुर्भाग्यवश अब खो गया है, को छोड विद्यापति के सबसे अधिक पद एक जगह पर (२६२) नेपाल दरबार की आकर पोथी से ही उपलब्ध हुए है। यह पोथी सोलहवी सदी मे तैयार की गयी थी। नेपाल राजाओ तथा वहाँ के धनी-मानी लोगो का सम्पर्क एव वैवाहिक सम्बन्ध भी मिथिला के जमीदारो के परिवार के साथ होता रहता था। इन सब कारणो से विद्यापति का प्रभाव नेपाल मे भी कम नही।

निष्कर्ष

(१) विद्यापति के गीतिपदो का हिन्दी की कृष्णभक्ति शाखा के पद-साहित्य पर गहरा एव व्यापक प्रभाव पडा है। विशेषकर यह प्रभाव सूर-साहित्य पर सबसे अधिक है। गीति विधा, भावविधान, वस्तु-व्यापार-योजना, अलकार-योजना, दृष्टिकूट आदि सभी मे सूर-साहित्य पर विद्यापति का प्रभाव लक्षित होता है।

(२) मिथिला मे विद्यापति वहाँ की साहित्य-परम्परा ही नही, सम्पूर्ण जनजीवन

पर पूरी तरह छाये हुए है। उनकी नचारी, उनके प्रेमगीत, उनकी मगल-स्तुतियाँ तथा उनकी मर्मोक्तियाँ वहाँ के जनजीवन के साथ घुलमिल कर एक हो गयी हैं।

(३) कीर्त्तनिया नाटका की परम्परा के वे ज्योतिरीश्वर ठाकुर के साथ आदि प्रवर्तक हैं।

(४) बगाल मे विद्यापति और चण्डीदास वैष्णव पदकर्ताओ मे सर्वप्रथम माने जाते है। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय पर विशेषत, और समस्त बगीय समुदाय पर सामान्यत, विद्यापति का प्रभाव व्यापक तथा गहरा है।

(५) मिथिला के अतिरिक्त विद्यापति का पद-साहित्य सर्वत्र वैष्णव पद-साहित्य की अग्रिम कडी के रूप मे ही माना जाता है। मिथिला से बाहर उनके पदो को राधा-कृष्ण के लीलाविषयक पदो की परम्परा म गौरव प्रदान किया गया है।

(६) विद्यापति के पदो के अनुकरण पर बगाल मे 'ब्रजबुलि' नाम से एक कृत्रिम भाषा का प्रचलन हुआ। इसमे अनेक पदकर्ता हुए हैं।

(७) मिथिला के बाहर विद्यापति के गीतिपद राधामाधव-प्रेम के गीत के रूप मे लोकप्रिय हुए। इस प्रसग मे पूर्वराग, सौन्दर्य-चित्रण, मान, अभिसार, मिलन आदि सम्बन्धी पदो को प्रमुखता मिली। फलत इनसे प्रभावित ब्रजबुलि तथा बगला के वैष्णव पद-साहित्य मे भी इन्ही का प्राचुर्य मिलता है।

उपसंहार

कविता जीवन की गीतिका है। सौन्दर्य एवं प्रेम उसके चिरपरिचित वर्ण्य रहे हैं। विद्यापति सौन्दर्य एवं प्रेम के श्रेष्ठ गीतकार हैं। कवि युगजीवन से विच्छिन्न होकर अपनी वाणी मे प्राणरस का संचार नही कर सकता। युगजीवन के धरातल पर ही कविता की निर्झरिणी फूटती है। युगजीवन की जलवायु मे कविता की लता पल्लवित-पुष्पित होती है। अतः किसी कवि की कृतियों एवं उसकी उपलब्धियो का मूल्याकन उसके देश एवं काल के परिप्रेक्ष्य पर ही ठीक-ठीक किया जा सकता है। विद्यापति के काव्य के स्वरूप-विधान एवं उसकी भावधारा को समझने के लिए विद्यापतियुगीन मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था की रूपरेखा हमने इसी हेतु प्रस्तुत की है। इस अध्ययन मे अन्य सूत्रो के अतिरिक्त कवि की ही कतिपय रचनाओं मे बहुमूल्य सामग्रियाँ मिली हैं। ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर', विद्यापति की 'पुरुषपरीक्षा', 'कीर्त्तिलता', 'लिखनावली', 'गोरक्षविजय' तथा 'विभागसार' आदि रचनाओ मे चौदहवी-पंद्रहवी शती की मिथिला के सामाजिक जीवन का चित्रण करने के लिए पर्याप्त सामग्रियाँ मिलेंगी। इनमे 'लिखनावली' तथा 'गोरक्ष-विजय', 'कीर्त्तिपताका' तथा 'पुरुषपरीक्षा' से उद्धरण देकर विद्यापतियुगीन मिथिला के समाज एवं सभ्यता-संस्कृति की रूपरेखा प्रस्तुत करने का कदाचित् पहला प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे किया गया है।

विद्यापतियुगीन मिथिला की राजनीतिक अवस्था घोर उथलपुथल एवं अनिश्चितता की थी। ओइनवार राजवंश की कई शाखाएँ हो गयी थी। मिथिला का कोई भी राज्य सप्रभु नही रह गया था, पर सार्वभौम सत्ता का, चाहे वह दिल्ली की हो या जौनपुर की, आधिपत्य नाम का ही रहता था।

विद्यापति की 'लिखनावली' के आधार पर उस युग के सामाजिक जीवन की निम्नलिखित रूपरेखा उपस्थित की जा सकती है।

विद्यापतियुगीन मिथिला मे समाज तीन वर्ग मे विभाजित था। अधिपति वर्ग सम्पन्न होता था। उसका जीवन वैभव-सम्पदा एव सुख-विलास म व्यतीत होता था। दूसरी ओर कैवर्त्त आदि जातियो के लोग थे जो घोर विपन्नता म आजीवन डूबे रहते थे। दास-दासियो का क्रय-विक्रय प्रचलित था। इनके अतिरिक्त एक मध्यवित्त वर्ग भी था, जिसमे विभिन्न श्रेणी के राज्योपजीव्य, पडित, वणिज-व्यापारी, 'राउत्त आदि होते थे।

राजपरिवार के लोग नृत्य-संगीत को प्रोत्साहित करते थे। कोई-कोई स्वय भी मर्मी सगीतज्ञ होते थे। इनके अतिरिक्त लोकजीवन मे भी नृत्य-सगीत का खूब प्रचलन था। लोरिक आदि कथागीत अत्यधिक लोकप्रिय थे। सामान्य वर्ग के लाग दरिद्रता एव अभावो का जीवन बिताते हुए भी गीत-नृत्य मे अभिरुचि रखते थे तथा उनका आनन्द लेते थे।

विद्यापतियुगीन मिथिला मे शिव और शक्ति की उपासना सबसे अधिक प्रचलित थी। औसत मिथिलावासी स्मार्त्त जीवनादर्श से प्रभावित था। न्याय और तर्क-शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा चली आ रही थी। 'श्रीमद्भागवत' की प्रतिलिपि विद्यापति ने स्वय ही की थी, इससे जान पडता है कि इस महान् ग्रथ का अध्ययन-पारायण भी श्रद्धा और भक्ति के साथ किया जाता था।

मिथिला के पडोसी वगभूमि मे विद्यापति-युग के एक सदी पूर्व ही मुस्लिम आधिपत्य सुदृढ हो चुका था। अतिम बगीय हिन्दू राजा सेनवशीय थे। वे वैष्णव थे। अन्तिम सेन राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा मे जयदेव, धोयीक, उमापतिधर जैसे रसिक सुकवि थे। 'सदुक्तिकर्णामृत' के सकलनकर्ता श्रीधरदास उन्ही के एक उच्च राजपदाधिकारी थे। तत्कालीन बग म सहजिया सम्प्रदाय के लोग भी कम नही थे। फलत विद्यापति के गीत बगीय समाज मे अनुकूल जलवायु पाकर राधाकृष्ण प्रेम-सकीर्तन की नैसर्गिक रजना से अभिमडित हो गये। बाद मे चैतन्य महाप्रभु ने उन्हे अपना कर चण्डीदास के साथ विद्यापति को वैष्णव पदकर्ताओ की श्रेणी मे सवप्रथम तथा सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

विद्यापति के प्रेमकाव्य का प्रणयन कोई आकस्मिक घटना नही। विद्यापति के पूर्व सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश मे मुक्तक प्रेमकाव्य की सुदीर्घ परम्परा चली आ रही थी। सिद्धो ने अपभ्रश मे गीतिपद की विधा को सुविकसित तथा प्रौढ कर दिया था। 'गाहासत्तसई', 'अमरुकशतकम्', 'आर्यासप्तशती', 'चौरपचाशिका', प्रभृति मुक्तक ग्रथ काव्यरसिको मे लोकप्रिय थे ही। सस्कृत मे जयदेव ने रागरागिनी मे बद्ध तुकान्त गीतिपदो की रचना कर उस समय तक अपभ्रश म ही प्रचलित इस लोककाव्य को नूतन गौरव तथा मान्यता प्रदान कर दी। विद्यापति के पूर्व मैथिली म मौखिक ही क्यो न हो, पर एक सपन्न गीतिपद-परम्परा विकसित हो चुकी थी, इसका सकत ज्योतिरीश्वर के 'धूर्त्तसमागम' के पदो स मिलता है। विद्यापति क प्रेमकाव्य के य प्रेरणा-स्रोत हैं।

इनके अतिरिक्त 'सदुक्तिकर्णामृत', 'शार्ङ्गधर-पद्धति', 'कवि-वचन समुच्चय', 'वज्जालग्गम्' प्रभृति संकलन ग्रंथों का अवलोकन भी विद्यापति ने किया होगा। उनकी कितनी ही रमणीय उक्तियों पर इनकी धुंधली छाया दीख पड़ती है। पर कवि ने चाहे मूल भाव जहाँ से ग्रहण किये हों, उन्हें अपनी रसमयी वाणी मे प्रस्तुत करने का उनका ढंग बिलकुल अपना है। अनेक अवसरों पर विद्यापति की उक्तियाँ मूल से भी अधिक सुन्दर तथा मार्मिक जान पड़ेंगी।

कृष्ण-राधा को प्रेमकाव्य का आलंबन मानने की परम्परा भी विद्यापति को अपने पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं मे ही मिली होगी। 'श्रीमद्भागवत' और 'गीतगोविन्द' मे यह परम्परा भक्ति की सघन या झीनी रजता लिये हुए थी, पर अन्यत्र तो राधा-कृष्ण नितान्त लौकिक प्रेमकाव्य के आलंबन के रूप में भी चित्रित किये गये थे। विद्यापति के कृष्ण श्रीमद्भागवत के कृष्ण से नाम एवं रंग मे ही पूरी समता रखते है, अन्यथा कई बातों में दोनों मे पर्याप्त भेद भी है।

विद्यापति के पूर्व, भारत में प्रेमकाव्य की एक सुदीर्घ तथा अत्यंत वैभवपूर्ण परम्परा बन चुकी थी। इस प्रेमकाव्य की कई धाराएँ-उपधाराएँ विद्यापति-पूर्व की दशाधिक शतियों मे संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में विकसित हो चुकी थी। विद्यापति के प्रेमकाव्य को भी इन्हीं मे एक के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यह है जयदेव की परम्परा। पर जयदेव और विद्यापति मे साम्य ऊपरी एवं शैलीगत ही अधिक है। दोनों ने रागरागिनी बद्ध गीतिपद की शैली अपनायी। दोनों के गीतिकाव्य में रीति-संकेत मिलते हैं। दोनों ने ही राधाकृष्ण के प्रेम-विहार के मासल चित्रण किये हैं। कोमलकान्त पदावली एवं स्वरमाधुर्य के लिए दोनों ही प्रख्यात हैं। दोनों के कृष्ण श्रीमद्भागवत के कृष्ण से कई बातों मे भिन्न प्रतीत होते हैं। राधा को सर्वोपरि तथा अन्य गोपियों को गौण किंवा नगण्य दोनों ने ही माना है। दोनों ने शारदीय रास के स्थान पर वासन्ती रास का उल्लेख किया है। इतने साम्य के पश्चात् जयदेव और विद्यापति मे भिन्नता भी कम महत्वपूर्ण नहीं। जयदेव की राधा आद्योपान्त मदन-विह्वला तरुणी है पर विद्यापति ने नवांकुरितयौवना किशोरी से लेकर यौवन के अवसान की देहली पर खड़ी उपेक्षिता तक नारी के सभी रूपों का चित्रण किया है। जयदेव का वर्ण्य राधाकृष्ण की विलासलीला मात्र था, विद्यापति का उद्देश्य सभी अंगोंपांगों से पूर्ण प्रेमकाव्य की सृष्टि। जयदेव के राधाकृष्ण-प्रेम का लोक एक निराला लोक है (आधुनिक शब्दावली में कल्पना एवं रोमांस का लोक), विद्यापति के प्रेमकाव्य की रङ्गस्थली वृन्दावन और जमुनातीर से लेकर हमारे जाने-पहचाने घर-आँगन तक विस्तृत है। फलतः जयदेव के 'गीतिगोविन्द' मे यौवन और शृंगार के मधुगीत ही हमेशा सुन पड़ते हैं, पर विद्यापति के प्रेमकाव्य मे पूर्वानुरागिणी की विरह-दशाओं, प्रोषित-पतिका के बरसते नयन एवं उपेक्षिता के करुणाजनक विरह के मर्मस्पर्शी चित्र भी मिलते हैं। विद्यापति मिलन-प्रसंगों में भी जयदेव की अपेक्षा किंचित् अधिक संयम से काम लेते हैं। फिर अपने प्रेमगीतों मे जीवन की विभिन्न स्थितियों तथा अनुभूतियों

विद्यापति के विरह-काव्य मे वसन्त का तो औपचारिक, रूढिबद्ध पर बरसात का सजीव स्वाभाविक चित्रण मिलता है। क्षण भर के लिए उनके प्रकृति चित्रण की विशेषताओ पर विचार करें। विद्यापति प्रकृति-काव्य के प्रणेता नही प्रतीत होते। प्रकृति का चित्रण उन्होने सामान्यत उद्दीपन-विभाव के ही रूप मे किया है। इसमे भी अधिकतर परम्परागत रूढियो तया कवि-प्रसिद्धियो का सहारा लिया गया है। पर कतिपय प्रसगो मे स्थानीय सस्पर्श, स्वाभाविक तथा सजीव प्रकृति-चित्रण भी उनके काव्य मे मिलते हैं। ऐसे स्थल अधिक नही, पर जो भी हैं वे हैं अत्यन्त आकर्षक तथा हृदयग्राही। स्थानीय फूल पौधो मे विद्यापति ने पाटल (पाडरि), चपक, मालती, केतकी महकार, विल्व फल आदि का उल्लेख किया है। पक्षिया म सबसे अधिक कोयल एव चक्रवाक की चर्चा मिलती है। इनके अतिरिक्त वायस, मोर, चकोर तथा हस की।

परकीया प्रेम का विस्तृत वर्णन 'पदावली' मे किया गया है। "चोरी पेम ममारेरि सार" एव नायिका को नायक के पास ले जाने के लिए उत्सुक दूती करती है। साथ ही, विद्यापति ने परपुरुष से प्रेम करना अमर्यादित एव मन्द कार्य है, यह भी कई पदो मे कहा है। "धम्म सहित सिंगार रस" उनका आदर्श है। परपुरुष का स्वभाव सहज चचल होता है, विशेषकर आहार और विहार मे, मानव प्रकृति के पारखी कवि से यह बात छिपी नही रह सकती थी। इसीलिए विप्रलब्धा खीभती है, कलहान्तरिता आह भरती है, उपेक्षिता आंसू बहाती है। विद्यापति के प्रेमकाव्य मे उच्छृखल नग्न विलास के चित्र दो ही स्थलो पर मिलते हैं, 'कीर्त्तिपताका' के राय अर्जुन वाले प्रसग मे तथा 'गोरक्षविजय' के मत्स्येन्द्रनाथ की विलासकेलि के प्रसग मे। अन्यत्र कवि ने "बहुल कामिनी एकल कन्त" की प्रणय-केलि का चित्रण नही किया है। 'पुरुषपरीक्षा' मे केवल अनुकूल तथा दक्षिण नायक की ही कथाएँ लिखकर दाम्पत्य जीवन की आदर्श-प्रतिष्ठा की है। पुरुष को नारी का दास भी नही होना चाहिए यह सन्देश 'घस्मर कथा' मे प्रसारित किया गया है।

विद्यापति के पदो मे राधा तथा कृष्ण के नाम बारबार आये है। नायक का सौन्दर्य चित्रण करते समय कवि ने कृष्ण का ही रूप चित्रित किया है, सावर वर्ण, पीत वसन, भुवन विमोहन रूप। पर कृष्ण-परम्परा के विपरीत विद्यापति ने कृष्ण की वशी का उल्लेख एक दो ही पदो मे किया है। श्रीमद्भागवत के कृष्ण और विद्यापति के कृष्ण मे मूलभूत भेद है। उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ कृष्ण की औपचारिकता का सकेत है—

राजा शिवसिंह तोरा मन जागल,
कान्ह कान्ह करसि भरमे ॥

विद्यापति के नायक की रसिकता मे कमी नही। *कहाँ तक वह सच्चा प्रेमी है यह कहना कठिन है। विद्यापति की नायिका भी यह जानती है कि जब तक उसके पास यौवन धन है तभी तक 'मुरारि' उसका आदर करेंगे, इसके नही रहने पर 'वारि-

विहीन सर' की तरह उसका आदर-मान नहीं होगा। विद्यापति ने अपने युग की प्रेम-भावना का यह यथार्थवादी स्वरूप व्यक्त किया है।

दूसरी ओर विद्यापति ने नारी के प्रेम की गंभीरता तथा अनन्यता पर भी बल दिया है। संयोग हो या वियोग, नारी जल्दी अपना प्रेम दूसरे को नहीं देती। मदन-शर से आहत होती हुई भी वह अपने प्रिय की प्रतीक्षा में रहती है।

प्रेम की बेलि जीवन के सामान्य धरातल पर ही अंकुरित होकर फैलती तथा फूलती-फलती है। जीवन से विच्छिन्न होकर प्रेम एकांगी हो जाता है। नारी के जीवन में प्रेम का सर्वोपरि महत्त्व होता है, पर जीवन के अन्य पक्षों के प्रति विमुख होकर वह नहीं जी सकती। कर्मठ पुरुष की तरह "कलामति नारि" का आदर्श कवि ने अपने काव्य में प्रतिष्ठित किया है। "जावे पेमे पराधिन बालभु सेहे कलामति नारि" साथ ही "गेल भाव जे पुनि पलटावए सेहे कलामति नारि"—यह कवि का युगसम्मत सन्देश है। पर यही सब कुछ नहीं। इसलिए विद्यापति ने अपने प्रेमगीतों को जीवन के नाना पक्षों के अनुभवों की सूक्तियों से सजाया है। विद्यापति ने नीति-पद नहीं लिखे हैं। पर उनके प्रेमगीत में नीति विषयक सूक्तियाँ भरी हैं।

विद्यापति के प्रेमकाव्य में प्रेम के तीन रूप चित्रित हुए हैं। उन्होंने मध्ययुगीन सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य प्रेम के सुख-दुख का चित्रण किया है। परकीया एवं सामान्या नायिकाओं के मनोभाव चित्रित किये हैं। राधाकृष्ण-प्रेम की परम्परा में भी प्रेम का चित्रण किया है। इससे उनके प्रेमकाव्य में विस्तृति एवं विविधता दोनों आ सकी है।

विद्यापति हिन्दी के प्रेम गीतिकाव्य की परम्परा के आदि में हैं। विद्यापति और चण्डीदास वैष्णव प्रेमकाव्य के प्रवर्तक माने जाते हैं। हिन्दी का परवर्ती कृष्ण-भक्ति काव्य इन दोनों कवियों के गीतिपदों से प्रभावित है। विशेषकर सूर साहित्य पर विद्यापति की पद-गीतिका की गहरी छाया कई स्थलों पर परिलक्षित होती है।

विद्यापति ने स्वयं अपने पूर्ववर्ती कवियों की रसमयी उक्तियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है, विशेषकर संभोग शृंगार के उनके कई चित्रों पर पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं की छाया स्पष्टतः पड़ी है। ऐसे स्थलों पर विद्यापति ने अन्धानुकरण किया हो ऐसा नहीं जान पड़ता। किसी पूर्ववर्ती रचना का भाव ग्रहण कर उन्होंने उसे अपने गीतिपद में नूतन स्वरभंगी के साथ मुखरित किया है। विद्यापति पर पूर्ववर्ती काव्य का ऋण सबसे अधिक उनके काव्य की अप्रस्तुत योजना के रूप में है।

विप्रलंभ काव्य पर पूर्ववर्ती कवियों की छाया वैसी नहीं दीख पड़ती। उपेक्षिता नारी के करुणामिश्रित प्रेम का चित्रण तो उनकी अपनी मौलिक देन है। शाश्वत भारतीय नारी की अन्तर्व्यथा उनके इन चित्रों को सजल कर रही है।

विद्यापति ने पुरुष-जीवन का आदर्श 'पुरुषपरीक्षा' में प्रतिष्ठित किया। अपने गीतिपदों में उन्होंने नारी-जीवन के विविध स्वरूपों का चित्रण किया है।

विद्यापति क प्रेमकाव्य में सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य को बिलकुल भुला नही दिया गया है। शृ गार काव्य की परम्परा तथा युग-परिवेश की उपेक्षा वे नही कर सकते थे, ऐसा करना उचित भी नही होता। फिर कृष्ण-राधा जिस प्रेमकाव्य के नायक-नायिका हो उसमें सामाजिक, व्यक्तिगत, दाम्पत्य नैतिकता के मान्य मानदडो से किंचित् पृथक् मानदड तो होगा ही। अत परकीया प्रेम का चित्रण विद्यापति के प्रेमकाव्य का एक महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत अश है। कतिपय पदो मे सामान्या भी चित्रित है। पर इनके आधार पर यह कहना समीचीन नही होगा कि विद्यापति के प्रेमकाव्य मे सामाजिक पक्ष की पूर्ण अवहेलना की गयी है।

विद्यापति के प्रेमकाव्य मे प्रम का आदर्श है चाँद कुमुद अथवा सूर्य-सरोज का प्रेम। समुद्र जिस तरह अपनी मर्यादा नही छोडता, विद्यापति की नायिका भी अपने प्रिय के विमुख होने पर भी अन्य पुरुप म आसक्त नही होने का सकल्प करती है। "धर्मसपृक्त शृ गारो सीताराघवयोरिव" विद्यापति-साहित्य म प्रतिष्ठित प्रेम की मर्यादा एव आदर्श है। विद्यापति की नायिका कुलवती नारी है, और मध्ययुगीन कुलवती नारी की वेदना कवि के अनेक पदो मे फूट पडी है।

पर पुरुप हो या नारी, प्रेम ही जीवन का सब कुछ नही। अपने युग-जीवन के सामाजिक पक्ष के प्रति कवि की जागरूकता उसकी असख्य अनमोल सूक्तियों मे व्यजित हुई है। सम्पत्ति-विपत्ति जीवन सरि के दो किनारे हैं, सुरतरु की छाया मे दिवस व्यतीत करनेवाले को कभी धतूरे के नीचे भी निर्वाह करना होता है। कवि कभी विपत्ति मे धैर्य रखने का सन्देश देता है, कभी कलियुग-परिणति या कर्मफल को इस भाग्य-विपर्यय का कारण बताता है। अनेक तरह के व्यावहारिक जीवन के सन्देश भी कवि की इन सूक्तियो मे मिलते हैं। विद्यापति की कितनी ही ऐसी सूक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन गयी हैं, यह उनकी सामाजिक चेतना का प्रमाण है।

विद्यापति की प्रतिभा बहुमुखी थी। अपने सुदीर्घ जीवन मे उन्होने विभव-पराभव के अनेक पटाक्षेप देखे। अनेक राजाओ तथा उनकी पट्ट-महिषी का उन्होंने स्तवन किया, उनसे सम्मानित तथा पुरस्कृत हुए। विद्यापति मे व्यवहार-बुद्धि सर्वोपरि थी। विभिन्न रचनाओ के लिए विभिन्न भाषाओं का चयन उनकी इस व्यवहार-बुद्धि का सकेतक है। वीरगाथा, कथा-माला, नाटक, निबन्ध, धर्म ग्रन्थ, पत्रावली तथा प्रेम-काव्य—इतनी विभिन्न विधाओ मे उन्होने रचना की, सर्वत्र इस पर ध्यान रखा कि उनका साहित्य सहज-सवेद्य हो, अनावश्यक पाडित्य प्रदर्शन मे उनकी रुचि नही थी। दस-पाँच पहेलियों को छोड़कर विद्यापति की शायद ही ऐसी कोई रचना मिलती है जो सुबोध तथा सहज-सवेद्य नही हो।

विद्यापति के काव्य मे भाषा-सौष्ठव देखते ही बनता है। उनके सस्कृत ग्रन्थो मे सहज, सरल, सुबोध भाषा पर बल दिया गया है। 'कीर्तिलता' एव 'कीर्त्तिपताका' मे उनकी भाषा विषयानुकूल तथा प्रसगानुकूल अपनी विविध छटा दिखाती चलती है। कही उसे वीर दर्प से फडकती हुई देखेंगे तो कही शृ गार की रसमयी स्निग्ध कोमल-

कान्त पदावली के रूप मे। पर विद्यापति की कला का सहज सलोना रूप तो उनके गीतिपदो मे ही देखा जा सकता है। यद्यपि कवि को अलकार-अभिमण्डित भाषा का आग्रह नही, पर अलकार जैसे उसके लिए अभिव्यक्ति के स्वाभाविक अग हो। सौन्दर्य-चित्रण के उसके पद अलकार-योजना के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। उत्प्रेक्षा, उपमा, सागरूपक, अतिशयोक्ति आदि के सफल प्रयोग से इन पदो की शोभा द्विगुणित हो गयी है। पर कवि ने केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलकारो का प्रयोग नही किया है, यह तो उसकी अभिव्यजना की एक सामान्य विशेषता है। दूसरी ओर जिन पदो मे मानव मन की घनीभूत वेदना उमड पडी है, उनमे कवि की वाणी निराभरण, सादी एव मर्मस्थल पर चोट करनेवाली बन गयी है। वक्रोक्ति हो या स्वभावोक्ति—विद्यापति की भाषा पाठक का मर्मस्पर्श करने मे कभी अशक्त नही होती। प्रेमकाव्य के प्रणेता के लिए जिस रसमयी भाषा की आवश्यकता होती है, विद्यापति उसके सिद्धहस्त शिल्पी थे।

रसतत्त्व की कसौटी पर भी विद्यापति का प्रेमकाव्य खरा उतरता है। उनके एक-एक पद रसराज के पारावार के अन्यतम अवदान हैं। उनके पदो मे रस सामग्रियाँ प्रचुर रहती हैं। केवल तालिका लम्बी करने के लिए वे हाव, भाव या अनुभाव की सूची नही पेश करते, पर सभोग शृगार हो या विप्रलभ, विद्यापति के काव्य मे शायद ही कोई ऐसी रचना मिलेगी जिसमे रसानुभूति मे किसी तरह की कमी या व्यवधान रह गया हो। विद्यापति उज्ज्वल रस या मधुर रस के कवि नही, उनके प्रेमगीतो मे शृगार की ही व्यजना हुई है।

विद्यापति नारी-जीवन के मर्मी चित्रकार हैं। युग एव परम्परा की प्रेरणा से नारी का प्रेयसी-रूप ही उनके काव्य का वर्ण्य रहा, पर इस क्षेत्र मे कुछ भी ऐसा नही जो उनके काव्य मे चित्रित नही हुआ हो। चाहे वे राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण करते हो, या लौकिक नायक-नायिका के, उनके दृष्टिपथ पर हमेशा मध्ययुग की नारी की सरस-सजल प्रतिमा झलमलाती रहती है—ऐसी नारी की जो रूप-यौवन मे अतुलनीय हो, प्रणय-कला मे निष्णात हो, प्रिय के सम्मुख पूर्ण आत्मनिवेदिता हो तथा आरती के दीप की तरह स्वय ही जल-जल कर प्रिय-पथ को आलोकित करती रही हो। विद्यापति के प्रेमकाव्य मे मुग्धा किशोरी की कौतुक भरी छवि पर कितने ही विभोर हुए हैं, उनके पदो मे चित्रित विलासवती रमणी के मदालस रूप ने कितनो को मन्त्रमुग्ध किया है, उनकी प्रोषित-पतिका के नयनो की बरसात मे कितने ही भीगे हैं, पर यौवन-ज्वार के उतरते ही प्रिय के द्वारा उपेक्षिता सामन्ती युग के बहुवल्लभ कन्त की प्रणयिनी की घनीभूत व्यथा का मूक-आकुल क्रन्दन किसने सुना है? विद्यापति की विरहिणी का यह रूप उनके प्रेमकाव्य का सबसे सजल, सबसे मर्मस्पर्शी अश है।

विद्यापति की विरहिणी भगवान् कृष्ण के चरणो पर सर्वसमर्पणकारिणी गोप बाला नही कि उसको आध्यात्मिक अनुभूति का सम्बल हो, वह तो युद्धक्षेत्र से नही

लौटे हुए किसी शिवसिंह की विसूरती हुई लसिमा है या नित नई नवयौवनाओं मे अभिमंडित किसी राय अर्जुन के रनिवास की उपेक्षिता रानी है, विरह मे रोते-रोते जिसकी आँखो के आँसू भी सूख जाते हैं, फिर भी न तो उसके वियोग की रात खत्म होती है और न प्रिय-चरणो मे उसकी रति ही कम पडती है। विद्यापति की प्रेम-भावना इस व्यथा की अकूल, अछोर, अतल गगाधार मे अवगाहन करके स्वय भी अतल, गभीर एव पावन बन गयी है।

एक ऐसे युग मे जब उत्तर भारत की लोकभाषाएँ शिष्ट साहित्यिक भाषा का स्थान ले रही थी, विद्यापति और चण्डीदास का उदय ऐतिहासिक महत्त्व की घटना थी। विद्यापति और चण्डीदास का अपने युग के तथा उसके परवर्ती साहित्य पर गहरा एवं व्यापक प्रभाव है। इनमें भी विद्यापति के गीतिपदो का—उनके प्रेमकाव्य का—परवर्ती युगो के साहित्य पर अत्यन्त व्यापक तथा निर्णायक प्रभाव पडा। इस प्रभाव के फलस्वरूप एक नई कृत्रिम भाषा—व्रजबुलि—का जन्म हो गया। यह प्रभाव सदियो तक समस्त वैष्णव पद-साहित्य को विधा, वर्ण्य तथा अभिव्यक्ति-भगिमा प्रदान करता रहा। विद्यापति के प्रेमगीतो से जिस परम्परा का प्रारम्भ हुआ, कवि के समकालीन तथा परवर्ती सम्पूर्ण मैथिली पद-साहित्य उसी की क्रमागत कडियाँ हैं। बगाल, कामरूप, उत्कल और नेपाल के साहित्यो पर कई सदियो तक विद्यापति का व्यापक प्रभाव तो बना ही रहा, सुदूर व्रज के करील कुंज एव कृष्णसलिला यमुना के पुलिन भी उससे असपृक्त नही रहे। चैतन्य एवं उनके अनुयायी भक्तो ने विद्यापति के पदो की माधुरी से व्रज की वायु को भी आप्लावित कर दिया। वहाँ पर यह प्रभाव अष्टछाप के कवियो ने ग्रहण किया—सूर-साहित्य पर विद्यापति का ऋण अत्यल्प नही।

लोकभाषा काव्य मे रीतिसकेत पहलेपहल विद्यापति के ही गीतिपदो में मिलते हैं। परवर्ती कवियो को यह इतना भाया कि विद्यापति के तीन सौ वर्ष बाद हिन्दी काव्य में एक रीति युग की ही अवतारणा हो गयी।

विद्यापति का प्रेमकाव्य दाम्पत्य प्रेम तथा जीवन के अन्य पक्षों एव स्थितियो से सम्बन्धित एक-से-एक मनोहर एवं मर्मस्पर्शी सूक्तियो से आपूरित है। मैथिली भाषी समाज मे कवि की अनेक सूक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन गयी है। विद्यापति के प्रेमकाव्य का सबसे व्यापक प्रभाव वहाँ के लोकमानस पर पडा है।

विद्यापति का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनके ग्रन्थों मे विषय-वैविध्य तथा क्षेत्र-विस्तार उनके इस बहुमुखी व्यक्तित्त्व की देन है। विद्यापति के प्रेमकाव्य मे भी जीवन के नाना क्रिया-व्यापारो की गूँज सुनाई देती है। अपनी समग्रता मे उनका प्रेमकाव्य युग एव जीवन की सप्तस्वरी गीतिका है। अपने प्रेमगीतो मे कवि ने शृगार का रस-पारावार ही नही प्रस्तुत किया है, जीवन की विपची की झकार भी मुखरित की है।

८

परिशिष्ट

(क) विद्यापति के जीवनवृत्त तथा व्यक्तित्व के कुछ पक्ष
(ख) विद्यापति की सूक्तियां
(ग) विद्यापति के पदों की विषयानुक्रमणिका
(घ) वंश-पंजिकाएँ
(ङ) सहायक ग्रन्थों की सूची

(क)

विद्यापति के जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व के कुछ पक्ष

इस विनश्वर ससार मे अविनश्वर कुछ भी नही। यदि कुछ अविनश्वर हो तो वह है महाकवियो की वाणी, विचारको के चिन्तन तथा महज्जनो के कृत्य। कहते है "कीर्तिर्यस्य स जीवति"। किसी-किसी की कृति ऐसी होती है कि महाकाल के गर्भ मे समा जाने पर भी वह अपनी ज्योतिमाला से लोकमानस को आलोकित कर अपने साथ कृतिकार को भी विस्मृत नही होने देती। ससार के महाकवियो की वाणी मानवता की ऐसी ही अक्षय, अजर, अमर निधि है। वाल्मीकि, व्यास, होमर, शेक्सपियर, विद्यापति, कबीर, तुलसी, सूर—अपने जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे इन्होंने कुछ भी नही लिखा, विद्यापति के पूर्वजो मे एक-से-एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हुए, उनके नाम दूसरो ने गौरव के साथ लिये है, पर विद्यापति ने उनके विषय मे एक शब्द नही लिखा।

विद्यापति के जीवनवृत्त, उनकी ठीक ठीक जन्मतिथि, उनके सखा, आश्रय-दाता आदि के विषय मे हमे विभिन्न सूत्रो से प्राप्त सामग्रियो पर निर्भर करना पडता है। मुख्यत ये सूत्र है मैथिल ब्राह्मणो के पजीप्रबन्ध, कवि के सम्बन्ध मे उनके सम-कालीन एव परवर्ती लेखको द्वारा यत्किंचित् उल्लेख, एव कवि की रचनाएँ। विद्यापति की रचनाओ मे तत्कालीन उन राजाओ तथा रानियो के नाम आये है जिनकी प्रेरणा वा आदेश से उन ग्रथो की रचना की गयी। उनके अनेक पदो मे भी विभिन्न राजा-रानियो के नाम आये है। इन राजाओं के विषय मे उस युग के साहित्य तथा कतिपय अन्य सूत्रो से भी कुछ प्रकाश मिलता है। इन विभिन्न सूत्रो से प्राप्त सामग्रियो के आधार पर विद्यापति के जीवनवृत्त, उनके पूर्वज, आश्रयदाता तथा व्यक्तित्व की एक रूपरेखा तो खीची ही जा सकती है। इनमे कुछ बातो के विषय मे अधिक विवाद

नही है, कुछ बातें निर्विवाद है, पर कुछ बातो के सम्बन्ध मे घोर विवाद भी है।

वश तथा पूर्वज

मैथिल ब्राह्मणो के पजीप्रबध से ज्ञात होता है कि वे बिसइवार मूल के मैथिल ब्राह्मण थे।[१] उनका मूल निवासस्थान बिसफी था। यह स्थान दरभगा से उत्तर-पच्छिम जानेवाली रेलवे के कमतौल स्टेशन से लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है। आज भी वहाँ ऐसे अवशेष मिलते है जिनके साथ विद्यापति की स्मृतियाँ जुडी हुई है।

विद्यापति का जन्म एक विद्वान् तथा पडित परिवार मे हुआ था। यद्यपि हरिसिहदेवी 'पजीप्रबन्ध' ने उनके कुल को "उच्चकुलीन सैंतीस" के अतर्गत नही रख कर बिसइवार मूल के ब्राह्मणो की सामान्य श्रेणी प्रदान की, पर यह निर्विवाद है कि विद्यापति के पूर्वज विद्वान्, सुलेखक एव लब्धप्रतिष्ठ थे तथा सर्वोच्च पदो पर अधिष्ठित हो चुके थे। विद्यापति के इन सम्भ्रान्त पूर्वजो मे देवादित्य ठाकुर, कर्णाट राजा के "सन्धिविग्रहिक" थे। 'पजीप्रबन्ध' मे भी उनका नाम सन्धिविग्रहिक के विरुद से युक्त है।[२] इनके पुत्र वीरेश्वर, पौत्र चण्डेश्वर तथा गणेश्वर—सभी कर्णाट राजाओ द्वारा सम्मानित एव राज्य के परम शक्तिशाली मत्री हुए। महामत्तक चण्डेश्वर ठाकुर ने 'सप्तरत्नाकर' की रचना की जिसमे एक प्रकार से सामाजिक जीवन की व्यवस्था मे नवविधान करने का प्रयत्न है। तत्कालीन एव परवर्ती मैथिल ब्राह्मणो के सामाजिक जीवन पर इसका व्यापक प्रभाव पडा होगा। प्रो० रमानाथ झा ने 'सप्तरत्नाकर' की रचना को मैथिल समाज मे एक सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति लानेवाली घटना माना है।[3] चण्डेश्वर ठाकुर अन्तिम कर्णाट राजा हरिसिहदेव के "महामत्तक" (महामात्य) थे। चण्डेश्वर के पिता वीरेश्वर ने "सप्ताग राज्य स्थिति" की स्थापना की थी[४], जिसके अनुसार राजकाज का सचालन सात महामन्त्रियो के द्वारा होता था। ये मन्त्री पर्णागारिक, महावार्त्तिक, नैवधिक, मुद्राहस्तक, महासामन्ताधिपति, स्थानान्तरिक, राजवल्लभ और भाडागारिक थे। महामत्तक चण्डेश्वर ने 'कृत्यचिन्तामणि' नामक एक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की थी। उनके इन ग्रन्थो मे

---

१ बिसइवार वश का 'पंजीप्रबन्ध', परिशिष्ट 'घ'।

२ वही।

3 पुरुषपरीक्षा, भूमिका—प० रमानाथ झा, पृ० १७।

४ वही, पृ०, ११।

भी देवादित्य, वीरेश्वर तथा गणेश्वर की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गयी है।[1] देवादित्य का "हम्वीर ध्वान्त भानु" विरुद भी इस स्तवन में मिलता है, जिससे संकेत मिलता है कि वे अलाउद्दीन खिल्जी के हम्वीर के विरुद्ध अभियान में उसके साथ थे। मंत्रिरत्नाकर की उपाधि उन्हें इसी के उपलक्ष्य मे मिली थी।[2]

वीरेश्वर ने अपने सातों भाइयो को मंत्रिपद पर नियुक्त करके राज्य मे सर्वोच्च सम्मान के पद पर अधिष्ठित किया। चण्डेश्वर भी अपने पिता के समान ही सुयोग्य तथा प्रख्यात हुए। 'कृत्यरत्नाकर' मे उन्होंने अपने को "कुलक्रमागते सन्धिविग्रह-पदे" लिखा है। पर विद्यापति ने देवादित्य या चण्डेश्वर का उल्लेख अपनी किसी रचना मे नही किया है। केवल वीरेश्वर तथा गणेश्वर के उल्लेख उनकी 'पुरुषपरीक्षा' की एकाधिक कथाओ मे मिलते हैं।[3] ये गणेश्वर 'पंजीप्रबन्ध' मे "महामत्तक महा-सामन्ताधिपति" के विरुद से अभिहित किये गये हैं। यहाँ भी उनके कवि के पूर्वज या निकट सम्बन्धी होने का कोई संकेत नही दिया गया है।

विद्यापति के पिता का नाम गणपति ठाकुर तथा पितामह का नाम जयदत्त ठाकुर था। ये महामत्तक वीरेश्वर के द्वितीय भ्राता धीरेश्वर के पुत्र थे। पंजीप्रबन्ध मे इनका विरुद महावार्तिकनैबन्धिक दिया हुआ है। ऐसा जान पडता है कि धीरेश्वर ठाकुर के बाद इस वंश मे विद्यापति को छोड अन्य कोई प्रख्यात व्यक्ति नही हुआ। डॉ० विमान

---

[1] आसीन्मैथिल तीरभुक्ति विषये मन्त्र प्रभावाहत—
प्रत्यर्थि क्षितिनायकान्वतमश्चकद्विजातां प्रियः
शौर्य्योल्लासित मण्डलस्सुमन सामदर्पश्च पद्माश्रयो—
देवादित्य इति त्रिलोकमहितो मन्त्रीन्द्रचूडामणिः॥
स्रष्टाऽसौ राजलक्ष्म्यास्सचिव कुल गुरुस्तेजसा विश्वसाक्षी
क्षोणानाथानुकम्पा परवश हृदयो जंगमः पारिजातः
हृदयसेनापतीनामपय गतिमनां बुद्धि सिन्धोरगस्त्या
हम्वीर ध्वान्तभानुर्निखिल निज गुणैस्तोषयामास विश्वम्
फूत्कारोपहता फणीन्द्रशिरसि कोडानने दंष्ट्रया
विद्धा कूर्मकठोर पृष्ठकपर्णैः पीठामुपेता चिरम्।
कार्णाटाविपमन्त्रिणि प्रथितयसत्कीर्त्ति प्रताने महा-
दानौघव्यसने नयेक सुहृदि क्षोणी सुखं वर्त्तते॥
—मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ४८७–८८।

[2] पुरुषपरीक्षा, मिथिला भाषानुवाद—चन्दा झा, पृ० ५४।

[3] "आसीन्मिथिलायां वीरेश्वरो नाम मंत्री।"—पुरुषपरीक्षा (कथा ६), पृ० ३८।
'आसीन्मिथिलायां कर्णाट कुल संभवो हरसिंहदेवो नाम राजा। तस्य सांख्यसिद्धान्त-पारगामी दण्डनीतिकुशलो गुणेश्वरो नाम मंत्री बभूव।" —वही, पृ० ६१।

विहारी मजूमदार का अनुमान है कि कदाचित् इसी कारण विद्यापति ने अपने इन प्रतापी तथा विद्वान् पूर्वजो का नामोल्लेख कही नही किया है।[१] वीरेश्वर एव गणेश्वर का मन्त्री एव "साख्य सिद्धान्त पारगामी दण्डनीतिकुशल" (क्रमश) के विरुद के साथ विद्यापति द्वारा 'पुरुषपरीक्षा' मे उल्लेख किया गया है पर यहाँ भी उनके कवि का पूर्वज होने का कोई सकेत नही।

विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर ओइनवार वशीय राजा भोगीश्वर के राज-पडित थे। उन्हे प० रमानाथ झा ने 'गगाभक्तितरगिणी' के लेखक गणपति से भिन्न माना है।[२] इसी प्रकार विद्यापति का अपने पिता के साथ भोगीश्वर की राजसभा मे यदाकदा जाने तथा भोगीश्वर नामाकित एक पद की रचना करने के विषय मे सामान्य धारणा मान्य रही है, पर भले ही विद्यापति अपनी बाल्यावस्था मे यदाकदा पिता के साथ भोगीश्वर की राजसभा मे जाते हो, उनका भोगीश्वर को समर्पित या उनके समक्ष पठित पद-रचना करना विश्वसनीय नही प्रतीत होता।

इस सम्बन्ध मे कतिपय विद्वानो ने यह युक्ति अनुमानित की है कि भोगीश्वर अपने पुत्र गअनेसर की असलान द्वारा हत्या किये जाने के बाद भी बहुत काल तक जीवित थे अत विद्यापति का उनको समर्पित पदो की रचना करना असभाव्य नही।[३] कई कारणो से यह स्थापना ठीक नही जान पडती। इसके पक्ष मे विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' की एक पक्ति "भोगाई रजाक वड्डिनाओ" उद्धृत की गयी है। पर भोगीश्वर ठाकुर की ख्याति उनके जीवन-काल के उपरान्त भी रह सकती थी, गअनेसर की हत्या के उपरान्त यदि वे जीवित भी रहते तो राज्य से भ्रष्ट पुत्र की हत्या का बदला लेने मे अक्षम—ऐसे हीन-वीर्य व्यक्ति का 'वड्डिनाओ' होना सभव नही हो सकता था।

काल-निर्णय

विद्यापति की जीवनावधि के सम्बन्ध मे सबसे अधिक मान्य मत इतना ही है कि चौदहवी शती के उत्तरार्द्ध (१३५० ई०) से पन्द्रहवी शती के पूर्वार्द्ध (१४५०) मे कवि जीवित थे तथा उनकी विभिन्न कृतियो की रचना इसी काल मे हुई। विद्यापति ने अपनी रचनाओ मे जो भी तिथियाँ दी हैं वे लक्ष्मण सवत् की हैं। उनके एक पद मे लक्ष्मणाब्द के साथ शकाब्द का भी उल्लेख किया गया है जिसे अत्यधिक महत्त्व देना आवश्यक है। इस पद के अनुसार ल० स० २९३ शकाब्द १३२४ के समकक्ष होता है। इसमे विद्यापति के प्रसग मे लक्ष्मणाब्द का अन्य सवतो से सम्बन्ध निर्धारित हो जाता है। इसके अनुसार लक्ष्मण सवत् और ईसवी सन् मे ११०६ वर्षों का व्यवधान निश्चित होता है, विद्यापति-साहित्य मे दी गयी तिथियो का ईसवी सन् से सम्बन्ध इसी

---

१ मि० म० वि०, भूमिका, पृ० ७।

२ पुरुषपरीक्षा, प० रमनाथ झा द्वारा सम्पादित, भूमिका, पृ० ११-१२।

३ बि० रा० भा० प०, भूमिका, पृ० ४३।

आधार पर निर्णीत किया जाना चाहिए। प्रो० रमानाथ झा, डा० सुभद्र झा प्रभृति विद्वान् ऐसा ही मानते हैं।

११०६ ई० मे लक्ष्मणाब्द का प्रारम्भ मानने पर देवसिंह की मृत्यु तथा शिवसिंह का राज्याभिषेक १४०२ ई० (२६३ ल० सं०) मे होना निश्चित होता है। इधर 'कीर्त्तिलता' के अनुसार जौनपुर के इबराहिमशाह की सहायता से कीर्त्तिसिंह-वीरसिंह ने असलान को हराकर अपना राज्य पुन. प्राप्त किया। यह इबराहिमशाह जौनपुर का सुल्तान इबराहिमशाह शर्की ही हो सकता है। यह १४०१ ई० मे सिंहासनाधिरूढ हुआ था। सामान्यतः यह माना जाता रहा है कि विद्यापति कीर्त्तिसिंह-वीरसिंह के साथ जौनपुर गये थे तथा कीर्त्तिसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर एवं उसके बाद उनके राज्याश्रय मे रहकर उन्होंने 'कीर्त्तिलता' की रचना की। कीर्त्तिसिंह अल्पायु हुए। उनकी मृत्यु के बाद शिवसिंह के अतर्गत दोनों राज्य मिलकर एक हो गये तथा विद्यापति शिवसिंह की छत्रछाया मे रहने लगे।

इतिहास सम्बन्धी इस असंगति को दूर करने के हेतु डॉ० सुभद्र झा ने 'कीर्त्तिलता' मे वर्णित 'जओनापुर' को दिल्ली, तथा इबराहिमशाह को फिरोज तुगलक का कोई अप्रसिद्ध सामंत-सरदार या सेनाध्यक्ष माना है।

परिषद्-पदावली के सम्पादकों ने इसी आपत्ति के परिहार के लिए एक और भी विलक्षण कल्पना की है—यह कि 'कीर्त्तिलता' मे उल्लिखित इबराहिमशाह किसी व्यक्ति का नाम न होकर मुस्लिम राजवंश का ही आस्पद है।[1] दोनों ही स्थापनाएँ किसी ठोस ऐतिहासिक आधार पर खडी नही की गयी हैं। इस सम्बन्ध मे मेरी स्थापना निम्नलिखित है—

(क) २६३ ल० स० (१४०२ ई०) मे देवसिंह की मृत्यु हुई तथा शिवसिंह का विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। इसी अवसर पर राजा शिवसिंह ने विद्यापति को बिसफी का दान करके उनको सम्मानित किया। शिवसिंह और कीर्त्तिसिंह विद्यापति के समवयस्क थे।[2]

(ख) १४०२ ई० मे ही कीर्त्तिसिंह-वीरसिंह ने जौनपुर के सुलतान इबराहिमशाह शर्की की सहायता से असलान को हराकर अपना राज्य प्राप्त किया तथा कीर्त्तिसिंह सिंहासनारूढ हुए। कीर्त्तिसिंह और शिवसिंह चचेरे भाई थे। कामेश्वर के मरने पर ओइनवार राज्य एव राजवंश की तीन शाखाएँ हो गयी थी।[3] इनकी अलग-अलग राजधानियाँ थी तथा अलग-अलग अधिकार क्षेत्र थे। भोगीश्वर सभवत अपनी पैतृक राजधानी मे ही रहे पर भवेश्वर या भवसिंह ने अपने नाम पर भवग्राम बसाया

[1] वि० रा० भा० प०, भूमिका, पृ० ५१।
[2] वही, पृ० १६।
[3] वही, पृ० ३९-४६; मिथिला की राजपंजी, परिशिष्ट 'घ'।

विद्यापति के प्रसग मे अन्य दो तिथियाँ और भी है। ये विद्यापति द्वारा उल्लिखित नही, पर अन्य सूत्रों द्वारा प्राप्त है। ये तिथियाँ है ल० स० ३२१[1] तथा ल० म० ३७२[2], तदनुसार १४३० एव १४३७ ई०। राजा धीरसिंह हृदयनारायण का जिनके राज्यकाल से सम्बन्धित उक्त दोनो तिथियाँ हैं, उल्लेख विद्यापति की 'दुर्गाभक्तितरगिणी' में किया गया है। इसके बाद की कोई तिथि विद्यापति के प्रसग मे या उनसे सम्बन्धित नही मिलती है। अत ऐसा अनुमान करना असगत नही होगा कि कवि की मृत्यु १४४० ई० के लगभग हुई होगी। इस प्रकार उनका जन्म यदि १३५० ई० मे निश्चित होता है तो विद्यापति की आयु ९० वर्षों की अनुमानित होती। विद्यापति की वश-पजी को देखने से जान पडता है कि उनके वश मे लोग दीर्घायु होते रहे हैं अत. ९० वर्षों की आयु मे कवि की मृत्यु हुई हो यह अस्वाभाविक भी नही।

जीवनवृत्त : सूत्ररेखाएँ

महाकवि का जन्म मिथिला के इतिहास के एक घोर उथलपुथल के युग मे हुआ था। इस समय मिथिला (तिरहुत) पर पूरब और पच्छिम दोनो दिशाओ से आक्रमण का खतरा हमेशा बना रहता था। कर्णाट राजाओ तथा उनके मन्त्रियो ने किसी तरह देश की स्वतन्त्रता बनाये रखी थी पर अतिम कर्णाट राजा हरिसिंहदेव ने 'नव-पजीप्रबन्ध' का निर्माण करवाया (१३२६ ई०) जिससे मैथिल समाज में ऐसा विभ्राट् मचा जिसके कारण उसी वर्ष के मुस्लिम आक्रमण में कर्णाट राजवश के साथ-साथ तिरहुत का स्वतन्त्र राज्य के रूप मे अस्तित्व भी समाप्त हो गया।[3]

कर्णाट राजवश के अस्त होने पर ओइनवारो के हाथ मे तिरहुत का शासनसूत्र आया। ये दिल्ली सल्तनत के करद या सामन्त राजा थे। विद्यापति के पूर्वज अन्तिम कर्णाट राजवश के समय से ही राज्य के सर्वोच्च पदो पर आसीन होते आये थे। यह परम्परा ओइनवारो के शासनकाल मे भी रही। महामत्तक चण्डेश्वर ओइनवार राजा भवेश्वर या भवसिंह के भी मंत्री थे। विद्यापति का जन्म १३५० ई० के लगभग हुआ। इस समय भोगीश्वर ओइनवार राज्य के एक खड के अधिपति थे। कामेश्वर ठाकुर की मृत्यु के अनन्तर ओइनवारो की तीन शाखाएँ हो चुकी थी।

भोगीश्वर के पुत्र गयनेसर असलान द्वारा छल से मारे गये। विद्यापति की आयु इस समय ११-१२ के लगभग होगी। इनके मरणोपरान्त राज्य मे अराजकता तथा सामाजिक विशृंखलता छायी रही। पर भोगीश्वर के कनिष्ठ भ्राता भवेश्वर अन्यत्र अपना राज्य स्थापित कर चुके थे, जिसकी राजधानी सभवत. भवग्राम या भभाम थी। इन्ही के पुत्र देवसिंह थे जिन्होंने अपनी राजधानी देवकुली मे स्थापित की।

---

[1] मि० म० वि०, भूमिका, पृ० ३९ तथा वि० रा० भा० प० (प्र० खं०) भूमिका, पृ० २९-३०।

[2] वही।

[3] मिथिलातत्त्वविमर्श—महामहोपाध्याय परमेश्वर झा, पूर्वार्द्ध, पृ० १४३।

इधर गअनेसर के पुत्र कीर्त्तिसिंह न पितृवध का बदला लेन के उद्देश्य से सहायता के लिए पश्चिम की ओर प्रयाण किया। उनके पितृव्य देवसिंह सभवत इस समय नैमिषारण्य मे निवास कर रहे थे (उत्तर प्रदेश मे गोमती नदी के तट पर स्थित वर्तमान निमाखर)। विद्यापति इस समय तक मिथिला की राजनीति मे प्रवेश कर चुके थे। कीर्त्तिसिंह तथा देवसिंह के तेजस्वी एव तरुण पुत्र शिवसिंह दोनो ही उनके सखा थे। कीर्त्तिसिंह के साथ जो मडली चली उसमे अन्य लोगो के साथ विद्यापति भी रहे होंगे। 'कीर्त्तिलता' मे वर्णित जौनपुर नगर की शोभा तथा यात्रा का विवरण इसका सकेत करते हैं। विद्यापति ने इसी यात्रा के क्रम मे या कीर्त्तिसिंह जब जौनपुर के सुलतान के कृपाकाक्षी बने प्रतीक्षा करते होगे, नैमिषारण्य जाकर देवसिंह से भेंट की होगी। नैमिषारण्य मे उनका अध्ययन के लिए जाना[१] युक्तिसगत नही जान पडता, इसलिए कि मिथिला स्वय अध्ययन-अध्यापन का प्रख्यात केन्द्र कई सदियो से थी और ५० वर्ष की आयु मे कोई अध्ययन करने कही नही जाता।

कीर्त्तिसिंह १४०२ ई० मे पुन अपना राज्य प्राप्त करके सिंहासनारूढ हुए। विद्यापति ने कीर्त्तिसिंह की कीर्ति को अमर करने के लिए 'कीर्त्तिलता की रचना की, साथ ही कवि 'भूपरिक्रमा' की रचना-परम्परा को अनुपयुक्त देखकर उसे अपूर्ण ही छोड 'पुरुषपरीक्षा' की रचना कर रहे थे। 'पुरुषपरीक्षा' मे राजा शिवसिंह का स्तवन अनेक स्थलो पर आया है। इसकी प्रस्तावना मे कवि ने लिखा है कि देवसिंह के आदेश से यह रचना उन्होने की, इसके अन्तिमाश मे भवसिंह तथा देवसिंह दोनो का उल्लेख 'आसीत' क्रिया के साथ आता है, और बीच-बीच मे शिवसिंह का उल्लेख महाराजाधिराज के विरुद के साथ। विधिवत् राज्याभिषेक के पूर्व ही शिवसिंह की ख्याति विजेता एव योद्धा के रूप मे हो चुकी होगी। इसका सकेत बिसफी दानपत्र मे मिलता है।[२] विद्यापति इन दिनो उत्तरोत्तर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह अपनी काव्यरस-चद्रिका का प्रसार करते हुए अधिकाधिक प्रख्यात हो रहे होगे। उनके शृ गार तथा प्रेम विषयक अनेक पद इस काल मे रचे गये।

शिवसिंह ३ वर्ष ८ महीने तक सिंहासनासीन रहे। यह काल विद्यापति के पूर्णोत्कर्ष एव सुख का था। उनकी रचनात्मक प्रतिभा इस समय चरमोन्मेष पर थी। प्रेम, यौवन और सौन्दर्य के गीत की अबाध रसलहरी उनके हृदय से फूट कर समस्त मिथिला को आप्लावित कर रही थी। गीतिकला के साथ नृत्यकला का उन्मेष भी उनके निर्देशन मे हो रहा था। राजा शिवसिंह के समान उदार राजसखा तथा रानी लखिमा देवी के समान रसमर्मज्ञा की छत्रछाया मे तथा उनकी शुभ प्रेरणा से इस समय

---

[१] मि० म० वि०, भूमिका—डॉ० मजूमदार।

[२] येन साहसमयेन शस्त्रिना तुंग वाहवर पृष्ठ वर्त्तिना।
अश्वपतिबलयोर्वलजित गज्जनाधिपति गौड भूभुजाम्॥
—बिसफी दानपत्र, विद्यापति पदावली से उद्धृत, पृ० १६।

तिरहुत का जैसे स्वर्णकाल आ गया हो, और इसके मुख्य उद्गाता थे विद्यापति। इस बीच राजा गणेश की सहायता करते हुए उन्होंने गौडेश्वर से युद्ध करके उसे पराजित किया। इस युद्ध का वर्णन सभवत 'कीर्त्तिपताका' मे किया गया है। पर शिवसिंह पर दूसरा आक्रमण पश्चिम की ओर से हुआ। इसमें गणेश ने उनका साथ नहीं दिया। शिवसिंह इस बार के युद्ध का क्या परिणाम होगा, इसमे आशकित थे। अत युद्ध मे प्रयाण के पूर्व ही उन्होंने विद्यापति के साथ अपने परिवार को नेपाल तराई स्थित रजबनौली के द्रोणवार नरेश पुरादित्य गिरिनारायण के यहाँ भेज दिया।

जैसी आशका थी, इस युद्ध का परिणाम बहुत ही भयकर हुआ। आक्रामको की विजय हुई। राजा शिवसिंह रणक्षेत्र से वापस नही लौटे। मुसलमानी फौज शिवसिंह की गढी, उनकी राजधानी गजरथपुर आदि मे लूटपाट मचाकर लौट गयी। मिथिला की शासन-व्यवस्था अगले कई वर्षों तक के लिए छिन्न-भिन्न हो गयी। शिवसिंह के राज्यकाल के स्वर्ण-दिन दीपक की अन्तिम भभक की तरह अतीत की स्मृति बनकर रह गये।

विद्यापति के जीवन मे भी पटाक्षेप हो गया। प्रो० रमानाथ झा ने विद्यापति के जीवन-काल को दो खडों मे विभक्त किया है—पूर्वार्द्ध जो शिवसिंह की पराजय और अदृश्य होने के साथ अन्त होता है, तथा उत्तरार्द्ध रजाबनौली मे पुरादित्य के यहाँ उनके निवास से मृत्युपर्यन्त।[1]

सामान्य प्रवाद है कि शिवसिंह के अन्तर्ध्यान होने के उपरान्त बारह वर्षों तक रानी लखिमा देवी ने शासन किया तथा इस अवधि के समाप्त होने पर अपने पति की कुशनिर्मित मूर्ति के साथ चिता सजा कर सती हो गयी। पर अपनी राज्य सीमा से दूर एक दूसरे राजा के आश्रय मे रहकर राजकाज तो क्या सँभाला जा सकता है, आक्रामको के प्रकोप से बचने के लिए राजा शिवसिंह का परिवार वहाँ निवास करता रहा। कवि विद्यापति की मनस्थिति का सकेत उनके एक पद मे ही मिलता है—

सखि हे, दिन जनु काहु अवगाहे।
सुरतरु तर सुते जनम गमाओल
धुथुरा तर निरवाहे॥
दखिन पवन सउरभ उपभोगल
पिउल अमिअ रस सारे॥
कोकिल कलरव उपवन पूरल
तन्हि कत काएल विकारे॥
पातहि सओ फुल भमर अगोरल
तरुतर लेलन्हि बासे।

---

[1] पुरुषपरीक्षा, भूमिका—प्रो० रमानाथ झा, पृ० ३०।

से फुल काटि कीट उपभोगल
भमरा भेल उदासे ।
भनइ विद्यापति कलियुग परिनति
चिन्ता जनु कर कोई ।
अपन करम अपने पज भुंजिअ
जओं जनमान्तर होई ॥[1]

कवि कभी अपने व्यथित चित्त को समझाते, कभी भग्नहृदया रानी लखिमा को ढाढस बँधाते।[2] उनकी 'लिखनावली' (आधुनिक 'पत्रचन्द्रिका' जैसी पुस्तक) इसी काल की रचना है।

'लिखनावली' की रचना ल० सं० २९९ में हुई, बारह वर्ष की यह अवधि कवि के जीवन में सबसे अधिक दुखमय थी। रजाबनौली नरेश पुरादित्य गिरिनारायण को समर्पित विद्यापति का एक भी गीतिपद नहीं होना इस बात का संकेत करता है कि उसकी राजसभा में कवि और कविता का आदर नहीं था। अपने देश से दूर अरसिक राजा के आश्रय में, प्रिय सखा की मृत्यु की छाया और रानी लखिमा प्रभृति शिवसिंह की छह पत्नियों की कभी नहीं सूखनेवाली अश्रुधारा में डूबते-उतराते हुए विद्यापति घोर दु:ख के ये दिन व्यतीत करते रहे।

बारह वर्ष बाद, रानी लखिमा के सती होने के उपरान्त, विद्यापति पुनः मिथिला लौटे (१४१८ ई० के लगभग)। कवि की आयु इस समय सत्तर वर्ष हो चुकी थी। अब ज्यादातर उनका समय पूजा-उपासना में व्यतीत होता। वयोवृद्ध कवि एवं पंडित के रूप में अभी भी वे राजसभा में सम्मानित होते थे, पर राजा के सभासद अब उनके पुत्र हरिपति थे। इस समय ओइनवार वंशीय राजा पद्मसिंह तथा उनके

---

[1] मि० म० वि०, ५३०, पृ० ३५७; पद ७२१, पृष्ठ ४६६ भी देखिए।

[2] कालि कहल पिया साँझहि रे
जाएब मोयँ मारुअदेस।
मोयँ अभागिनी नहिं जानलि रे
संगहि जइतहुँ सेह देस॥
हृदय पीर बड़ दारुन रे पिया विनु विहरि न जाये॥
एकहि सयन सखि सूतल रे अछल बालम निसि मोर॥
न जानल कति खन तेजि गेल रे विछुरल चकवा जोर॥
सून सेज हिय सलाए रे पिया विनु मरब मोयँ आजि।
विनती करओं सहलोलनि रे मोहि देह अगिहर साजि॥
विद्यापति पति कवि गाओल रे आए मिलत पिया तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे राए सिवसिंह नहिं मोर॥
—रागतरंगिणी, पृ० ७५।

मरणोपरान्त उनकी पत्नी विश्वासदेवी के हाथो मे शासन-सूत्र था। विश्वासदेवी ने १२ वर्षों तक राजकाज चलाया। इस काल मे कवि ने 'शैवसर्वस्वसार' की रचना की। विद्यापति अब अति वृद्ध हो चुके थे। अपने जीवन के शेष दिन भजन-पूजा मे व्यतीत करते, विनय तथा भक्ति के पद लिखते। यदा-कदा रस के छींटे भी उनकी वाणी से निकल पडते पर अब सासारिक हलचल से विरक्त होकर "माधव हम परिनाम निरासा" सरीखी पंक्तियाँ ही उनके हृदय से अधिक मुखरित होती। उनके पदो मे कई और राजाओ के नाम आये हैं[१]। इनके अतिरिक्त ओइनवार वंशीय एकाधिक राजकुमारो तथा कतिपय मन्त्रियो को समर्पित पद भी मिलते हैं।[२]

विद्यापति ने नरसिंह दर्पनारायण के आदेश से 'विभागसार' की रचना की, उनकी पत्नी धीरमति को समर्पित 'दानवाक्यावली' लिखी तथा भैरवसिंह हरिनारायण की आज्ञा से 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' प्रस्तुत की। इन रचनाओ के अतिरिक्त छिटपुट पदो की रचना जीवन के अन्तिम दिनो तक करते रहे।

विद्यापति के जीवन-नाटक का अन्तिम यवनिकापात समीप आ रहा था। मिथिला मे यह अनुश्रुति है कि एक दिन कवि ने अपने दिवंगत सखा राजा शिवसिंह को सपने मे देखा, और उनके हृदय से यह गीत फूट पडा—

आज देखल हम शिवसिंह भूप
बतिस बरस पर सामर रूप
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन
आब भेलहुँ हम आयुविहीन
समटु समटु निज्र लोचन-नीर
ककरहुँ काल न राखथि थीर
विद्यापति सुगतिक प्रस्ताव
त्याग के करुना रसक स्वभाव।[३]

---

१ मि० म० वि०, पद संख्या—२०८ पद्मसिंह, विश्वासदेवी
२०९–१३ अर्जुनसिंह
२१६ कसनारायन
२१७–१९ राघवसिंह
२२०–२८ रुद्रसिंह

२ वही, पद संख्या— २१४–१५ कुमरसिंह
२२१–२४ मन्त्रि महेसर
२२५ रतिधर
२२६ राय दामोदर

३ वि० रा० भा० प०, भूमिका, पृ० ३१।

व्यक्तित्व

विद्यापति के पूर्व तथा उनके समकालीन मिथिला में एक-से-एक प्रकांड विद्वान, महापण्डित, राजनीतिपटु तथा कर्मठ व्यक्ति हुए हैं। विद्यापति के पूर्वजो मे भी कई ऐसे महान् व्यक्ति मिलते हैं जो एक साथ ही विद्वान्, राजनेता, पराक्रमी तथा सुनेसम थे। ज्योतिरीश्वर ठाकुर से महामत्तक चण्डेश्वर तक, वाचस्पति मिश्र मे मंत्रिवर अच्युत तक—ऐसे प्रतिभाशाली विशिष्ट जनो की सूची काफी लम्बी है। उनकी तुलना मे विद्यापति उनसे कम विद्वान्, उनमे कम प्रभावशाली राजनीतिज्ञ, उनसे कम शक्ति-सपदा अर्जित करनेवाले जान पड़ेंगे। फिर भी अनेक बातो मे तथा अनेक दृष्टियो से विद्यापति उन सबों से विलक्षण थे।

यो विद्यापति सामान्यत रसमय गीतिपदो तथा नीति-कथाओं के रचयिता के रूप मे विख्यात रहे हैं। पर वस्तुत. उनका प्रभाव इन तीन-चार सदियो मे मिथिला के जनजीवन, सस्कृति एवं समग्र जनमानस पर अमिट रूप से पडता रहा है। मिथिला, विशेषकर मैथिल ब्राह्मणो, के व्यक्तिगत तथा सामुदायिक जीवन का शायद ही कोई अनुष्ठान हो जिसमे विद्यापति के, या उनकी भणिता से युक्त गीत नही गाये जाते हो। यह प्रभाव इतना अधिक लोकव्यापी हुआ कि अनेक पद गढ़-गढ कर उहे विद्यापति की भणिता से युक्त कर विद्यापति-साहित्य के अन्तर्गत कर दिया गया।

विद्यापति ने एक अत्यन्त सुसस्कृत परिवार मे जन्म लिया था। सस्कृत भाषा एवं साहित्य का विशद ज्ञान तो उन्हे पारिवारिक वातावरण से ही मिला होगा। प्रखर व्यवहार-बुद्धि, रसग्राही हृदय, मर्मग्राहिणी दृष्टि उन्हे पारिवारिक सस्कार के रूप मे मिले होंगे। प्रकृत्या वे स्वाभिमानी होंगे, अन्यथा वे कैसे लिखते—

"तैरभुक्तीयाः स्वभावाद् गुणगर्व्विण एव भवन्ति"[1]

मानव प्रकृति के वे गहरे पारखी थे। 'कीर्त्तिलता' मे जौनपुर वर्णन का प्रसंग[2], प्रारम्भ मे ही दुर्जन-सज्जन का प्रकृतिनिरूपण[3] आदि इसके प्रमाण हैं। इस रचना की पंक्ति-पंक्ति मे कवि की मार्मिक दृष्टि का परिचय मिलता है। 'पुरुषपरीक्षा' की कथाएँ मानव प्रकृति के विभिन्न पक्षो का एक विशद तथा पूर्ण चित्रण प्रस्तुत करती हैं। मानव कैसे एक पुच्छविषाणहीन जीवधारी मात्र न होकर पूर्ण मानव बन सकता है, उसके क्या लक्षण होंगे, कौन-से गुण, क्षमताएँ उसके लिए आवश्यक हैं, पूर्ण मानवता की क्या कसौटी होगी—'पुरुषपरीक्षा' का वर्ण्य-विषय ही यही है। मानव प्रकृति का

---

[1] पुरुषपरीक्षा, गीतविद्यकथा, पृ० १३०।

[2] कीर्त्तिलता (सक्सेना द्वारा सम्पादित), पृ० २८-४८।

[3] महुअर बुज्झइ कुसुम रस, कव्वकलाउ छइल्ल।
सज्जन परउअआर मन, दुज्जन नाम मइल्ल॥
—कीर्त्तिलता, पृ० ४।

गहरा पारखी हुए बिना कोई ऐसे ग्रन्थ की रचना कैसे कर सकता था ? 'लिखनावली' मे पत्रों के नमूने प्रस्तुत किये गये हैं। इनमे भी मानव प्रकृति की वही गहरी परख, पैनी दृष्टि एव मर्मग्राहिणी प्रकृति का दर्शन होता है।[1]

विद्यापति का मानव प्रकृति का विशद ज्ञान उनके गीतिपदो से पग-पग पर दीख पडता है।[2] कबीर और रहीम के दोहो तथा गोस्वामी तुलसीदास की अनेक पक्तियो की तरह विद्यापति की भी अनेकानेक पक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन गयी हैं, उनके मानव प्रकृति ज्ञान का इससे बढकर और क्या प्रमाण होगा ?

विद्यापति कोरे पुस्तकज्ञानी पडित नही थे। जिस सघर्ष और हलचल भरे युग मे उनका जीवन बीता उसमे उनके समान सवेदनशील व्यक्ति के लिए ऐसा होना सम्भव वा समीचीन भी नही था। 'पुरुषपरीक्षा' मे उन्होने एक स्थल पर लिखा है कि पुस्तकीय ज्ञान अस्त्र शस्त्र विद्या से ऊपर नही, क्योकि जब देश मे सामरिक शक्ति से सुरक्षा रहती है तभी पुस्तकीय ज्ञान का उन्मेष होता है।[3]

---

[1] पत्र सख्या १५, (पृ० ११-१२), १८ (पृ० १३-१४), ३६ (पृ० २३ २४), ३७ (पृ० २४), ४३ (पृ० २७)।

[2] (क) जाइत बाम्हण तेजए सनान।
जाइल मानिनि तेजए मान।
जाइल राड घोयडी तान।
—मित्रमजूमदार, पद सख्या २१५, पृ० १६०।

(ख) आरति गाहक महग बेसाह। —वही।

(ग) हमे धनि कूटनि परिनत नारि।
येसहु पात न कहाँ विचारि॥
काहुके पान काहु विअ सान।
कत न हकारि कएल अपमान॥ —वही, पदसख्या, ६ पृ० ६।

(घ) अपन बचन अपने निरवाह। —वही, पृ० ७।

(च) जतने कत न के न बेसाहए, गुजा के दहु कोन।
परक बचन कुर्ज धस बेअ तैसन के मतिहीन॥
—वही, पद ११३, पृ० ८८।

(छ) कूप न आवए पथिकक पास। —वही, पद १३४, पृ० १०१।

उपर्युक्त पक्तियाँ कवि के मानव प्रकृति ज्ञान के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है, एसी पक्तियाँ पदावली के हर पृष्ठ पर मिलेंगी, जिनका एक सकलन परिशिष्ट 'ख' मे प्रस्तुत किया गया है।

[3] "शस्त्रविद्यास्वभावेन सर्वाम्योस्ति महीयसी।
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते॥"
—विद्यापति, 'पुरुषपरीक्षा', शस्त्रविद्यकथा, पृ० ९४।

उनकी इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि विद्यापति सपनों या कल्पना म खाये रहनेवाले शब्दशिल्पी या भक्तिरस म भूमनेवाले पदकर्ता नही थे। अपने युग-यथार्थ के प्रति वे पूर्ण जागरूक थे। अपने देश के राजनीतिक रगमच पर उस समय हो रहे नाटक के वे उदासीन या तटस्थ दर्शक नही थे। उनके जीवनवृत्त के अन्तर्गत हमने देखा है कि वे कीर्त्तिसिंह के साथ जौनपुर गये, शिवसिंह के सखा, राजकवि तथा मन्त्री रहे, उनके परिवार के साथ बारह वर्षों तक उनके सुख-दुःख के साथी रहे इस प्रकार विद्यापति भारत की कवि-परम्परा में एक प्रकार से सबमे विलक्षण दीख पडते हैं। केवल वाणी-मन्दिर के पुजारी ही नही, क्षण-क्षण परिवर्तित राजनीतिक रगमच के कर्मठ तथा मँजे खिलाडी भी रहे वे आजीवन। इसीलिए विद्यापति 'दरबारी' कवि उस अर्थ मे नही जिस अर्थ मे रीतिकालीन कवियो को सामान्यत माना जाता है।

कर्मठ जीवन मे प्रवेश करते ही विद्यापति अपने देश के राजनीतिक चक्रवाल म कूद पडते हैं, देवसिंह, शिवसिंह, कीर्त्तिसिंह, राय अर्जुन, पद्मसिंह, नरसिंह, भैरवसिंह, अमरसिंह—विभिन्न राज्यो तथा विभिन्न पीढियो के राजा—सभी उनका सम्मान करते थे, सबके दुःखसुख मे उन्होंने साथ दिया, अपने गुणग्राहकों की प्रशस्ति मे कृपणता नही दिखायी। वस्तुत देवसिंह उनके गुणग्राही थे, कीर्त्तिसिंह, शिवसिंह उन्हे सखा के समान मानते थे, पद्मसिंह, विश्वासदेवी, नरसिंह, भैरवसिंह उनका वयोवृद्ध राजपुरुष की तरह सम्मान करते थे।

विद्यापति की उपासना-पद्धति के सम्बन्ध म विद्वानो के मध्य बहुकालीन विवाद चलता आ रहा है। इसका कारण बगला साहित्य तथा बगीय वैष्णव समाज मे विद्यापति के पदो का प्रचलन है। चैतन्य महाप्रभु उनके पदो को सुनकर भावविभोर[1] हो गये, मधुरोपासना, सहजिया सम्प्रदाय आदि के कीर्तन गीतो से मिलते-जुलते भाव एव अर्थ विद्यापति के पदो के लगाये जा सकते हैं, राधा और कृष्ण उनके अनेक पदो के आलम्बन हैं। ये सभी कारण हैं बगीय वैष्णव समाज मे विद्यापति के वैष्णव भक्त कवि के रूप मे मान्य

---

[1] (क) चडीदास विद्यापति रामेर नाटकगीति कर्णामृत श्री गीतगोविन्द।
स्वरूप रामानन्द सने महाप्रभु रात्रिदिने सुने परम आनन्द॥

(ख) विद्यापति चडीदास श्रीगीतिगोविन्द। एइ तीनि गीते करे प्रभुर आनन्द॥

(ग) विद्यापति चडीदास श्रीगीतगोविन्द। भावानुरूप श्लोक पढ़े रायरामानन्द॥
मध्ये मध्ये प्रभु आपने श्लोक पढ़िया। श्लोकेर अर्थ करेन प्रभु प्रलाप करिया॥
—'चैतन्य चन्द्रोदय'

(Quoted from '*Early History of Vaishnav Faith and Movement in Bengal*', by Sushil Kumar De)

होने के। फिर बगदेश मे ही कई विद्यापति हो गये है[1] जिन्होने अनेक पद लिखे। कालान्तर म ये सभी विद्यापति-साहित्य मे घुलमिल गये। विद्यापति के प्रेमगीतो का इतना व्यापक प्रभाव तत्कालीन तथा परवर्त्ती बगभाषी समाज पर पड़ा कि वहाँ मैथिली-बगला मिश्रित एक कीर्त्तनिया पदो की कृत्रिम भाषा ही विकसित हो गयी जिसे व्रजबुलि कहते हैं। उपर्युक्त कारणो से विद्यापति वैष्णव भक्त, राधाकृष्ण के उपासक तथा वैष्णव पदकर्त्ता के रूप मे बगाल मे प्रख्यात रहे। ग्रियर्सन तथा डॉ० जनार्दन मिश्र ने उनके काव्य मे रहस्यात्मक श्रृङ्गार की व्यजना मानी है।

विद्यापति की उपासना-पद्धति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत हैं—

(१) विद्यापति शिव के उपासक थे।[2] शिवप्रिया दुर्गा उनकी उपास्य देवी थी[3], गगातट पर मृत्यु गगा-स्नान आदि पापविघातक तथा मोक्षदायक हैं, इसमे उनकी अटूट आस्था थी।

(२) विद्यापति या उनके समकालीन मैथिल समाज में धार्मिक कट्टरता या असहिष्णुता नही थी। धर्म के क्षेत्र मे उदारता मिथिला की सस्कृति का एक अभिन्न अग रही है। विद्यापति शिव, दुर्गा आदि की पूजा करते थे, पर राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु के नाम भी वे भक्ति और श्रद्धा के साथ स्मरण करते थे।

(३) विद्यापति वैष्णव भक्तो की परम्परा मे नही थे।

(४) मधुरोपासना या सहजिया सम्प्रदाय के साथ उनका सम्बन्ध नही था।

(५) विद्यापति कर्मठ, पुरुषार्थी सद्गृहस्थ थे, अपने देश के राजन्यवर्ग के

---

१ 'पुरुषपरीक्षा' (पटना यूनीवर्सिटी पब्लिकेशस), भूमिका, पृ० ८।

२ इसके निम्नलिखित आधार हैं—

(क) वृद्धावस्था मे 'शैवसर्वस्वसार' की रचना।
(ख) मिथिला म शकर की उपासना का प्रचलन।
(ग) उगना सम्बन्धी अनुश्रुति।
(घ) बिसफी मे वाणमहेश्वर का मन्दिर।
(च) अपनी रचनाओ के मगलाचरण मे शकर की स्तुति।
(छ) नचारियो की रचना तथा लोकप्रियता।
(ज) अबुलफजल द्वारा विद्यापति की नचारियो का उल्लेख।
(झ) विद्यापति की समाधि पर शिवमन्दिर।

३ (क) 'दुर्गाभक्ति तरगिणी' की रचना।
(ख) विद्यापति विरचित 'गोसाउनिक गीत' का मिथिला मे अत्यधिक प्रचलन।
(ग) मिथिला के राजकुल मे शक्ति की पूजा का प्रचलन।
(घ) राजन्यवर्ग से सम्बद्ध पारिवारिक परम्परा।
(च) शक्ति-वन्दना के उनके पद।

अभिन्न सहचर। वे कबीर, चैतन्य या तुलसी की परम्परा मे आनेवाले भक्त नही थे।

विद्यापति ने एक पण्डित परिवार मे जन्म ग्रहण किया था, पर उनमे ज्ञानदम्भ नही था। व्यवहार-कुशलता उनमे भरी थी। वे कामुक या कामदेवोपासक शृङ्गारिक भी नही थे। उन्हे हम रोमानी स्वप्नद्रष्टा भी नही कह सकते। विद्यापति की भाषा, उनके लिखे ग्रन्थो के विषय-विवेचन उनकी जीवनी, सभी से यह ध्वनित होता है। विद्यापति ने पदो की रचना मैथिली म की, जनमानस तक अपना सन्देश वे इसी के माध्यम से पहुँचा सकते थे, इसकी परख उन्हें थी।

विद्यापति ने पूर्ण मानव के लिए कसौटी की तलाश की, जनमानस के सम्मुख उसका मूर्त्त रूप रखने का सकल्प किया, उसके हेतु उन्होंने 'पुरुषपरीक्षा' लिखी, 'पदावली' के अतिरिक्त उनकी जो रचना सर्वाधिक लोकप्रिय रही है वह 'पुरुषपरीक्षा' ही है। फोर्ट विलियम कॉलेज मे 'पुरुषपरीक्षा' का अध्यापन होता था[1] यह इस पुस्तक की लोकप्रियता का एक प्रमाण है।

विद्यापति को भाषा की अर्थवत्ता, उसके स्वाभाविक प्रवाह एव उसकी सुबोधता का अधिक ध्यान रहता था। उनका सस्कृत के तत्सम शब्दो के स्थान पर सरल तद्भव शब्दो का यथासम्भव प्रयोग करना इसका सूचक है।

विद्यापति अखडित मानवता के उपासक थे। उनकी 'पुरुषपरीक्षा' म वर्णित कथाओ से यही सकेत मिलता है। पुस्तकीय ज्ञान, सामरिक विद्या, प्रेम-कला, नागर चातुर्य तथा वाक्पटुता—इनमे पारगत होना वे प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक मानते थे। उस सामन्ती युग मे यह सब राजकुमारो या सामन्त-कुमारो के ही आदर्श हो सकते थे। पर इस आदर्श स्थापन के यत्न करनेवाले महाकवि विद्यापति के व्यक्तित्व की सर्वाङ्गपूर्णता तो ध्वनित होती ही है। जीवन मे एकागिता उन्हें पसन्द नही थी। सौन्दर्य और प्रेम के वे उपासक थे, पर कामुकता वा स्त्रैणता को उन्होने प्रश्रय नही दिया है। नैतिक जीवन, नैतिक मान्यताएँ, नैतिक मर्यादा के उल्लघन को उन्होने गर्हित बताया है।

शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या के साथ ही नृत्य और सगीत भी मानव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है, विद्यापति ने यह भलीभाँति समझा। इसके लिए उन्होने नृत्यकला तथा नाट्यकला की भी उपयोगिता बतायी है, इनकी भी प्रशसा की है।[2]

अन्त मे, शृगार रस के रससिद्ध कवीश्वर थे विद्यापति इसमे सन्देह नही, पर मात्र शृगार को ही उन्होंने उपास्य-आराध्य नही माना। उनके ही शब्दो मे—

धम्म सहित सिंगार रस, कव्व कला बहु रग।[3]

---

[1] पुरुषपरीक्षा, भूमिका—प० रमानाथ झा, पृ० २८।

[2] वही, कथा २५-२६।

[3] कीर्त्तिपताका, पृ० २।

जीवन के चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। विद्यापति ने धर्म को प्रधानता दी, शृङ्गार को भी धर्म की मर्यादा का उल्लघन करने की उन्होंने प्रेरणा नही दी है। उनके अर्थोपार्जन का प्रमाण बिसफी ग्राम की प्राप्ति है, जो उनकी मृत्यु के उपरान्त भी सैकडो वर्षों तक उनके वशजो का मुख्य उपजीव्य रहा। 'कीर्त्तिलता' की पक्ति "तबे मन कर तेसरा लागि तीतू उपेख्खिअ"[1] उनके तीसरे पुरुषार्थ की भी पूर्त्ति का सकेतक है। और, अपने जीवन भर कवि ने भगवान् शकर की अर्चना-पूजा की। इतनी अनन्य थी उनकी शिवभक्ति कि उनके विषय मे यह जनश्रुति चली आ रही है कि आशुतोष ने स्वय उनके यहाँ सेवक के रूप मे रह कर उनकी भक्ति को पुरस्कृत किया। जीवन की सेपहरी तथा सध्याकाल मे इतना धर्म-कर्म मे रत रहने लगे थे वे, कि उनके जीवनकाल मे ही उनके सम्बन्ध मे अनेकानेक अनुश्रुतियाँ प्रचलित हो गयी, ऐसी अनुश्रुतियाँ जो किसी सिद्ध तपस्वी या साधु-सत के साथ सहज आस्थावान् भारतीय समाज मे जुडती ही रहती हैं। पुण्यसलिला पतित-पावनी गगा की पुण्यतटी पर उनकी मृत्यु हुई, अत उन्हे मोक्ष नही मिला होगा, ऐसा कौन कह सकता है ?

पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करनेवाले इस महाकवि के व्यक्तित्व को यदि सर्वथा विलक्षण, विशिष्ट एव सर्वाङ्गपूर्ण कहा जाय तो इसमे अत्युक्ति कहाँ ?

•

---

[1] कीर्त्तिलता (सक्सेना द्वारा सम्पादित), पृ० ३४।

(ख)

विद्यापति के प्रेमकाव्य से संकलित सूक्तियाँ

(१) प्रेम और सौन्दर्य

पुरुषपरीक्षा

१—"भूयादनश्वर प्रेम यूनोर्जन्मनि जन्मनि ।
धर्मंभृगार सपृक्त सीतारामवयोरिव ॥" —पृ० १६१

२—"सुखोपकरण नारी प्रेम तस्या प्रियोचितम् ।
वश्यता च निषिद्धैव स्त्रीवश्यो याति दुर्गतिम् ॥"

३—"आज्ञा यत्र न लघ्यते न विनये वैषम्यारोप्यते ।
सद्भाव प्रथमोत्थितो न हृदयते वाच्यास्पदेनीयते ॥
अन्योन्य सुखदुःखयो समतया यद्भुज्यते वैभव ।
तत्प्रेम प्रियोर्मुदे तदितरत्कन्दर्पकारागृहम् ॥"
—३६/४, पृ० २००

४—"चमत्कारिषु चित्रेषु भूषणेष्वंबरेषु च ।
लोभो भवति नारीणा फलेषु कुसुमेषु च ॥"
—३७/४, पृ० २०३

कीर्तिलता

"सब्बउँ केरा रिज नयन तरुणी हेरहि बक ।
चोरी पेम पियारिओ अपने दोष सशक ॥" —पृ० ३२

कीर्त्तिपताका

१—"कविमहँ नवजयदेव कवि रसमहँ रस सिंगार ।
त्रिपुरसिंहसुत राअ महँ तीनिहु तिहुअनसार ॥"

२—"करुना बसओ विवेक सओ खेमा सतुएओ संग।
धम्मसहित सिंगार रस कव्व कला बहुरंग ॥"
३—"संसाररत्नं मृगशावकाक्षी रसो च शृंगार रसो रसानाम्।"

गोरक्षविजय

१—"कि करिवो जपतप योग धेआन। कि करिवो दान कि परम गेआन ॥
भनइ विद्यापति जुवति समाज। बड़े पुन्ये पाइअ जीवनराज ॥"
—पृ० ७ (क)

२—"बहुल कामिनि एकल कन्त। कृष्ण पतिआएल सपनतन्त ॥
रूपे से नागर रसविहार। कौतुके गाव कविकण्ठहार ॥"
—पृ० ७ (ख)

३—"सुकृतिक वाट विचित्रतर्ज नारि।" —पृ० ११ (ख)

पदावली

(कोष्ठको मे मि० म० वि० की पद-सख्या दी गयी है)

१—"भने विद्यापति जे जन नागर तापर रतल नारि।" (४)
२—"सुपुरुष पेम सुधनि अनुराग दिने दिने बाढ़ अधिक लाग।" (७)
३—"परपुरुषक सिनेह मन्द।" (१५)
४—"अमिय घोए आँचरे धनि पोछल दह दिसि भेल उजोरे। (२१)
५—"आजु देखु गजराजगति वर जुबति तिभुवन सार।" (३०)
६—"रस सिंगार पार के पाओत अमोल मनोभव सिधि।" (३५)
७—"सहजहिं आनन सुन्दर रे भउँह सुरेखल आँखि।
पकज मधु पिवि मधुकर रे उड़ए पसारए पाँखि ॥" (३८)
८—"जकर हृदय जतहि रतल से धसि ततहि जाए।
जइअओ जतने बाँधि निरोधिय निमन नीर थिराए ॥" (४३)
९—"कुलटा भए जदि पेम बढ़ाइअ तें जीवने की काज।
तिला एक रंग रभस सुख पाओव रहत जनम मरि लाज ॥
कुलकामिनि भए निज पिय विलसए अपथे कतहु नहि जाइ।
की मालति मधुकर उपभोगए किंवा लतहि सुखाई ॥" (४६)
१०—"सहजहि कामिनि कुटिल सिनेह।
आस पसाह बाँक ससिरेह ॥" (५२)
११—"परवस प्रीत करए सब कोई। करिअ प्रेम जओ विरह न होई ॥" (५४)
१२—"जौवन नगरि बेसाहव रूप। तते मुल इथह जते सरूप ॥" (५५)
१३—"नूतन नेह संसारक सीमा।" (७७)
१४—"अधमक पिरीत ना करिए मान।" (७८)
१५—"गेलमाव जे पुनु पलटावए सेहे कलामति नारि।" (८)

१६—"चोरी पेम ससारेरि सार।" (८६)
१७—"प्रेम पन्था कतए दूर।" (६३)
१८—"रससिंगार ससारक सारे।" (१००)
१६—"एकदिस जीवन अओक दिस पेम।" (१०७)
२०—"कुसुम सर रग ससार सारा।
परमपद लाभ सम, मोदे चिर हृदय रम॥
नागरी सुरत-सुख अमिय मेला।" (१११)
२१—"जत अनुराग दूर सब गेल, मोतिक पुतरी विषधर भल॥" (११६)
२२—"पेमलता तोडले बड पाप।" (१२२)
२३—समयक बसे नहि सब अनुराग।" (१२४)
२४—"पुरुप भमर सम कुसुमे कुसुमे रम।" (१२५)
सेहे सआनी नारि पिअगुन परचारि वेकतओो दोप नुकावे।
निसि निसि कुमुदिनी ससधर पेम जिमि अधिक अधिक रस पावे॥"
२५—"सब रस लागि पिअ हिय अराहिय बहरस वास न करिआ। (१३२)
२६—"पुरुपक चचल सहज सोभाव, कए मधुपान दहओदिस धाव॥" (१३४)
२७—"दूती भए जनु जनमए नारि।" (१३६)
२८—"अपने ही पेम तरुअर बाढल कारन किछु नहि भेला।
साखा पल्लव कुसुमे बेआपल सौरभ दह दिस गेला॥" (१४७)
२६—"लाख जोजन बस चन्दा। तइअओ कुमुदिनि करए अनन्दा।
जकरा जा सओ रीति। दुरहुक दुर गेले दुगुन पिरीति॥" (१५३)
३०—"परतिरि मानव तीति। धीरजे मनोभव जीति॥" (१५७)
३१—"सहसे रमनि रयनि विपयु मोराहु तन्हिके आस।"
"जउवन जीवन अड निरापन गेले पलटि न आव।" (१६१)
३२—"नीन्द विदेसिनि तन्हि पिया सगे।" (१६२)
३३—"सरसिज विनु सर, सर विनु सरसिज, की सरसिज विनु सूरे।
जौवन विनु तन, तन विनु जौवन, की जौवन पिय दूरे॥" (१६३)
३४—"जइयो तरणि जल सोपए सजनी कमल न तेजए पाँक।
जे जन रतल जाहि सयँ सजनी कि करत विहि भए बाँक॥" (१६६)
३५—"विरह विखिन तनु भेल तरास। कुसुम सुखाय रहल अछि बास॥" (१७०)
३६—"दिवस दोसे की नहि सम्भव प्रेम परानहु चाह।" (१८२)
३७—"जेकर नाह विचखन नाही तार्के काँ दिअ रूप।" (१८८)
३८—"बिनु माधव मधुरजनी आइति मीन की जिव बिनु पानी।" (२१३)
३६—"बिनु परिचये प्रेमक आकुर पल्लव भेल अनेक।" (२२६)
४०—"लोचनजुग भृग अकारे। मधुक मातल उडए न पारे॥" (२३७)

४१—"की मोरा जीवने की मोरा जउवने की मोरा चतुरपने ।
मदन वाने मुरुछलि अछओ सहओ जोव अपने ।।" (२४३)
४२—"काच घटी अनुगत जल जेम । नागर लखत हृदयगत प्रेम ॥" (२४८)
४३—"की करत चाँदनी की अरविन्दे । विरह विसर जओं सूतिअ नीन्दे ।।" (२४६)
४४—"अपनहि नागरि अपनहि दूत । से अभिसार न जान बहूत ।" (२५३)
४५—"सुरत रस खन एके पारिअ जाव जीव रह गारि ।" (२५४)
४६—"कामिनि कुलक धरम निआओं कइसे अगीरति पास ।
सुरत सुख निमेष बेरा जावे जीव उपहास ।।" (२५५)
४७—"मनसिज-मदजल जओ उमताए । धरिहसि पियतम आकुस लाए ।।" (२५७)
४८—'से अति नागर तोयँ तसुतूल । एक नले गाँथ दुइ जनि फूल ।।" (२६४)
४६—"जौवन रूप ताने धरि छाजत जावे मदन अधिकारी ।" (२६५)
५०—"अपन अपन हित सबकेओ चाह । से सुपुरुख जे कर निरवाह ।।" (२६६)
५१—"जउवन गेले विपद भेले पूछि न पूछत कोए ।
एहिमहि अछ अथिर जीवन जउवन अलप काल ।
इथी जत-जत न विलसए से रह हृदय साल ।।" (२६७)
५२—'नयनक नीर चरनतल गेल । थलहुक कमल अम्भोरुह भेल ।।" (२७२)
५३—"सुनि सुन्दरि नव मदन पसार । जनि गोपह आओव वनिजार ।।" (२७३)
"रोस दरस रस राखव गोए । धयले रतन अधिक मुल होए ॥"
५४—"नूतन रस ससारक सार ।" (२८६)
५५—"वारि विलासिनि वेसनी कान्ह । मदन कउतुकिया हठल न मान ।।" (२८५)
५६—"नहि नहि करिअ नयन भरु नीर । काँच कमल भमरा झकझोर ।।" (२६०)
५७—"दिने दिने दूना पेम वढाओव जइसे बाढलि सुसमि ।" (२६४)
५८—"पीन पयोधर नखर मन्दा । जनि महेसर सिखर चन्दा ।।" (२६८)
५६—"अलसे पुरल लोचन तोर । अमिओं मातल चाँद चकोर ।।" (३०३)
६०—'एहि ससार सार वथु एक तिला एक सगम जाव जिव नेह ।" (३१२)
६१—"चोरी पेम चारि गुन रग ।"
जँवन सार जौवन रस रग । जौवन जओ तओ सुपुरुष सग ।।" (२१५)
६२—'पिरिति काजे जीउ उपेखल एवेरि होउ की जाऊ ।।" (३१६)
६३—"नलिनि दल निर चित न रहए थिर ।
जत घर तत हो बहार ।।" (३२०)
६४—"चन्दा जनि उअ आजुक राति ।
पिया के लिखिये पठाओव पाति ।। (३२१)
६५—"सुरत रस सुचेतन बालभु ता परि सवे असार ।" (३३२)
६६—"देखि भवनँ भिति लिखल भुजगपति जसुमन परम तरासे ।
से सुवदनि करे झँपइत फनिमनि विहुसि आइलि तुअ पासे ।।" (३३७)
"काम पेम दुहु एक मत भए रहु कम्बने की न करावे ।"

६७—"अन्धकूप सम रयनि विलास।" (३३६)

६८—"सगर संसारक सारे।
अछए सुरत रस हमर पसारे॥" (३४६)

६९—"पहिल पमार संसार सार रस परहोक पहिल तोहार हे।" (३४८)

७०—"गाए चरावए गोकुल वास। गोपक संगम कर परिहास॥" (३५१)

७१—"तोहे बहुबल्लभ हमहि अजानि। तकराहुँ कुलक धरम भेल हानि॥" (३५६)

७२—"आसापासे मदन कए बन्ध। जिवइते जुवति न तेज अनुबन्ध॥" (३६३)

७३—"सुजन वचन टुट न नेहा। हाथे न मेट पखानक रेहा॥" (३६५)

७४—"के बोल पेम अभिजेक धार। अनुभव बूझिअ गरल अंगार॥ (३७१)
सएले विष सखि हो परकार। बड मारख देखितहि मार॥"

७५—"भमि भमि भ्रमरी बालभु निज खोजए।
मधु पिबि मधुकर सुतल सरोजे॥" (३७५)

७६—"उदिन ओ चन्दा अमिय न मुंचए की पिबि जिउत चकोरे।" (३८७)

७७—"जकर जतए रति तयँ बिनु कथिति
नेह न विषय विचार॥" (३६३)

७८—"जावे सरस पिया बोलए हँसी। तावे से बालमु तत्रँ पेअसी॥" (३६४)

७९—"हठ जो करवहु सिनेहक ओर।
फूटल फटिक वलअ के जोर॥"
"परगत करव न सुपहुक दोस।
राखव अनुनय अपन भरोस॥" (३६६)

८०—"सखि हे मन्द पेम परिनामा।" (३६६)
पेमक कारन जीव उपेखिए जगजन के नहि जाने।"

८१—"अनुभवि कएल अनुवन्ध। मुगुतल कुसुम भमर अनुसन्ध॥" (४०१)

८२—"थिर नहि जउवन थिर नहि देह।
थिर नहि रहए बालमु सओ नेह॥" (४०४)

८३—"गौरव अहे सीख धैरज साथ। बहु धरए सतओ अपराध॥" (४०७)

८४—"सुपुरुष पेम हेम अनुमानि। मन्दा कालहि मन्दे हानि॥ (४१३)

८५—"पिआ अनुरागी तबे अनुरागिणी दुहु दिस दाहु दुरन्ता।
मझे वरु दसमि दशा गए अंगिरल कुसले आवथु मोर कन्ता॥" (४१५)

८६—"नारगि छोलंगि कोरि कि बेली। काम पसाहलि आंचर फेली॥" (४१८)

८७—"लाजे न करए हृदय अनुमान। पेम अधिक लघु जानत आन॥" (४२०)

८८—"केओ बोल माधव केओ बोल कान्ह। मयँ अनुमापल निछछ पखान। (४२५)

८९—"करिअ मान जओ आइति होय।" (४३०)

९०—"सुपहु-सुनारि सिनेह। चाँद कुसुम सम रेह॥" (४३१)

९१—"साजनि सुजन जन सिनेह ।
कि दिय अजर कनक उपम कि दिय पसान रेह ॥
ओ जदि अनल आनि पजारिय तइओ न होय विराम ।
इ जदि असि कसि कइ काटिय तइओ न तेजए ठाम ॥" (४३५)
९२—"नव अनुरागे किछु होय दर रह दिन तिनि चारि ।
प्रथम प्रेम ओर धरि राखए सेहे कलामति नारि ॥" (४३७)
९३—"गगन मण्डल दुहुँक भूपन एकसर उग चन्दा ।
गए चकोरी अमिय पीवए कुमुदिनि सानन्दा ॥
मालति काइअ करिअ रोष ।
एकल भमर वहुल कुसुम कमन तोहर दोष ॥"
"अभिनव रस रभस पओले कओन रहु विवेक ।" (४४१)
९४—"जलमधे कमल गगन-मधे सूर । आँतर चाँद कुमुद कत दूर ।" (४४८)
"गगन गरज मेघा सिखर मयूर । कत जन जानसि नेह कत दूर ॥"
९५—"जनम होअए जनि जओं पुनु होइ । जुवती भए जनमए जनु कोए ॥
होइह जुवति जनु हो रसमन्ति । रसओ बुझए जनु हो कुलमन्ति ॥
ई धन माँगओं विहि एक तोहि । थिरता दिहह अवसानहु मोहिं ।
मिलि सामि नागर रसधारा । परवस होअए जनु हमर पियारा ॥" (४५२)
९६—"दिने दिने वाढ़ए सुपुरुष नेहा । अनुदिने जइसन चान्दक रेहा ।" (४५५)
"सुरतरु सेओल अभिमत लागी । तसु दूषन नहि हमहि अभागी ॥"
९७—"रसिकक सरवस नागरि वानि ।" (४५८)
९८—"वान्धल हीर अजर लए हेम । सागर तह हे गहिल छल पेम ॥
ओउ भरल ई गेल सुखाए ।" (४५९)
९९—"जउवन रतन अछल दिन चारि । तावे से आदर कएल मुरारि ॥" (४६०)
१००—"वड जन जेकर पिरीति रे । कोपहुँ न तेजए रीति रे ॥" (४६५)
१०१—"एकहि पलंग पर कान्ह रे । मोर लेख दुर देस भान रे ॥" (४६७)
१०२—"पेमक अंकुर तोहे जल देल । दिनदिन वाढि महातरु भेल ॥" (४७०)
१०३—"सुपुरुष सिनेह अन्त नहि होए ।" (४७१)
१०४—"नागर भमर दुहु एक रीति । रस लए निरसि करए फिरि रीति ।" (४७३)
"नागर भमर दुअओ अविवेक ।"
१०५—"मधुतह सुन्दरि मधुर सिनेह ।" (४६३)
१०६—"हीरा मनि मानिक एको नहि माँगव फेरि माँगव पहु तोरा ।"
"पहुँ संग कामिनि वहुत सोहागिनि चन्द्र निकट जइसे तारा ॥" (५०३)
१०७—"पुरुसविहुनि जीवए जनु नारि ।" (५१८)
१०८—"जुग जुग जीवथु वसथु लाख कोस । हमर अभाग हुनक नही दोस ॥ (५१६)

१०६—"एक भमर ममि बहुल कुसुम रमि कतहु न केओ कर वाध ।
बहुबल्लभ सओ सिनेह बढाओल पडल हमर अपराध ।।" (५२३)

११०—"मन कर तहां उडि जाइअ जहां हरि पाइअ रे ।
पेम परस मनि जानि आनि उर लाइअ रे ।।" (५२७)

१११—"सखिजने आंचरे धइलि झपाइ । अपनहि सांसे अपनि उडिजाइ ।।" (५५५)

११२—"कन्त दिगम्बर जाहि न सुमर की तसु रूप कि गूने ।" (५५६)

११३—"सुपुरुष वाचा सुपहु सनेह । कवहुँ न विचल पखानक रेह ।।" (५५७)

११४—'एक दिस मनिमय नवनिधि हेम । अओक दिस नवरस सुपुरुष पेम ।।
निकुती तौल कएल अनुमान । प्रीत अधिक श्री के नहीं जान ।।" (५७५)

११५—"भनइ विद्यापति नागर रीति । व्याज बचन उपजाव पिरीत ।।" (५६०)

११६—"भनइ विद्यापति अपरुब नेह । जेहन विरह हो तेहन सिनेह ।।" (५६६)

११७—"चोरि पिरीत होय लाख गुन रग ।" (६७१)

११८—"हाथक दरपन माथक फूल । नयनक अजन मुखक ताबूल ।।
हृदयक मृगमद गीमक हार । देहक सरबस गेहक सार ।।
पाखिक पाख मीनक पानि । जीवन जीवन हम तुहुँ जान ।।" (७१०)

११९—"कालिक अवधि पिया करि गेल । लिखइते कालि भीति भरिगेल ।।" (७२६)

१२०—"पुरुब पियारि नारि हम अछलिहुँ अब दरसनहुँ सन्देह ।
भमर भमए ममि सबहुँ कुसुमे रमि न तेजए कमलिनिगेह ।।" (७३४)

१२१—"एखन तखन करि दिवस गमायलुँ दिवस दिवस करि मास ।
मास मास करि बरस गमाओल छोडल जीवनक आस ।।" (७३५)

१२२—"अविरल नयने वारि झर निर्झर जनु घन साओन माला ।" (७४१)

१२३—"अनुखन माधव माधव सुमरइत सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सौभावहि विसरल आपन गुन लुबुधाई ।।"
"दुहु दिस दारुदहन जइसे दगधइ आकुल कीट परान ।।" (७५७)

१२४—"आज रजनि हम भागे पोहायलुँ पेखल पिय मुख चन्दा ।
जीवन जौवन सफल करि मानल दसदिस भेल निरदन्दा ।।"
"सोइ कोकिल अब लाख डाकहु लाख उदय करु चन्दा ।
पाँच बान अब लाख बान होयु मलय पवन वहु मन्दा ।।"

१२५—"कि कहव रे सखि आनन्द ओर ।
चिर दिने माधव मन्दिरे मोर ।।" (७६७)

१२६—"सखि हे कि पूछसि अनुभव माय ।
सोइ पिरीति अनुराग बखानइत जे तिलतिल नूतन होय ।।" (७६८)

(२) विविध

(कोष्ठकों मे मि० म० वि० की पद-सख्या दी गयी है।)

१—"आपनि छाहरि तेज न पास।" (१५)
२—"परक वेदन पर वाँटि न लेई।" (३३)
३—"मधुप मातल उडए न पारए तइओ पसारए पाखि।" (३४)
४—"जे अनुपम उपभोग न आवए की फल ताहि निहारि।" (३७)
५—"आसा लुबुधल न तेजए रे कृपणक पाछु भिखारि।" (३८)
६—"कएले धन्ध धरम दुर जाए।" (४५)
७—"आदि अन्त नहि महघ पसार।" (४५)
८—"दीठी देखइत दिवस चोरि।" (४८)
९—"भल मन्द जानि करिअ परिनाम। जस अपजस दुइ रह गए ठाम॥" (४९)
१०—"दिवस मन्द भल न रहए सबखन, विहि न दाहिन रह वाम लो।
सेहे पुरुष वर जे धैरज धर सम्पद विपदक ठाम लो॥
अपन करम अपनहि भुजिअ विहिक चरित नहि वाध लो।
काएर पुरुष हिरदय हारि मर सुपुरुष सह अवसाद लो॥" (५०)
११—"पवन न सहए दीपक जोती।" (५४)
१२—"फाव चोरि जओ चेतन चोर।" (६३)
१३—"बानरे मुख कब सोभए पान।" (७८)
१४—"पाइअ ठाम बइसल न नीधि। जे कर साहस ता हो सीधि।" (८५)
१५—"चेतन आगु चतुरपन कइसन कवि विद्यापति भाने।" (९८)
१६—"कतए तिमिर जहाँ रवि।" (९७)
१७—"साहसे साधिअ असाधे। तिला एक कठिन पहिल अपराधे॥" (१००)
१८—"आगे गुनि जे काज न करए पाछे हो पचताओ।" (११२)
१९—"पितरक टाँड काज दहु कओन लह उपर चकमक सार।" (११७)
२०—"दुरजन वचन न लह सब ठाम। बुझए न रहए जावे परिनाम॥
ततहि दूर जा जतहि विचार। दीप देले घर न रह अधार॥" (१२९)
२१—"बाढिक पानि काढि जा जानि। ठाम रहल गए जे निज मानि॥" (१३१)
२२—"विभव दया थिक सारा।
माघ छाँह ककरो नहि भावय ग्रीसम प्रान पियारा॥" (१३३)
२३—"कूप न आवए पथिकक पास।" (१३४)
२४—"काहुक दीपद काहुक सम्पद नाना गति ससार लो।" (१४८)
२५—"असमय पखि आलाना पाय। चेओ चेओ करये काहु न सोहाय॥
विद्यापति भन न कर विराम। अवसर जानि धरतओ काम॥" (१४३)
२६—"चोर जननि जओ मनहि मन झाखिओ, रोअओ वदन झपाय।" (१४७)
२७—"अमरखे विमरख न करिअ दूर।" (१५०)

२८—"धन जउवन रसरंगे। दिन दस देखिअ तलित तरंगे॥
सुधरेओ विहि विघटावे। बाँक विधाता की न करावे॥" (१५३)
२९—"सुपुरुष वचन पखानक रेह।" (१५४)
३०—"परसिरि मानव तीति। धिरजे मनोभव जीति॥" (१५७)
३१—"तिला एक लागि रहल अछि जीवे। विन्दु सनेह बरइ घर दीवे।" (१६०)
३२—"रयनि गेले दीप निरोधिअ भोजन दिवस अन्त।
जउवन गेले जुवति पिरिति की फल पाओब कन्त॥"
"जीवन जउवन बडे निरापन गेले पलटि न आव।" (१६१)
३३—"विपति चिह्निअ मलमन्दा।" (१६४)
३४—"केओ सुखे सूतए केओ दुखे जाग। अपन अपन थिक भिन-भिन भाग॥"
एकहि नगर रे बहुत वेवहार।" (१६६)
३५—"अकुलिन बोल नहि ओर घरि निवहये घरए अपत वेवहारे।"
"आगिल दूर कर पाछिल चिन धर जइसन वडि बुसियारे।" (१६७)
३६—"कतए जतन सयँ मेटिए सजनी मेटए न रेख पखान।" (१६९)
"जइअओ तरणि जल सोखय सजनी कमल न तेजए पाँक।
जे जन रतल जाहि सँ सजनी कि करत विहि भय बाँक॥"
३७—"कुसुम गुलाय रहल अछि वारा।" (१७०)
३८—"धन, कुल, धरम, मनोभव चोर।" (१७९)
३९—"मीन कि जीव विनु पानी।" (२१३)
४०—"कुदिना सब दिन नहि रह रे सुदिवस मन हरखाउ।" (२२३)
४१—"आँखि अछइते कइसे खसब कूप।" (२२७)
४२—"अबुध सखीजन न बुझए आधी। आन ओषधि कर आन वेआधी॥" (२४९)
४३—"अपन अपन हित सब केओ चाह। से सुपुरुष जे कर निरवाह॥" (२६६)
४४—"गेल जौवन पुनु पलटि न आवए केवल रह पचतावे।" (२६५)
४५—"एहि महि अछ अथिर जीवन जउवन अलप काल।" (२६७)
४६—"जनि निरधन मन कतए न धाव।" (२६८)
४७—"नयनक नीर चरनतल गेल। थलहुँक कमल अम्भोरुह भेल॥" (२७२)
४८—"जइसन परहोंक तइसन बीक।"
"घयले रतन अधिक मुल होए।"
"आरति गाहक महँग वेसाह॥" (२७३)
४९—"भ्रमर भरे कि माजरि भागए देखल कतहुँ केहु।" (२८१)
५०—"काँच कमल भमरा झिकझोर। (२९०)
५१—"कर मधुकर तोहे दिढ गेआन। अपने आरति न मिलयेँ आन॥" (२९३)
५२—"बडेओ भुखल नहि दुहुँ कर खाय।"
"उमिलल चाँद गिलए जनि राहु।" (२९७)

५३—"काच कनक लए गाँथ गमार।" (३०६)

५४—"सागर सार चोराओल चन्द ता लागि राहु करए बड दन्द।" (३१०)

५५—"बिनु जपले सिधि केओ नहि पाव। बिनु गेले घर निधि नहिं आव॥" (३११)

५६—"तरतमे नहिं किछु सम्भव काज।" (३१३)

५७—"अपन अपन मल सब केओ चाह।' (३१६)'

५८—"हाथिक चोरि दिवस परमान।" (३३८)

५९—"निधन का जओ धन किछु हो करए चाह उछाह।
सियार का जओ सीग जनमए गिरि उपारव चाह॥"
"पिपडी का जओ पाख जनमए अनल करए झपान।
छोट पानि चह चह कर पोठी के नहिं जान॥" (३५०)

६०—"ताके निवेदिअ जे मतिमान।"
"कौआ मुँह न भनिअए वेद।" (३५६)

६१—"सुजन वचन टूट न नेहा। हाथे न मेट पखानक रेहा॥" (३६५)

६२—"आपदें अधिक धैरज करव धैरज सवें उपाय।" (३६७)

६३—"देले पाइअ के नहिं जान।" (३७२)

६४—"दिवस वाम सखि न रहए सब खन चाँदहुँ लाग कलंका।" (३७६)

६५—"कसिअ कसौटी चिह्निअ हेम। प्रकृति परेखिअ सुपुरुष पेम॥" (३८१)

६६—"अपन वेदन जाहि निवेदिअ जे परवेदन जान।" (३८२)

६७—"कपट हेम थर कति खन वाने।" (३८५)

६८—"समय दोषे आगि ब्रम पानि।" (३८६)

६९—"लाभ के लोभे मुलहुँ मेल हानी।" (३८२)

७०—"आँखि देखि जे काज न करए ताहि पारे के अन्ध।" (३९२)

७१—"जखने जे रह तँहि गमाइअ जे बहुत दीअ पीठ।" (३९५)

७२—"न थिर जीवन न थिर जउवन न थिर एहे संसार।
गेले अवसर पुनु न पाइए किरिति अमर सार॥" (३९५)

७३—"नख छेदन के लाव कुठार।" (३९६)

७४—"तेलि बडद थान मल देखिअ पालव नहि उजिआई।" (३९७)
"फल कारने तरु अवलम्बल छाहरि भेले सन्देहे॥"

७५—'भागविहिन जन आदर नहि लह अनुभव धनि जन ठामे।" (४०२)

७६—"से सम्पति जे पुरहित लागि।" (४०३)

७७—"जे जत जइसन हिय धर गोए। तकर तइसन तत गौरव होए॥" (४०७)

७८—"की जीवन जओ खण्डित मान।" (४१०)
"दिवसक भोजने वर्ष न आठ।"

७९—"फल उपभोगिअ जइसन काज ।" (४११)
८०—"भेक न पिवए कुसुम मकरन्द ।"
"दूधे पटाइअ सीचिअ नीत । सहज न तेज करइला तीत ।।"
"मन्दा रतन भेद नहि जान । वानर मूह न सोभए पान ।।" (४२३)
८१—"जलधि न मांगए रतन भडार । चाँद अमिअ दे सब रस सार ।।" (४२४)
८२—"आदि मधुर परिनामक तीती ।" (४२७)
८३—"कत न जीवन संकट परए कत न मीलए निधि ।
उत्तम तइअओ सत न छाडए भल मन्द कर विधि ।"
"मान बेचि जदि प्रान जे राषीअ ताते मरन भला ।" (४२६)
८४—"मुख सुखे झीगुर काट पटोर ।" (४३२)
८५—"तर सूते गढि काट कुम्हार ।" (४३४)
८६—"बड बडाई सबे नहि पावई विधि निहारइ चाहि ।
अपन वचन जे प्रतिपालए से बड सवहु चाहि ।।"
"गरल आनि सुधारसे सिचिअ सीतल होमए न पार ।
जइओ सुधानिधि अधिक कुपित तइओ न वरिस घार ।।"
"अपन वेदन ताको निवेदिअ जे परवेदन जान ।" (४३५)
८७—"गेल दीन पुनु पलटि न आवए अवसर वहला रह पछताओ ।" (४३६)
८८—"परक वेदन न बुझए मुरुख पुरुख निरापन चपलमति ।" (४४३)
८९—"सम तहूँ बड धिक आँखिक लाजे ।" (४४७)
९०—"जे पुनु जानए मरम साच । रतन तेजि न किनए काच ।" (४५७)
९१—"पएर पराल रोसे नहि खाए । अँधरा हाथ भेटल दूर जाय ।" (४५८)
९२—"रो नहि विपल जकर जे जाति ।"
"कवहु न होअए जाति वेभिचार ।" (४५९)
९३—"वारिविहुन सर केओ नहि पूछ ।"

१०१—"गेला नीर निरोधक की फल अवसर वहला दान ।" (५०६)

१०२—"सुन्दरि नहि मनोरथ ओल ।
अपन वेदन जाहि निवेदिअ तइसन मेदिनि थोल ॥" (५१०)

१०३—"हृदयक वेदन वान समान । आनक दुख आन नहि जान ॥" (५१६)

१०४—"हृदयक वेदन राखिअ गोए । जे किछु करिअ भुंजिअ सोए ॥" (५२४)

१०५—"सुरतरतर सुखे जनम गमाओल घुथुरा तर निरवाहे ।
अपन करम अपने पए भुंजिअ जओं जन्मान्तर होई ॥" (५३०)

१०६—"परवेदन दुख पर नहि जान ।" (५४३)

१०७—"कुदिना हित जन अनहित रे थिक जगत सोभाव ।" (५४४)

१०८—"दिन दस चीत रहलि विचारि । तते होएत जत लिहल कपालि ॥" (५६१)

१०९—"हाथिक दसन पुरुष वचन कठिने बाहर होय ।" (५६८)

११०—"घन जौवन रस रंगे । दिन दस देखिअ तलित तरंगे ॥
सुघटित विहि विघटावे । बाँक विधाता की न करावे ॥" (५६६)

१११—"कुदिवस रहए दिवस दुइ चारि ।" (५७४)

११२—"खेत कएल रखवारे लूटल ठाकुर सेवा भोर ।
बनिजा कएल लाभ नहि पाओल अलप निकट भेल थोर ॥" (६१४)

११३—"सैसव जौवन उपजल वाद केओ न मानए जय-अवसाद ।" (६१६)

११४—"भिन भिन राज भिन वेवहार ।" (६२१)

११५—"लाभक लागि मूल डुबि गेल ।" (६६०)

११६—"आगिक दहने आगिप्रतिकार ।" (६६३)

११७—"तसल सैकत वारिविन्दुसम सुत मित रमनि समाजे ।" (७६६)

११८—"जतने जतेक धन पापे बटोरल मेलि परिजन खाए ।
मरनक बेरि हेरि कोई न पूछए करम संग चलि जाए ॥" (७७०)

११९—"पावक सिखा नीच न धावए ऊँच न जा जलधारा ।
तत से पए अवस करए जकर जे वेवहारा ॥" (८१५)

१२०—"सुपुरुस वचन कबहु नहि विचलए जओं बिहि वामेओ होए ॥" (८४८)

(ग)

विद्यापति के प्रेमगीतों की विषयानुक्रमणिका

(कोष्ठको मे मि० म० वि० की पद-सख्या अंकित है।)

क्रम सं०	प्रथम पंक्ति	विषय
१	हास विलासिनी दसन देखि (४)	पूर्वानुराग, नायिका का सौन्दर्य
२	ससन-परस खसु अम्बर रे (५)	,, ,, ,,
३	सुपुरुप पेम सुधनि अनुराग (७)	आदर्श प्रेम
४	सुखल सर सरसिज भेल झाल (१४)	प्रकृति-चित्र, ग्रीष्म-परिवेश, नायिका को प्रिय के प्रति अनुकूल होने के लिए दूती-वचन
५	पहुँसेवी उपरि बोलव बोल (१५)	परपुरुप-स्नेह की भर्त्सना, कुल-मर्यादा-पालन करने की प्रेरणा
६	कमल मिलल दल, मधुप चलल घर (१६)	सामान्या नायिका, असती का पथिक को आमन्त्रण
७	भल भेल दम्पति सैसव गेल (१७)	नवाकुरितयौवना
८	आज देखलिसि कालि देखलिसि	,, ,,

१२—सुधामुखि को विहि निरमल वाला (२२)	सौन्दर्य
१३—रामा अधिक चमिद भेल (२३)	,,
१४—सहज प्रसन्न मुख दरस हृदय सुख (२४)	,,
१५—माधव कि कहव सुन्दरि रूपे (२५)	सौन्दर्य, नखशिख वणन
१६—साजनि अकथ कहि न जाए (२६)	,, ,
१७—चरणकमल कदली विपरीत (२७)	,,
१८—ओहु राहुभीत एहु निकलक (२८)	,, रूपगर्विता नायिका
१९—आंचरे वदन झपावह गोरी (२९)	,, मुग्धा के प्रति दूती-वचन
२०—कुसुमबान विलास कानन केस सुन्दर रेह (३०)	सौन्दर्य, शिखनख पद्धति
२१—यव गोधुलि समय भेलि (३१)	पूर्वराग, नायक के मनोभाव
२२—चिकुर निकट तम (३२)	पूर्वानुराग, ,, प्रथम दृष्टि मे प्रेम
२३—जमुनक तिरे तिरे साकडि वारि (३३)	पूर्वानुराग, नायिका के मनोभाव, विरहाकुली
२४—अवनत आनन कए हम रहलिहु, (३४)	पूर्वानुराग, नायिका की प्रिय के सम्मुख अकस्मात् आ जाने पर प्रेम-विवश अवस्था
२५—नील कलेवर पीत वसनधर (३५)	पूर्वानुराग, कृष्ण की मोहिनी छवि
२६—सरस वसन्त समय भल पाओलि (३६)	नायिका के सौन्दर्य की प्रशसा, वसन्त-परिवेश, मनुहार
२७—लघु लघु सचर कुटिल कटाख (३७)	नायिका के सौन्दर्य की प्रशसा, नायक के प्रति दूती-वचन
२८—सहजहि आनन सुन्दर रे (३८)	पूर्वानुराग, नायिका का सौन्दर्य, नायक-वचन, रागविह्वल चित्त की विकलता
२९—आंचर विघट्ट अकामिक कामिनि (३९)	नायिका की प्रणय-चेष्टा, सौन्दर्य
३०—जनि हुतवह हवि आनि मेराओल (४०)	पूर्वानुराग, नायक की व्याकुलता
३१—जखने दुहुँक दीठि विछुडलि (४१)	विप्रलम्भ, पूर्वानुराग, नायक-नायिका—दोना की विकलता
३२—लाख तरुवर कोटिहि लता (४२)	पूर्वानुराग, नायक की व्यथा
३३—आसार्य मन्दिर निसि गमावए (४३)	,, ,, ,,

(ग)

विद्यापति के प्रेमगीतों की विषयानुक्रमणिका

(कोष्ठको मे मि० म० वि० की पद-सख्या अकित है।)

क्रम सं०	प्रथम पंक्ति	विषय
१	हास विलासिनी दसन देखि (४)	पूर्वानुराग, नायिका का सौन्दर्य
२	ससन-परस खमु अम्बर रे (५)	,, ,, ,,
३	सुपुरुष पेम सुधनि अनुराग (७)	आदर्श प्रेम
४	सुखल सर सरसिज भेल भाल (१४)	प्रकृति-चित्र, ग्रीष्म-परिवेश, नायिका को प्रिय के प्रति अनुकूल होने के लिए दूती वचन
५	पहुँसेवी उपरि बोलब बोल (१५)	परपुरुष-स्नेह की भर्त्सना, कुल-मर पालन करने की प्रेरणा
६	कमल मिलल दल, मधुप चलल घर (१६)	सामान्या नायिका, असती का पथि आमन्त्रण
७	भल भेल दम्पति सैसव गेल (१७)	नवाकुरितयौवना
८	आज देखलिसि कालि देखलिसि (१८)	,, ,,
९	कुचजुग धरए कुम्भथल कान्ति (१९)	सौन्दर्य
१०	अधर सुशोभित बदन सुछन्द (२०)	,,
११	चाँद-सार लए मुख घटना करु (२१)	,,

५३—चारि पहर राति सगहि गमाओल (६४)	मिलन-रात्रि का अवसान, नायक से जाने देने की प्रार्थना, संभोगचिह्निता नायिका
५४—उठ-उठ माधव कि सुतसि मन्द (६५)	नायक को मिलन-आमन्त्रण, दूती-वचन
५५—अरुन लोचन घूमि घुमायल (६६)	रतिचिह्निता नायिका, प्रभात
५६—इ दसिहालल दखिन चीर (६७)	कैतव
५७—सामरि हे झामरि तोरि देह (६८)	रतिचिह्निता नायिका
५८—कह सखि साकरि झाकुडी देहा (६९)	रतिचिह्निता नायिका
५९—मनदी हरूप निरूपह दोसे (७०)	रतिचिह्निता नायिका की कैतवोक्ति
६०—की कुच अचले राखह गोय (७१)	मिलन के अनुभव
६१—प्रथमहि ह्राय पयोधर लागु (७२)	मिलन
६२—रामा तोरि बहाउलि केलि (७३)	स्वाधीनपतिका, प्रेमगर्विता
६३—पहिलुक परिचय प्रेमक ससय (७४)	विश्रब्धनवोढा
६४—पिय रस पेसल प्रथम समाजे (७५)	,, ,,
६५—साझुक वेरा जमुनक तीरे (७६)	मिलन
६६—सामर पुरुसा मझु घर पाहुन (७७)	नवमिलन
६७—कि कहब रे सखि आजुक रंग(७८)	प्रेम की प्रवचना
६८—कुन्तल कुसुम निमाल न भेल (७९)	अपूर्ण मिलन, नायिका का अनुताप
६९—सिरिपि मिलल देहा (८०)	,, ,, ,,
७०—हँसि निहारलि पलटि हेरि लाजे (८१)	,, ,, ,,
७१—कुन्द भमर सगम सभासन (८२)	दूती-शिक्षा
७२—विरला के भल खिरहर (८३)	दूती-वंचिता
७३—दूती सरूप कहवि तुहुँ मोहे (८४)	,, ,,
७४—वारि विलासिनी आनव काहाँ (८५)	नायक को नायिका के यहाँ जाने की प्रेरणा
—काछर काछिअ इ बड लाज (८६)	अभिसार की तैयारी, दूती-प्रेरणा
गमइ दूति पढ़ायलि आवि (८७)	अभिसारिका
सिन्दूर-विन्दु चान्दने लिखए	अभिसार-सकेत

३४—ए धनि कर अवधान (४४)	पूर्वानुराग, नायक की व्यथा
३५—से अति नागर गोकुल कान्ह (४५)	,, कृष्ण की विरहोत्कण्ठा
३६—पिया परवास आस तुअ पासहि (४६)	परपुरुष-प्रेम नही करने का सकल्प, प्रवासी प्रिय की विरहिणी के मनोभाव
३७—गगनक चान्द हाथधरि देयलुँ (४७)	पूर्वानुराग, नायक को स्वय ही नायिका के पास जाने का निवेदन
३८—तोरए मोजँ गेलहु फूल (४८)	मिलन-चित्र, परकीया
३९—तुअ गुन गौरव सील सोभाव (४९)	प्रथम मिलन, परकीया
४०—कुच नख लागत सखिगन देख (५१)	मिलन
४१—राहु तरासे चाँद हम मानि (५२)	मिलन
४२—हठि न हलब मोर भुजजुग जाति (५३)	मिलन
४३—कतएक हमे धनि कतए गोपाला (५४)	मिलन के अनुभव
४४—से अति नागर तजँ सब सार (५५)	बहुवल्लभ कन्त, दूती-वचन, जब तक रूप-यौवन तभी तक प्रेम "हरि रस-बनिजार"
४५—कउडि पठओले पाव नहि घोर (५६)	नायक की ग्राम्यता
४६—प्रथमहि गेलि धनि पीतमपासे (५७)	प्रथम मिलन
४७—न बुझए रस नहि बुझ परिहास (५८)	नवोढा मुग्धा
४८—कत अनुनय अनुगत अनुबोधि (५९)	मुग्धा, नवोढा, स्वकीया, प्रथम मिलन
४९—पहिलहि राधा माधव भेंटि (६०)	मुग्धा, प्रथम मिलन
५०—निवि-बन्धन हरि किए कर दूर (६१)	प्रथम मिलन
५१—तोहि नव नागर हम भीति रमनि (६२)	प्रथम मिलन
५२—जामिनि दूर गेल नुकिगेल चन्द (६३)	मिलन, रात्रि का अवसान

५३—चारि पहर राति सगहि गमाओल (६४)	मिलन-रात्रि का अवसान, नायक से जाने देने की प्रार्थना, सभोगचिह्निता नायिका
५४—उठ-उठ माधव कि सुतसि मन्द (६५)	नायक को मिलन-आमत्रण, दूती-वचन
५५—अरुन लोचन घूमि घुमायल (६६)	रतिचिह्निता नायिका, प्रभात
५६—इ दसिहालल दखिन चीर (६७)	कैतव
५७—सामरि हे झामरि तोरि देह (६८)	रतिचिह्निता नायिका
५८—कह सखि साकरि झाकुडी देहा (६६)	रतिचिह्निता नायिका
५६—ननदी हरूप निरपह दोसे (७०)	रतिचिह्निता नायिका की कैतवोक्ति
६०—की कुच अचले राखह गोय (७१)	मिलन के अनुभव
६१—प्रथमहि हाथ पयोधर लागु (७२)	मिलन
६२—रामा तोरि बहाउलि केलि (७३)	स्वाधीनपतिका, प्रेमगर्विता
६३—पहिलुक परिचय प्रेमक ससय (७४)	विश्रव्धनवोढा
६४—पिय रस पेसल प्रथम समाजे (७५)	,, ,,
६५—साझुक वेरा जमुनक तीरे (७६)	मिलन
६६—सामर पुरुसा मझु घर पाहुन (७७)	नवमिलन
६७—कि कहब रे सखि आजुक रंग (७८)	प्रेम की प्रवचना
६८—कुन्तल कुसुम निमाल न भेल (७६)	अपूर्ण मिलन, नायिका का अनुताप
६६—सिरिपि मिलल देहा (८०)	,, ,, ,,
७०—हँसि निहारलि पलटि हेरि लाजे (८१)	,, ,, ,,
७१—कुन्द भमर सगम समासन (८२)	दूती-शिक्षा
७२—विरला के भल खिरहर (८३)	दूती-वचिता
७३—दूती सरूप कहवि तुहुँ मोहे (८४)	,, ,,
७४—वारि विलासिनी आनब काहाँ (८५)	नायक का नायिका के यहाँ जाने की प्रेरणा
७५—काछर काछिअ इ बड लाज (८६)	अभिसार की तैयारी, दूती प्रेरणा
७६—प्रथमइ दूति पठायलि आवि (८७)	अभिसारिका
७७—सुरुज सिन्दुर-विन्दु चान्दने लिखए इन्दु (८८)	अभिसार-सकेत
७८—करिवर राजहस जिनि गामिनि (८६)	अभिसार, नायिका के सौन्दर्य की प्रशसा, शिख-नख
७६—नूपुर रसना परिहर देह (६०)	अभिसार की प्रेरणा
८०—पुरल पुर परिजने विसुने (६१)	अभिसारिका

८१—गुरुजन नअन पगार पवन जओ (९२)	अभिसार
८२—प्रणमि मनमथ करहि पाएत, (९३)	अभिसार
८३—कह कह सुन्दरि न कर बेआजे (९४)	अभिसार की तैयारी, कृष्णाभिसार
८४—सखि हे आज जायब मोही (९५)	अभिसारिका, शुक्लाभिसारिका
८५—सहज सुन्दर लोचन सीमा (९६)	अभिसार
८६—मृगमद पंक अलका (९७)	अभिसार, शृ गार-प्रसाधन की आवश्यकता
८७—बदन कामिनि हे बेकत न करवे (९८)	अभिसारिका
८८—जखने सकेत चलु ससिमुखि (९९)	अभिसार, अपूर्ण
८९—प्रथम पहर निसि जाउ (१००)	कृष्णाभिसारिका, दूती-वचन
९०—चान्दक तेज रयनिघर जोति (१०१)	शुक्लाभिसारिका
९१—करहि सुन्दरि अलक तिलक वाथे (१०२)	अभिसारिका
९२—सगरिओ रअनि चान्दमय देखि (१०३)	अभिसार की बेला बीत गयी, नायिका की विवशता।
९३—रयनि काजर बम भीम भुअंगम (१०४)	पावस रजनी मे अभिसार, पावस की रात का चित्र
९४—वाट विकट फनिमाला (१०५)	पावस की रात मे अभिसार
९५—घनघन गरजए (१०६)	पावस की रात, अभिसार
९६—कुसुम बोलि केश पहिरल (१०७)	प्रेम मे जीवन भी अर्पित करके प्रिय के पास आगमन का संकल्प
९७—वरसि निसा भमे चलि अएलिहु (१०८)	पावस की रात मे अभिसार—नायक के द्वारा निराश की गयी नायिका, व्यथा, निराशा, ग्लानि के भाव
९८—दुहुक अभिमत एकल मिलन (१०९)	दूती की गलती से राधा-माधव नियत संकेतस्थल पर नही पहुँच कर अलग-अलग एक दूसरे को खोजते रहे
९९—रितुपति राति रसिकवर राज (११०)	वासन्ती निशा मे रास
१००—खनहि खन महधि भए किछु अरुन (१११)	मिलन-सुख की सर्वोपरि महत्ता—दूती-शिक्षा

१०१—बड कौसिल तुअ राधे (११२)	राधा के प्रेम मे क्रीत दास की तरह कृष्ण, विक्रय पत्र
१०२—तोहर वचन अमिअ ऐसन (११३)	खंडिता, नायिका का अनुताप
१०३—मनसिज बचन गोर हरल गेआने (११४)	खण्डिता, अनुताप, ग्लानि
१०४—कुंकुम लओलह नख-खत गोई (११५)	खण्डिता द्वारा नायक की भर्त्सना
१०५—सखि हे बुझल कान्ह गोआर (११७)	धीराधीरा, विप्रलब्धा
१०६—सहस रमनि सौं भरल तोहर हिय (११६)	खण्डिता
१०७—पुनु चलि आवसि पुनु चलि जासि (११८)	दूती-वंचना
१०८—गुरुजन परिजन दुरजन गारि (११९)	मान
१०९—हरि बिसरल बाहर गेह (१२०)	विफल अभिसार
११०—बदन चाँद तोर नयन चकोर मोर (१२१)	मानवती के प्रति नायक का वचन
१११—मानिनि मान आवहु कर ओड (१२२)	मानमोचन
११२—नवि रतिपति नवि परिमल, नव मलयानिल धार (१२३)	वसन्त मे मान करना कठिन
११३—तन्हि करि घसमसि विरहक (१२४)	मानिनि के प्रति सखी-वचन
११४—पुरुष भमर सम कुसुमे कुसुमे रम (१२५)	पुरुष की भ्रामरी प्रकृति, प्रेममयी नारी का कर्तव्य—नारी-प्रेम की उदात्तता।
११५—परिजन पुरजन वचनक रीति (१२७)	नायिका का आर्त्त वचन नायक के प्रति
११६—गगन गरज घन जामिनि घोर (१२८)	,, ,, ,,
११७—दुरजन वचन न लइ सब ठाम (१२९)	मान करनेवाले नायक से नायिका का मनुहार-वचन
११८—अरे अरे भमरा तोजे हित हमरा (१३०)	प्रेम की वक्र गति, रूठी नायिका को मना लाने का सन्देश।
११९—चाढिक पानि काढि जा जानि (१३१)	मानवती के प्रति

१२०—चाहइते अधर निअल नहि आवसि (१३२)	मानवती के प्रति
१२१—सरदक ससधर सम मुखमंडल (१३३)	,,
१२२—जहिआ कान्ह देल तोहे आनि (१३४)	,, पुरुष की भ्रामरी प्रवृत्ति
१२३—जति जति धमिअ अनल अधिक विमल हेम (१३५)	मानोपरान्त मिलन का माधुर्य
१२४—मानिनिमान मौन मन साजि (१३६)	दूती-कार्य की कठिनता, मान
१२५—अधर सुधा मिठी दूधे धवरि दिठी (१३७)	मानवती के प्रति
१२६—माघ मास सिरि पचमी गजाइलि (१३८)	नव वसंत, मानिनी के प्रति
१२७—आएल वसन्त सकल रस मण्डल (१३६)	,, ,,
१२८—अभिनव पल्लव बइसक देल (१४०)	वसन्त का राज्याभिषेक
१२६—दखिन पवन बह दस दिस रोल (१४१)	शीत-वसन्त विवाद, न्यायालय का चित्रण
१३०—सुरभि समय भल चल मलयानिल (१४२)	विरहगीत, वसन्त-परिवेश
१३१—कोकिल गावए मधुरिम वानि (१४३)	प्रोषितपतिका, ,,
१३२—तोहरा लागि धनि खिनि भेलि (१४४)	विप्रलब्धा, दूती का उपालभ सुनकर नायक का लज्जित होना
१३३—विरहिणी वाला कत सहवि कुसुम सरधारा (१४५)	प्रोषितपतिका
१३४—चिन्ता आसा कवलिलि मोरि (१४६)	,,
१३५—अपनेहि पेम तरुअर बाढल (१४७)	परपुरुष प्रेम मे नारी की विवशता, विपन्न स्थिति
१३६—एत दिन छल पिया (१४८)	सपत्नी मे अनुरक्त पति के प्रति नायिका का आर्त्त वचन

१३७—माधव वचन करिय प्रतिपाले (१४९)	उपेक्षिता नायिका के मर्मोद्गार
१३८—रोपलहु पहुँ लहु लतिका आनि (१५०)	,, ,,
१३९—की हम साझुक एकसरि तारा (१५१)	रूठे नायक के प्रति मनुहार
१४०—से भल जे वरु वसए विदेसे (१५२)	रूठे नायक के प्रति
१४१—धन जउवन रस रंगे (१५३)	भूले नायक के प्रति मर्मवाणी
१४२—जसु मुख सेवक पुनिमक चन्दा (१५४)	विप्रलब्धा का सन्देश नायक को
१४३—वचन रचन दए आनलि राही (१५५)	नायिका के साथ विश्वासघात नहीं करने को नायक से प्रार्थना
१४४—सखि हे वालभु जितव विदेसे (१५६)	विप्रलम, प्रवत्स्यत-पतिका
१४५—दखिन पवन बह मन्द (१५७)	,, ,,
१४६—कालि कहलि पिया साझहि रे (१५८)	प्रोषितपतिका, विरहगीत
१४७—दहए बुलि बुलि मर्मरि करुना करि (१५९)	विरहगीत।
१४८—मजे छलि पुरुब पेम भरे भोरी (१६०)	विरहगीत, प्रोषितपतिका
१४९—पहिलि पिरीत परान आँतर (१६१)	,, ,,
१५०—अविरल परए मदनसरधारा (१६२)	,, ,,
१५१—सरसिज विनुसर, सरविनु सरसिज (१६३)	,, कुलकामिनी के उद्गार
१५२—माधव मास तीथि भउ माधव (१६४)	,, प्रोषितपतिका
१५३—प्रथमहि उपजल नव अनुरागे (१६५)	,, ,,
१५४—केओ सुखे सुतए केओ दुखे जाग (१६६)	,, ,,
१५५—सखि हे मोरे बोले पुछब कन्हाई (१६७)	विरहिणी-सन्देश

१५६—नमित अलके वेढला मुखकमललोभे (१६८)	विरहिणी की कातर दशा
१५७—कोन गुन पाहुँ परवस भेल सजनी (१६६)	दाम्पत्य प्रेम की मर्यादा, उपेक्षिता के मनोभाव।
१५८—करतल लीन सोभए मुखचन्द (१७०)	विरहिणी-दशा
१५९—खेदव मोजे कोकिल अलिकुल वारव (१७१)	प्रोषितपतिका
१६०—वसन्त रयनि रगे पलटि खेपवि संगे (१७२)	विरहिणी की मनोव्यथा, वसन्त-परिवेश
१६१—साहर सउरभ गगन भरे (१७३)	विरहगीत, वसन्त-परिवेश
१६२—मास असाढ उन्नत नव मेघ (१७४)	बारहमासा, विरहगीत
१६३—जखन आओव हरि रहव चरण धरि (१७५)	विरहिणी की कातर मनोभावना
१६४—की कहव माधव की करव काजे (१७६)	विरहिणी की चेष्टाएँ
१६५—माधव कठिन हृदय परवासी (१७७)	विरहिणी की कातर अवस्था, नायक से घर लौट जाने का निवेदन।
१६६—गगन गरज मेघा (१७८)	विरहिणी-दशा, पावस-परिवेश
१६७—कुसुमित कानन हेरि कमलमुखि (१७९)	विरहिणी-दशा, वसन्त-परिवेश
१६८—खने सन्ताव सीत जर जाड (१८०)	विरहिणी-सन्देश, प्रहेलिका
१६९—माधव जानल न जीवित राही (१८१)	विरहिण की कृशता, अभिव्यजना-चमत्कार
१७०—कत कत भमि पुरुष देखल (१८२)	विरहिणी-दशा, उपेक्षिता
१७१—मोरि अविनए जत (१८३)	पूर्ण आत्मसमर्पणकारिणी विरहिणी नायिका का सन्देश सुनकर विस्मित हरि ने उससे मिलने को प्रयाण किया
१७२—वरहि मिलल मुख नहि सुन्दर (१८४)	विरहिणी की कातर अवस्था
१७३—सखि जने कन्दरे (१८५)	" "

१७४—करे कुचमंडल रहलहुं गोय (१८६)	विरहिणी-स्वप्न
१७५—जलो हम जनितहुं (१८७)	विरहिणी-मनोरथ
१७६—साहर मंजर भमर गुंजर (१८८)	प्रोषितपतिका, अपने रूप-यौवन को कोस रही है
१७७—सखि हे वैरि भेलि मोर नीन्द (१८९)	विरहगीत, लोकगीत की शैली में
१७८—कीर कुटिल मुख न बुझ वेदन दुख (१९०)	विरहिणी की मनोव्यथा
१७९—सपने देखल हरि गेलाहुँ पुलके पूरि (१९१)	विरहिणी-स्वप्न
१८०—कत न दिवस लए अछल मनोरथ (१९२)	प्रवासोत्तर मिलन, विदग्ध-विलास
१८१—साँझहि चाँद उगिय गेल (२०६)	विरहिणी के मनोभाव, विरहोत्कण्ठिता
१८२—एकहि वेरि अनुराग बढ़ाओल (२०८)	अनुरागिणी राधा की विरह-दशा
१८३—हेरितहि दीठि चिह्नहि हरि गोरी (२०९)	नारी जीवन का यथार्थ
१८४—ललित लता जनि तरु मिलती (२१०)	प्रेम का स्वरूप
१८५—निसि निसिअर भम भीम भुअगम (२११)	अभिसार, पावस-परिवेश
१८६—सहज सितल छल चन्द (२१२)	विरहगीत
१८७—सरोवर मभि समीरन विथर (२१३)	विरह-व्यथा, कातर भाव
१८८—कानने कानने कुन्द फूल *(२१४)	विभिन्न ऋतुओं में प्रेम
१८९—कि आरे नवजौवन अभिरामा (२१६)	सौन्दर्य, अलकृत वर्णन
१९०—मन परवस भेल परदेस नाह (२१७)	विरहगीत
१९१—माधव देखल वियोगिनी वामे (२१८)	राधा की विरहदशा सुनकर माधव का उससे मिलने को प्रस्थान
१९२—फिरि फिरि भमरा उनमत बूल (२१९)	चंद्रोपालम्भ
१९३—मलय पवन वह* (२२०)	वसन्त-वर्णन, प्रभाव
१९४—आइलि निकट वाटे छुइलि मदन-साटे (२२२)	प्रथम मिलन का चित्र

१९५—गगन बलाहेक छाड्ल रे (२२३) विरहगीत
१९६—नगरक वानिनिओ (२२४) ग्रामगीत
१९७—कोप करए चाह नयने निहारि रह (२२५) प्रेमविभोर मुग्धा
१९८—सुन्दरि गरुअ तोहर विवेक (२२६) प्रेम
१९९—अपथ सपथ कए कह कत पूस (२२७) कृष्ण के पास नही जाने का मनुहार
२००—भौंह भागि लोचन भेल आड (२३१) वय सधि, यौवनागम
२०१—जेहे अवयव पुरुव समय (२३२) नवांकुरित यौवना
२०२—कामिनि करए सनाने (२३३) स्नान करती हुई नायिका की अगछवि
२०३—जमुनातीर युवति केलिकर (२३४) सौन्दर्य
२०४—अलखित हमे हेरि विलसित थोर (२३५) नायिका की प्रथम प्रणय-चेष्टा
२०५—अमिअक लहरी बम अरविन्द (२३६) सौन्दर्य
२०६—पीन पयोधर दूबरिगता (२३७) ,,
२०७—माधव जाइति देखलिपथ रामा (२३८) सौन्दर्य, प्रहेलिका
२०८—माधव देखलहुँ तुअ धनि आजे (२३९) ,, ,,
२०९—माधव जाइति देखलि पथ रामा (२४०) ,, ,
२१०—जाइति देखलि पथ नागरि सजनिगे (२४१) ,,
२११—आधनयन कए तहु कर आध (२४२) पूर्वराग, नायक के मनोभाव
२१२—सामर सुन्दर एँ वाट आएल (२४३) पूर्वराग, नायिका के मनोभाव
२१३—हमे हसि हेरला थोरा रे (२४४) प्रथम दर्शन मे प्रेम
२१४—दरसने लोचन दीघरधाव (२४५) नायक को देखने की नायिका की उत्कण्ठा
२१५—बिके गेलिहुँ माथुर मधुरिपु (२४६) पूर्वराग

२१६—कानग कान्ह कान हम सूनल (२४७)	पूर्वराग
२१७—लुवधल नयन निरखि रहुठाम (२४८)	,,
२१८—सपनेहु न पुरल साधे (२४६)	विरहगीत
२१६—कत न वेदन मोहि देसि मदना (२५०)	विरह-व्यथा
२२०—कर किसलय सयन रुचि (२५१)	विरहिणी की कातर दशा
२२१—प्रथमहि हृदय वुझओलह मोहि (२५२)	विरह
२२२—अपनहि नागरि अपनहि दूत (२५३)	स्वयदूतिका
२२३—पथा सुनिअ भेलि महादेइ (२५४)	परपुरुप प्रेम की निन्दा
२२४—अघट घट घटावए चाहगि (२५५)	नायिका द्वारा परपुरुप प्रेम की निन्दा करते हुए दूती की भर्त्सना
२२५—थिर पद परिहरिए जे जन अथिर मानस लाव (२५६)	परपुरुप प्रेम नही करने की शिक्षा।
२२६—कंचन गढल हृदय हथिसार (२५७)	यौवन रूपी हाथी प्रियतम रूपी अंकुश से वश मे रहता है।
२२७—नन्दक नन्दन वदम्वेरि तरुतल (२५८)	कृष्ण की उत्कण्ठा का सन्देश
२२८—कण्टक माझ कुसुम परगास (२५६)	नायक की व्यग्रता का सन्देश
२२६—जहि खने नियर गमन होअ मोर (२६०)	,, ,,
२३०—सरुप कथा कामिनि सुनु (२६१)	कृष्ण की असीम उत्कण्ठा का सन्देश
२३१—तोहे कुलमति रति कुलमति नारि (२६२)	पूर्वराग, नायक की व्यग्रता
२३२—कत अछ जुवति कलामति आने (२६३)	नायक का अनन्य प्रेम, सन्देश
२३३—ए सखि ए सखि न बोलह आन (२६४)	,, ,, ,,

२३४—प्रथम सिरिफल गरब गमओलह (२६५)	अस्थायी यौवन का गर्व नहीं करने की सीख
२३५—अपना काज कओन नहि (२६६)	दूती-सन्देश
२३५ (क) तिन तुल अरु (२६७)	„
२३६—जदि अवकास कइए (२६८)	नायिका की चंचलता, दूती-सन्देश
२३७—घटक विहि विधाता जानि (२६९)	नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करके नायक के पास चलने की सीख
२३८—माधव की कहव ताही (२७०)	राधा की व्यग्रता, पूर्वराग, विरहदशा
२३९—अविरल नयन गलए जलधार (२७१)	विरहदशा
२४०—नयनक नीर चरनतल गेल (२७२)	विरहदशा
२४१—प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख (२७३)	दूती-शिक्षा, नवीना को
२४२—तोहे कुलठाकुर हम कुलनारि (२७४)	नायिका द्वारा नायक की आवर्जना
२४३—प्रथमहि अलक तिलक लेव साजि (२७५)	नवीना को दूती-शिक्षा
२४४—तोहर साजनि पहिल पसार(२७६)	प्रथम प्रेम
२४५—सयन चढावहि पावे (२७७)	मिलन-चित्र
२४६—सवहु सखि परवोधि कामिनि (२७८)	„
२४७—अहे अहे सखि लै जनि जाहु (२७९)	„
२४८—धनि वेआकुलि (२८०)	„
२४९—कोमल तनु पराभवे पाओल (२८१)	दूती-शिक्षा, नायक को
२५०—बदर सरिस कुच परसब लहु (२८२)	„ „
२५१—अधर मंगइते अओध कर माथ (२८३)	मिलन-चित्र
२५२—परसे बुझा तनु सिरिसक फूल (२८४)	मिलन के अनुभव
२५३—एके अवला अओके सहजक छोटि (२८५)	प्रथम मिलन

२५४—अबला अंसुक वालंमु लेल (२८६)	मिलन-चित्र
२५५—कमल कोष तनु कोमल हमारे (२८७)	प्रथम मिलन के अनुभव
२५६—हमे अबला तोहे बलमत नाह (२८८)	मिलन-चित्र
२५७—थामा नयन नयन वह नोर (२८९)	प्रथम मिलन
२५८—अहे सखि अहे मति लए जनि जाहे (२९०)	प्रथम मिलन, नवोढा, मुग्धा
२५९—देखलि कमलमुखि कोमल देह (२९१)	मुग्धा, नवोढा, प्रथम मिलन
२६०—माधव सिरिस कुसुम सम राही (२९२)	मिलन-चित्र
२६१—जावे न मालति कर परगाम (२९३)	नवोढा, मुग्धा
२६२—वालि विलसनि जतने आनलि (२९४)	नवीना नायिका का प्रेम
२६३—सहजहि तनु खिनि माझ वेबि सनि (२९५)	नवोढा मुग्धा, प्रथम मिलन, दूती-शिक्षा नायक को
२६४—जाति पदुमिनि सहति कता (२९६)	मिलन-चित्र
२६५—प्रथम समागम भुखल अनग (२९७)	,,
२६६—हृदय तोहर जानि भेला (२९८)	,,
२६७—परक पेयसि आनलि चोरी (२९९)	मुग्धा, नवोढा
२६८—आवे न लईति आईति भोरि (३००)	सभोगचिह्निता नायिका
२६९—सुरम निकुज बेदि भलि भेलि (३०१)	राधा-माधव गाधर्व विवाह का रूपक
२७०—कुच कोरीफल नख-खत रेह (३०२)	सभोगचिह्निता नायिका
२७१—अलसे पुरल लोचन तोर (३०३)	केलिगृह से आगता नायिका का चित्र
२७२—साझक वेरि उगल नव ससधर (३०४)	नायिका का सौन्दर्य

२७३—आज देखिअ सखि बड अनुमनि सनि (३०५)	रतिचिह्निता नायिका
२७४—प्रथम समागम के नहि जान (३०६)	प्रथम मिलन के अनुभव
२७५—जकर नयन जतहि लागल (३०७)	सौन्दर्य
२७६—कुण्डल तिलकें विराज, मुख सोभित सिन्दुर विन्दु (३०८)	,,
२७७—चान्द वदनि धनि चान्द उगत जबे (३०९)	शुक्लाभिसार
२७८—लोलुअ बदन-सिरी अछि धनि तोरि (३१०)	सौन्दर्य, अभिसार-सन्देश
२७९—चल चल सुन्दरि शुभ कर काज (३११)	अभिसार-सन्देश
२८०—राहु मेघ भए गरसल सूर (३१२)	दिवाभिसार
२८१—एके मधुजामिनि (३१३)	अभिसार-सन्देश
२८२—वामा नयन फुरन आरम्भ (३१४)	,,
२८३—जौवन चाहि काम नहि ऊन (३१५)	नायिका को परपुरुष मे अनुरक्त करने की दूती-चेष्टा
२८४—ओ पर बालँभु तजे परनारि (३१६)	दूती
२८५—सहजहि आनन अछल अमूल (३१७)	बिना शृङ्गार प्रसाधन के ही अनुपम सौन्दर्य
२८६—घर गुरुजन पुर परिजन जाग (३१८)	नवीना अनुरागिणी की अभिसार हेतु उत्कंठा
२८७—दूर सिनेहा वचने वाढल (३१९)	अभिसारिका का संकल्प, आशंका
२८८—प्रथम जउवन नव गरुअ मनोभव (३२०)	अभिसारिका के मनोभाव
२८९—चन्दा जनि उग आजुक राति (३२१)	अभिसारिका के मनोभाव
२९०—अगमने प्रेम गमने कुल जाएत (३२२)	अभिसारिका का ऊहापोह

२९१—आज मोञे जाएब हरि समागम	(३२३)	अभिसारिका द्वारा चाँद की भर्त्सना
२९२—कह कह सुन्दरि न कर बेआज	(३२४)	अभिसारिका की व्यग्रता, चेष्टाएँ
२९३—चरण नूपुर ऊपर सारी	(३२५)	अभिसार का सन्देश
२९४—लहु कय बोललहु गुरुतर भार	(३२६)	लम्बा अभिसार-पथ, दूती के प्रति उपालभ
२९५—बाट भुअगम ऊपर पानि	(३२७)	कृष्णाभिसारिका
२९६—कुसुमित कानन कुंज बसी	(३२८)	नायिका का प्रतीकात्मक सन्देश
२९७—जदि तोरा नहि खन नहि अवकास	(३२९)	अभिसार का अनुरोध
२९८—जलधर अंबर रुचि	(३३०)	प्रहेलिका
२९९—काजरे रागलि राति	(३३१)	कृष्णाभिसारिका, पावस
३००—बरिस जामिनि कोमल कामिनि	(३३२)	,, ,,
३०१—आयल पाउस निविड अंधार	(३३३)	अपने घर में बैठी प्रिय की प्रतीक्षा मे नायिका, पावस रजनी
३०२—जलद बरिस जलधार	(३३४)	अभिसारिका, पावस
३०३—काजरे साजलि राति	(३३५)	संकेतस्थल पर कृष्ण की व्यग्रता
३०४—निसि निसिअर भम भीम भुजगम	(३३६)	अभिसार
३०५—माधव करिअ सुमुखि समधाने	(३३७)	अभिसारिका का उत्कट प्रेम
३०६—जलद बरिस घन दिवस अधार	(३३८)	दिवाभिसार, पावस-परिवेश
३०७—गुरुजन कहि दुरजन सयँ वारि	(३३९)	दिवाभिसार का अनुरोध
३०८—आज पुनिम तिथि जानि मयँ अयलिहुँ	(३४०)	शुक्लाभिसारिका
३०९—गगन मगन होअ तारा	(३४१)	प्रभात होने पर भी कृष्ण का शय्या-परित्याग नहीं (मिलन-चित्र)

३१०—परक विलासिनि तुअ अनुवन्ध (३४२)	प्रभात होने पर भी कृष्ण का शय्या-परित्याग नही (मिलन-चित्र)
३११—अरुन किरन किछु अम्बर देल (३४३)	,, ,, नायिका द्वारा जाने देने का अनुरोध
३१२—भौहलता वड देखिअ कठोर (३४४)	मानवती नायिका के प्रति धृष्ट नायक के वचन
३१३—की कान्ह निरेखह भौंह विभग (३४५)	रूपगर्विता
३१४—सगर ससारक सारे (३४६)	,,
३१५—कुंज भवन सञे निकसलि रे (३४७)	राधा-कृष्ण प्रेम-प्रसग
३१६—पहिल पसार ससार सार रस(३४८)	नायिका की वक्रोक्ति
३१७—कर घरु करु मोहे पारे (३४९)	,, ,, आत्मनिवेदित प्रेम
३१८—निधन कौं जओ धन किछु हो (३५०)	नायिका की दूती से वक्रोक्ति
३१९—गाए चरावए गोकुल वास (३५१)	कृष्ण के प्रति नायिका की वक्रोक्ति
३२०—कुटिल विलोक तन्त नहि जान (३५२)	अरसिक नायक के प्रति
३२१—गुन अगुन सम कय मानए (३५३)	,, ,,
३२२—कुसुम तोरए गेलहुँ जहाँ (३५५)	कैतव
३२३—खरि नरवेग भासलि नाइ (३५६)	,,
३२४—सखि कि लय बुझायव कन्ते (३५७)	,,
३२५—कुसुम रचित सेजा दीप रहल तेजा (३५८)	वासकसज्जिका
३२६—ताके निवेदिअ जे मतिमान (३५९)	खण्डिता
३२७—प्रथमहि नत न जतन उपजओलह (३६०)	विप्रलब्धा
३२८—रिपु पचशर जानि अवस (३६१)	,,
३२९—तुअ विसवासे कुसुम भरु सेज (३६२)	,,

३३०—की पर वचने कन्त देल कान (३६३)	उपेक्षिता
३३१—गगन गरजि घनघोर (३६४)	विरहोत्कंठिता
३३२—झाँखि-झाँखि न खिन कर तनू (३६५)	विरहोत्कंठिता को सखी की सांत्वना
३३३—सून सकेत निकेतन आइलि (३६६)	विप्रलब्धा की अवस्था का दूती द्वारा नायक से निवेदन
३३४—बडे मनोरथें साजु अभिसार (३६७)	विप्रलब्धा, नैराश्य तथा दैन्य
३३५—पथरि मयें अएलिहुँ तरनि तरग (३६८)	विफल अभिसार
३३६—छलि भरमे राहि पिआजे जाएब कहि (३६९)	मानवती
३३७—जागल जामिक जन चउदिस गरज धन (३७०)	विप्रलब्धा
३३८—के बोल प्रेम अभिअक धार (३७१)	प्रेम अमृत की धारा नही, गरल विष
३३९—हृदयक कपट भेल नहि जान (३७२)	नायक द्वारा उपेक्षा पर दूती-वचन
३४०—मधु रजनि सगहि खेपव (३७३)	विफल अभिसार
३४१—पाए तक पाछु गेलि लाज (३७४)	विप्रलब्धा
३४२—साँझहि निअ मुद प्रेम पियाए (३७५)	अन्यत्र रात बितानेवाले नायक की प्रतीक्षाकुल विरहिणी की व्यथा
३४३—लोचन अरुन बुझल बड भेद (३७६)	खण्डिता
३४४—नयन काजर अधर चोराओल (३७७)	,,
३४५—कमलिनि एडि केतकि गेला (३७८)	,, निराशा
३४६—हे माधव भल भेल (३७९)	कलहान्तरिता
३४७—माधव इ नहि उचित विचारे (३८०)	पररमणी मे अनुरक्त नायक की निन्दा
३४८—आदरे अधिक काज नहि बन्ध (३८१)	प्रेम की कसौटी
३४९—माधव बुझल तोहर नेह (३८२)	उपेक्षिता
३५०—प्रथमहि गिरि सम गौरव गेल (३८३)	,,

३५१—अहनिसि बचने जुडओलह कान (३८४)	उपेक्षिता
३५२—जावे रहिअ तुअ लोचन आगे (३८५)	खडिता
३५३—सुपुरुष भासा चौमुख वेद(३८६)	मान
३५४—बदन सरोरुह हासे (३८७)	मान
३५५—कि कहब अगे सखि भोर अगे-आने (३८८)	कलहान्तरिता
३५६—साकर सुध दूधे परिपूरल(३८९)	मानवती के प्रति
३५७—तनिक लागि फुलल अरविन्द (३९०)	,, ,,
३५८—वतए अरुन उदयाचल ऊगल (३९१)	अपूर्ण मिलन
३५९—आरति आपु पवार न चिह्नइ (३९२)	अपनी प्रिया की उपेक्षा करनेवाले नायक के प्रति
३६०—उगमल जग भम काहु न कुसुम रम (३९३)	मानवती नायिका के प्रति, नायक का अनन्य अनुराग
३६१—जावे सरस पिया बोलए हसी (३९४)	दाम्पत्य प्रेम का यथार्थ रूप
३६२—गगनमडल उग कलानिधि (३९५)	जीवन और जगत की वास्तविकता—विभव-पराभव
३६३—दुरजन दुरनए परिनति मन्द (३९६)	सच्चे प्रेम का स्वरूप, प्रिया का कर्तव्य
३६४—आगे नागर बोलि सिनेह बढाओल (३९७)	नायक द्वारा उपेक्षिता के मनोभाव
३६५—तोहर हृदय कुलिस कठिन(३९८)	प्रिया की उपेक्षा करनेवाले नायक के प्रति
३६६—मधु सम बचन कुलिस सम मानस (३९९)	"मन्द पेम परिनामा"
३६७—विमल कमलमुखि न करिअ माने (४००)	मानमोचन का अनुरोध
३६८—बुझहि न पारल कपटक बोस (४०१)	कृष्ण की निठुरता के प्रति
३६९—दहो दिस मूनसन अधिक पियासल (४०२)	उपेक्षिता के कातर भाव

३७०—कमल भमर जग अछए अनेक (४०३)	मानवती के प्रति
३७१—थिर नहि जउवन थिर नहि देहा (४०४)	,, ,,
३७२—हृदय कुसुम सम मधुरिम बानी (४०५)	दूती की भर्त्सना, परपुरुष प्रेम की निन्दा
३७३—वचन अमिअ सम मने अनुमानि (४०६)	ग्राम्य नायक
३७४—चांद सुधा सम वचन विलास (४०७)	खण्डिता को दूती द्वारा धीरज दिलाना
३७५—आसा दइए उपेखह आज (४०८)	उपेक्षिता का वचन नायक के प्रति
३७६—वचनक वचने दन्द पए बाढल (४०९)	कलहान्तरिता
३७७—तोहर अधर अमिअ लेल वास (४१०)	मानवती के प्रति
३७८—आसा खण्डह दए विसवास (४११)	खण्डिता
३७९—सुजन वचन कोटि न लाग (४१२)	मानवती के प्रति
३८०—दारुन सुनि दुरजन बोल (४१३)	उपेक्षिता
३८१—कोटि-कोटि देल तुलना हेम (४१४)	,,
३८२—ओतए कन्त उदन्त न जानिअ (४१५)	प्रोषितपतिका
३८३—नहि किछु पुछलि रहलि धनि वइसि (४१६)	मानवती
३८४—सजल नलिनिदल सेज सोआइअ (४१७)	विरह मे नायक की अवस्था
३८५—नारगि, छोलगि कोरि कि वेली (४१८)	यौवन और प्रेम का अन्तर्सम्बन्ध
३८६—कोकिल कुल कलरव (४१९)	मानवती
३८७—अवयव सवहि नयन पए भास (४२०)	मानवती के प्रति
३८८—सिनेह बढ़ाओल हमे छल भान (४२१)	उपेक्षिता
३८९—सोलह सहस गोपीपति महराणि (४२२)	,,

३६०—मालति मधु मधुकर कर पान (४२३)	कुलवती नारी के मनोभाव
३६१—जलधि न मागए रतन भण्डार (४२४)	प्रेम की प्रकृति
३६२—नागर हो जे हेरितहि जान (४२५)	नागर और नागर प्रेम
३६३—सौरभ लोभे भमर भमि आयल (४२६)	नायक से अधिक मान करना ठीक नही
३६४—पहिलहि अमिअ लोभायी (४२७)	कलहान्तरिता के प्रति
३६५—दुइ मन मेलि सिनेह अकुर (४२८)	प्रेम का स्वरूप, नायक की चचलता
३६६—कत न जीवन सकट परए (४२६)	सच्चा प्रेम
३६७—दूरहि रहिअ करिअ मन आन (४३०)	प्रेमातिरेक क कारण मान करने मे बाधा
३६८—दाहिन दिढ अनुरागे (४३१)	प्रेम का आदर्श रूप
३६६—सबे सबतहु कह सहले लहिअ (४३२)	प्रेम की ज्योति कैसे मन्द नही हो, इसकी शिक्षा
४००—जे छल से नहि रहले भाव (४३३)	कलहान्तरिता नायिका का अनुताप
४०१—जनो डिठिअओलए इ मति तोरि (४३४)	नायक पर रोप करने का अनौचित्य
४०२—बड बडाई सबे नहि पावइ (४३५)	विरहगीत, प्रेम की प्रकृति
४०३—कूपक पानि अधिक होअ काढी (४३६)	नागर नायक की रसलोभी प्रकृति, नायिका को उसकी रस-तृपा को परितुप्ट रखने की सीख
४०४—सुबे न सुतलि कुसुम सयन (४३७)	नायिका को सहनशील होन की सीख, अधिक रूठे रहने का अनौचित्य
४०५—कत खन बचन विलासे (४३८)	नायक की रस-तृपा को परितृप्ट करन्
४०६—बोललि बोल उत्तिम पए राख (४३६)	
४०७—झटक झाटल छाडल ठाम (४४०)	

४०८—गगन मण्डल दुहुक भूखन (४४१)	नारी जीवन की वास्तविकता—बहुवल्लभ कान्त का प्रेम
४०९—मानिनि आब उचित नहि मान (४४२)	मानवती का मनुहार
४१०—छलिहु पुरुष भोरे न जाएव पिया मोरे (४४३)	कलहान्तरिता
४११—जलधि सुमेरु दुअओ यिक सार (४४४)	नायक से मिलने का अनुरोध
४१२—जतनेहु ओरे जतओ न निरवह (४४५)	सतप्त विरहिणी
४१३—फुल एक फुलवारि लाओल मुरारि (४४६)	दाम्पत्य प्रेम का उज्ज्वल रूप
४१४—गेलाहुँ पुरुब पेमे उतरो न देई (४४७)	रूठी हुई नायिका के विषय मे
४१५—करतल कमल नयन ढर नीर (४४८)	विरहगीत
४१६—माधव सुमुखि मनोरथ पूर (४४९)	अभिसारिका
४१७—से कान्ह से हम से पचवान (४५०)	उपेक्षिता के मनोभाव
४१८—प्रथमहि कएलह नयनक मेनि (४५१)	नायिका से अनुकूल होने का अनुरोध
४१९—जनम होअए जनि जओ पुनु होई (४५२)	कुलवती नारी का जीवन-यथार्थ
४२०—गमने गमाओलि गरिमा (४५३)	प्रेम और कुल-मर्यादा मे द्वन्द्व
४२१—सुनि सिरिखण्ड तरु से सुनि गगन कए (४५४)	विफल अभिसार
४२२—दिने दिने बाढए सुपुरुष नेहा (४५५)	उपेक्षिता की आर्त्त वाणी
४२३—प्रथम प्रेम हरि जब बोलल (४५६)	,, ,,
४२४—कतए गुंजा कतए फूल (४५७)	परस्त्री मे अनुरक्त नायक के प्रति
४२५—रसिकक सरवस नागरि वानि (४५८)	परस्त्री मे अनुरक्त नायक की पूर्व प्रेमिका
४२६—बान्धल हीर अजर लए हेम (४५९)	उपेक्षिता या सपत्नी से घर मे रख लेने का अनुरोध

३९०—मालति मधु मधुकर कर पान (४२३)	कुलवती नारी के मनोभाव
३९१—जलधि न मागए रतन भण्डार (४२४)	प्रेम की प्रकृति
३९२—नागर हो जे हेरितहि जान (४२५)	नागर और नागर प्रेम
३९३—सौरभ लोभे भमर भमि आयल (४२६)	नायक से अधिक मान करना ठीक नही
३९४—पहिलहि अमिअ लोभायी (४२७)	कलहान्तरिता के प्रति
३९५—दुइ मन मेलि सिनेह अकुर (४२८)	प्रेम का स्वरूप, नायक की चचलता
३९६—कत न जीवन सकट परए (४२९)	सच्चा प्रेम
३९७—दूरहि रहिअ करिअ मन आन (४३०)	प्रेमातिरेक के कारण मान करने मे बाधा
३९८—दाहिन दिढ अनुरागे (४३१)	प्रेम का आदर्श रूप
३९९—सबे सबतहु कह सहले लहिअ (४३२)	प्रेम की ज्योति कैसे मन्द नही हो, इसकी शिक्षा
४००—जे छल से नहि रहले भाव (४३३)	कलहान्तरिता नायिका का अनुताप
४०१—जओ डिठिओलए इ मति तोरि (४३४)	नायक पर रोष करने का अनौचित्य
४०२—बड बडाई सबे नहि पावइ (४३५)	विरहगीत, प्रेम की प्रकृति
४०३—कूपक पानि अधिक होअ काढी (४३६)	नागर नायक की रसलोभी प्रकृति, नायिका को उसकी रस-तृषा को परितुष्ट रखने की सीख
४०४—सुखे न सुतलि कुसुम सयन (४३७)	नायिका को सहनशील होने की सीख, अधिक रूठे रहने का अनौचित्य
४०५—कत खन वचन विलासे (४३८)	नायक की रस-तृषा को परितुष्ट करने की सीख
४०६—बोलति बोल उत्तिम पए राख (४३९)	प्रेम और कुल-मर्यादा का द्वन्द्व
४०७—भटक भाटल छाडल ठाम (४४०)	उपेक्षिता

४०८—गगन मण्डल दुहुक भूखन (४४१)	नारी जीवन की वास्तविकता—वहुवल्लभ कान्त का प्रेम
४०९—मानिनि आब उचित नहि मान (४४२)	मानवती का मनुहार
४१०—छलिहु पुरुष मोरे न जाएब पिया मोरे (४४३)	कलहान्तरिता
४११—जलधि सुमेरु दुअओ थिक सार (४४४)	नायक से मिलने का अनुरोध
४१२—जतनेहु ओरे जतओ न निरवह (४४५)	सतप्त विरहिणी
४१३—फुल एक फुलवारि लाओल मुरारि (४४६)	दाम्पत्य प्रेम का उज्ज्वल रूप
४१४—गेलाहुँ पुरुब पेमे उतरो न देई (४४७)	रूठी हुई नायिका के विषय मे
४१५—करतल कमल नयन ढर नीर (४४८)	विरहगीत
४१६—माधव सुमुखि मनोरथ पूर (४४९)	अभिसारिका
४१७—से कान्ह से हम से पंचवान (४५०)	उपेक्षिता के मनोभाव
४१८—प्रथमहि कएलह नयनक मेलि (४५१)	नायिका से अनुकूल होने का अनुरोध
४१९—जनम होअए जनि जओ पुनु होई (४५२)	कुलवती नारी का जीवन-यथार्थ
४२०—गमने गमाओलि गरिमा (४५३)	प्रेम और कुल-मर्यादा मे द्वन्द्व
४२१—सुनि सिरिखंड तरु से सुनि गमन करु (४५४)	विफल अभिसार
४२२—दिने दिने वाढ़ए सुपुरुष नेहा (४५५)	उपेक्षिता की आर्त्त वाणी
४२३—प्रथम प्रेम हरि जब बोलल (४५६)	,, ,,
४२४—कतए गुंजा कतए फूल (४५७)	परस्त्री मे अनुरक्त नायक के प्रति
४२५—रसिकक सरवस नागरि वानि (४५८)	परस्त्री मे अनुरक्त नायक की पूर्व प्रेमिका
४२६—बान्धल हीर,अजर लए हेम (४५९)	उपेक्षिता का सपत्नी से घर मे रख लेने का अनुरोध

४२७—जौवन रतन अछल दिन चारि (४६०)	उपेक्षिता की व्ययासजल वाणी
४२८—जातकि केतकि कुन्द सहार (४६१)	,, ,,
४२९—आदरे आनलि परेहि नारी (४६२)	अभिसार में आयी हुई उपेक्षिता नायिका की ओर से नायक के प्रति
४३०—तेहँ हुनि लागल उचित सिनेह (४६३)	दूती के विषय में
४३१—तोह जलधर सम जलधर राज (४६४)	मार्मिक प्रणययाचना
४३२—बड जन जकर पिरीति रे (४६५)	सच्चे प्रेमी की विशेषता
४३३—चानन भरम सेवलि हम सजनी (४६६)	उपेक्षिता के घर माधव का आगमन
४३४—एत दिन छल नव रीति रे (४६७)	कलहान्तरिता
४३५—आजु परल मोहि कौन अपराधे (४६८)	रूठा हुआ नायक
४३६—माधव की कहब तोहरो गेआने (४६९)	विरहिणी के मनोभाव
४३७—जतहि प्रेमरस ततहि दुरन्त (४७०)	उपेक्षिता की मर्मोक्ति
४३८—सबे परिहरि अएलहु तुअ पास (४७१)	,, ,,
४३९—करओ विनय जत मन लाई (४७२)	,, ,,
४४०—पहुँक बचन छल पाथर रेख (४७३)	पुरुष की चंचल रसलोभी प्रकृति
४४१—ओतए छलि धनि निअ पिया पास (४७४)	लायी हुई नायिका की उपेक्षा करने वाले नायक के प्रति
४४२—कुलकामिनि भय कुलटा भेलिहुँ (४७५)	नायिका की मार्मिक वाणी सुनकर नायक का लज्जित होना
४४३—माधव जगत के नहिं जान (४७६)	नायिका की मार्मिक वाणी सुनकर नायक द्वारा अपराध-स्वीकार तथा मिलन
४४४—माधव आए कवाल उवेललि (४७७)	खण्डिता
४४५—चल देखह रितु वसन्त (४७८)	राधा-माधव वन-विहार

४४६—परदेस गमन जनु करह कन्त (४७६)	आसन्नप्रवासपतिका
४४७—अभिनव कोमल सुन्दर पात (४८०)	रास, वसन्त-परिवेश
४४८—सरदक चान्द सरिस तोर मुख रे (४८१)	मिलन
४४६—तरुअर वल्लि धर डारे जाँति (४८२)	राधा-माधव वन-विहार
४५०—त्रिवलि तरंगनि पुर दुग्गम जनि (४८३)	बाला के पूर्ण-यौवना होने पर नायक को चुनौती
४५१—दुहुक संयुत चिकुर फूजल (४८४)	मिलन-चित्र
४५२—जखन जाइअ सयन पासे (४८५)	मध्या, मिलन-गीत
४५३—नीन्दे भरल अछ लोचन तोर (४८६)	रतिचिह्निता
४५४—रयनि समापलि फुलल सरोज (४८७)	रात्रि का अवसान होने पर नायिका को घर लौटने देने का अनुरोध
४५५—हे हरि हे हरि सुनिये श्रवण महि (४८८)	रात्रि का अवसान होने पर नायिका को घर लौटने देने का अनुरोध
४५६—छलिहु एकाकिनि गयइते हार (४८६)	नायक के अचानक सम्मुख आ जाने पर नायिका की अस्तव्यस्तता
४५७—जखन लेल हरि कचुल अछोडि (४६०)	मिलन-चित्र, मुग्धा
४५८—वसन हरइते लाज गेल दूर (४६१)	,, मध्या
४५६—कि करति अवसा हठ कए नाह (४६२)	,, ,,
४६०—पहिलहि सरस पयोधर कुम्भ (४६३)	,, ,,
४६१—पहिलहि परसए करे कुचकुम्भ (४६४)	,, ,,
४६२—पहिलहि चोरि आएल पास(४६५)	,, ,,
४६३—दृढ परिरम्भ पीडलि मदने (४६६)	मिलन-चित्र, विश्रब्धनवोढा
४६४—फूजलि कबरि अवनत आनन (४६७)	मिलन चित्र, मध्या
४६५—कि कहब ए सखि केलि विलासे (४६८)	,, ,,

४६६—बदन झंपावए अलकक भार (४९९) मिलन-चित्र, मध्या

४६७—केसकुसुम छिरिआएल पूजि (५००) „ प्रौढ़ा

४६८—कुचकलस लोटाइलि घन सामरि वेनि (५०१) „ „

४६९—आकुल चिकुर बढलि मुख सोभ (५०२) „ „

४७०—माधव तोहे जनु जाह विदेसे (५०३) आसन्नप्रवासपतिका

४७१—पाउस निअर अएला रे (५०४) „

४७२—सुरत परिश्रम सरोवर तीर (५०५) प्रोषितपतिका

४७३—प्रथम समागम भेल रे (५०६) „

४७४—एहि जग नारि जनम लेल (५०७) „

४७५—प्रथम वयस हम कि कहव सजनि (५०८) विरहगीत

४७६—सेहे परदेस परजोसित रसिआ (५०९) मर्मस्पर्शी विरहगीत

४७७—कतहु साहर कतहु सुरभि (५१०) प्रोषितपतिका

४७८—काहु दिस काहल कोकिलरावे (५११) प्रोषितपतिका, वसन्त

४७९—अवधि वहिए हे अधिक दिन गेल (५१२) „

४८०—सुजन वचन हे जतए परिपालए (५१३) „ वसन्त

४८१—सिसिर समय वहि, बहल वसन्त (५१४) विरहगीत

४८२—वरिसए लागल गरजि पयोधर (५१५) मार्मिक विरहगीत, पावस

४८३—एखने पावओ तोहि विधाता (५१६) प्रोषितपतिका

४८४—प्रथमहि कएलह हृदयक हार (५१७) उपेक्षिता

४८५—हिमसम चन्दन आनी (५१८) विरहिणी की कातर अवस्था

४८६—माधव हमर रहल दुर देस (५१९) मार्मिक विरहगीत

५०६—भाविनि भल भए विमुख विधाता (५४२) — मार्मिक विरहगीत, स्वकीया प्रोषित-पतिका।

५१०—दरसन लागि पुजए निते काम (५४३) — विरहिणी-सन्देश, पावस

५११—विपत अपत तरु पाओल रे (५४४) — मार्मिक विरहगीत

५१२—के पतिआ लए जाएत रे (५४५) — ,,

५१३—चानन भेल विसम सर रे (५४६) — ,,

५१४—त्रिवलि सुरतरगिनि भेलि (५४७) — विरहिणी-चित्र

५१५—नदि बह नयनक नीर (५४८) — विरहिणी की मरणासन्न अवस्था जान कर माधव का लौटना

५१६—लोचन नीर तटिनि निरमाने (५४९) — विरहिणी-तपस्विनी

५१७—हृदयक हार भुअगम भेल (५५०) — विरहदशा

५१८—डरे न हेरए इन्दु (५५१) — विरह

५१९—फूजलेओ चिकुर राहुक जोर (५५२) — विरहिणी-दशा

५२०—अकामिक मन्दिर भेलि बहार (५५३) — ,,

५२१—मलिन कुसुम तनु चीरे (५५४) — ,,

५२२—सुन सुन माधव सुन मोरि बानी (५५५) — ,,

५२३—नव किसलय सयन सुतलि (५५६) — प्रोषितपतिका

५२४—प्रथमहि रग रभस उपजाए (५५७) — विरहगीत

५२५—विधिवसे तुअ सगम तेजल (५५८) — विरहिणी-संदेश

५२६—आज तिमिर दह दीस छड़ला (५५९) — विरह-चित्र

५२७—प्रथम एकादस दइ पहु गेल (५६०) — विरहसतप्ता

५२८—जञो प्रभु हम पए वेदा लेव (५६१) — आसन्नप्रवासपतिका

५२९—हाथिक दसन पुरुप वचन (५६२) — विरह-सम्बन्धी प्रहेलिका

५३०—बाढ़लि पिरीति हठहि दुर गेल (५६३) — विरहानुभूति

५३१—अलखिते गोप आएल चलिगेल (५६४) — विरहिणी-स्वप्न

५३२—अवधि बढओलन्हि पुछ्र इह कान्ह (५६५)	विरहिणी के मनोभाव
५३३—कानन कोटि कुसुम परिमल (५६६)	रूठे नायक के प्रति
५३४—हमरे वचने सखि सतत न जएवे (५६७)	नवीना को सखी की सीख
५३५—जत जत तोहे कहल (५६८)	पूर्वराग, नायक से प्रथम साक्षात्कार का अनुभव
५३६—धन जौवन रसरंगे (५६९)	विरहिणी की मार्मिक अवस्था
५३७—सपने आएल सखि मझु पिया पासे (५७०)	विरहिणी-स्वप्न
५३८—सपने देखल हरि उपजल रंगे (५७१)	,,
५३९—रभसहि तह बोललन्हि मुख कान्ति (५७२)	स्वप्न-मिलन
५४०—जा लागि चाँदन विख तह भेल (५७३)	विरहोत्तर मिलन, विदग्ध विलास
५४१—वे मोरा जायत दुरहुक दूर (५७४)	अवसप्रवासपतिका
५४२—जनम कृतारथ सुपुरुष सग (५७५)	दाम्पत्य प्रेम का उज्ज्वल रूप
५४३—माधव माधव होहु समधान (५७६)	विरह सम्बन्धी दृष्टिकूट
५४४—हम जुवति पति गेलाह विदेह (५८०)	सामान्या, पथिक को प्रणय निमन्त्रण
५४५—हमे एकसरि पिअतम नहि गाम (५९०)	,, ,,
५४६—बुझहि न पारलि परिणति तोरि (५९१)	नायिका द्वारा दूती को उपालम्भ
५४७—उचित वयस मोर मनमथ चोर (५९२)	नायिका द्वारा प्रणय-आमन्त्रण, परकीया सामान्या
५४८—अपना मन्दिर वइसलि अछलिहु (५९३)	कैतव
५४९—वडि जुडि एहु तरुक छाहरि (५९४)	प्रणय-आमन्त्रण, परकीया सामान्या

५५०—कुसुम रस अति मुदित मधुकर (६१०)	प्रोषितपतिका, षड्ऋतु
५५१—खने खने नयन कोन अनुसरइ (६१६)	सौन्दर्य, वय सन्धि
५५२—खेलत ना खेलत लोक देखि लाज (६१७)	सौन्दर्य
५५३—सैसव यौवन दरसन भेल (६१८)	वय संधि
५५४—किछु किछु उत्पति अकुर देल (६१६)	नवाकुरितयौवना
५५५—सैसव जौवन दुहु मिलिगेल (६२०)	" "
५५६—सैसव जौवन दरसन भेल, दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल (६२१)	" "
५५७—ना रहे गुरुजन माझे (६२२)	" "
५५८—पहिल बदर कुच पुन नवरग (६२३)	यौवनजन्य शारीरिक परिवर्तन
५५६—जिए मझु दिठि पड़लि ससिवएना (६२४)	पूर्वराग, नायक के मनोभाव
५६०—जहाँ जहाँ पदजुग धरई (६२५)	सौन्दर्य, पूर्वराग
५६१—चवरीभय चामर गिरिकन्दर (६२६)	सौन्दर्य का उत्कर्ष
५६२—पथगति पेखनु मो राधा (६२७)	पूर्वराग, नायिका से प्रथम साक्षात्कार
५६३—गेलि कामिनि गजहु गामिनि (६२८)	पूर्वानुराग, नायिका की शृगार चेष्टाएँ
५६४—साजनि अपुरुब देखलि रामा (६२६)	पूर्वराग, सौन्दर्य-चित्रण
५६५—माजनि, भाल कए पेखन न भेल (६३०)	पूर्वानुराग, सौन्दर्य एव शृगार-चेष्टाएँ।
५६६—नाहि उठल तिरे से धनि राई (६३१)	सद्य स्नाता का सौन्दर्य
५६७—आजु मझु शुभ दिन भेला (६३२)	" "
५६८—जाइते पेखल नहायलि गोरी (६३३)	सद्य स्नाता का सौन्दर्य, पूर्वानुराग
५६६—रामा हे सपथ करहुँ तोर (६३४)	पूर्वानुराग, नायक की व्यग्रता

५७०—कि कहव हे सखि कानुक रूप (६३५)	पूर्वानुराग, नायिका के मनोभाव
५७१—ए सखि देखल एक अपरूप (६३६)	पूर्वानुराग, नायिका के मनोभाव
५७२—पासरिते सरीर होये अवसान (६३७)	,, ,, वंगला प्रभाव की अतिशयता
५७३—कानु हेरव छल मन वड साघ (६३८)	पूर्वराग का मार्मिक व्यथागीत
५७४—कि कहव रे सखि इह दुख ओर (६३९)	पूर्वराग, वंशी-ध्वनि सुनकर गोपी की व्यग्रता
५७५—आज पेखलु धनि तोहारि वडाई (६४०)	राधा का सर्वसमर्पणकारी प्रेम
५७६—चल चल सुन्दरि हरि अभिसार (६४१)	अभिसार-सन्देश
५७७—नव अनुरागिनि राधा (६४२)	कृष्णाभिसारिका राधा
५७८—सहचरि बात घयल धनि श्रवने (६४३)	मिलन
५७९—रयनि छोटि अति भीरु रमनी (६४४)	अभिसार
५८०—राधामाधव रतनहि मन्दिरे (६४५)	प्रणय-मान
५८१—हरि परसंग न कर मझु आगे (६४६)	खंडिता
५८२—सखि हे ना वोल वचन आन (६४७)	कलहान्तरिता
५८३—सखि हे मन्द पेम परिणामा (६४८)	उपेक्षिता
५८४—सुन सुन सुन्दरी कर अवधान (६४९)	विरहोत्कंठिता को सांत्वना-सन्देश
५८५—तुहु मान धएलि अविचारे (६५०)	मानवती की भर्त्सना
५८६—सुन सुन गुनवति राघे (६५२)	मानवती के प्रति
५८७—ए धनि मानिनि कर सजात (६५३)	धृष्ट नायक
५८८—पीन कठिन कुच कनक कठोर (६५४)	मानवती के प्रति

५८९—कत कत अनुनय करु वरनाह (६५५)	मानवती नायिका से मानमोचन-अनुरोध
५९०—सुन माधव राधा साधिन भेल (६५६)	राधा का दुर्जय मान
५९१—सुन सुन गुनवति राधे (६५७)	राधा से मानमोचन का अनुरोध
५९२—हरि बड गरवी गोपमाझे वसई (६५८)	मान
५९३—आहे कन्हु तहु गुनवान (६५९)	नायक के प्रति
५९४—कचन ज्योति कुसुम परकास (६६०)	नायिका की मर्मव्यथा
५९५—कि कहब हे सखि पामर बोल (६६१)	अन्य रमणी मे आसक्त नायक के प्रति
५९६—ए धनि मानिनि कठिन परानि (६६२)	मानिनी के प्रति
५९७—तोहरि विरह वेदने बाउर (६६३)	नायक की व्यग्रता, बेकली
५९८—अछिलहुँ हम अति मानिनि होइ (६६४)	कृष्ण का नारी वेश मे आकर राधा का मान भग करना
५९९—बडइ चतुर मोर कान (६६५)	योगी रूप मे कृष्ण का राधा का मान भग करना
६००—दुर गेल मानिनि मान (६७६)	मिलन चित्र
६०१—प्रेमक गुन कहइ सब कोई (६६७)	प्रेम की गभीरता, प्रेम पथ की कठिनता
६०२—अपुरुब राधा माधव रग (६६८)	मानोत्तर मिलन
६०३—ए धनि कमलिनि सुन हित बानि (६६९)	प्रेम की सीख
६०४—दिवस तिल आधि राखवि जौवन (६७०)	मान तोडकर मिलने का अनुरोध
६०५—जीवन चाहि जौवन बड रग (६७१)	परकीया प्रेम की प्रशसा
६०६—सुन सुन ए सखि वचन विसेस (६७२)	नवोढा को सखी की सीख
६०७—सखि अवलम्बन चलवि नितम्बिनि (६७३)	दूती शिक्षा
६०८—हमर वचन सुन सजनी (६७४)	,,
६०९—सुन सुन मुगधिनि मभु उपदेश (६७५)	

६१०—न जान प्रेमरस नहि रति रंग (६७६)	प्रथम मिलन के पूर्व के भाव
६११—एके धनि पदुमिनि सहजहि छोटि (६७७)	प्रथम मिलन
६१२—सुन सुन सुन्दर कन्हाई (६७८)	दूती-शिक्षा नायक को
६१३—परिहर ए सखि तोहे परनाम (६७६)	प्रथम मिलन के पूर्व के भाव
६१४—सखि परबोधि सयनतल आनि (६८०)	प्रथम मिलन
६१५—थर थर काँपय लहुलहु भास (६८१)	प्रथम मिलन
६१६—हृदय आरति बहु भय तनु काँप (६८२)	प्रथम मिलन
६१७—अनेक यतन करि आनल पास (६८३)	नायिका-विश्रंभन
६१८—पहिलहि राइ कानु दरशन भेलि (६८४)	प्रथम मिलन
६१९—जतने आयलि धनि सयनक सीम (६८५)	प्रथम मिलन
६२०—अबोध कुमति दूति ना सुनल वानी (६८६)	प्रथम मिलन
६२१—ए हरि बले जदि परसब मोय (६८७)	नायिका द्वारा नायक को आवर्जना
६२२—गरबे न कर हठ लुबुध मुरारि (६८८)	प्रथम मिलन, नायक के प्रति
६२३—सुनह नागर निविबन्ध छोड (६८९)	,, ,,
६२४—रति-सुविसारद तुहु राख मान (६९०)	,, ,,
६२५—चातुर मरदन तुहुँ वनमारि (६९१)	,, ,,
६२६—बुझल मोहे हरि बहुत अकार (६९२)	,, ,,
६२७—ए हरि माधवं कि कहब तोय (६२७)	,, ,,

क्रम — पद	संख्या	विषय
६२८—वाला रमनि रमने नहि सुख	(६६४)	प्रथम मिलन, नायक के प्रति
६२९—नयन छलाछलि लहु लहु हास	(६६५)	रतिचिन्ह
६३०—सखि हे से सब कहइते लाज	(६६६)	पर्यंकविलास के अनुभव, सखी से
६३१—हम अति भीति रहल तनु गोइ	(६६७)	नायक की निठुराई
६३२—कि कहब रे सखि कहइते लाज	(६६८)	मिलन रात्रि के अनुभव, सखी से
६३३—कर कर धरि जे किछु कहल	(६६९)	,, ,, ,,
६३४—सुन्दरि बेकत गुपुत नेहा	(७००)	रतिचिह्निभूषिता
६३५—मन्दिरे अछलिहुँ सहचरि मेलि	(७०१)	प्रिय मिलन के अनुभव
६३६—आजु मझु सरम भरम रहु दूर	(७०२)	विपरीत रति
६३७—विगलित चिकुर मिलित मुख-मण्डल	(७०३)	,,
६३८—सखि हे कि कहब ताहिक ओर	(७०४)	,,
६३९—कुचयुग चारु घराधर जानि	(७०५)	,,
६४०—ए सखि ए सखि कि कहब हाम	(७०७)	प्रिय मिलन नहीं हो सकने की व्यथा
६४१—कि कहब हे सखि रातुक बात	(७०८)	गँवार नायक
६४२—राइक नविन प्रेम सुनि श्रुति मुखे	(७०९)	राधा-माधव मिलन
६४३—हाथक दरपन माथक फूल	(७१०)	प्रेम का स्वरूप, राधा की मर्मोक्ति
६४४—कतिहु मदन तनु दहसि हमारि	(७११)	विरहिणी, कामदेव से
६४५—कत गुरु गंजन दुरजन-बोल	(७१२)	विरहिणी
६४६—कि पुछसि मोहे निदान	(७१३)	विरहगीत
६४७—मने छल न टुटब नेहा	(७१४)	,,

६४८—जे दिन माधव पयान कएल (७१५)	प्रोषितपतिका, वसन्त-परिवेश
६४९—मधुऋतु मधुकर पाँति (७१७)	वृन्दावन मे रास, वसन्त-परिवेश
६५०—नव वृन्दावन नवनव तरुगन (७१८)	,, ,,
६५१—फूटल कुसुम सकल वन अन्त (७१९)	प्रोषितपतिका, वसन्त-परिवेश
६५२—फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर वन (७२०)	विरहिणी की क्षीणता, ,,
६५३—सुरतरुतल जब छाया छोरल (७२१)	मार्मिक विरहगीत, जीवन के विषम दिनो की मार्मिक अनुभूति
६५४—हिम हिमकर कर तापें तपायलुँ (७२२)	मार्मिक विरहगीत
६५५—ऋतुपति नव परिवेश (७२३)	वसन्त से शिशिर तक—मार्मिक विरहानुभूति
६५६—हम धनि तापिनी मन्दिरे एकाकिनी (७२४)	विरहगीत, पावस
६५७—सखि हे के नहि जानय हृदय क वेदन (७२५)	प्रोषितपतिका की मर्मव्यथा
६५८—सखि हे हमर दुखक नहि ओर (७२६)	वर्षा की रात मे एकाकिनी विरहिणी की अछोर व्यथा
६५९—गगने गरजे घन कूक रे मयूर (७२७)	पावस रजनी मे विरहिणी की व्यथागीतिका
६६०—पहिल वयस मोर न पूरल साधे (७२८)	प्रोषितपतिका
६६१—कालिक अवधि करिये पियागेल (७२९)	विरहगीत
६६२—हमर नागर रहल दूर देस (७२०)	विरहिणी द्वारा व्यथासजल वाणी मे परदेशी प्रियतम की मंगलकामना।
६६३—कत दिन मुचव इह हाहाकार (७१०)	विरहिणी की प्रतीक्षाकुल वाणी
६६४—पिया गेल मधुपुर हम कुलबाला (७३२)	प्रोषितपतिका
६६५—चीर चन्दन उर हार न देला (७३३)	मार्मिक विरहगीत

६६६—कत दिन माधव रहव मथुरापुर (७३४) मार्मिक विरहगीत
६६७—सजनि के कह आओव मधाई (७३५) विरहिणी की आकुल प्रतीक्षा
६६८—कत कत सखि मोहे विरह भय गेल तीता (७३६) विरह म सुखदायिनी वस्तुएँ दुखदायिनी
६६९—कहत कहत सखि बोलत बोलत रे (७३७) उपेक्षिता
६७०—७३५ से अभिन्न
६७१—अब मथुरापुर माधव गेल (७३६) विरहगीत, स्मृति
६७२—कानु से कहब कर जोरि (७४०) विरहिणी सन्देश
६७३—माधव सो अब सुन्दरि बाला (७४१) विरहिणी की खिन्नता का चित्र
६७४—हिम हिमकर पेखि कांपये खनखन (७४२) विरहिणी-दशा
६७५—माधव पेखल से धनि राई (७४३) ,,
६७६—चन्दन गरल समान (७४४) ,,
६७७—सुन सुन माधव पडल अकाज (७४५) ,,
६७८—माधव जाह पेखह तुहुँ बाला (७४६) विरहिणी की करुण दशा
६७९—माधव ओ नवनायरि बाला (७४७) विरहजन्य अवस्था
६८०—माधव कत परबोधव राधा (७४८) ,,
६८१—माधव कि कहब सो विपरीते (७४९) ,,
६८२—माधव हेरिअ अयलहुँ राई (७५०) यमुनातीर पर पडी विरहिणी राधा
६८३—माधव अबला पेखल मतिहीना (७५१) प्रोषितपतिका राधा
६८४—माधव विधुबदना (७५२) ,,

७०४—आज परसन मुख न देखऐ तोरा (८०८)	मानवती
७०५—मुख तोर पुनिमक चन्दा (८०६)	,,
७०६—आनन देखि भान मोहि लागल (८११)	सौन्दर्य
७०७—कानन कुसुमित साहर पवज (८१२)	,,
७०८—कुसुमधूरि मलयानिल पूरित (८१३)	प्रेम की ऋतु—वसन्त
७०६—प्रथम बयस अति भीति राही (८१४)	प्रथम मिलन
७१०—पावक सिखा निच न धावए (८१५)	,,
७११—दरसने ससिमुख मधुर हास (८१६)	मिलन-चित्र
७१२—कूल कूल रहु गगन चन्दा (८१७)	अभिसार
७१३—केतकि कुसुम आनि (८१८)	वासकसज्जिका
७१४—तुअ अनुराग लागि सकल रजनि (८१६)	विरहोत्कण्ठिता
७१५—कत कत भाँति लता नहि थाक (८२०)	नायिका को नही भुलाने का सदेश
७१६—एक कुसुम मधुकर न बसए कैसने रह नाह (८२१)	नवीना प्रणयिनी को सीख
७१७—विकच कमल तेजि भमरी सेओल (८२२)	विफल अभिसार
७१८—तुअ गुने अमिअ निवास (८२३)	मान
७१६—करह रभ पर रमनी साथ (८२४)	पर रमणी मे आसक्त नायक के प्रति
७२०—जिव जओं हमे सिनेह लाओल (८२५)	,, ,,
७२१—की भेलि कामकला मोरि घाटि (८२६)	,, ,,
७२२—एतए मनमथ सर साजे (८२७)	,, ,,
७२३—वरिस सघन घन पेमे पुरल मन (८२८)	प्रोषितपतिका

७४३—जइअओ जलद रुचि धएल कलानिधि (८४८)	बहुवल्लभ कन्त की प्रेमिका के प्रति
७४४—मलयानिले साहर डार डोल (८४६)	वसन्त
७४५—पिया सयँ कहव भमरवर (८५०)	प्रोषितभर्तृका का सन्देश
७४६—जेहे लता लघु लाए कन्हाई (८५१)	,, ,,
७४७—आज मोयँ जानल हरि बड मन्द (८५२)	विरहिणी का व्यथाकुल चित्रण
७४८—कत नलिनी दल सेज सोआउवि (८५३)	विरहताप
७४६—मधुपुर मोहन गेल रे (८५६)	विरहगीत
७५०—बिनु दोसे पिय परिहरि गेल (८५७)	,,
७५१—नयन नीर धर पीछर (८५८)	,,
७५२—रयनि समापलि रहलिछ थोर (८५६)	दाम्पत्य मिलन का चित्र
७५३—माधव, कत तोर करब बडाई (८६३)	कृष्ण की अनुपमेयता
७५४—उठु उठु सुन्दरि जाइछी विदेस (८७५)	आसन्नप्रवासपतिका

(घ)

वंश-पंजिकाएँ

(१) बिसइवार वश की वंशावली (वि रा० भा० प० के आधार पर)

- विष्णु ठाकुर
  - हरादित्य ठाकुर
    - त्रिपाठी कर्मादित्य ठाकुर
      - सान्धिविग्रहिक मन्त्रिरत्नाकर
      - देवादित्य ठाकुर
        - महामत्तक वीरेश्वर ठाकुर
          - महामत्तक चण्डेश्वर ठाकुर
        - धीरेश्वर ठाकुर
          - जयदत्त ठाकुर
            - गौरीपति
            - गणपति ठाकुर
              - अभिनव जयदेव म० म० विद्यापति ठाकुर
                - वाचस्पति ठाकुर
                - हरपति ठाकुर
                - नरपति ठाकुर
          - कीर्तिदत्त ठाकुर
          - रामदत्त ठाकुर
        - गणेश्वर ठाकुर
        - जटेश्वर ठाकुर
          - हरदत्त ठाकुर
          - लक्ष्मीदत्त ठाकुर
          - शुभदत्त ठाकुर
      - राजबल्लभ वलादित्य ठाकुर
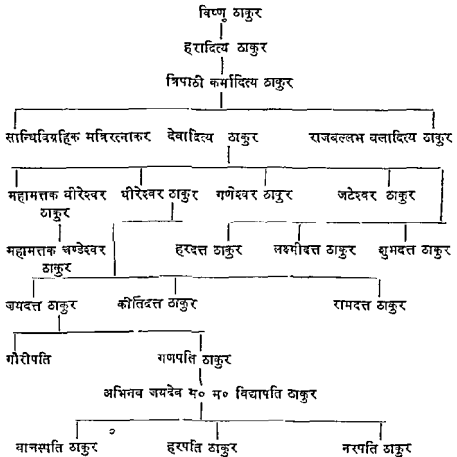
(२) ओइनवार वंश की वंशावली (बि० रा० भा० प० के आधार पर)

राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर

राजबल्लभ लखाइ | महाराज भोगीश्वर | महाराज कुसुमेश्वर | महाराज भवेश्वर (भवसिंह)

स्थानान्तरिक विश्वेश्वर | मुद्राहस्तक वीरेश्वर | मुद्राहस्तक गणेश्वर | स्थानान्तरिक गोविन्द

महाराज जयसिंह | महाराज वीरसिंह | महाराज कीर्त्तिसिंह

महात्तक महेश्वर | महाराज रत्नेश्वर | राजपण्डित चन्द्रसिंह

राजा उद्धवसिंह | महाराज रुद्रसिंह | राजपण्डित पियाई

महाराज अमरसिंह

पार्णागारिक उदयसिंह | कुमर त्रिपुरसिंह | महाराज देवसिंह | महाराज हरिसिंह

कुमर साम्बसिंह (राय अर्जुन)

महाराज शिवसिंह | महाराज पद्मसिंह

महाराज नरसिंह | राजसिंह | भानुसिंह | कुमर रसाई

महाराज धीरसिंह हृदयनारायण | महाराज भैरवसिंह हरिनारायण | महाराज चंद्रसिंह | रणसिंह | दुर्लभनारायण

कुमर घुराई

(ङ)

सहायक ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची

संक्षिप्त संकेत—

मि० म० वि०—'विद्यापति', सम्पादक—खगेन्द्रनाथ मित्र और विमानहारी मजुमदार (हिन्दी संस्करण)।

वि० रा० भा० प०—'विद्यापति-पदावली' (प्रथम भाग), प्रकाशक—बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद, पटना।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश—

१—ऋग्वेद
२—बृहदारण्यकोपनिषद्
३—बृहद् विष्णुपुराण
४—ब्रह्मवैवर्त पुराण
५—वाल्मीकीय रामायण
६—महाभारत
७—मेघदूत—कालिदास
८—अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास
९—मालविकाग्निमित्र—कालिदास
१०—कुमारसंभव—कालिदास
११—उत्तररामचरितम्—भवभूति
१२—नैषधचरितम्—श्रीहर्ष
१३—दशकुमारचरितम्—दण्डिन्
१४—अमरुकशतक—अमरुक

१५—आर्यासप्तशती—गोवर्द्धनाचार्य
१६—सदुक्तिकर्णामृत—श्रीधरदास
१७—रसिकजीवनम्—गदाधर भट्ट
१८—मृच्छकटिकम्—शूद्रक
१९—कवीन्द्रवचनसमुच्चय
२०—गीतिगोविन्द—जयदेव, स० प० विनयमोहन शर्मा
२१—नाट्यशास्त्र—भरत मुनि
२२—श्रृंगार तिलकम्—रुद्र भट्ट
२३—साहित्यदर्पण—विश्वनाथ
२४—प्रतापरुद्रीय यशोभूषण
२५—श्रृंगारमंजरी—स० वी० राघवन्
२६—श्रृंगारप्रकाश—भोजराज, स० वी० राघवन्
२७—गाहासत्तसई—हाल, स० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
२८—वज्जालग्गम्—जयवल्लभ
२९—प्राकृत पैंगलम्
३०—सन्देशरासक—अब्दुर्रहमान

बंगला—

३१—बंग भाषा ओ साहित्य—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन
३२—बांगला साहित्येर कथा—श्रीकुमार बंद्योपाध्याय
३३—कृष्णकीर्त्तन—चण्डीदास
३४—वैष्णव रस-साहित्य—खगेन्द्रनाथ मित्र
३५—चैतन्य चरितामृत—कृष्णदास कविराज
३६—बेंगाली लिटरेचर—डॉ० जे० सी० घोष

विद्यापति-साहित्य—

३७—पुरुषपरीक्षा—स० प० चन्द्रकान्त पाठक (ल० वें० प्रेस)
३८—पुरुषपरीक्षा—स० प० रमानाथ झा (प्र० पटना विश्वविद्यालय)
३९—कीर्त्तिलता—स० म० म० हरप्रसाद शास्त्री
४०—कीर्त्तिलता—स० बाबूराम सक्सेना
४१—कीर्त्तिलता और अवहट्ठ भाषा—स० शिवप्रसादसिंह
४२—गोरक्षविजय—स० डॉ० उमेश मिश्र, डॉ० जयकान्त मिश्र
४३—लिखनावली—(हस्तलिखित प्रति, बि० रा० भाषा परिषद पुस्तकालय)
४४—कीर्त्तिपताका—स० डॉ० उमेश मिश्र (तीरभुक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद)
४५—विभागसार—(हस्तलिखित प्रति, बि० रा० भा० प० पुस्तकालय)

४६—दानवाक्यावली
४७—शैवसर्वस्वसार
४८—दुर्गाभक्तितरंगिणी
४९—वर्षकृत्य
५०—विद्यापति पदावली—सं० रामवृक्ष बेनीपुरी
५१—विद्यापति पदावली—सं० नगेन्द्र मित्र
५२—विद्यापति-गीत-संग्रह—सं० डॉ० सुभद्र झा
५३—विद्यापति—सं० मित्र मजुमदार
५४—विद्यापति की पदावली (प्रथम भाग)—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
५५—विद्यापति की विशुद्ध पदावली—स० प० शिवनन्दन ठाकुर

इतिहास तथा आलोचना—

५६—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल
५७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा
५८—हिन्दी साहित्य—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
५९—हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—प० सूर्यकान्त शास्त्री
६०—हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—मैकडोनल
६१—हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—के० वरदाचारी
६२—हिस्ट्री ऑफ मैथिली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, भाग १—डॉ० जयकान्त मिश्र
६३—हिस्ट्री ऑफ बंगाल—डॉ० आर० सी० मजुमदार
६४—हिस्ट्री ऑफ तिरहुत—श्यामनारायण सिन्हा
६५—हिस्ट्री ऑफ मिथिला—डॉ० उपेन्द्र ठाकुर
६६—हिस्ट्री ऑफ इण्डिया—डॉ० वी० ए० स्मिथ
६७—डायनास्टिक हिस्ट्री ऑफ नौर्दर्न इण्डिया, प्रथम खण्ड—एच० सी० राय
६८—ए सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री—के० एम० पणिक्कर
६९—तारीख – इ – मुबारकशाही
७०—ट्रेविल्स ऑफ ह्वेन शांग—रै डेविस
७१—एपिग्रैफिका इण्डिका
७२—चैतन्य एण्ड हिज प्रेडीसेसर्स—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन
७३—अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेण्ट इन बंगाल—एस० के० दे
७४—लव इन हिन्दी लिटरेचर—वी० के० सरकार
७५—मैथिली क्रेस्टोमैथी—जी० ए० ग्रियर्सन
७६—श्रीराधा का क्रमविकास—शशिभूषणदास गुप्त
७७—भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—पं० बलदेव उपाध्याय

१११—पदावली—गोविन्ददास
११२—सिलेक्टेड वर्क्स—टी० एस० ईलियट (पेंग्विन बुक्स, १९३०)
११३—सोशल साइकॉलॉजी—मैकडूगल
११४—रागतरंगिणी—लोचन कवि
११५—मिथिला गीत संग्रह—सं० भोला झा

पत्र-पत्रिकाएँ—

१—इण्डियन हिस्ट्री क्वार्टरली, अक ३५, १९५९
२—जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (१९०३)
३—जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी, अक ४३, ४५
४—क्वार्टरली जर्नल ऑफ दि आन्ध्र हिस्टोरिकल सोसायटी, अक—१
५—इण्डियन एँटिक्वेरी, १८७५, १८९९
६—बंगदर्शन, ज्यैष्ठ—१२८२ साल
७—जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, अक, ३२
८—इण्डियन कल्चर, अक—४
९—जर्नल ऑफ द न्युमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, १९५७, अक—१९, खड—२
१०—ऐनुयल रिपोर्ट ऑफ द आर्क्यालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, १९१३—१४।

७८—मध्यकालीन धर्मसाधना—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
७९—मध्यकालीन प्रेमसाधना—प० परशुराम चतुर्वेदी
८०—हिन्दी काव्य मे प्रेमप्रवाह—प० परशुराम चतुर्वेदी
८१—ब्रजबुलि साहित्य—प० रामपूजन द्विवेदी
८२—प्रकृति और हिन्दी कवि—डॉ० रघुवश
८३—हिन्दी काव्य मे शृंगार साधना और महाकवि
८४—आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रेम और सौन्दर्य—
८५—रीतिकाव्य की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र
८६—मैथिली लोकगीतों का अध्ययन—डॉ० तेजना
८७—हिन्दी कविता मे प्रेम और शृंगार—डॉ०
८८—हिन्दी पदसाहित्य और तुलसीदास—डॉ०
८९—हिन्दी कविचर्चा—चन्द्रवली पाडेय
९०—हिन्दी काव्यमंथन—दुर्गाशंकर मिश्र
९१—हिन्दी साहित्य . बीसवी सदी—डॉ० न
९२—व्यक्ति और वाङ्मय—प्रभाकर माच
९३—आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प
९४—विद्यापति काव्यालोक—नरेन्द्रनाथ
९५—महाकवि विद्यापति—शिवनन्दन ठा
९६—विद्यापति ठाकुर—डॉ० उमेश मिश्र
९७—विद्यापति—डॉ० जनार्दन मिश्र
९८—विद्यापति—शिवप्रसाद सिंह
९९—विद्यापति—सूर्यबलीसिंह, लालदेव
१००—गीतकार विद्यापति—राम वाशिष्ट
१०१—विद्यापति : तुलनात्मक समीक्षा—प्रो०
१०२—विद्यापति की काव्यसाधना—देशराजसिंह

विविध—

१०३—सूरसागर—नागरी प्रचारिणी सभा
१०४—हिन्दी काव्यधारा—राहुल साकृत्यायन
१०५—वर्णरत्नाकर—ज्योतिरीश्वर ठाकुर, स० डॉ० सुनीतिकुमा
१०६—धूर्तसमागम—ज्योतिरीश्वर ठाकुर, स० जयकान्त मिश्र
१०७—पारिजातहरण—स० प्रो० कृष्णनन्दन दीक्षित 'पीयूष'
१०८—नव पारिजात मंगल—स० बजरग वर्मा
१०९—मिथिलातत्त्वविमर्श—म० म० परमेश्वर झा
११०—प्राचीन लिपिमाला—गौरीशकर हीराचन्द ओझा